कृष्ण गोपाल ग्रन्थमालाका एकादश पुष्प

श्रीगोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी-ट्रस्ट (इन्दौर)
की सहायतासे प्रकाशित

ज्वर विज्ञान

प्रकाशक—

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

प्रथम संस्करण
प्रति २५००

१९५० ई०

सामान्य कागज ३)
विशेष कागज ४।)

श्रीगोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी-ट्रस्ट
(इन्दौर) की सहायतासे प्रकाशित

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् ।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

\+ \+ \+ \+

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः ।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥

\+ \+ \+ \+

अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।
तथा युंजीत भैषज्यमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥

मुद्रक—दुर्गादत्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल, बनारस ।

भूमिका

'ज्वर विज्ञान' वर्तमान समयका एक आदर्श ग्रन्थ है, इसकी प्रशस्तिके सम्बन्धमें जो कुछ और जितना भी लिखा जाय, वह थोड़ा होगा। इस ग्रन्थ-रत्नने आयुर्वेदके एक महान् कमी की पूर्ति की है। आयुर्वेदके मर्मको समझाने के लिये यह विज्ञानामृतसे पूर्ण ग्रन्थ आयुर्वेद प्रेमियों के लिये आशातीत लाभप्रद मात्र ही सिद्ध न होकर एक नवीनतम कलेवर व ओज प्रदान करनेवाला सिद्ध होगा, फलतः पाठक गण इस ग्रन्थ की सहायता तथा ईश्वर प्रदत्त अपनी विशेष विशेषताओं से सुसज्जित हो, संसार की सच्ची सेवा करते हुए अपने गौरवको भी प्रसारित कर सकेंगे। ग्रामीणोंकी कौन कहे, नगरों के बहुत से सुपठित वैद्य महोदय भी इतिवृत्तों का पूरा पता न रहनेसे विविध प्रकारके ज्वरों के अंग्रेजी नामों को सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़से रह जाते थे। अतः वे अपनी अज्ञताके कारण चुप मारकर रह जाते थे बल्कि कभी कभी उन्हें अपनी अल्पज्ञता के कारण अवांछित परिस्थितियोंका सामना भी करना पड़ता था क्योंकि, उनकी शिक्षा-दीक्षा प्राचीन शैलीके अनुसार सरल थी और वे सर्वथा सादगी पसन्द करते थे। उन्हें न इन अंग्रेजी नामोंका आयुर्वेदोक्त पर्य्याय और न व्याधि विश्लेषणका नया तरीका ही मालूम था।

शताधिक वर्षोंसे अंग्रेजी राष्ट्र-भाषा थी। बहुतों ने उसे पढ़ा तथा बहुतों ने उसमें इतनी कुशलता प्राप्त की कि उनके समक्ष इतर अंग्रेजी भाषा भाषियों को भी नतमस्तक होना पड़ा। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि, अपने देशमें अंग्रेजी जाननेवालोंकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत ही कम है। राष्ट्र-भाषा

होने और राष्ट्र सहाय्य प्राप्त होने तथा अपनी विविध विशेषताओंके कारण अंग्रेजी इतनी प्रिय हुई कि, बहुतेरे विज्ञानके महारथियों ने अपनी मातृ-भाषासे उदासीन हो, इसीकी छत्रछायामें शरण ली। निःसन्देह अंग्रजी साहित्य ने भारतीयोंका महद् उपकार भी किया है, इसने भारतियों के दृष्टिकोण को वदल कर उनकी अभि-रुचि अपनी मातृभाषाकी ओर आकर्षित की । क्योंकि, सांस्कृतिक स्वाभिमान की अवशिष्ट चिनगारी अभी भी उनके दिलों में टिमटिमा रही थी। फलतः प्राचीन विज्ञान और विविध कलाओंका एक बार फिर निर्माण होना प्रारम्भ हुआ । पर कालके प्रभाव से देववाणी (संस्कृत) का स्थान प्रचलित भाषा को दिया गया। आयुर्वेद का जिसके संहिता ग्रन्थ संस्कृतमें थे, विधिवत् अध्ययन किया गया और उनकी गुत्थियोंको सुलझाते हुए उनको हिन्दीमें लिखा गया। इस कार्य में अंग्रेजी और यूनानी ग्रन्थोंका भी मधुर संकलन किया गया है तथा तुलनात्मक ढंगसे नूतनसाहित्य-निर्माण किया गया है। इसी प्रकार के ग्रन्थ बँगला, मराठी आदि भाषाओंमें प्रचुर परिमाणमें मिलते हैं। हिन्दी कुछ पिछड़ी हुई थी; मगर अब हिन्दीके विद्वानोंका झुकाव इस ओर हो गया है और शीघ्रातिशीघ्र इस कमीकी पूर्ति हो जायगी।

ज्वर विज्ञान इस समयका उपहार होता हुआ एक अनोखा ग्रन्थ है, जो अपने समयका प्रतीक है। इसमें ज्वर सम्बन्धी समस्त सिद्धान्तोंपर यथेष्ठ प्रकाश डाला गया है। तथा एलोपैथी और वैद्यकको निचोड़ कर, उभय शास्त्रों के मधु को ही नहीं, प्रत्युत सर्वस्वको इस ढंगसे सरल भाषामें लिखा गया है कि, पढ़नेवालोंकी बुद्धि विकसित और रुचि परिष्कृत होती जाती है अतः इस ग्रन्थका एक-एक प्रकरण उपादेयतासे परिपूर्ण है।

इस ग्रन्थको अधिकतम उपादेय बनानेकी आकांक्षासे इसमें स्थान

स्थानपर आवश्यकीय शारीरिक संस्थाका विशद विवरण जोड़ दिया गया है ताकि, पढ़नेवालोंको दोषों के प्रसार और उपद्रुत अंग—प्रत्यंगोंका पूर्ण परिज्ञान हो सके। औषधियां चाहे मुख मार्गसे सेवन की जाय या या इन्जेक्शनद्वारा अन्तः क्षेपित की जांय, उनका विविध अंगोंपर विविध प्रभाव पड़ता ही है। यदि शारीरिक शास्त्रका बोध न हो तो वैद्य प्राणाभिसर नहीं कहलाता। समय अब प्राणाभिसरोंको चाहता है, इस ग्रन्थको पढ़नेसे समूचे शारीरिक शास्त्रका बोध तो नहीं होता फिर भी आवश्यकीय बातोंकी यथेष्ठ जानकारी हो जाती है।

इस ग्रन्थरत्नके ज्वरोत्पत्ति और प्रकार, ज्वर की विविध अवस्थाएँ चिकित्सोपयोगी सूचना, ज्वरके उपद्रव और उनकी चिकित्सा शीर्षक अध्यायोंको पढ़ने तथा मनन करनेसे बहुत बड़ा काम हो जाता है ज्वर विश्लेषण सम्बन्धी विविध जानकारियाँ सहज ही हृदयंगम हो जाती हैं। इतनी बातें यदि ध्यानमें रहें तो संभवतः ज्वर हो ही नहीं सकता और यदि हो भी जाय तो वह विकृतरूप धारण नहीं कर सकता। मानव अपने प्रज्ञापराध के कारण नाना प्रकारकी उलझनोंमें पड़ता और द्वन्दों को सहन करता है। यदि वह विवेक बुद्धिसे काम ले तो उसको सड़-सड़कर मरना नहीं पड़ता। इन अध्यायोंमें ज्वरकी उत्पत्ति, उसकी अवस्थाएँ उनके उपद्रव और उपद्रवोंकी शान्तिके उपाय बड़े मार्मिक ढंगसे लिखे गये हैं।

ज्वरों की चिकित्सा यों तो औषधियोंके द्वारा ही होती है, फिर भी यदि विचार किया जाय तो परिचर्य्याका स्थान उससे गौण नहीं है। परिचर्य्या भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि चिकित्सा। ज्वराक्रान्त रोगीका मन उतनी ही मात्रा में संत्रस्त रहता है जितना कि उसका शरीर; विषमावस्था को प्राप्त हुए शारीरिक दोष और धातु यदि औषधियोंकी अपेक्षा करते हैं, तो मन भी सत्परिचर्य्याको चाहता है क्योंकि उपयुक्त परिचर्यासे संतुष्ट रोगी

शारीरिक कष्टोंको झेलनेके लिये सक्षम हो जाता है । अतः प्रस्तुत ग्रन्थमें परिचर्य्या प्रकारको महत्वपूर्ण स्थान देकर, लेखकने लोकका महान् उपकारमात्र ही नहीं किया प्रत्युत मानवताकी जिम्मेंदारीका पाठ भी पढ़ाया है ।

इस पुस्तकका रोगपरीक्षा अध्याय बड़े महत्वका है । इसमें रोगपरीक्षा प्रकार सरलतम भावसे समझाते हुए रोगके अन्तिम स्तर तक पहुँचानेका मार्ग दिखलाया गया है । इस अध्यायमें सबसे पहिले तापकी परीक्षा और उस कार्य्यमें आनेवाले यन्त्रों की प्रयोग विधिपर यथेष्ठ प्रकाश डाला गया है । दूसरा महत्वपूर्ण विषय "नाड़ीपरीक्षा"का है, इसका विज्ञान किसी समय अपने शिखर पर होगा पर, इस समय तो इसमें बहुत बड़ी धूर्तताने अपना सिक्का जमा रक्खा है । फिर भी दोषोंके तारतम्य जाननेका इसके समान अन्य कोई सरल उपाय नहीं है इस अध्यायमें नाड़ी परीक्षा सम्बन्धी जो कुछ भी बतलाया गया है वह लेखकके अनुभवका प्रतीक है, इसका अभ्यास कर कोई भी मनुष्य आपत्तिके समय रोगीकी सच्ची सहायता कर सकता है । मल, मूत्र, जिह्वा, मुख, ओष्ठ, गंध, नेत्र और स्वप्न परीक्षा आदि रोग और रोगीकी विविध अवस्थाओंके परिचायक हैं । इनकी आकृतियां बहुधा रोग सम्बन्धी बहुतसी आवश्यक बातोंका निदर्शन करा देती हैं । इस अध्यायमें कालज्ञानका समावेशकर ज्वरको पूर्वजन्मार्जित कर्मका परिणाम होना स्वीकार किया गया है । इस सम्बन्धमें ज्यौतिष-शास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों (जैसे कौन नक्षत्र और कौनसे योगमें उत्पन्न होनेवाला ज्वर कितने दिनोंतक कष्ट देता या मार डालता है) पर भी वैज्ञानिक तथा विश्वास करने योग्य ढंगसे लिखा गया है । इस एक अध्यायका अध्ययन मात्र कर लेनेसे रोगीकी आरोग्यता तथा मुमूर्षुत्व (यदि सैद्धान्तिक नहीं, फिर भी सचाई के बहुत समीपतकका) बोध अवश्य हो जाता है ।

इस ग्रन्थमें आयुर्वेदके मूलतत्त्व त्रिदोष और कीटाणु तथा रोगोत्पत्ति शीर्षक दो अध्यायोंको लिखकर लेखक ने बहुत बड़ा उपकार किया है। जन समाजमें फैले हुए एक मिथ्या दुराग्रहका मूलोच्छेदन कर दिया गया है। आजका अपठित या साधारण पठित समाज वातादि दोषोंका नाम लेते ही त्रिदोष (सन्निपात) का और कीटाणुओंकी चर्चा करते ही तुरन्त कीड़े पड़ जानेका अनुमान कर लेता है। अथच वह निरुत्साहित हो जाता है। उसका उस समयका मानसिक उद्वेग शान्त करना कठिन हो जाता है। लेखकने इन विषयोंपर मर्मस्पर्शी प्रकाश डाल कर समयोचित एवं वांछित उपकार किया है। इन अध्यायोंमें दोषों और कीटाणुओंके प्रकार, वृद्धि और ह्रासके लक्षण तथा इनकी शक्तिको विधिवत् समझाया है।

इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, जहाँ यह विविध प्रकारोंके ज्वरके कारण, काल, सम्प्राप्ति, रूप, पूर्वरूप, उपद्रव, साम और निरामावस्था, चिकित्सा और पथ्यापथ्य को आयुर्वेदीय प्रणालीसे बताता है, वहाँ उन्हीं ज्वरोंकी मीमांसा एलोपैथी ढंगसे भी बतलाता जाता है। यद्यपि यह बात सर्वसंमत है कि, उभय प्रणालियोंका व्याधि विश्लेषण एक दूसरेसे भिन्न है, फिर भी दोनों शास्त्रोंका लक्ष्य एक ही है।

परं प्रयत्न मातिष्ठेत् प्राणदस्याद्यथा नृणाम् ॥

प्रायः रोगियोंके घरपर डाक्टर और वैद्योंका समागम होता ही रहता है परन्तु, कभी कभी इन दोनों में परस्पर मतैक्य नहीं हो पाता, अथच इसका परिणाम बहुधा इतना जघन्य होता है कि वे परस्पर में एक-दूसरे को निकृष्ट दृष्टि से देखने लगते हैं। इस कठिनाईको इस ग्रन्थने विशेषांशमें दूरकर उक्त महान् कमी की पूर्ति की है। इस ग्रन्थमें उक्त दोनों चिकित्साशास्त्रोंके अर्वाचीन और प्राचीन सिद्धान्तों प्रकारोंका और परिच्चर्य्या आदिका समावेश कर दिया है, यदि दोनों पैथियों

के उपासक कष्ट करके इस ग्रन्थका अध्ययन करलें, तो बहुत संभव है कि, उनका परस्पर का वैमनस्य सदा के लिये दूर हो जाय, इ नहीं इसके अध्ययन से वे परस्पर एक दूसरे के सच्चे सहायक बन सकते हैं।

प्रतिपाद्य विषयोंपर यों तो लेखकने प्रत्येक ज्वरोंपर आवश्यकतासे अधिक लिख दिया है; फिर भी आन्त्रिक ज्वर (मधुरा), प्रलापक ज्वर, ग्रन्थिक ज्वर, वातश्लैष्मिक ज्वर, क्रकच संनिपात ज्वर, मलेरिया और न्यूमोनियापर तो कलम ही तोड़ दी है। इतना सुन्दर वर्णन तो मूल ग्रन्थोंमें भी नहीं पाया जाता अतः कहना पड़ता है कि, लेखकने इन स्थानोंपर अपने प्रगाढ़ पाण्डित्य और अनुभव से काम लिया है।

इस ग्रन्थमें पक्षपातको स्थान नहीं दिया गया, जिसका जो योग प्रत्यक्ष फलप्रद और समयोचित प्रतीत हुआ और जो अनुभवमें आया उसीका संग्रह कर लिखा गया है। यह कोई आवश्यक नहीं कि सब जगह आयुर्वेदीय औषधियां ही काम दें, आखिर डाक्टरी औषधियां भी तो औषधियां ही हैं। प्रकृतिने, उनमें भी विशिष्ट गुण धर्म प्रदान किये हैं। फिर वे क्यों न उपयोगमें लाई जायं! औषधियां दोनों प्रकारकी अच्छी होती हैं, जिससे रोगी का विशेष हित होता हो, उसीका उपयोग करना चाहिये; मगर उनका उपयोग इस ढंगसे होना चाहिये कि, वे रोग उन्मूलन करनेके साथ-साथ बलकी अभिवृद्धि भी करती रहें और भविष्यमें भी किसी प्रकार की हानि न करें। इस पुस्तकका प्रत्येक योग बहुशोनुभूत और प्रत्यक्ष फलप्रद है।

ज्वरविज्ञानमें स्वस्थ पुरुषकी स्वास्थ्य रक्षाके लिये जिन उपायोंका वर्णन किया गया है वे समयोपयोगी हैं जो स्वास्थ्यके नियमोंको भंग करने वाले और मलिन रहनेवालोंके लिये विशेष मननीय हैं। इनके अतिरिक्त ग्रामों और जंगलोंमेंसे सरलतासे प्राप्त होनेवाली औषधियोंके जो प्रयोग दिये गये हैं, उनसे भी समयपर बड़ा लाभ होता है।

मैं उपसंहार में क्या निवेदन करूँ ? मैं तो इस योग्य नहीं कि, नारायण स्वरूप श्री आस्वामीजी महाराजको धन्यवाद दे सकूँ । मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि, मानव कल्याणके लिये आपका आविर्भाव हुआ है और आप अपने उसी संकल्पपर आरूढ़ हैं। आपने अब-तक आयुर्वेदोन्नतिकेलिये बहुत कुछ किया है, फिर भी अभी बहुत कुछ कार्य शेष है, जिसे आप पूरा करनेकी क्षमता रखते हैं अतः प्रार्थना है कि, कृपाकर आप उसे पूरा कर लोक कल्याण करें ।

ता० २३।७।५० } श्रीमाधव प्रसाद पाण्डेय
असकुण्डाघाट, मथुरा }

निवेदन

भारतवर्ष में शिक्षा का अति अभाव है। स्वास्थ्य रक्षा के लिये किन-किन नियमों का पालन करना चाहिये इस विषय का परिचय सामान्य जनता को न होने से और पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा तथा विलास प्रिय भावना प्रवल रहने के कारण वर्तमान में रोग अत्यधिक परिमाण में फैले हुये हैं। नगर और ग्रामोंमें जहाँ देखो, वहां रोगियों की बड़ी संख्या प्रतीत होती है। रोग पीड़ितों में ज्वर से पीड़ितों की संख्या ८० प्रतिशत से भी अधिक दिखाई देती है। शहरों में आवश्यकतापर रोगियों को वैद्य, हकीम और डाक्टरों की सहायता सरलता से मिल जाती है; किन्तु ग्रामों में चिकित्सक सर्वत्र सुलभ न होने से तथा धन की न्यूनता और अज्ञान के कारण ग्रामवासियों को अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। अनेक मूर्ख मनुष्य रुग्णावस्था में अपथ्य सेवन करके रोगको अधिक प्रकुपित बना देते हैं। वे ग्रामोंमें सरलता से मिलने वाली चिरायता आदि निर्भय औषधियां और ज्वर की अनेक जातियों का बोध न होनेसे विषम ज्वर में उपयोग में आनेवाली बाहर से आई हुई तीव्र विषाक्त औषधियां क्विनाइन, पेल्युड्रिन, मेपेक्रीन आदि का उपयोग बिना समझे-बूझे करते रहते हैं। पचन-संस्था दूषित हो और रस रक्तादि धातु आमदोषयुक्त होने पर क्विनाइन आदि का सेवन करने से ज्वर उतर तो जाता है; किन्तु दोष भीतर रह जाने से थोड़े ही दिनों में फिर संगृहीत होकर पुनः ज्वर उत्पन्न कर देता है या अन्य रोग की संप्राप्ति कर देता है। अपथ्य सेवन किया जाय तो रोग प्रकुपित हो जाता है। मधुरा, शीतला, रोमान्तिका आदि के ज्वर हों तो क्वनाइन आदि औषधि लेनेपर प्रबलावस्था को प्राप्त होते हैं। इन नयर: का परिचय जनता को न होने से वह अधिक पीड़ित होती है।

अनेकों को बार बार ज्वर आता रहता है। वे शरीर से कृश और निर्बल रहते हैं तथा अपना व्यवहार ठीक तरह से नहीं कर सकते और जीवन :खमय बना लेते हैं।

ग्रामों की ऐसी दयनीय स्थिति को देखकर श्रीयुत् गोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी ट्रस्ट बोर्ड के विचारशील ट्रस्टीगण ग्रामवासियों को सहायता पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। इन्होंने वैद्यों के द्वारा इन्दौर (मालवा) से चारों ओर सैकड़ों ग्रामोंमें मोटरोंपर औषधियों का प्रबन्ध कर नियमित सेवा कराना प्रारम्भ किया है और यह कार्य आगे विशेष रूप से कराने का उनका हार्दिक विचार है। इसके अतिरिक्त ग्रामवासियों को बोध देने के लिये 'ग्रामोंमें औषध रत्न' प्रथम खण्ड उन्हों ने प्रेरणा करके छपवाया और उसी तरह निष्काम भाव से ग्रामवासियों के सेवार्थ ज्वर विज्ञान प्रकाशित कराने में सहायता दी है।

साधारण ग्रामवासी पढ़े लिखे सज्जन भी समझ सकें, इसलिए इस ग्रंथ में ज्वर के कारण, ज्वरकी उत्पत्ति के निरोध का उपाय, ज्वर की विविध अवस्थाएँ, परीक्षा, लक्षण, उपद्रव, ज्वरावस्था में पालन करने के नियम, उपचार, पथ्यापथ्य आदि सब बातें विस्तार से दर्शायी हैं। उपचारों में शास्त्रीय और सरल दो प्रकार हैं। शास्त्रीय उपचार यद्यपि ग्रामवासी बिना बोध के नहीं कर सकते फिर भी उनउपचारोंको जानकर बाहर से औषधि लाकर निर्भयता पूर्वक उपयोग में ला सकते हैं। आयुर्वैदिक औषधियां क्विनाइन जैसी घातक नहीं होतीं। इस पुस्तकसे वे ज्वरावस्था के नियम, पथ्यापथ्य, प्रकार, साम-निराम अवस्था आदि भली भाँति समझ कर उसके अनुसार सरल उपचारका लाभ प्राप्त करना चाहें तो पूरा पूरा ले सकते हैं। एवं बारंबार उलट उलटकर आनेवाले ज्वर के भीषण प्रकार से बच सकते हैं।

ज्वरविज्ञान लिखनेका प्रारम्भ १९४८ में श्री० पं० माधवप्रसाद जी

पाण्डेय बी०ए० आयुर्वेदाचार्य से कराया था। वे स्वामी जी महाराज के दिये हुए भाव को सुन्दर भाषा में लिपिबद्ध करते थे। इनका लेखन शैलीपर बहुत अच्छा अधिकार था पर, लगभग ४० पृष्ठों का लेख तैयार होनेपर वे ज्वरसे पीड़ित हो गये। जिससे आगे कार्य नहीं कर सके। वे ग्रन्थ पूरा लिख देंगे, इस आशा में ६ मास तक राह देखी गई, किन्तु उनका स्वास्थ्य ग्रन्थ लेखन करने योग्य नहीं हो सका। जिससे निरुपायवश स्वामी जी महाराज ने लिखना आरम्भ किया। पहिले पाण्डेयजी के लिखे हुए प्रकरणों का संशोधन किया और फिर आगे लिखने लगे। लगभग २५० पृष्ठों का लेख तैयार हो जानेपर वे भी अस्वस्थ हो गये। तब उन्हों ने भूतपूर्व व्यवस्थापक सोहन-लालजी से लिखवाना आरम्भ किया। मूल लेखका विशेषांश तो चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम खण्ड में तैयार ही था अतः उनसे कुछ सेविल की मेडिसी-नपर दृष्टि डालना, गावों में औषधरत्न से सरल प्रयोग लेना, रसतन्त्रसारमें से संक्षेप में प्रयोग वर्णन लिखना आदि कार्य कराया। इस तरह ये सब प्रकरण तैयार होनेपर उन सबका संशोधन स्वामी जी महाराज ने कर दिया। अंतिम दो प्रकरण देखनेका समय स्वामीजी महाराजको नहीं मिला। इस तरह अनेक बार विघ्न आने से ग्रन्थ प्रकाशन में देर हुई।

जिस तरह सिद्ध परीक्षा पद्धतिमें स्वामी जी महाराज और सोहन-लालजी की भाषा पृथक् होती है, उसी तरह इसी ग्रन्थ में ३ लेखकों की भाषा शैली दृष्टि गोचर होती है।

प्रारम्भ के ९ प्रकरण (पृ० १२४ तक) चिकित्सातत्व प्रदीपमें नहीं हैं या उस सम्बन्ध का विचार अति संक्षेप में है। उसे इस ग्रन्थ में विस्तार से समझाकर लिखा गया है। १० वें प्रकरण से अन्तिम प्रकरण

तक मूल आधार चिकित्सातत्व प्रदीपका होनेपर भी ग्रामवासी वैद्य और आयुर्वेद प्रेमी इस ग्रन्थका विशेष लाभ उठा सकें, इसलिये सरल प्रयोग विशेष दिये गये हैं, अवस्था भेद और उपद्रव भेदको विशेष समझा कर अनुभूत चिकित्सा पद्धति भी लिखी गई है।

भाषा संशोधन और अन्तिम प्रूफ संशोधन आदि कार्यों में श्री पं० मदन गोपालजी शर्मा ने पूर्ण सहयोग दिया है। इन्होंने स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी सेवायज्ञ समझ कर जो परिश्रम किया है उसके लिये हम उनके आभारी हैं।

छपाई के समय भी अनेक विघ्न आये हैं। निष्काम भाव से सहायता करने वाले श्री पं० मदनगोपाल जी शर्मा को बाहर जानेका काम आनेपर दूसरे अनुभवी प्रूफरीडर का प्रबन्ध कुछ समयतक न होने से भूलें भी रह गई हैं। इस बात का हमें दुःख है। इस सम्बन्ध में हम पाठकों से क्षमा याचना करते हैं और उन भूलोंका नूतन संस्करण के समय सुधार कर लिया जायेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि, इस "ज्वर विज्ञान" को लिखने के लिये प्रथमतः श्री पं० माधवप्रसाद जी पाण्डेय वैद्य भूषण, आयुर्वेदाचार्य को आमन्त्रित किया गया था; परन्तु अपनी अस्वस्थताके कारण इस ग्रन्थ के लेखन कार्य को सम्पन्न न कर सके और उनको काशी लौट जाना पड़ा। फिर भी स्वामीजी महाराज द्वारा इस पुस्तक के मानचित्र का वास्तविक उपदेश उन्हीं को हुआ था। इस पुस्तक के लेखन कार्य में उनकी हार्दिक सहानुभूति थी। अतः इसकी भूमिका लिखने के लिये उनसे ही निवेदन किया गया और जो भूमिका प्राप्त हुई है वह ग्रन्थारम्भ में प्रकाशित की गई है।

जिस तरह गांवोंमें औषधरत्न प्रथम खण्ड प्रकाशनार्थ श्री गोविन्दराम सेकसरिया चेरिटी ट्रस्टने २५००) रु० की सहायता दी थी, उसी

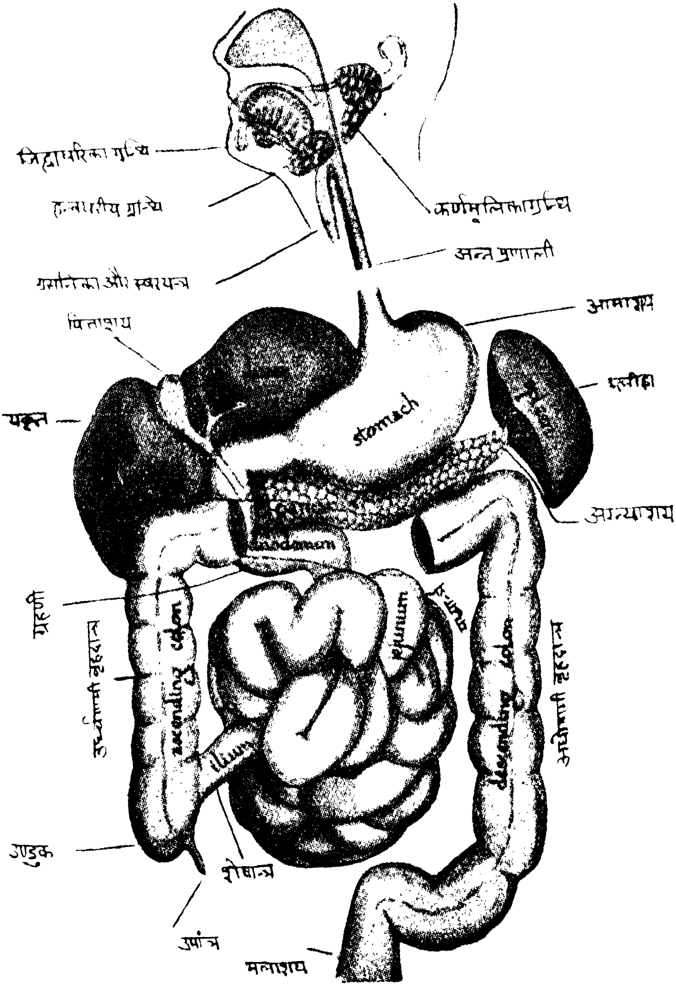
तरह इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ भी उस ट्रस्टसे हमें २५००) रु० सहायता मिली है। इस उदारता के हेतुसे ही ग्रामवासियों की सेवार्थ इस पुस्तक का हम प्रकाशन कर सके हैं। इस सम्बन्ध में हम उन सभी ट्रस्टियोंके विशेषरूपसे आभारी हैं।

भवदीय

कुँवर जसवन्तसिंह
मन्त्री श्रीकृष्णगोपाल औषधालय

कालेड़ा-कृष्णगोपाल, अजमेर
शुद्ध आषाढ़ पूर्णिमा २००७

विषय सूची



कर्णमूलिका ग्रन्थि
अन्न प्रणाली
आमाशय
पित्ताशय
प्लीहा
यकृत
stomach
अग्न्याशय
duodenum
ग्रहणी
jejunum
ascending colon
descending colon
ilium
उण्डुक
शेषान्त्र
उपांत्र
मलाशय

पचनेन्द्रिय संस्था

ज्वरविज्ञान

१. उत्तापोत्पत्ति और नियन्त्रण

मनुष्य शरीर बड़े पुण्योंके फलसे प्राप्त होता है। परन्तु यह प्रत्येक मनुष्य अच्छी प्रकार जानता है कि मनुष्य योनि मिल जानेपर भी अगर शरीर निरोग न हो, तो उसका जीवन निरर्थक हो जाता है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें किसी एक सिद्धिको भी प्राप्त करके अपना कल्याण नहीं कर सकता। शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिये मनुष्य को सर्वदा सचेत रहना एवं उसे स्वास्थ्यके नियमोंसे भली प्रकार परिचित होना चाहिये। १. मिथ्या आहार-विहार; २. ऋतु प्रकोप या कीटाणुओंका आक्रमण; ३. मानसिक आघात; ४. आगन्तुक (विद्युत आदि); ५. अभिशाप आदि कारणोंसे ही शरीर के धातुओंमें विषमता उत्पन्न होकर रोगोत्पत्ति होती है। संसार में अनेक रोग हैं और प्रतिदिन नये नये रोग उत्पन्न होते जा रहे हैं, परन्तु प्राणीमात्र को होनेवाले विकारोंमें ज्वर की प्रधानता है। कोई

भी शय्या पर मुख मलीन पड़ा हो, तो देखते ही साधारण आदमी भी प्रश्न करता है कि, क्या बुखार है ? यह सर्वप्रधान और सर्वपरिचित विकार होनेसे, इसका विवेचनपूर्ण वर्णन सबके समझने योग्य सरल भाषामें एक स्थानमें उपलब्ध करना काफी लाभप्रद सिद्ध होगा।

मनुष्य शरीरमें शारीरिक उष्णता प्राकृतिक होती है। इस उष्णता मान की दृष्टि से प्राणी दो विभागोंमें विभक्त किये गये हैं। १. उष्णरक्ती—जिनका उत्ताप निरन्तर सामान्यतः एक-सा रहता है। २. शीतरक्ती—वे प्राणी जिनका उत्ताप अपने चारों ओरके उत्तापसे भिन्न हो। मनुष्य एक उष्णरक्ती प्राणी है। परन्तु स्वस्थावस्थामें भी शारीरिक उत्तापमें कुछ भिन्नतायें पायी जाती हैं। एवं शरीरके विभिन्न भागोंके तापमें भी अन्तर रहता है, जैसे बगल और मुँखके तापमें। इसपर समयका भी प्रभाव पड़ता है। अतः अपराह्नमें ४ से ५ बजे तक यह उच्चतम ९९° तक और प्रातःकाल ३ बजे न्यूनतम ९७° होता है। शरीर की क्रियाशीलता और निष्क्रियताका भी इसपर प्रभाव पड़ता है।

उत्ताप की उत्पत्ति—अब प्रश्न उपस्थित होता है कि मनुष्य शरीरका यह स्वाभाविक उत्ताप कहांसे और किस प्रकार उत्पन्न होता है ? शरीरमें अनेक प्रकार की हल चल होती रहती हैं। यही उसकी जीवितावस्थाका द्योतक है। निद्रावस्थामें हृदय, फुफ्फुस आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग निरन्तर कार्य करते रहते हैं। इसके फलस्वरूप शारीरिक उत्ताप की उत्पत्ति होती रहती है ! यह निश्चित है, कि शरीरका प्रत्येक जीवित तन्तु उसकी क्रियाशक्तिके अनुसार ताप उत्पन्न करता है। परन्तु कुछ मुख्य अङ्ग जैसे—ग्रन्थियां उत्तापका एक नियमित परिमाण उत्पन्न करती हैं, हांलाकि तुलनात्मक दृष्टिसे वही न्यून होता है, तथापि अबाधरूपसे निरन्तर उत्पन्न होनेवाला होता है। शारीरिक उत्तापका अधिकतम भाग मांसपेशियों द्वारा उत्पन्न होता है। और वह भी

मुख्यतः शीततम अवस्थामें जब कि मांसपेशियोंके आकुञ्चन-प्रसारण और कँपकँपीके कारण इनकी क्रियाशीलता अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है। परन्तु इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि, शरीर को इस क्रियाशीलताके कारण प्रत्येक क्षण शारीरिक घटकोंका विनाश होता रहता है। निरोगी शरीरमें इस क्षति को पूर्ति यथायोग्य बराबर धातुओंसे होती रहती है। इन धातुओं की पुष्टि रस से और रस की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा सेवन किये हुये आहारसे जठराग्नि द्वारा निरन्तर व्यवस्थितरूपसे होती रहती है। इस विवेचनसे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यके प्राकृतिक शारीरिक उत्तापका मूल उत्पादक कारण "जठराग्नि" है।

उत्ताप का क्षय—इस प्रकार निरन्तर उत्पन्न होते हुये शारीरिक उत्तापका अगर निरन्तर ह्रास न होता रहे, तो शायद मनुष्य जलकर राख हो जाय। अतः जगन्नियन्ताने श्वासमार्ग, त्वचा और मल-मूत्रत्याग द्वारा इसके निरन्तर क्षय होने की व्यवस्था भी साथ ही साथ कर दी है।

श्वासमार्ग द्वारा—मनुष्य निरन्तर श्वासक्रिया द्वारा उत्ताप त्याग करता रहता है। जिन पशुवोंमें स्वेद की उत्पत्ति अत्यन्त न्यून होती है, उनमें इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। जैसे ग्रीष्मऋतु में कुत्ते की श्वासक्रिया अत्यधिक बढ़ जाती है।

त्वचा—त्वचामार्गसे तापका क्षय उसमें उपस्थित रक्तके परिमाण पर निर्भर करता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि, व्यायाम या परिश्रम करने पर रक्तवाहिनियोंके फैल जानेसे त्वचामें रक्तकी मात्रा बढ़ जाती और इसके फलस्वरूप त्वचा द्वारा ताप का काफी क्षय होता है। इसके विपरीत अगर शरीरको कुछ समय शीतके अन्दर खुला रखा जाय, तो त्वचा की रक्तवाहिनियां संकुचित हो जाती हैं। जिसके फलस्वरूप इनमें रक्तका परिमाण न्यून हो जाता है।

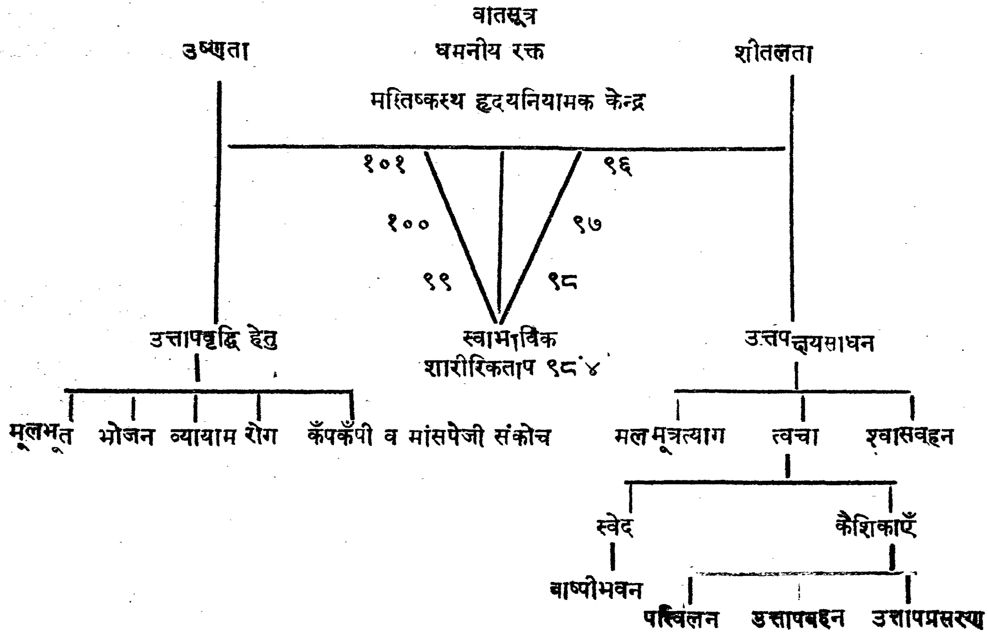
स्वेदोत्पत्ति—जब त्वचाके भीतर ताप की अधिकता हो जाती है, तब स्वेदग्रन्थियों का स्राव बढ़ जाता है; और स्वेदका बाष्पीभवन होने लगता है। यह बाष्पीभवन क्रिया भी शारीरिक उत्तापसे ही होती है। इस प्रकार स्वेदोत्पत्ति भी तापक्षयमें सहायता करती है।

मलमूत्र त्याग द्वारा ताप क्षय—मनुष्यके मल-मूत्रके साथ भी कुछ ताप बाहर निकलता है। यह सर्वसाधारणको अच्छी प्रकार ज्ञात है।

उत्तापोत्पत्ति और क्षय मनुष्य के १. आकार; २. आयु और ३. संगठन पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

शारीरिक तापका नियमन—मस्तिष्कमें स्थित ताप नियामक केन्द्र (Heat regulating centre) द्वारा होता है। भोजन, व्यायाम, रोग (मानसरोग-क्रोध) आदि कारणोंसे स्वाभाविक उत्ताप में वृद्धि होती है। (कोष्ठक में नीचेसे ऊपर चढ़ता है) इसके विपरीत वातसूत्र और रक्तवाहिनियों द्वारा समस्त शरीरमें फैलकर निःश्वास, त्वचा और मल मूत्र आदि मार्गसे बाहर निकलते रहने पर ह्रास होता है। इसे यहाँ कोष्टकरूपमें देते हैं। जिससे पाठकोंको उत्ताप उत्पत्ति, क्षय और नियमनके नियमका परिचय सरलतासे हो सकें।

उत्ताप समतोलन कोष्ठक ।



२. ज्वरोत्पत्ति और प्रकार ।

ज्वरके विषयमें अन्य बातें जाननेसे पूर्व पाठकोंके लिये, ज्वर किसे कहते हैं, यह जान लेना अत्यावश्यक है । ज्वर है या नहीं, इसका निर्णय सामान्य रूढी अनुसार शारीरिक उष्णतावृद्धि परसे करते हैं । किन्तु यह निश्चय सदोष है । इस हेतुसे शास्त्राचार्योंने इसके निर्णयार्थ कहा है कि--

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्ग ग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥

जिस रोग विशेषमें पसीना निकलना बन्द होने के साथ साथ समूचा शरीर गरम हो जाय, व्यक्त या अव्यक्त वेदना और शरीरमें जकड़न का अनुभव होने लगे, उसे ज्वर कहते है ।

यद्यपि इन लक्षण समूहमें 'संताप' यह प्रधान लक्षण माना जाता है; तथापि जहाँ संताप हो, वहाँ ज्वर भी हो यह बात समीचीन नहीं । अति परिश्रम करने, लू लगने, क्रोध करने तथा चरस, गांजा, कोकीन, कुचिला, प्रभृति उत्तेजक औषधियोंके सेवनसे शारीरिक उष्णता बढ़ जाती है । उस सन्तापको देखकर बुखार आया है, ऐसा नहीं कह सकते । इस सन्तापके साथ हृदय और श्वासोच्छ्वास क्रिया, पचन क्रिया, मल मूत्र विसर्जन क्रिया आदिमें किसी प्रकार की गड़बड़ी उपस्थित नहीं होती । ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय अपना अपना कार्य पूर्ववत करती रहती हैं ।

अतः ज्वरकी परिभाषा हुई, कि "उपरोक्त स्वेदावरोधादि समस्त लक्षण एक समयमें उपस्थित हों उसे ज्वर कहते हैं" । प्राचीन आचार्योंने ज्वर को रोगोंका राजा (देहेन्द्रिय मनस्तापी—सर्व रोगाग्रजो बली) कहा है; यह बात भी ठीकही है क्योंकि यह बहुधा प्राणीमात्रके जन्म और

मृत्युके समय उपस्थित होता है। प्रसवकालमें प्रसूता और शिशु दोनों को होकर उनका उद्धार करता है। इसी प्रकार यह मृत्युकालमें भी जब जीवोंका प्राण कण्ठगत होता है, तब उनका उद्धार कर देता है। इनके अतिरिक्त कितनेही कीटाणुजन्य दुराग्रही रोगोंमें ज्वर न आनेपर भी कृत्रिम ज्वर उत्पन्न करा देनेसे उन रोगोंके मूल कारणरूप कीटाणुओंको जलाकर जीवन की रक्षा करता है। इस बुखार को छोड़कर मानव देहमें होनेवाले जितने भी रोग हैं, वे शरीरके जिस संस्था या इन्द्रिय पर होते हैं, उसीको अकर्मण्य बनाते हैं, शेष संस्था या इन्द्रियाँ अपना अपना कार्य करती रहती हैं। ज्वरके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है, उसका प्रभाव समूचे शरीरपर पड़ता है। ज्वराक्रान्त व्यक्तिका आपाद तल मस्तक संतप्त हो जाता है। साथ साथ वह दर्दके मारे व्यथित हो जाता है। इतना ही नहीं, बुखार शरीरके साथ मनको भी क्षुब्ध कर देता है। मनके पीड़ित होनेसे अन्यमनस्कता, उत्साहनाश और व्याकुलता प्रभृति लक्षण भी उपस्थित होते हैं।

सामान्यत मनुष्यके रोग मनुष्यको और पशुओंके रोग पशुओं को होते हैं। फिर भी बहुतसे रोग ऐसे हैं जो दोनोंको समानरूपसे पीड़ा पहुँचाते हैं। ज्वर मनुष्यों और पशुओंके साथ साथ वृक्षों और पृथ्वी को भी हो जाता है। पृथ्वी भी इसके प्रभावसे नहीं बची। पृथ्वीके जिस प्रदेश को ज्वर संतप्त करता है, उसकी उतनी दूर की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। फलतः वह भूमिभाग 'ऊसर' होकर सर्वदाके लिये बेकार हो जाता है। इस ज्वरके वेग को मानवदेह ही सहन कर लेता है, बहुत से पशु और पक्षी उसी समय अपना प्राण छोड़ देते है।

इन बातोंसे ज्वर की गुरुता और भयंकरता प्रमाणित हो जाती है। ज्वर से जन्म, जीवन और निधनकालमें जितना उपकार होता है; उससे कई गुना अधिक अनुपकार भी होता है। कभी कभी बुखारका योग्य उपचार न करने, दुर्लक्ष्य करने या आहार,विहारमें स्वच्छन्दी बनने पर

स्मृतिनाश बुद्धिभ्रंश, उन्माद, शक्तिक्षय, दृष्टिमान्द्य, बाधिर्य, मूकता, पङ्गुता, पचनक्रिया विकृति, अतिसार आदि उपद्रवोंकी सम्प्राप्ति हो जाती हैं। फिर इस हानिको आजीवन सहन करनी पड़ती है। शास्त्रकारोंने हिक्का (हिचकी) और श्वास (दमा), इन दो रोगोंको दूसरों की अपेक्षा अधिक घातक माना है मगर वे दोनों ही रोग इसके उपद्रव मात्र हैं, अतः ज्वर की उपेक्षा करना, मानो अपने हाथोंसे पावोंमें कुल्हाड़ी मारनेके समान है।

ज्वरोत्पत्ति—आहार-विहारके प्रचलित नियमोंका उलंघन करनेसे वातादि दोष प्रकुपित होकर निरंकुश बन जाते हैं। उनमेंसे एक, दो या तीनों पहिले आमाशयमें प्रवेश कर उसकी दीवारमें रही हुई रसोत्पादक ग्रन्थियोंको आक्रान्त कर देते हैं, फलतः उनकी क्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है। शुद्ध आमाशयिक रस (Gastric juice) के स्थानपर आमरस पैदा होने लग जाता है। इस आमरसका सूक्ष्म अंश प्रस्वेद मार्गको बन्दकर अकड़न और दर्द पैदा कर देता है। इतना काम कर, वह पाचकाग्नि पर धावा करता है और उसे अपने स्थानसे विच्युत कर देता है। परिणाममें घोर उष्णताकी प्राप्ति होती है। दोषों की इस दौड़-धूपका परिणाम अनिच्छित और कष्ट कर ही होता है। फलतः शरीर और मन दोनों ही संतप्त हो उठते हैं।*

---

* आजकलके पाश्चात्य प्रणालीके चिकित्सक वर्ग ज्वरको प्रधान रोग नहीं मानते। इस प्रणाली की मर्यादानुसार यह विकार दर्शक एक लक्षण मात्र है। इस मतभेदका मुख्य कारण प्राचीन और अर्वाचीन रोगको परिभाषामें अन्तर है। आधुनिक मतावलम्बी यान्त्रिक या आङ्गिक विकृतिको रोग मानते हैं। जैसे मस्तिष्कावरणप्रदाह, फुफ्फुसावरण प्रदाह आदि आधुनिक मतानुसार पृथक्-पृथक् रोग हैं। और इनमें उत्पन्न होनेवाले ज्वर, प्रलाप आदि लक्षण मात्र। इसके विपरीत प्राचीन मतानुसार रोग दोष दूष्योंके विशिष्ट मिलनसे उत्पन्न दुःखदायी अवस्था

ज्वर विभाजन—आयुर्वेद शास्त्रमें ज्वरोंका विभाजन अनेक प्रकारसे किया है। इस कार्यसे चिकित्सामें सौकर्य होता है। ज्वरों में कतिपय ज्वर ऐसे होते हैं, जो अपने शरीरमें रहनेवाले दोषोंसे पैदा होते हैं और दूसरे प्रकारके वे हैं, जो बाह्य कारणोंसे पैदा होते हैं। इनमेंसे पहिलेको निज और दूसरेको आगन्तुज कहते हैं। पुनः ज्वर शरीर और मानस भेद करके भी दो प्रकारका होता है। कोई अन्तर्वेग वाला होता है तो कोई बहिर्वेगवाला होता है। कोई सुख साध्य होता है, तो कोई असाध्य होता है। इसी तरह प्राकृत वैकृत भेदसे भी ज्वरके दो प्रकार हो जाते हैं।

आयुर्वेदने ज्वरोंके ऋतुप्रकोपके भेदसे प्राकृत और वैकृत, ये दो विभग किये हैं। ऋतुओंके प्रभावसे स्वाभाविक दोषोंका संचय, प्रकोप और प्रशमन होता है। जिस ऋतुमें जिस दोषका प्रकोप होता है, उस ऋतुमें उसी दोषसे पैदा होनेवाले ज्वरको प्राकृत कहते हैं। जैसे

विशेष है और इस अवस्था की सूचना देनेवालोंको लक्षण कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार यदि प्रदाहके कारण ज्वर उत्पन्न हुआ है तो प्रदाहको रोग और ज्वरको लक्षण कहना ठीक है। परन्तु यदि ज्वरके कारण प्रदाह हुआ है तो इसके विपरीत कहना पड़ेगा। क्यों कि कार्यसे पूर्व कारणका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त आधुनिक वैज्ञानिक शरीरके ताप की वृद्धिमात्रको ज्वर समझकर उसे लक्षण मात्र मानते हैं। और यह तापवृद्धि मिथ्या आहार-विहार और अनेक प्रकारके कीटाणुओं द्वारा रक्तमें उत्पन्न विषवृद्ध को जला देनेके लिये उत्पन्न होती है। परन्तु आयुर्वेदमें इसकी पृथक् सम्प्राप्तिका वर्णन है। एवं ज्वरको इसके साथ ही राजयक्ष्मा, विसर्प, विद्रधि आदिका लक्षण और ग्रहणी, रक्तपित्त आदिके उपद्रव स्वरूपमें भी वर्णन किया है। अतः मनुष्य शरीरमें ज्वर मुख्य रोग, लक्षण और उपद्रव तीनों रूपोंमें देखाजा सकता है।

वर्षा ऋतुमें वातज्वर, शरद ऋतुमें पित्तज्वर तथा वसन्त ऋतुमें कफ ज्वर। इसके विपरीत वर्षा ऋतुमें पित्तज या कफज, शरदमें वातज या कफज तथा वसन्तमें वायु या पित्तसे होनेवाले ज्वरको वैकृत ज्वर कहते हैं। इनमें वर्षाकालज वात प्रधान प्राकृत ज्वरको छोड़कर शेष दोनों प्रकारके प्राकृत ज्वर सुख साध्य हैं। वर्षा कालज प्राकृत ज्वर और तीनों वैकृत ज्वर, ये सब कष्ट साध्य होते हैं। दो प्रकारके सुख साध्य प्राकृत ज्वर भी निर्बल मनुष्यको दुःखदायी होते है।

दोष और कालके बलाबलके अनुसार ज्वर ५ प्रकारका होता है सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक, इनको विषमज्वर कहा है। डाक्टरीमतमें इनकी उत्पत्ति मच्छरोंके दंशसे कीटाणुओंका रक्तमें प्रवेश होने पर होती है।

रस, रक्त आदि धातुरूप आश्रय भेदसे ज्वरके रसगत, रक्तगत, मांसगत, मेदोगत, अस्थिगत, मज्जागत और शुक्रगत, ये ७ प्रकार होते हैं। इनमेंसे रस और रक्ताश्रित सुख साध्य तथा शुक्र स्थानगत ज्वर असाध्य होता है। शुक्र स्थानगत ज्वरसे विरला ही मनुष्य बचता है; बहुधा शुक्रधातु प्रकुपित होनेपर मृत्यु हो जाती है।

दोष वैषम्य भेदसे ७ प्रकारका होता है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज और त्रिदोषज।

मानवदेहमें वायु, पित्त और कफ, ये तीनों दोषोंके नामसे व्यवहृत होते हैं। इनमेंसे पित्तको आग्नेय और कफको सौम्य कहा है। वायु इन दोषोंमें से जिसको अपने साथ लेती है या जिसका अनुगमन करती है, वह उसके समान कार्य करती है। वातपित्तात्मक ज्वरका रोगी शीतलताकी कामना करता है। अतः वात-पित्तज्वर आग्नेय गुणविशिष्ट कहलाता है। इसके विपरीत वात कफात्मक ज्वरका रोगी उष्णता की कामना करता है। फलतः वातश्लेष्मज्वर सौम्य गुण विशिष्ट कहलाता है।

आगन्तुज ज्वर अभिघात, अभिचार, अभिशाप और अभिषंग, इन कारणोंके भेदसे ४ प्रकारका होता है। इन आगन्तुज प्रकारोंमें अन्य ज्वरोंके सदृश पहिले दोष प्रकोप नहीं होता किन्तु अभिघात आदि कारणोंसे पहिले रोगोत्पत्ति होकर फिर कारणानुरूप दोष प्रकोप होता है।

अभिघातज ज्वर चोट चपेट लगनेसे, अभिचारज विपरीत मन्त्र और जादू टोने आदिके दुरूपयोगसे, अभिषंगज काम; शोक, भय, क्रोध और भूत-प्रेतोंके प्रभावसे तथा अभिशापज गुरु, वृद्ध और तपस्वी आदिके शापसे उत्पन्न होता है। विषज्वर, औषधिगंधज ज्वर, प्रभापातज (लू लगने से) ज्वर प्रभृति इसी आगन्तुज ज्वरोंके अन्तर्गत गिने जाते हैं।

शरीर और मानस ज्वर लक्षण—शारीरिक ज्वरोंमें विशेषकर शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें सन्तापके साथ साथ विकलता पैदा होती है। मानसिक ज्वरमें शरीर इतना सन्तप्त नहीं होता। मगर मन अनिष्टके लाभ और इष्टके अप्राप्त होनेके कारण मसोस मसोसकर रह जाता है। बेचैनी, अरति और ग्लानिके मारे रोगी मुँह छिपाता फिरता है। अन्तर्वेगाख्य ज्वरोंमें शरीर शीतल रहता है और कलेजे तथा पेटमें असह्य जलन होती है। तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान और हड्डियोंमें दर्द, पसीनेका अभाव, मल-मूत्रावरोध और साथ साथ दोषावरोध भी हो जाता है। इस प्रकारके बुखारका दोष मांस और मेद आदि धातुओंमें लीन होता है, अतः ये ज्वर कष्टसाध्य कहलाते हैं। बहिर्वेगवाले ज्वरोंमें शरीरके ऊपरी भाग और त्वचामें अधिक सन्ताप होता है। मगर उपरोक्त तृषादि लक्षणोंमें मृदुता होती है। इस प्रकारके ज्वर रस और रक्त, धातुके आश्रित होते हैं। अतः ये सुखसाध्य माने जाते हैं।

डाक्टरी मतानुसार ज्वरोंके मुख्य ३ विभाग होते हैं। १. स्वतः जात (प्राथमिक); २. आनुषंगिक (लाक्षणिक); ३. अभि-

घातज। इन तीनों प्रकारके ज्वरों की उत्पत्ति रक्तमें विष संगृहीत होनेपर होती है।

१ स्वतःजात (Idiopathic fever) इसमें ३ उपविभाग हैं। A असंक्रामक (Non-contagious or Non-specific) B. संक्रामक (Contagious or Specific) इन दोनों प्रकारके ज्वरों की उत्पत्ति आमाशयमें आहार विष बनकर रक्त दूषित होने या रक्तमें विशेष प्रकारके कीटाणु या विषके संग्रह होनेपर होती है। क्वचित् देहमें चयापचय रूप व्यापारसे स्थानिक या सार्वाङ्गिक विकृति होकर सेन्द्रिय विषकी वृद्धि रक्तमें संगृहीत होने पर होती है। इन तीनों प्रकारके विषोंको जलानेके लिये मस्तिष्कगत तापनियामक केन्द्र उत्तेजित होता है, जिससे शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होती है। इसी उत्ताप वृद्धिको स्वतः जात ज्वर संज्ञा दी है।

२. आनुषंगिक (Symtomatic)—यह प्रकार विद्रधि, विसर्पादि रोग विशेषमें लक्षणरूपसे उपस्थित होता है। यह ज्वर मुख्य रोग का विषशमन होने पर दूर हो जाता है।

३. अभिघातज (Traumatic)—लकड़ी, पत्थर आदि की चोट लगकर रस रक्तादि जम जाता है। वहांपर सेन्द्रिय विषकी उत्पत्ति होती है। फिर उसका रक्तमें शोषण होनेपर प्रबल ज्वर उपस्थित होता है। इसी तरह उग्रवाष्प (Gas) का श्वसनमार्गसे प्रवेश होना, अस्त्रचिकित्सा की प्रतिक्रिया होना, अस्त्रसे चिकित्सित स्थानसे कीटाणुओंका प्रवेश होना, प्रसवावस्थामें कीटाणुओंका गर्भाशयपर आक्रमण होना आदि भी अभिघातज ज्वरकी उत्पत्तिके कारण माने जाते हैं।

पुनः तन्तुविनाशके परिणामके अनुरूप उत्तापवृद्धि और ह्रासके अनुसार ज्वरके निम्न विभाग किये हैं।

१. समप्रकोपी (Continuous fever)—इसमें ताप अधिक होता है। इसमें अनेक दिनों तक रहनेपर भी प्रातः और सायंके तापमानमें निरोगावस्थाके समान ही (२ डिग्री) अन्तर रहता है।

२. विषमप्रकोपी (Remittent fever)—इसमें प्रातः और सायंके तापमानमें २ डिग्रीसे अधिक अन्तर रहता है। इसमें प्रातःतापकम और सायंकाल अधिक रहता है।

३. प्रतिलोम विषम प्रकोपी ज्वर (Inverse remitten fever) इसमें प्रातः अधिक और सायंकाल ज्वर कम होता है।

सविराम ज्वर (Intermittent fever)—इसे तरङ्गवत ज्वर कहते हैं। इस ज्वरमें तापमान दिनमें एक या अनेक बार स्वाभाविक या इससे भी कम हो जाता है और पुनः शीत लगकर ज्वर बढ़ जाता है। शीतज्वर और शरीरमें किसी भी स्थानमें पूय होनेपर ऐसा ज्वर आता है।

५. अनियमित ज्वर (Irregular fever)—रह रहकर आनेवाला ज्वर।

६. ज्वराभाव अवस्था (Apvretic)—इसमें बाहर ज्वर नहीं रहता है। आयुर्वैदिक और एलोपैथिक, इन दोनों सिद्धान्तोंमें से कौन सा ठीक है, इसकी मीमांसा करना बेकार श्रम करना है। प्राच्य और पाश्चात्य सिद्धान्त उपस्थितकर दिये गये हैं। दोनों आपसमें एक दूसरेसे दूर नहीं हैं, दोनोंको जानकर उस प्रयत्नको करना चाहिये, जिससे रोगीको पुनः स्वास्थ्य और शक्ति की प्राप्ति हो।

३. ज्वरकी विविध अवस्थाएं

आजका संसार लकीर का फकीर बने रहने वाला नहीं है, चारों तरफ विज्ञानका दमामा बज.कर मेघ-मण्डल को गुञ्जारित कर रहा है। रोगियोंके परीक्षार्थ अनेक साधनोंका आविष्कार हो चुका है और

नये नये साधन बन रहे हैं, मगर रोग परीक्षाके साधन प्रायः सीमितसे ही हैं। रोग परीक्षा करनेके लिये उसके विकासकी अवस्थाओंका अध्ययन करना परमावश्यक कर्तव्य हो जाता है। अन्यान्य रोगोंके समान ज्वरकी भी कतिपय अवस्थाएँ होती हैं; जो इस प्रकार हैं। १.संचयावस्था; २. सामान्य पूर्व रूपावस्था; ३. प्रगतिशीलावस्था; ४. रूपावस्था; ५. परिणामावस्था; ६. मुक्तावस्था; ७. जीर्ण ज्वरावस्था।

१. संचयावस्था–इस अवस्थामें रोगका विष गुप्त रूपसे शरीरके भीतर कार्य करता रहता है। शरीरके उपद्रुत भागोंको निर्बल करता हुआ अपनी शक्तिको बलवती बनानेका ठोस प्रयत्न करता रहता है। इस अवस्थामें न तो शरीर पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और न रोग का ही कोई लक्षण उपस्थित होता है।

२. सामान्य पूर्व रूपावस्था (रोगकी प्रारम्भावस्था)–इस अवस्थामें रोगकी संप्राप्तिका प्रारम्भ होने लगता है किसी पर सत्वर तो, किसी पर शनैः शनैः रोगका आक्रमण होता है। जिसपर ज्वरका आक्रमण होता है, उका शारीरिक उत्ताप शीघ्र बढ़ जाता है। जिसको क्रमशः ज्वर बढ़ता है, उसे पहिले कम्प का अनुभव होता है, फिर जाड़ा लगना प्रारम्भ होता है। पश्चात् अन्यान्य उपद्रव दृष्टि गोचर होने लगते हैं। आखिरकार दाह पैदा होकर ज्वर चढ़ बैठता है। इस अवस्थाके प्रधान लक्षणोंमें व्याकुलता, बेचैनी,अरुचि, पेशाबका अधिक होना, आंखोंसे पानी गिरना, शरीरका रंग बदल जाना, जंभाइयोंका आना, शरीरका रोमाञ्चित हो जाना तथा शीत, वात और धूपसे बारम्बार द्वेष आदि प्रतीत होता है।

३. प्रगतिशीलावस्था (विशिष्ट पूर्णावस्था)–इस अवस्थामें रोगारम्भक दोषोंका पता चल जाता है। मगर उनके अंशांशकी कल्पना नहीं हो सकती।

४. रूपावस्था–इस अवस्थामें दोष विकृति अनुसार लक्षण उपस्थित होते हैं। इस हेतुसे इसे पूर्णावस्था कहते हैं। पित्त प्रधान ज्वरमें

मुखमण्डल लाल, रक्तप्रणालियां प्रसारित तथा त्वचा की उष्णता; वातप्रधानमें रूक्षता, वेदना की बहुलता, आमवातिकमें स्वेदाधिक्य, और मधुरामें स्वेदाधिक्य, तृषा, निद्रानाश तथा बेचैनी प्रभृति लक्षण उपस्थित होते हैं प्रारम्भसे लेकर दोष अपनी आमावस्थामें रहते हैं; पश्चात् शनैः शनैः रोगका दोष पचन हो जाता है और फिर परिणतावस्था आती है और क्रमशः दमन होने लगता है तथा नाड़ी की द्रुत गति कम होने लगती है।

(५) परिणतावस्था—इस अवस्थामें ज्वर शमन होता है। शमन २ प्रकार से होता है। आकस्मिक और क्रमशः। आकस्मिक (Crisis) शमन की क्रिया तीव्र गति से होती है। निमोनिया आदि कितने ही ज्वरोंमें बहुधा इस तरह बुखार उतरता है। १–२ घन्टों में ही शारीरिक उत्ताप १०५° से घटकर ९५° हो जाता है। नाड़ी स्पन्दन १४० से घटकर ५०–६० तक रह जाता है। ऐसा होने पर भयानक शक्तिपात होनेका भय रहता है। अतः बाह्यसेक, गरम जल तथा उत्तेजक हृदय पौष्टिक औषधियोंका प्रयोग कर रोगीको सम्हाल लेना चाहिये। ज्वर उतर जाने पर रोगीको शान्त निद्रा आ जाती है। फिर रोगी स्वास्थ्यका अनुभव करने लगता है। उस समय रोगी की आर्द्र जिह्वा, उज्वल नेत्र, नाड़ी की सामान्य गति और मानसिक प्रसन्नता दिखलाई पड़ती है। यदि शक्तिपातके समय रोगीको सम्हाला न जा सका, तो उसका जीवन खतरेमें पड़ जाता है।

सविराम ज्वर और पुनः पुनः आनेवाले ज्वरमें पहिले स्वेद आकर शारीरिक उत्ताप एकदम गिर जाता है। अतिसार होकर किसी किसीका उत्ताप कम हो जाता है। बहुतोंके—पेशाबमें यूरेट क्षार की वृद्धि होकर उत्तापका पतन हो जाता—किसी किसीके श्वसकृच्छ्रता या क्षणिक प्रलाप होकर—बुखार उतर जाता है और ज्वरका क्रमशः उपशमन (Lysis) होने पर बुखार शनैः शनैः कम हो जाता है, नाड़ीका द्रुतत्व

दिन-प्रति दिन कम होता जाता है, जिह्वा क्रमशः शुद्ध होती जाती और क्षुधा धीरे-धीरे बढ़ती जाती है; इस प्रकार रोगके लक्षण धीरे-धीरे शान्त होते हुए आरोग्यताके लक्षण धीरे-धीरे स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगते हैं। ज्वरके अस्थाई उपशमन होने पर पुनः उत्ताप की वृद्धि फिर ह्रास, कभी स्वेदावस्था तो कभी शक्तिका ह्रास होंने लगता है।

(६) **मुक्तावस्था**—इस अवस्थामें (अनेक ज्वरोंमें) पसीना होकर शरीर हल्का हो जाता है। पुनः किसी किसी रोगके शिरमें खुजली, होठों पर दाने पड़कर पक जाना, छींक आकर शरीरका जत्रूर्ध्व भाग भी हलका हो जाना, भूख लगना, अन्नमें रुचि पैदा होना प्रभृति लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस समय समस्त अन्तःक्षिप्त विष और कीटाणु जलकर नष्ट हो जाते हैं या वे मल-मूत्र या स्वेद मार्गसे शरीरसे बाहर निकल जाते हैं।

(७) **जीर्णावस्था**—यदि कदाचित् अपथ्य, निर्बल जीवनीय शक्ति आदि कारणोंसे दोषोंका संग्रह होता रहा, तो दुर्बलता बढ़ती जाती है। सायंकालमें रोज ज्वर २-३ डिग्री या इससे भी अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकारके ज्वरको जीर्णज्वर कहते हैं। यह ज्वर जैसे जैसे पुराना होता जाता है वैसे वैसे उसमें निम्नलिखित विकृतियाँ उत्पन्न होती चली जाती हैं।

१.रक्त अधिक पतला और काले रंग का हो जाता है। रक्ताणुओं की संख्या कम होकर श्वेताणुओं की संख्या बढ़ जाती है।

२.मास पेशियाँ काली-सी और कुछ शोथयुक्त हो जाती हैं।

३.हृदय शिथिल और क्वचित् विस्तृत हो जाता है। हृत्केन्द्र दूषित हो जानेसे हृदयवेग बढ़ जाता है। नाड़ी स्पन्दन १ मिनट में ८० से १२० तक हो जाते हैं।

४.फुफ्फुसों में रक्त रह जाता है, वह शिराद्वारा सब हृदयमें नहीं जा पाता फलतः श्वसन केन्द्र दूषित हो जाता है। हृदय वेग की वृद्धि हो

जानेसे श्वासोच्छ्वास क्रिया अधिक वेग पूर्वक अर्थात् एक मिनटमें ३० से ४० बार तक होने लगती है।

५. त्वचा उष्ण, बहुधा रूक्ष या थोड़ा-सा स्वेद निकलने से चिपचिपी हो जाती है। शरीर भरमें पिटिकाएं फैल जाती हैं। आरम्भ में मुख मण्डल लाल और तेजस्वी होता है, मगर हृदय क्रिया मन्द पड़ने के साथ साथ चेहरा निस्तेज तथा काला-सा हो जाता है।

६. सब रोगोत्पादक पिण्डोंको दूषित रक्त मिलनेसे उनका नैसर्गिक स्राव कम हो जाता है।

७. पचन संस्थामें विकृति हो जाती है। जिह्वापर सफेद मैलकी तह जम जाती है। जिह्वा पहिले गीली और किनारे पर लाल रहती है। पश्चात् रूक्ष, काली और जड़ हो जाती है। ऊपर को तरफ चीरे पड़ जाते हैं। होठ, दांत और मसूढ़ों पर मैल जमजाता है। फलतः समय पाकर वे शिथिल हो जाते हैं। आमाशय और आंतों की क्रिया दूषित हो जाने के कारण, कभी अति पसीना आने से त्वचा अति गीली हो जाती और बुखार कम हो जाता है। रोमान्तिका, मधुरा आदि ज्वरों में क्षुधा नहीं लगती, क्वचित् वमन हो जाती है और मलावरोध भी रहता है।

८. यकृत्प्लीहा अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाते हैं।

९. वृक्कोंकी मूत्रोत्पादक शक्ति कम हो जाती है। मूत्र पीला, गदला और कम परिमाणमें होता है। किसी किसीके मूत्रमें शुभ्र प्रथिन (Albumin) भी जाती हैं। मूत्रके तल भागमें क्षार (Urates) जाने लगता है। पेशाब में मूत्रीया (Urea) बढ़ जाता है और लवण (Chloride) कम हो जाता है।

१०. मस्तिष्क पर भी अनिच्छित प्रभाव पड़ता है। फलतः जड़ता के साथ साथ शिर दर्द, बुद्धिमान्द्य, विस्मृति, तन्द्रा, प्रलाप और किसी किसी को बेहोशी आदि लक्षण हो जाते हैं। तथा इस लोक और परलोक के

सुखोंकी कामना करनेवाले व्यक्तियोंको चाहिये कि अपने शरीर की, ज्वरारम्भक कारणोंसे सतत रक्षा करें। यदि कदाचित् किसी प्रकार किसीसे रोग का सेन्द्रिय विष अन्तः प्रविष्ट हो जाय, तो प्रयत्न पूर्वक उसी की चिकित्सा कर डालें ; अन्यथा उपरोक्त विकृतियाँ शरीरको बर्बाद और बेकार कर जीवन भारमय बना देती हैं।

अन्य रीति से चिकित्सा की सुविधा के लिये ज्वर की ३ अवस्था कही गयी हैं। १. सामावस्था; २. पच्यमानावस्था और निरामावस्था; इन अवस्थाओं में निम्नानुसार भिन्न भिन्न लक्षण प्रतीत होते हैं।

ध्यान रहे कि, आहारका सार रूप रस अग्निकी मंदताके कारण जब नहीं पचता है, तब वही अपक्व रस विकृत होकर आम बन जाता है। यह चिपचिपा और दुर्गन्धयुक्त होता है। इसके साथ वात आदि दोष और रस, रक्त आदि दूष्यों का संयोग होनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे सब साम (आमसह) कहलाते हैं।

१. सामावस्था—नूतन ज्वरमें आम विष होनेपर मुँहसे लार गिरना उबाक, हृदय का भारीपन (आमाशय की अशुद्धि), भोजन का पाक न होना, अरुचि क्षुधा नाश, मुंहकी विरसता, अंगोंमें भारीपन, जकड़ाहट, शून्यता, तन्द्रा, बारबार लघुशंका होना, शौच शुद्धि न होना, मांस में क्षीणता न आना इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में ज्वर शामक औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये। वृद्ध व्यवहार अनुसार पाचन औषधि ही दी जाती है।

२. पच्यमानावस्था—इस अवस्थामें ज्वरका वेग बढ़ना, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, स्वेद, मल-मूत्र आदिकी सम्यक् प्रवृत्ति, हृदयमें बेचैनी और वमन करनेकी इच्छा आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

३. निरामावस्था—ज्वर निराम बननेपर क्षुधा लगना देहका हलकापन, ज्वरका कम हो जाना, वात आदि दोषोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होना मनमें उत्साह आना, इत्यादि लक्षण उपस्थित होते हैं।

यह अवस्था १२ घण्टेसे लेकर १० दिनमें (वर्तमान में ३ दिनमें) आती है। आमदोष की निवृत्ति होनेपर निरामावस्था आती है। इस अवस्थामें ज्वरशामक औषधि देनेपर सत्वर लाभहो जाता है।

४. चिकत्सोपयोगी सूचना

ज्वरारम्भक आम या शारीरिक वातादि दोष, विष या कीटाणु सम्प्राप्ति काल में आमाशयादि अङ्गों के साथ-साथ त्वचा, मूत्रग्रन्थि और अन्त्रको भी प्रभावित कर देते हैं। फलतः नियमित रूपसे निकलने वाला प्रस्वेद, मूत्र और मल बन्द हो जाता है। फिर इनमेंसे विष पैदा होकर और रक्तमें जाकर संग्रहीत होता रहता है जो ज्वर वृद्धि में सहायक होता जाता है।

आयुर्वेद में आमावस्था अर्थात् ज्वर की प्रथमावस्था में लंघन को छोड़कर अन्यान्य सभी उपचार हानिकर माने गये हैं; परन्तु जल किसी भी अवस्था में वर्जित नहीं होता। अतः जल के द्वारा इनको उत्तेजित करते रहना चाहिये तथा वर्तमान समय में डाक्टरी के मतानुसार वमन या विरेचन का प्रयोग कर दोषों की सफाई कर देना विशेष लाभप्रद माना गया है। विषके निकल जानेपर ज्वर स्वयमेव शान्त हो जाता है।

ज्वर पैदा हो जाने के बाद उसके सहकारी रोग भी आ घेरते हैं जो ज्वरके उपद्रव कहलाते हैं; जिनमें मुख्य ये हैं; श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, तृषा, वमन, अतिसार, मलावरोध, हिक्का, कास, अति स्वेदस्राव, प्रलाप, निद्रानाश, तन्द्रा और दाह। इन उपद्रवोंकी उत्पत्ति ज्वरके विषसे ही होती है। यद्यपि इनकी पृथक् चिकित्सा करने की आवश्यकता प्रायः नहीं रहती, तथापि मूल व्याधि की चिकित्सा करते समय इनका समुचित ध्यान रखना आवश्यक माना गया है। कदाचित् उनमेंसे कोई उपद्रव मूल व्याधि से बलवत्तर होकर रोगी को अधिक पीड़ित करे तो उसकी चिकित्साका विशेष प्रबन्ध कर रोगी को आराम पहुँचाना चाहिये।

ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में उसकी जाति तथा प्रकृति का निर्णय करना प्रायः कठिन होता है अतः परिचर्याका समुचित ध्यान रखना चाहिये। प्रारम्भसे ही औषधियों की भरमारका परिणाम उलटा ही होता है। परिचर्या को चिकित्सा का प्रथम सोपान समझ कर योग्य रीतिसे सम्पादन करना चाहिये। व्याधि की प्रगतिशीलावस्था में जो कुछ थोड़े बहुत लक्षण उपस्थित हुए हों, उनको ध्यानमें रख लक्षणों की, समुचित शक्तिके साथ-साथ वेदना निवारणका उपाय करते रहना चाहिये। यदि पता चल सके कि अमुक विष या अमुक रोगोत्पादक कीटाणु शरीरमें प्रविष्ट हो चुका है तो उस विषका प्रतिरोधक या कीटाणु का प्रकृति विघातक उपचार करनाचाहिये।

रोगीके कमरे की वायु स्वाभाविक या कृत्रिम उपायों से शुद्ध रखनी चाहिये। बिछौना, वस्त्र, पात्र तथा अन्यान्य व्वहार में आनेवाली वस्तुएं स्वच्छ, परिष्कृत, शुष्क तथा अनिष्ट गंधोंसे रहित होनी चाहियें। ज्वर पीड़ित रोगीको प्रवात (पूर्व दिशाकी वायु और तेज वायु) से बचाना चाहिये। शीतल, तेजवायु लगकर रोगी के हाथ पांव शीतल न हो जायें, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि तेज वायु लगती रहेगी, तो स्वेदल औषधियों का सेवन एवं अन्य उपचार करते रहने पर भी पसीना नहीं निकलेगा।

यदि रोगीको अशुद्ध वायुमण्डलमें रखा जायगा तो श्वास क्रिया द्वारा अशुद्ध वायु फुफ्फुसोंमें प्रवेश कर रक्त और मस्तिष्कको अधिक दूषित बनायेगी और फिर वह रोग बढ़ानेमें सहायक होगा; अतः आहार और जलकी अपेक्षा भी, वायुके लिये अधिक सम्हालना चाहिये।

नवज्वर में रोगी को आराम पहुँचाना मुख्य कर्तव्य है। अन्यथा देह या मनको परिश्रम पहुँचनेपर मांसपेशियों आदिमेंसे विषोत्पत्ति कर रोगवृद्धिमें सहायक होती है। एवं मांसपेशियों आदिको थकावट आने पर ज्वरविष रक्त आदि धातुओं में लीन होकर अधिक दिनों तक कष्ट

पहुँचाता है। आरामकालमें रोगीके कमरेमें बहुतसे आदमियोंका इकट्ठा होना नितान्त निन्द्य है। रोगी से अधिक वार्तालाप नहीं करना चाहिये। रोगीको अधिक बोलनेका श्रम पहुँचाना भी हानिकर है। अतः परिचारक को इन सब विषयों पर लक्ष्य रखना चाहिये।

तरुण ज्वर में रोगी को कसैली औषधियों का काढा भूलकर भी नहीं देना चाहिये। कषाय रस में अग्निदीपन गुण होने से वह आमपचन में सहायक नहीं होता। इसके विपरीत अग्निमान्द्य, आध्मान, मलावरोध और जड़ता को पैदा कर देता या बढा देता है। परिणाम में ज्वर अधिक दृढ़ हो जाता है।

नवज्वर में स्नान, तैल मर्दन, स्नेहपान, वमन, विरेचन, शीतल जलपान, दिवानिद्रा, क्रोध, व्यायाम, मैथुन, पूर्व दिशाकी वायु या अति तेज वायु, भोजन और कसैले पदार्थों का सेवन, ये सब निषिद्ध माने गये हैं।

नवज्वर में दिन में न सोना चाहिये। दिन में सोने से कफ की वृद्धि होती और कफ बढ़कर अग्निको मन्द कर देता है। फलतः दोषों का पाचन नहीं होने पाता। निर्बल, चिन्तातुर, थका हुआ, बालक और वृद्धों को दिवानिद्रा वर्जित नहीं है। इस तरह अपचनजनित अतिसार, वातावृद्धिवाले, रात्रि में जागा हुआ, उपवास करनेवाला, श्वासपीड़ित, उदरशूल पीड़ित, ये सब इच्छानुसार सो सकते हैं। एवं ग्रीष्म ऋतुमें आवश्यकता अनुसार दिन में भी सोया जा सकता है।

प्राचीन मर्यादानुसार बुखार ७ दिन तक तरुण ज्वर कहलाता है। इस अवस्था में आमको पचाने, जठराग्नि को प्रदीप्त करने और स्रोत समूहोंको शुद्ध करनेके लिये लंघन कराना चाहिये।

महर्षि हारीतने कहा है कि उपवास, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण (शिरा में से रक्त निकलवाना), उबलते हुये जलका पान अथवा स्वेदन, ये ६ लघुता प्राप्तिकर साधन हैं। अतः इनको लंघन कह सकते

हैं। निर्बलों को मर्यादित लघु पथ्य देना, भी लंघन माना गया है। सामान्यतः जिनकी देह में दूषित आम, मल आदि संगृहीत हो गये हों, उनको उपवास कराना चाहिये। इससे आम दोषों का पाचन और पक्व दोषोंका शमन होकर अग्नि प्रदीप्त होकर रुचि उत्पन्न होती है, शरीर हलका हो जाता है, और मानसिक प्रसन्नता होती है; फिर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

लङ्घन कराने में नितान्त गुण ही नहीं है बल्कि इसमें बहुत से अवगुण भी हैं। धातु क्षयवाले रोगी, राजयक्ष्मा से पीडित, भय क्रोध, काम, शोक या परिश्रमसे प्राप्त ज्वरवाला और आम न हो ऐसा वात प्रकृतिवाला रोगी विषमज्वर पीडित, इनको उपवास नहीं कराना चाहिये। अन्यथा उनको देहमें सहसा वायु प्रकुपित होकर रोगीको संकटमें डाल देती है। वातप्रकृतिवाले, क्षुधासे पीडित, मुखशोष और श्रम पीडित मनुष्यों एवं बालक, वृद्ध, सगर्भा और दुर्बलोंको भी लंघन करानेसे उनके बलका क्षय होता है। पहिले वसा जलती है; फिर मांसशोष होने लगता है और शरीर अधिक निर्बल बन जाता है।

लङ्घन का सम्यक योग होने से वात, मूत्र और पुरीषका निर्गमन, हृदयकी शुद्धि, उद्गारकी शुद्धि, कण्ठ और मुखकी शुद्धि, तन्द्रा और थकावट दूर होना, पसीनेका आना, भोजनमें रुचि होना, क्षुधा और तृषाका उदय होना, शरीरमें हलकापन आना, उत्साहकी वृद्धि आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

लङ्घन का अति योग होने पर हड्डियों के जोड़ों में दर्द, अंगड़ाई, खांसी, मुँह का सूखना, क्षुधा न लगना, अरुचि, प्यास, कानसे कम सुनाई पड़ना, आँखों से कम दिखलाई पड़ना, मन में उद्विग्नता, बारम्बार डकार आना, चक्कर आना, आँखोंके समक्ष अन्धकार छा जाना, हृदय में अवरोध होना, निर्बलता की वृद्धि होना और शरीरका वजन

बहुत कम हो जाना, प्रभृति लक्षण उपस्थित होते हैं। अतः बहुत समझ कर लंघन की व्यवस्था करनी चाहिये।

नवज्वर में भोजन का निषेध किया गया है। मगर जलकी मनाही कहीं भी नहीं की। फिर भी शीतल जल नहीं देना चाहिये। अन्यथा आमवृद्धि होती है। अतः जल को उबाल शीतल करके देना चाहिये। सुबह उबाला हुआ जल शामतक और शाम को उबाला हुआ जल सुबह तक देते रहना चाहिये, सामान्यतः जलको निधूँम अग्निपर २–३ उफाण आवें तब तक उबालकर फिर शीतलकर लिया जाता है। यह जल दीपन, पाचन, कफघ्न, श्वासहर और स्वेदल गुण दर्शाता है। उबाले हुये जलको अपने आप ठण्डा होने देना चाहिये, पंखेसे हवाकर शीतल करने से जल गुरुपाकी हो जाता है।

जो ज्वर अधिक दिनों तक रह जाता है या जिसमें प्यास अधिक लगती है, उस ज्वरमें देनेके लिये शास्त्रकारोंने ' षडंग पानीय" नामक प्रयोग की योजना की है।

षडंग पानीय—नागरमोथा पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, नेत्र-वाला और सोंठ, इन सबको ४–४ माशे लेकर २५६ तोले जल में ओटावें। ३–४ उफाण आनेपर नीचे उतारकर रख देवें। यदि शास्त्रीय मर्यादानुसार जल मिलायेंगे और पुनः मर्यादानुसार उबाल लेंगे, तो जल बेस्वाद हो जाने से नहीं पिया जायगा। शीतल होने पर छानकर अलग पात्र में भर लेवें। उसमें से थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें। यह जल पित्तप्रधान ज्वर, मधुरा, मद्यपानजनित ज्वर और विष-ज्वर वालोंकी तृष्णाका शान्त करनेमें उपयोगी है। (वर्तमानमें नीबूका शर्बत पिलाना, अनार मोसम्बीका या सन्तरेका रस पिलाना और आलुबुखारा चुसाना विशेष प्रचलित है)।

नवज्वर में जब तक दोषों की आमावस्था विद्यमान हो, तब तक ज्वरघ्न औषधिका प्रयोग नहीं करना चाहिये यह प्राचीन मर्यादा है, इसके पालनमें बहुत लाभ होता है। परन्तु वर्तमानमें डाक्टरोंकी नकलकी जाती

है, दोष जलनेके पहिले ही रस औषधि दी जाती हैं, परिणाममें अनेक रोगी बार-बार ज्वर पीड़ित होते रहते हैं, देह कृश, निस्तेज और निर्बल हो जाती है, पाचनशक्ति कमजोर बन जाती है और मन में बार-बार क्रोध आता रहता है; अतः कच्चे दोषों को जलानेतक लङ्घन कराया जाय और फिर ज्वरघ्न औषध दी जाय, तो रोगीका अधिक कल्याण होता है। ऐसा कहना पड़ता है।

बहुत दिनों तक रहनेवाले मुद्दती ज्वर, प्रबल ज्वर या अनिर्णीत ज्वरकी चिकित्सा करते समय स्मरण रखना चाहिये कि इन ज्वरों का इतिहास परस्पर सर्वथा भिन्न होता है। अथवा ऐसा कोई भी दवा नहीं है, जो कि इन ज्वरों के क्रम को परिवर्तित कर दें। ऐसे ज्वरों में रोगी को सम्हालते हुए तथा लक्षणों के तारतम्य का अध्ययन करते हुए औषधोपचार करना चाहिये। इन मुद्दती ज्वरोंमें शमन चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, दोषों का पाचन हो और शक्तिका संरक्षण हो, ऐसा उपचार करना चाहिये, एवं योग्य परिचर्या, पूर्ण विश्रान्ति, पथ्य स्वच्छता और मानसिक चिन्ता का अभाव, ये सब अधिक उपादेय होते हैं।

तरुणज्वर—आयुर्वेदमें तरुण ज्वरकी आमावस्थामें दूध देना सर्वथा निषेध किया है। आचार्योंका कहना है कि तरुण ज्वरमें दूध विषका कामकर रोगीको मार डालता है। डाक्टरी मतानुसार विचार किया जाय तो दूधका पचन आमाशयमें ही हो जाता है। आमाशयसे ही दूधके सत्वका शोषण शिरा द्वारा रक्तमें हो जाता है। उसे रूपान्तर करने की क्रिया ज्वरावस्थाके कारण योग्य नहीं होती। इस हेतुसे कच्चे आमवालोंको दूध न दिया जाय तो अच्छा है, इस तरह अनाजका पचन अन्त्रमें होता है. अन्त्र आम और मलसे पूर्ण होते हैं; ऐसी अवस्थामें अन्नका पचन भी सम्यक नहीं हो सकता। लोंका रस देते हैं तो पित्तोत्पत्तिका ह्रास कराता है। जिससे आम

पचनकार्य में विघ्न आता है। इस तरह दूध, अन्न और फल, तीनों से हानि होती है। फिर भी वर्तमानके अति निर्बल देह और निर्बल मन-वालोंको कुछ न कुछ देना ही पड़ता है, लंघन करना उनके लिये कठिन काम हो जाता है। यदि उनसे लंघन कराया जाता है तो वे इतने निर्बल हो जाते हैं कि उनपर औषधोपचार करना कठिन हो जाता है। सामान्यतः वर्तमानमें मानसिक उत्साह नाश होकर शरीर शिथिल हो जाता है। उनको चाय, दूध, मौसम्बीका रस निरुपाय वश देना पड़ता हैं। ग्रामवासी, जो शरीरसे सबल हों, चाय आदिके अभ्यासी न हों, उनको उपवास कराना चाहिये। यदि वह अन्न मांगता है, और अन्त्रमें दूषित मल न हों, तो चावलों की पेया, मण्ड या यवागू मूँगका यूष या खिचड़ी अथवा अन्य हलका अन्न अल्प परिमाण में देना चाहिये। मनोबल, देहबल और अग्निका विचार कर योजना करनी चाहिये। शास्त्र वचन या रूढी अथवा देशाचाल के नामसे बलात्कार नहीं करना चाहिये। डाक्टरीका गुलाम भी नहीं बनना चाहिये। जिस तरह अन्तर शक्ति (नैसर्गिक रोग निरोधक शक्ति—Natural immunity) सबल बनकर ज्वरादि रोगोंको विदा कर सकें, उस तरह योजना करनी चाहिये।

अपचन होने पर सबल देहवालों को लंघन कराना अति हितकारक माना जाता है। उपवास कराया जाय, तो दोष जल्दी जल जाते हैं; किन्तु अधिक मिर्च आदि सेवन करनेवाले और दिन में ४ समय खाने के अभ्यासी से लंघन नहीं होता। उनके आमाशय का पित्त तेज बन जाता है। फिर बारम्बार कै होने लगती है। शरीर निर्बल हो जाता है और मानसिक उत्साह नष्ट हो जाता है। उनको निरुपाय वश मोसम्बीका रस या नीबू का शर्बत देकर फिर चाय, दूध देना पड़ता है।

दूध देनेमें विवेक की आवश्यकता है। अतिसार, अर्श, प्रवाहिका उदरकृमि आदि रोग जिनमें दूध का निषेध है, वैसा कोई रोग साथमें

हो, तो दूध नहीं देना चाहिये। कतिपय व्यक्तियोंको दूध अनुकूल नहीं रहता, उनको यदि दूध दिया जायगा, तो लाभके स्थान पर हानि ही होगी दूध देने का अधिकारी हो, तो गोदुग्ध देना चाहिये; ताजे गोदुग्धको लोहेकी कड़ाहीमें उबालें, १-२ उफान आने पर उतार कर ठण्डा कर, यह दूध सुबह- शाम देना चाहिये। दोपहरको दूध देना हो तो सुबह दूध गरम होने पर तुरन्त कलई दार बर्तनमें डाल लेवें जिससे ऊपर मलाई आ जायगी, जो दूधका १२ घण्टे तक रक्षण कर सकती है, उस बर्तनका दूध एक बार ही उपयोगमें लेना चाहिये। दोपहरको दूध बार बार लेना हो, तो २ बर्तनमें दूध रखना चाहिये। दूध निवाया पिलाना चाहिये, अधिक गरम नहीं।

अतिसार, अर्श, प्रवाहिका और राजयक्ष्मा पीड़ित रोगीको ज्वरावस्थामें दूध देना हो, तो गोदुग्ध की अपेक्षा बकरीका दूध विशेष हितावह है। गोदुग्ध मल शुद्धिकर है किन्तु अजादुग्ध ग्राही अर्थात् मलको बाँधनेवाला है। पचनमें अपेक्षाकृत हल्का है। किन्तु जिन रोगियोंके उदरमें बकरीके दूधसे, बकरी की मेंगनीके सदृश मल की गोलियाँ बन जायं, उनको यह दूध नहीं देना चाहिये या मल शुद्धि कर औषधिका प्रयोग भी करते रहना चाहिये। दूध बासी हो यानी ८-१० घन्टेसे अधिक समयका हो गया हो, बीमार गौका हो, एक वर्षसे अधिक कालसे जो गौ दूध देती हो, या सगर्भा हो, उसका दूध रोगीको नहीं देना चाहिये। भैंस का दूध भारी होता है, उसका योग्य पचन नहीं होता, अतः भैंसका दूध नहीं देना चाहिये। यदि निरुपायवश कभी रोगीको भैंसका दूध देना ही पड़े, तो कमसे कम उसमें आधा जल मिलाकर गरम करें, फिर निवाया रहने पर मलाईको निकाल कर दूध मात्र पिलावें। हमने दूधका सेवन आन्त्रिक ज्वर (मधुरामें), प्रलापक ज्वर Typhus, श्वसनक ज्वर (Pneumonia), वातश्लैष्मिक ज्वर (Influenza), आमवातिक ज्वर, शोथप्रधानज्वर (वात बलासक ज्वर—Nephritic

fever), विषमज्वर (Malarial Fever), राजयक्ष्म प्रधान-ज्वर, मंद जीर्णज्वर, मन्द जीर्ण विषमज्वर (प्रलेपक ज्वर—Hectic Fever), शीतला, रोमान्तिका (खसरा), आगन्तुक ज्वर (Adventitus fever), ग्रन्थिक ज्वर (Plague), कण्ठरोहिणी ज्वर (Diphteria), परिवर्तित ज्वर (रह रहकर आनेवाला बुखार—Recurrent fever) और काल ज्वर (Kala Azar) आदि सबमें कराया है और कराते रहते हैं। कभी किसीको हानि नहीं हुई। दूधसे देहबल और अग्निकी रक्षामें सहायता मिलती है। सब आचार्योंने जीर्ण ज्वरमें दूधके सेवनको अमृतरूप माना है। अतः उस अवस्थाके लिये तो किसीका विरोध नहीं है।

आन्त्रिक ज्वर (मधुरा—Typhoid) इस २१ दिन तक रहने वाले बुखारका यदि पहिलेसे ही निर्णय हो जाय तो पहिलेके ३-४ दिनों तक बलवान्को केवल जल पर रक्खें (निर्बलों को पहिलेसे ही दूध देवें) फिर दूध और चाय पर रखा जाय, तो रोगी तीसरे सप्ताहमें अधिक अशक्त नहीं होता। अथवा नवीन उपद्रव भी नहीं होने पाते तथा ज्वर भी अपनी मियाद की सीमा तक पहुँचते पहुँचते शमन हो जाता है। सुबह-शाम दूध और दोपहर को मौसम्बीका रस देते रहना, इस तरह हमने व्यवस्था करके सैकड़ों रोगियों की सेवाकी है। किसीको भी हानि नहीं पहुँची। इतना ही नहीं, ज्वर उतरनेके पश्चात् १ मास के भीतर शरीरमें पूर्ववत् बल आ जाता है।

कितने ही ग्रन्थकारोंने मधुरा (मन्थर ज्वर) में बाजरेका दलिया आदि अन्न देनेका विधान किया है। इस तरह वैद्य समाज देते रहते हैं। डाक्टर भी ग्लुकोज (द्राक्ष शर्करा) और थोड़ा अन्न देते रहते हैं। किन्तु ऐसे रोगियों की देह अति निर्बल हो जाती है और फिर दीर्घ-काल तक शक्ति नहीं आती। पर कितनेही २१ दिनके पहिले दगा दे देते हैं एवं कई महीनों तक दुःख भोगते ही रहते हैं। हम अन्न और ग्लुकोज

दोनों को हानि कर मानते हैं। अन्त्र में क्षत होनेपर मधुरा होता है, अतः पक्वनान्त्र को पूरी विश्रान्ति देनी चाहिये तथा जो आहार आमाशय में पच जाय वैसा आहार देना चाहिये। ग्लुकोज शरीर बल कायम रखने के लिये दिया जाता है। किन्तु इससे अनेकोंके रक्तमें शर्करा बढ़ जाती है, परिणाममें शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है; अतः परिणाम का विचार कर पथ्य योजना करनी चाहिये।

मन्थर ज्वरमें स्वाभाविक पित्त की बहुलता होती है, अतः आरम्भ से ही पित्तविरोधी चिकित्सा करते रहना चाहिये। रोगकी प्रारम्भ और प्रबलावस्थामें कभी ज्वरको उतारनेवाली औषधि नहीं देनी चाहिये। अन्यथा परिणाम विपरीत होता है। ज्वर विषको जलानेवाली पाचन और हृदयपौष्टिक औषधि देनी चाहिये। परिणितावस्था के प्राप्त होने पर ही शमन औषधियों का प्रयोग करना चाहिये।

मन्थर ज्वरकी मुक्तावस्था प्राप्त होने पर पथ्य (अन्न) देते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये क्योंकि आंतों के क्षत ठीक हो जाने पर भी आँतें सहसा अधिक कठोर अन्न सहन नहीं कर सकतीं।

आमवातिक ज्वर—इसमें लंघन, स्वेदन तथा विरेचन क्रिया को हितावह माना है। इस रोग में प्रायः हृदय को हानि पहुँचती है, अतः आरम्भ से ही हृदय रक्षा का पूरा ख्याल रखना चाहिये। इस रोग में मूत्र की प्रतिक्रिया अम्ल हो जाती हैं, अतः रोगशामक क्षारों का प्रयोग करके मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारीय बना देनी चाहिये। उपद्रुत स्थानों में वेदना हो तो विण्टरग्रीन तैल (Wintergreen oil) या विण्टरग्रीन प्रधान बाम की मालिश करते रहना चाहिये, इससे वेदना की शान्ति होने में और विकार पचने में सहायता मिलती है।

विषमज्वर (Malarial fever)—इस ज्वर की उत्पत्ति मच्छ-रों के दंशद्वारा प्राप्त कीटाणुओं के विषद्वारा होती है, यह अब सिद्ध हो चुका है। इसके अतिरिक्त यह ज्वर निवृत्त हो जाने के दीर्घकाल

पश्चात भी अपथ्य सेवन और मलावरोध आदि कारणों से पुनः उपस्थित हो जाता है। अपचन हो, तो उस दिन उपवास करना चाहिये। एवं आंतों-में भरे हुए आम और मल को दूर करने के लिये सौम्य विरेचन देना चाहिए। विरेचनार्थ अमलतास की फली के गूदे का क्वाथ गुलकन्द मिलाकर दिया जाता है, यह अति निर्दोष विरेचन है। आमाशय में स्थूल विकृत द्रव्य हो तो उसे वमन करा कर दूर करना चाहिये; ये सब क्रिया प्रकृति, दोष, दूष्य, देश, बल, काल आदि का खूब अच्छी तरह विचार कर करनी चाहिये।

भोजन करने पर तुरन्त ज्वर आ गया हो, या पौष्टिक औषधि के सेवन से ज्वर आ गया हो, तो ही बलवान् रोगी को तुरन्त वमन कराया जाता है। आमाशय में स्थित दोषों में कफ की प्रधानता हो और उबाक, बेचैनी आदि लक्षण हों तो तुरन्त वमन करा देनी चाहिये। वात पित्त की प्रधानतावाली अवस्था में कभी भूल करके भी वमन नहीं कराना चाहिये। वमन की आवश्यकता होने पर भी यदि वमन नहीं कराया जाता, तो हृदय में वेदना, श्वास, आध्मान और मूर्च्छा की उत्पत्ति होती और ज्वर भी दृढ़ बन जाता है।

विरेचन क्रियार्थ हरड़ आदि पाचक औषधिका अन्यथा जमालगोटा आदि तीव्र औषधिकी अधिक मात्राका कभी उपयोग नहीं करना चाहिये। हरड़ फेंकने योग्य दोषका पाचन कराती है और आँतों का संकोच कराती है, जो ज्वरावस्था में हानिकर है। जमालगोटा आदि जो औषधियाँ तीव्र हैं उनका उपयोग अधिक मात्रा में करनेपर आँतोंमें उग्रता आ जाती है और बलक्षय होकर शारीरिक निर्बलता आ जाती है। अतः हो सके तबतक इनका प्रयोग न हो, तो अच्छा।

विषमज्वरमें किनाइन श्रेष्ठ औषधि मानी गई है। अन्त्र मल पूरित हो या अपचन हो तो उदरशुद्धि हो जाने के पश्चात् किनाइन देनी चाहिये। भूल होनेपर रोग प्रकुपित होता है। एवं रक्तकी प्रतिक्रिया

अम्ल होनेपर भी कीनाइन दी जायगी तो यह निद्रानाश, मूत्रावरोध और घबराहट उत्पन्न कराती है और ज्वरको बढ़ा देती है। इसी तरह अम्ल-पित्त, रक्तार्श, दाह, रक्तदबाववृद्धि आदि होनेपर तथा पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंसे किनाइन सहन नहीं होती। अतः इनको किनाइन देनी हो तो सोडाके साथ बहुत कम परिमाणमें देनी चाहिये।

सविरामज्वर—कभी-कभी पूयप्रधान ज्वर भी सविरामज्वर रूप से उपस्थित होता है। यदि पूयप्रधान ज्वर हो, तो मूल कारणरूप पूय दोषके निवारणका उपाय करना चाहिये। केवल ज्वरशामक औषधि देनेसे रोग दूर नहीं हो सकेगा।

यदि विषमज्वरका सविरामरूप हो और १०२° से अधिक बढ़ जाय, तो मस्तिष्क और हृदय की रक्षाके लिये योग्य उपचार करना चाहिये। ज्वरको बलपूर्वक उतारनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा किया जायगा तो हृदय की निर्बलता बढ़ जायगी; जिससे शारीरिक शक्ति क्षीण होती है; और ज्वर कुपित होकर पुनः प्रबल वेगसे आ जाता है।

श्वसनकज्वर (Pneumonia)—यह रोग कीटाणुजन्य सिद्ध हुआ है। इस प्रकारके ज्वरमें आम-कफका पाचन करना चाहिये। दोषको बाहर निकालने और जलानेके लिये प्रारम्भमें लंघन, मृदु-विरेचन और कीटाणुनाशक औषधियोंका श्वासद्वारा प्रयोग, ये सब हितावह हैं। इसकी प्रारम्भावस्थामें शराब आदि उत्तेजक औषधियोंका प्रयोग नहीं किया जाता, अन्यथा हृदय और फुफ्फुस कुछ दिनोंमें निर्बल हो जायेंगे। कदाच हृदय निर्बल हो और उत्तेजनाकी आवश्य-कता हो, तो सम्हालपूर्वक इसकी थोड़ी मात्रा देनी चाहिये और रोगीको पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये।

इस रोगमें दुःखदायी कफ कास उत्पन्न हो जाती है। कफ

सरलतासे नहीं छूटता और निद्रामें भी बाधा पहुँचाता है। अतः कफको ढीलाकर बाहर निकालनेवाली औषधि देनी चाहिये।

वर्तमानमें पेनिसिलिन (Penicillin) का इंजेक्शन और M. & B. 693 की गोलियोंका अधिक उपयोग हो रहा है। इनका उपयोग निर्धन ग्रामीण नहीं कर सकते एवं विशेष सुबोध डाक्टरकी बिना अनुमति उपयोग भी नहीं करना चाहिये। आयुर्वेदिक औषधियाँ कम मूल्यवाली, निर्भय और हितावह हैं।

वातश्लैष्मिक ज्वर (Infeluenza)—यह रोग प्रारम्भमें सामान्य प्रतीत होता है। थोड़ा जुकाम और मामूली बुखार जानकर इसका दुर्लक्ष्य करनेकी भूल हो जाती है। यह रोग कीटाणुजन्य है और यह बलक्षय कराता है जिसे दूर करनेके लिये कितनेही मनुष्य सामान्य जुकाम मानकर अति गरम औषधियोंका सेवन करते हैं। परिणाममें कफ सूखकर छाती जकड़ जाती है, फिर शुष्क कास या पीले गाढ़े कफयुक्त काससहित ज्वर कुछ दिनोंतक दुःख देता रहता है अतः प्रारम्भमें अति उष्ण औषधि नहीं देनी चाहिये; यदि पहिले दिन लंघन कराया जाय और एरण्ड तैलकी वस्ति देकर कोष्ठशुद्धि की जाय तो रोग सरलतासे शमन हो जाता है और यदि जुकामको दूर करनेके लिये प्रारम्भमें गुल-बनफसाका क्वाथ दिया जाय, तो रोग आगे नहीं बढ़ता तथा जुकाम और ज्वर शान्त हो जाता है।

शीतलाज्वर—यह कीटाणुजन्य रोग अति संक्रामक और स्पर्शाक्रामक है। यद्यपि इस रोगके कीटाणुओंका शोध नहीं हुआ। फिर भी इसकी क्रिया कीटाणुओंके समान है। देवी प्रकोप मानकर इसे टाल नहीं देना चाहिये। रोगीके कमरेमें मक्खियोंको नहीं जाने देना चाहिये। इस रोगमें रोगीके दानोंकी मक्खियोंसे ध्यानपूर्वक रक्षा करनी चाहिये और रोगीके कमरेकी वायु शुद्ध रहनी चाहिये तथा रोगीको मलावरोध न रहने देना चाहिये। भोजनमें दूध और फलोंका रस हितकारक है, अन्न न दिया

जाय तो अच्छा यदि अन्न देना ही हो, तो भी उसमें नमक नहीं देना चाहिये क्योंकि नमक देने पर खुजली बढ़ती है। दूध-भात या दलिया देवें। दानोंको बालक खुजाकर तोड़ न डाले, यह परिचारकको सम्हालना चाहिये। एवं दूध आदि आहार देनेके पहिले त्रिफला क्वाथ या पंचवल्कल क्वाथसे कुल्ले कराकर मुँहको साफ कर लेना चाहिये।

जीर्णज्वर—जब विषमज्वर आदि पीड़ितोंकी चिकित्सा योग्य न हो या अपथ्य सेवन किया जाता है, तब ज्वर रक्तादि धातुओंमें लीन होकर जीर्णरूप धारण कर लेता है। ज्वर जीर्ण हो जानेपर कभी उपवास नहीं कराना चाहिये। जीर्णज्वरमें रोगी कृश हो जानेपर वमन-विरेच भी अनिष्ट ही करता है, अतः मलावरोध होनेपर निरूह वस्ति (एनिमा) का प्रयोगकर या ग्लिसरीनकी पिचकारी लगाकर मलको निकाल देना चाहिये। जीर्ण ज्वरमें रूक्षता आ जानेसे प्रायः वायु बढ़ जाती है। अतः रोगीको घृतपान कराया जाता है। रोगीको पचन हो उतने परिमाणमें गोदुग्ध या अजादुग्ध देना चाहिये। यदि श्लेष्माका संचय हो जानेसे मस्तिष्कमें भारीपन रहता हो, तो नस्यका प्रयोग किया जाता है।

ज्वराक्रान्त रोगीको आराम देना चाहिये। मानसिक कष्टों और चिन्ताओंको दूर करानेका प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। मनोबल और शरीर बलका क्षय न हो, यह सम्हालना चाहिये। यदि रोगी बलवान है, तो चिकित्सा सुगमतासे हो सकती है। रोगी कृश और निर्बल होनेपर पग-पगपर ज्वर प्रकुपित होनेकी और उपद्रव उपस्थित होनेकी सम्भवना रहती है। ऐसा होनेपर रोगीका जीवन संशयमें हो जाता है, अतः उसके बलको रक्षा करना नितान्त आवश्यक होता है।

ज्वरसे छुटकारा मिल जानेपर जबतक शरीर पूर्णतया बलवान होकर प्रकृतिके थपेड़ोंको सहन करने लायक न हो जाय, तबतक व्यायाम, स्त्रीसहवास, स्नान, भ्रमण, परिश्रम, शीतल जल और शीतल वायुका

सेवन न करे। नियम भङ्ग करनेपर रोगके प्रत्याक्रमणका भय रहता है। उक्त हेतुओंमें स्त्रीसहवास अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ है। इसके परिणाममें मृत्यु हो जाती है या चिरकाल तक दुर्बलता बनी रहती है।

५. ज्वर उपद्रव और उनकी चिकित्सा।

व्यधेरुपरी यो व्याधिर्भवत्युत्तर कालजः।
उपक्रमाविरोधी च स उपद्रव उच्यते॥
रोगारम्भक दोषप्रकोपजन्योऽन्य विकारः उपद्रवः।

वह रोग जो कि किसी दूसरे रोगके साथ पैदा हो जानेके पश्चात् उस मूल व्याधिके आरम्भके दोषोंके कारण उत्पन्न होता है। तथा जिसकी चिकित्सा मूल व्याधीकी चिकित्साके साथ बिना किसी प्रकारके प्रतिबन्ध उपस्थित किये हो जाती है, उसे उपद्रव कहते हैं।

उपद्रव शब्द कानोंमें पहुँचते ही रोंगटे खड़े कर देता है, आँखोंमें चकाचौंध पैदा कर एक प्रकारकी विशेष जिज्ञासा वृत्तिको जाग्रत कर देता है। "भगवन्! इसका परिणाम क्या होगा? किन किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ेगा?"

आयुर्वेद शास्त्रका "उपद्रव" सांसरिक उपद्रवसे कम भयावह नहीं है। चिकित्सा कालमें उपद्रवके पैदा होनेका समाचार रोगी, रोगीके सम्बन्धी, परिचारक तथा वैद्य, सबको दहला देता है। इसी भयको दूर करनेके लिये वैद्यवर भावमिश्रको लिखना पड़ा—

संजातोपद्रवो व्याधिस्त्याज्यो न स्याच्चिकित्सकैः।
व्यधौ शान्ते प्रणश्यन्ति सद्यः सर्वेऽप्युपद्रवाः॥

अर्थात् उपद्रवोंके पैदा हो जानेपर वैद्योंको रोगीकी चिकित्सा छोड़ न देनी चाहिये। उपद्रव कोई भयावह वस्तु नहीं, मूल व्याधिके शान्त हो जानेपर वे स्वयमेव शान्त हो जायेंगे। इस वास्ते उपद्रवके भयको

निर्मूल समझकर मूल व्याधिकी चिकित्सा ध्यान देकर करनी चाहिये। हां, कहीं-कहीं पर उपद्रव मूलव्याधिसे बलवत्तर होनेपर रोगीको कष्ट देना शुरु कर देता है, ऐसी परिस्थितमें उपद्रवकी चिकित्सा पहिले कर रोगीको सान्त्वना देनी चाहिये। मूल व्याधिकी चिकित्सा करते समय उपद्रवोंकी अवहेलना करना उचित नहीं है। उपेक्षा करनेसे कभी-कभी रोग संकरकी उपस्थिति हो जाती है, मगर बचाव इतना ही रहता है कि दोनों प्रकारके रोगोंके जन्मदाता दोष एक ही होते हैं। जिन उपद्रवोंमें आशुकारिता अधिक हो, उसकी चिकित्सा तुरन्त करना चाहिये।

पहिले कहा जा चुका है कि ज्वरमें होनेवाले उपद्रवोंकी संख्या १५ है। श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, तृषा, वमन, अतिसार, मलबन्ध, मूत्रावरोध, हिक्का, कास, अति स्वेद, प्रलाप, निद्रानाश, तन्द्रा और दाह। इन सबका बल किसीसे छिपा नहीं है। संभवतः इसी वास्ते आचार्योंको कहना पड़ा है कि "बलवत्स्वल्प दोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः" अर्थात् यदि रोगी बलवान् हो, रोगारम्भक दोषोंकी क्षमता कम हो और कोई भी उपद्रव प्रधान रोगका अनुगामी न हो तो ज्वर साध्य होता है।

(१) श्वास (Spasmodic Asthma)—ज्वरके उपद्रवोंमें श्वासकी गणना सर्वप्रथमकी है। यह उचित भी है। हिक्का और श्वास रोगोंमें अन्यान्य समस्त रोगोंकी अपेक्षा मारकता अधिकतम सिद्ध हुई है अतः भूल करके भी इन दोनोंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

यदि ज्वरावस्थामें रोगी प्रमादवश मिथ्याहार विहारादिकोंको करता ही रहता है या भूलवश औषधि गलती ले ली जाती है या किसी कारणसे ज्वरारम्भकदोष अति प्रकुपित हो जाता है, तो उसके रक्तमें आंगारिक वायु (Carbon-di-Oxide gas) की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इधर कुपित प्राणवायु फुफ्फुसोंमें आवश्यकतासे अधिक रक्तका प्रक्षेपण करना शुरू कर देता है। फलतः फुफ्फुसों के वायुकोष्ठ-

समूहों और श्वासप्रणालिकाओंके स्रोतोंमें आंगारिक वायुसे उपद्रुत रक्त भर जाता है और फिर स्रोतोंमें रहे हुये कफके तरल अंशका शोषण रक्तमें हो जानेसे रक्त गाढा बन जाता है। प्राणवायु जिसका निरन्तर आवागमन श्वासमार्गमें होता रहता है, वह उस कफके पतले अंशको और भी सुखाकर मार्गोंको अवरुद्ध कर देता है, फिर श्वासकष्ट उपस्थित हो जाता है। सुषुम्णामें रहे हुये श्वासकेन्द्रके उत्तेजित हो जानेसे और फिर प्राणवायुकी प्राप्तिमें कमी हो जानेसे श्वासावरोध होकर निर्बल रोगीके कष्टमें और वृद्धि हो जाती है।

श्वासावरोध (Dysponea), यह विकार विशेषतः अपचन, इन्फ्लुएञ्जा, निमोनिया, कण्ठरोहिणी, रोमान्तिका, रक्तमें मूत्रविषवृद्धि, तमाखू विष, अपक्रान्ति, अन्त्रस्थ मलका विष या प्रजनन संस्थासे विषकी प्राप्ति आदि कारणोंसे उपस्थित होता है। यह भी श्वासविकार है।

श्वासप्रकोप, यह मूल रोगके शान्त होनेपर शान्त हो जाता है, मगर कभी-कभी ज्वर अवस्थित होनेपर भी प्रबल उग्ररूप धारण कर लेता है। उस समय ज्वरघ्न औषधियोंकी अपेक्षा श्वासहर औषधियोंके प्रयोगकी आवश्यकता पड़ती है अतः कतिपय परीक्षित औषधियोंको नीचे लिखा जाता है। अधिक प्रयोग लिखनेका तात्पर्य यह है कि कभी कोई औषधि रोगीको अनुकूल नहीं रहती और कभी कोई औषधि तैयार नहीं रहती। किसी औषधिने प्रकृति भेदसे कार्य नहीं किया, इत्यादि कारणोंसे अधिक प्रयोग जाननेकी आवश्यकता रहती है।

(१) छोटी पीपल, कायफल, और काकड़ासिंगी समभाग मिला, कूटकर कपड़छन चूर्ण करें। मात्रा ४ से ६ रत्ती। २–२ घण्टेपर दिनमें ४ बार अनुपान शहद। इससे श्वासावरोध और श्वासवेग शमन होकर, कफ निकलनेमें सहायता मिल जाती है अथवा बहेड़ेकी या बेरकी गिरी २–२ रत्ती शहदमें मिलाकर चटानेसे श्वासवेग शमन हो जाता है।

(२) छोटी कटेलीमूल २ तोले और सोंठ ६ माशेको आध सेर जलमें मिलाकर क्वाथ करें। १० तोले जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। उसमें मिश्री ४ माशे और पीपलका चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर पिला देनेसे अति बढ़ा हुआ कफ थोड़े ही समयमें बाहर निकल आता है और रोगीको शान्ति मिल जाती है।

(३) सोंठ, भारंगी और खुरासानी अजवायनका चूर्ण २–२ माशेको शहदके साथ २–२ घण्टेपर २—३ बार देनेसे श्वासवेगका दमन हो जाता है तथा उस कारणसे होनेवाली घबराहट शान्त हो जाती है और रोगीको शान्त निद्रा आ जाती है। यह औषधि युवकोंको जितना लाभ पहुँचती है, उतना लाभ वयोवृद्धोंको नहीं पहुँचा सकती।

(४) श्वासावरोध, श्वासप्रकोप, अपचन और अफारा आदि उपद्रव हों, तो छोटी कटेलीके फलोंका चूर्ण १ माशा और भूनी हींग ४ रत्तीको ४ माशे शक्कर या शहद के साथ देवें। या केपसूलमें रखकर निगलवा देवें। यह औषधि आवश्यकतापर २ घण्टे बाद फिरसे भी दे सकते हैं।

(५) पीतश्वासकुठार—शुद्धमनःशिला और कालीमिर्च, दोनोंको समभाग मिला, अदरखके रसमें १२ घण्टे खरलकर—११ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इसमेंसे १—१ गोली २—२ घण्टे बाद नागरबेलके पानमें या जलसे २—३ बार देनेसे श्वासकष्ट शान्त हो जाता है।

(६) मोरके चन्दवेंकी भस्म और छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर ६-६ रत्ती शहदके साथ २-२ घण्टेपर २ या ३ बार देनेसे कफरहित श्वास, हिक्का, अपचन, अफारा और उदरशूल

शमन हो जाता है। एवं रक्तमें आंगारिक वायु भी कम हो जाती है।

(७) श्वासदमन चूर्ण—शुद्ध मैनसिल, भुनी हींग, वायविडंग, कूठ, कालीमिर्च और सेंधानमक, समभाग मिलाकर कपड़छन चूर्ण करें। मात्रा १-१ माशे २-२ घण्टेपर। अनुपान शहद ६ माशे। इस औषधिमें कूठ है इसलिये यह कण्ठको पकड़ती है, अतः त्रिदोष प्रकोप न हो तो थोड़ा घी मिला दिया जाता है। यह श्वासप्रकोप, कफ और हिक्काका सत्वर दमन करता है तथा घबराहटको दूर करता है।

(८) धतूरेके फलकी राख १-१ माशेको ३-३ माशे शहदके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार चटानेसे श्वासवेगका दमन हो जाता है। यह प्रयोग हृदय विकृतिसहित श्वास (Cardiac Asthema) में हितावह है।

(९) सोम—(Ephedra Vulgaris) १-१ माशेका फाण्ट १-१ घण्टेपर २-३ बार देनेसे प्रबल श्वासवेगका भी दमन हो जाता है। डाक्टरीमें इसी सोमका सत्व (Ephedrine) निकालकर अन्तःक्षेपण करते हैं।

इनके अतिरिक्त शृंगभस्म, श्वासकुठार, कफकर्तन रस आदि व्यवहृत होते हैं। कभी कभी कफ अधिक सूख जानेपर लऊक-सपिस्तां और भूनी कुल्थीका यूष भी देना पड़ता है। एवं आमाशयमें दूषित अन्न या आमसंग्रह हो, तो आकको जड़की छालका चूर्ण १॥ माशा गुनगुने जलके साथ देनेसे वमन होकर विकार निवृत्त हो जाता है। धूम्रपानके अभ्यासीको निम्न औषधियोंका धूम्रपान करानेसे भी शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

(१०) धत्तूरेके पत्ते, शाखाकी छाल और फलको कूट सुखाकर तमाखूकी तरह चिलममें रख या बीड़ीकी तरह पीनेसे कफ निकलकर श्वासका वेग तुरन्त शान्त हो जाता है।

(११) मैनसिल, देवदारु, जटामांसी, हल्दी, तेजपात, लौंग और लाल एरण्डकी जड़, इन सबका चूर्णकर कागज या पत्ते में लपेट, ऊपर घी चुपड़कर धूम्रपान करनेसे कफके अवरुद्ध मार्ग साफ होकर श्वासवेग शिथिल पड़ जाता है।

(१२) जौके आटेको घीमें मिलाकर धूम्रपान करानेसे भी लाभ पहुँचता है।

(१३) देवदारु, खैरेंटी और जटामांसी समभाग मिला, चूर्णकर फिर सिगरेटके समान पानमें लपेटकर धूम्रपान करानेसे तत्काल श्वासप्रकोप शमन हो जाता है।

(२) उपद्रवभूत मूर्च्छा (Fainting)—जब मिथ्या आहार विहार या मलावरोध आदिके कारण कुपरिणामस्वरूप आंगारिक वायु (Carbon-di-Oxide gas) या विष रक्तमें संगृहीत हो जाता है, तब रक्तदबाव बढ़ जाता है। फिर मस्तिष्कमें अवसादकता आकर बेहोशी आ जाती है। इसके अतिरिक्त मनको आघात पहुँचनेसे भी बेहोशी हो सकती है। ऐसा होनेपर उसका उपाय करनेके साथ मनको प्रसन्न रखनेका भी प्रयत्न करना पड़ता है।

आयुर्वेदके मतानुसार मूर्च्छाकी उत्पत्ति पित्त और तमोगुणके कारणसे होती है। अतः खिलानेकी औषधियोंमें इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि एक बार बढ़ा हुआ पित्त पुनरपि उमड़ न पड़े। इसके आक्रमण कालमें आँख और मुख आदि स्थानोंमें ठण्डे जलका छींटा देवें और ताड़के पंखेसे हवा करें। दांत लग जानेपर उसके छुड़ानेका उपाय करें। इतनेपर भी होशमें न आयें, तो नियमानुसार नस्य, अञ्जन आदि उपचार करने चाहियें।

(१) कालीमिर्च, कायफल और छोटी पीपलके दाने, तीनोंको समभाग मिलाकर वस्त्रपूत चूर्ण तैयार करें। इसमेंसे १ रत्ती लगभग सुंघानेसे या नासापुटमें फूँक देनेसे छींके आकर बेहोशी दूर हो जाती है।

(२) सिरसके बीज और कालीमिर्चका चूर्ण समभाग मिला १-१ रत्तीका नस्य करानेसे मूर्च्छा निवृत्त हो जाती है।

(३) अदरखके रसको नाकमें टपकानेसे भी लाभ हो जाता है।

(४) सोंठ, पीपल, वच और सैंधानमकको समभाग मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। इस चूर्णका नस्य करानेसे महाघोर तन्द्राका भी विनाश हो जाता है।

(५) नौसादरका टुकड़ा २ तोले, सूखा चूना १ तोला और कपूर ६ माशेको शीशीमें भरकर सुंघानेसे मूर्च्छा तत्काल निवृत्त हो जाती है।

(६) आंवलासार गन्धक और सैंधानमक समभाग मिलाकर नीबूके रसमें १२ घण्टे खरलकर सूखा चूर्ण कर लेवें। उसमेंसे सलाई द्वारा नेत्रोंमें आंजन करनेसे तन्द्रा और बेहोशी दूर हो जाती है।

(७) लहशुनको गिरी, मैनसिल और वच, सबको समभाग मिलाकर आंखोंमें अञ्जन करनेसे बेहोशी दूर हो जाती है।

(८) पीपलका चूर्ण १॥ से ३ माशेको ५ तोले उबलते हुए जलमें छोड़ देवें और बर्तनको चूल्हेसे उतारकर ढक देवें। २० मिनट बाद छानकर पिला देवें। इससे तन्द्रा और बेहोशी दूर होकर चेतना आ जाती है।

(९) **संचेतनी गुटिका**—सोंठ, पीपरलामूल, बायबिडंग, चित्रक-मूल, दालचीनी, तेजपात, जावित्री, शुद्ध कुचिला, शुद्ध बच्छ-नाग, मल्लभस्म, ताम्रभस्म और कस्तूरी, इन १२ औषधियोंको

समभाग मिला, भांगरेके रसमें १२ घण्टेतक खरलकर आध-आध रतीकी गोलियां बना लेंवे। मात्रा १-१ गोली निवाये जलके साथ। यह वटी सन्निपात ज्वरके विषको पाचनकर बेहोशी दूर करनेमें अमृतके समान कार्य करती है। मरता हुआ रोगी भी एक दफे होशमें आ जाता है। यह वटी हृदयको उत्तेजना देती है।

मूर्च्छावस्थामें यदि उदरमें मल संगृहीत हो अर्थात् कब्ज हो, तो उसे पहिले दूर करना चाहिये। अन्यथा मूर्च्छामें पूरा लाभ नहीं हो सकेगा, अतः स्वच्छ एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी गुदामें पिचकारी लगाकर शौचशुद्धि करा लेना चाहिये।

(३) **अरुचि** (Anorexia)—आमाशयके थक जाने, कषैले रसवाली औषधियोंका अधिक सेवन कराने और आमाशय रसका स्राव यथावत् न होनेके कारण अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

यह उपद्रव काला आजार, मुद्दती ज्वरजन्य पाण्डुता, आमाशय प्रसारण, अति निर्बलता, उदरकृमि, मलावरोध, नष्टार्तव, शराबका अतिव्यसन और अफीमका जीर्ण व्यसन आदि हेतुओंसे हो जाता है। यह अरुचि दोषकी विकृतिके अनुसार वातज, पित्तज और कफज, तीन प्रकारकी होती है। वातज अरुचि (Anorexia Nervosa) विशेषतः १५ से २५ वर्षकी आयुवाली युवतियोंको होता है। मानसिक आघात और लंघन, ये दो कारण मुख्य होते हैं। इस वातप्रधान अरुचिमें मुखका स्वाद फीका या कषैला तथा दाँत कोठिल (खटाई खानेपर दाँतोंकी जो स्थिति होती है, उसे कोठिल कहते हैं) हो जाते हैं। पित्तज अरुचिमें मुखका स्वाद कडुवा और खट्टा तथा उसमेंसे सड़ी हुई दुर्गन्ध निकलती है। कफज अरुचिमें मुँह मीठासा, जीभ लेपी लेपीसी तथा गलेमें और तालुमें शल्यके साथ बोझसे लदे हुयेके समान मालूम पड़ता है।

वातज और कफज अरुचिको दूर करनेके लिये उन उपचारोंको करना चाहिये, जिससे आमशाय रस अधिकाधिक मात्रामें निकले। इस कार्यके लिये भोजनके पहिले क्षारमिश्रित जल या लवणभास्कर चूर्णका सेवन इच्छित लाभ करता है। इसे भोजनके आध घण्टे पहिले लेना चाहिये। इससे क्षुधा, अन्नमें रुचि समानरूपसे पैदा होती है।

यदि पित्तप्रकोपके कारण आमाशय रसकी उत्पत्ति अधिक होने लगे तो उसको भोजनके आध-आध घण्टे पहिले १ पक्के पीले नीबूको २० से ४० तोले जलमें निचोड़ ३—४ माशे शक्कर मिलाकर पिला देनेसे अनावश्यक उत्तेजना शान्त होकर शुद्ध आमाशय रसकी उत्पत्ति होने लगती है। फिर छाती में दाह, कण्ठमें जलन, खट्टी डकार आना, मुखपाक आदि लक्षणसहित अरुचि दूर हो जाती है।

निर्बल आमाशयवालोंको चाहिये कि भोजनके प्रारम्भमें शुष्क पदार्थोंका सेवन करें और जल अपेक्षाकृत कम पीवें, ताकि आमाशयमें भुक्त पदार्थोंका आमाशय रसमें भली भाँति मिश्रण हो जाय। तीव्र रोगके अन्तमें निर्बलता आनेपर आमाशयको उत्तेजित करनेके लिये भोजनके आरम्भमें अदरख, कालीमिर्च, नीबूका रस और सैंधानमक मिलाकर प्राशन करें। भोजनके साथ लहसुन अनारदाने और पोदीनेकी चटनी चाटते रहें तथा भोजनके २—३ घण्टे बाद मीठे नीबू या सन्तरा आदि फलोंका रस सेवक करें।

अपचन हो, खट्टी डकार आती हो तथा दाह, प्यास आदि लक्षण उपस्थित हों, तो भोजन करनेके २—३ घण्टे बाद थोड़ा क्षार घीके साथ लेवें या सोडा जलमें मिलाकर सेवन करें। शास्त्रीय प्रयोग शंखवटी भी व्यहृत होती है।

अरुचिनाशक कतिपय अनुभूत प्रयोगः—

(१) सैंधानमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन सबको अदरखके रसमें मिलाकर चाटनेसे मुँहका स्वाद ठीक हो जाता

है। मुँहमें दुर्गन्ध और चिपचिपापन हो, तो वे भी दूर हो जाते हैं।

(२) बिजौरे नीबूकी केसर सैंधानमकको घीके साथ मिलाकर चाटनेसे वातज अरुचि दूर होती है।

(३) आँवला, मुनक्का और मिश्री मिलाकर चाटनेसे पित्तज अरुचि दूर होती है।

(४) अदरकके रसमें शहद मिलाकर चाटनेसे कफज अरुचिका शमन होता है।

(५) अरुचि, अग्निमान्द्य, मलावरोध और कफाधिकता हो तो लवणभास्कर चूर्ण ४-४ माशे दिनमें २-३ बार मट्ठे या जलके साथ सेवन कराना चाहिये।

(६) पित्तप्रकोपज अरुचि में सितोपलादि चूर्ण ३-३ माशे को अनारदानोंके रस और शहदमें मिलाकर सुबह और रात्रिको देते रहनेसे मन्द मन्द ज्वर, अरुचि, दाह, निद्रानाश, शुष्क कास, मुखपाक, अग्निमान्द्य और शोष आदिकी निवृत्ति हो जाती है।

(७) जीर्ण ज्वरमें अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास, कास, सिरदर्द, दाह और व्याकुलता आदि लक्षण रहते हों, तो ६४ प्रहरी पीपल २-२ रत्ती शहदके साथ मिलाकर दिनमें २ बार सेवन कराते रहना चाहिये।

(८) आरग्वधादि कल्क–अमलतासका गूदा ४० तोलेको नीबूके २ सेर रसमें मिलाकर २४ घण्टे तक भिगोवें। फिर मसल, छानकर ४० तोले मिश्री मिलाकर शर्बत जैसा बना लेवें। फिर दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और धनियाँ २-२ तोले, भूनी हींग ६ माशे, सैंधानमक १० तोले, सेके हुये जीरेका चूर्ण और बीज निकाली हुई

मुनक्काकी चटनी ५-५ तोले मिलाकर आँचपर चढ़ा अवलेहके समान पाक कर लेवें। मात्रा ३ माशेसे १ तोले तक दिनमें एक या दो बार। इसको भोजनके साथ या रात्रिको या सुबह सेवन किया जा सकता है। यह कल्क अपचन, अपचनसे होनेवाले ज्वर-शिरदर्द, आम, उदरवात, प्रतिश्याय अरुचि, आदि उपद्रवोंको दूरकर अग्निको प्रदीप्त करता है।

(४) **तृषा** (Polydipsia and dipsosis)-बार बार जल पीनेपर भी प्यासका शमन न हो, तब **तृषारोग** कहलाता है। डाक्टरीमें बढ़ी हुई तृषाको पॉलिडिप्सिया और अनावश्यक तृषाको डिप्सॉसिस कहते हैं।

वायु और पित्त प्रकुपित होकर शरीरस्थ सौम्य धातुओंका शोषण करते हैं। फिर रक्तवाहिनियां, रसवाहिनियाँ, जिह्वा, कण्ठ, तालु, और क्लोममें शोष उत्पन्न कर तृषा रोगकी सम्प्राप्ति करता है। ऐसे रोगीकी बार बार जल पीते रहनेपर भी तृषा शान्त नहीं होती। पिया हुआ जल आमाशय आदिमें संगृहीत होता रहता है।

तृषा और मूत्रोत्सर्गका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। तृषावृद्धि अवान्तर कारणोंके साथ साथ मूत्रोत्सर्जन क्रिया के प्रभावित होनेसे भी होती है। मधुमेह, उदकमेह, विविध वृक्कविकार, धमनीकोषकाठिन्य, हिस्टीरिया और शराबका व्यसन आदि विकारोंमें मूत्रोत्पत्ति अधिक होती रहती है। इसके विपरीत विविध प्रकारके ज्वर, अतिस्वेदस्राव, अति रक्तस्राव, आमाशय प्रसारण, सोमलादि विष प्रयोग, फिटकरी आदि कसैली औषधियोंका सेवन, अति नमक, अति तैल, अति मिर्च, अन्तस्त्वचामें शोथ, सुषुम्णाकाण्डकी चेतनाका ह्रास और तृषोत्पादक केन्द्रकी उग्रता उत्पन्न होनेपर तृषा उत्पन्न होती है, इस प्रकारमें मूत्र यन्त्र के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध नहीं है।

ज्वरोगोद्भूत तृषाकी चिकित्सा करनेके समय मधुमेह आदि रोगका सम्बन्ध है या नहीं, यह विचारकर उपचार किया जाता है। जैसे मधुमेहीको श्लेष्म या श्लेष्मप्रधान ज्वर हो जाय और उसे मधुमेहज तृषा वेग हो, तो उसे ज्वरोपद्रवभूत तृषा कहकर अभिहत करना, यह तृषा उपद्रवके साथ अन्याय करना होगा।

सामान्यतः श्लेष्मज्वर और वातश्लेष्मज्वरमें तृषा नहीं होती। ऐसी रोगपर यदि सोमल, धत्तूरा आदि औषधिका सेवन कराया जाय। और औषधिओंकी दुर्व्यवस्था हो जाय, तो तृषोत्पादक केन्द्रमें उग्रता आ सकती है या तृषा स्थानोंमें शुष्कताकी संप्राप्ति हो सकती है। फिर रोगी प्यासके मारे व्यथित हो जाय और बार-बार जलपान करता रहे, तो श्लेष्मा बढ़कर उसके प्राणोंको संकटमें डाल देगी।

शराब, गांजा, सिगरेट और बीड़ी आदिके व्यसनी ज्वराक्रान्त होनेपर भले ही अन्नको छोड़कर लङ्घन करना स्वीकार कर लें, मगर इन व्यसनोंसे बाज नहीं आते। व्यसनके कारण वे बहुधा अनावश्यक तृषाके शिकार हो जाते हैं। यदि वे व्यसनको त्याग दें, तो तृषारोग या उपद्रव सरलतासे दूर हो सकता है।

रोगीको तृषाका भान होनेपर यदि उदरमें अधिक जल संगृहीत हो, तो उसकी योग्य चिकित्सा करनी चाहिये बिना उपचार जलपान न करानेसे भयंकर रोगका जन्म, या मृत्यु हो जानेकी भीति रहती है। पहिले शहद और निवाया जल मिला, खूब पिलाकर वमन करा देवें या नीमकी छालका क्वाथ पिलाकर वमन करा देनेसे आमाशयमें संगृहीत जल बाहर निकल जाता है अतः फिर उपचार करना सरल हो जाता है।

तृषाशामक कतिपय प्रयोग:—

(१) बड़ी इलायचीके दाने और शीतल चीनीके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटानेसे प्यासका ह्रास होता है। और रक्तमें संगृहीत जलका मैत्रद्वारा निर्गमन हो जाता है।

(२) गिलोय पञ्चाङ्गका रस २ से ४ तोले पिलानेसे वातज तृषा शान्त हो जाती है।

(३) गूलरके पक्के फलोंका रस या क्वाथ का सेवन करानेसे पित्तज तृषा दूर हो जाती है।

(४) आमप्रकोप हो तो षडंग पानीय उपकारक है। इसका वर्णन ४ थे प्रकरणमें किया गया है।

(५) कमलादी फाण्ट—कमलके फूल, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, काली अनन्तमूल, खस मुलहठी, नागरमोथा और मिश्री सबको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर उसमें से २ तोला लेकर ६४ तोले खौलते हुए जलमें डालकर शीतल होनेतक ढक कर रख देवें। फिर कपड़ेसे छानकर ज्वरावस्थामें तृषा पीड़ितको थोड़ा थोड़ा जल पिलाते रहें। यह फाण्ट हृदयरञ्जक, दाहशामक, तृषानाशक, मूत्रल और विषहर है। यह तृषा पीड़ितके लिये अति हितकारक है।

(६) अश्वथ (पीपल वृक्ष) की छाल को आगमें जलाकर जलमें बुझावें। फिर जलको छान, थोड़ा थोड़ा पिलाते रहनेसे प्यासकी वेदना शान्त हो जाती है। इसी तरह सुवर्ण, रौप्य, लोह पत्थर या ईंटको तपा, जलमें बुझा, छानकर किञ्चित गरम पिलाते रहनेसे ज्वर की तृषा शमन हो जाती है।

(७) बरगदकी कोमल जटा, आँवला, धानकी खील, कूठ और कमलगट्टेकी गिरीको समान भागमें मिलाकर चूर्णकर शहदके साथ १-१ माशेकी गोलियां बनाकर मुखमें धारण करें। इससे प्यास दूर हो जाती है।

(८) मुँहमें आलूबुखार, मुनक्का या आँवला रखकर रस चूसते रहनेसे कण्ठशोथ दूर होकर पिपासाका निवारण हो जाता है।

(५) छर्दि (Vomiting) :—इसे व्यावहारिक भाषामें वमन कै और वान्ति कहते हैं। इससे आमाशयस्थ अपक्व और पक्व पदार्थ

मुख मार्गसे निकलकर बाहर हो जाते हैं। वमन होनेमें पहिले आमाशय-स्थ द्रव्य बाहर निकल जाता है। इतनेपर यदि वमनका वेग शान्त हो गया हो, तो आगे त्रास नहीं होता। यदि वेग बढ़ता जाता है, तो उदर गह्वरस्थ ग्रन्थियोंपर भी दबाव पड़ने लगता है। फलतः रसग्रन्थियोंसे रस और पित्ताशय से पित्त और अग्न्याशयसे आग्नेय रसका मुखमार्गसे निकलना शुरु हो जाता है। इससे रोगीको अधिक कष्ट पहुँचता है। अतः प्रधान व्याधिकी प्रतीक्षा न करते हुए इसकी चिकित्सामें अग्रसर होना चाहिये।

वमनकी सम्प्राप्ति भोजनके अतियोग, अयोग, मिथ्या योग, अप्रिय भोजन आदि कारणोंसे होती है; किन्तु इस उपद्रवकी सम्प्राप्ति कभी-कभी आमाशयगत प्राणदा नाड़ीकी शाखा और नवमी कण्ठरासनी नाड़ी (Glossopharyngeal nerve) उत्तेजित होकर कण्ठमार्ग और ग्रसनिकाको प्रभावित करनेपर होती है। जब इस कारणसे आमाशय और और उदरकी मांसपेशियोंका तीव्र संकोच होने लगता है, तब आमाशयस्थ पदार्थ क्षुभित होकर मुखमार्गसे निकलना शुरू कर देता है। वमनकालमें जत्रूर्ध्व भागमें रक्तचापकी वृद्धि हो जानेके कारण मुखमण्डल लाल और भारी हो जाता है। फिर मुखमण्डल रक्तहीन, शरीर शीतल, पसीनेसे भीगा हुआ, धमनियोंमें आवश्यकतासे अधिक चंचलता, मुखसे पानी गिरना, मांशपेशियोंमें शिथिलता और अत्यन्त व्याकुलता होने लगती है। इस रोगके उपद्रवका सच्चा कारण रोगी नहीं जानता और दुःख भोगता रहता है। अतः न उन कारणोंका प्रतिकार होने पाता है और न छर्दिरोग ही अच्छा होता है। दैववशात् किसी विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न चिकित्सकसे साक्षात् हो गया, तो उपचार हो गया। यदि रोग प्रत्याख्येयतक पहुँच गया हो, तो हाथ मसलकर पछताना ही पड़ता है। अतः इस कमीकी पूर्तिके लिये एक तालिका दी जाती है। जिससे उपद्रव का कारण निश्चय करनेमें यथेष्ट सहायता मिलेगी, ऐसी हमें आशा है।

१. आमाशय प्रसारण हो जानेपर उसमें खाद्य पदार्थ आवश्यकतासे अधिक समयतक पड़ा रहनेपर उसमें एक प्रकारकी सड़ाइन्द पैदा होती है, फलतः अजीर्ण और अम्लपित्तके लक्षण उपस्थित हो जाते हैं; इस प्रकार नियमित वान्ति नहीं होती, बहुधा प्रातःकाल या रात्रिको होती है और कभी कभी इसमें रक्तका मिश्रण भी होता है।

२. आमाशयमें क्षत (Ulcer) होनेसे वमन होता है तो भोजनके पश्चात् तुरन्त १–१॥ घन्टे बाद वमन होती है।

३. आमाशयमें कर्कस्फोट (Cancer) हो गया हो तो वमन का वेग बहुत कम होता है। वमन हो जानेके बाद वेदनाका ह्रास नहीं होता। इस प्रकारकी वमनमें दुग्धाम्ल, श्लैष्मिककलाके टुकड़े और रक्त आता है एवं क्षुधानाश, अराफ, सतत वेदना आदि लक्षण भी होते हैं।

४. अपचन होनेपर वमन होती हो तो पहिले जी मिचलाता है तथा मुखमें पानी भर आता है। साथ साथ शिरदर्द, मूर्च्छा, देहमें शीतलता, मुखमण्डलपर निस्तेजता और क्षुद्रनाड़ी आदि लक्षण होते हैं।

५. आमाशयमें पूयमयप्रदाह हुआ हो, तो शीत लगना, कम्प, अँगड़ाइयोंका आना, ज्वर, प्यास, सिरदर्द क्षुधानाश, उदरपीड़ा, प्रभृति लक्षण उपस्थित होते हैं। वान्त पदार्थकी परीक्षा करनेपर पूय, पित्त और कफकी प्राप्ति होती है।

६. उन्माद, हिस्टीरिया, वातशूल आदि रोगोंमें वातनाड़ी प्रकोप कारण होनेपर आमाशय उत्तेजित होकर बिना उबाक उदरमें गुड़गुड़ाहट होकर वान्ति होती है।

७. मूत्रविष, अन्त्रोत्पन्न विष या अन्य प्रकारका अन्तर्विष उत्पन्न होकर रक्तमें प्रविष्ट होनेपर बारम्बार वान्ति होती रहती है। यद्यपि पित्ताश्मरी, वृक्काश्मरी आदिसे भी बारम्बार वमन होती है, किन्तु इनमें भयंकर शूल चलता रहता है।

उक्त कारणोंकी ओर लक्ष्य देकर वान्तिकी चिकित्सा करनी चाहिये। अन्यथा यश नहीं मिलता। वमनके तीव्र प्रकोपमें लङ्घन कराना सुकर होता है। वातज छर्दिमें लङ्घनसे पीड़ाके बढ़नेका भय रहता है। कफ-प्रकोप होनेपर वान्तिकर औषधि और पित्तप्रकोपमें विरेचन करा देनेसे उपकार होता है। वमनके रोगीको बद्धकोष्ठ भी हो, तो बस्ति लगाकर उदरशुद्धि करा लेनेसे भी अनेकोंकी वान्ति शान्त हो गई है।

वमनमें जबतक गंदा और विषाक्त पदार्थ निकलता रहे, तबतक उसे न रोकना चाहिये। अन्यथा घातक व्याधि पैदा हो जायगी, विषाक्त पदार्थका निकल जाना ही श्रेयस्कर होता है।

वमनमें यदि केवल आमाशय रस, जो कि अम्ल और उष्ण होता हो, गलेमेंसे जलता हुआ निकलता है तो उसपर क्षारीय प्रयोगोंको काममें लेना चाहिये।

वान्तिशामक परीक्षित प्रयोग :—

(१) पीपल (अश्वत्थ) की राखको १६ गुने जलमें घोलकर नितरने देवें। फिर ऊपरका स्वच्छ जल निकाल १-१ छटांक पिलाते रहनेसे अम्ल और उष्ण वमन शमन हो जाती है।

(२) केलेके कन्दका स्वरस २ तोले और शक्कर ६ माशे मिलाकर पिलानेसे आमाशयकी उग्रताका दमन होकर वमन दूर हो जाती है।

(३) कच्चे ताजा नारियलका जल पिलाने से शीतलता पहुंचने से वमन, दाह और तृषा तीनोंका निवारण हो जाता है। या काले सारिवाकी छाल ४ माशेको जलमें पीस, छान, मिश्री मिलाकर पिलानेसे अपचनजन्य वमन शान्त हो जाती है।

(४) कपूरकचरी २-२ रत्ती आध आध घन्टेपर ३-४ बार देनेसे वमन बन्द हो जाती है।

(५) कपूर १ रत्ती या नीलगिरी तैल ४ बूँद या जीवनरसायन

अर्क ४ बूँद (तीनोंमेंसे एक) को शक्कर १ माशेके साथ देनेसे कीटाणुजन्य वमन, जो दुर्गन्धमय होती है, वह शान्त हो जाती है। आवश्यकतापर १-१ घण्टे बाद २-३ बार और भी दे सकते हैं।

(६) बेलका गूदा अथवा बेलकी छालके क्वाथ में शहद मिलाकर पिलानेसे आमाशयदाह दूर होती है, फिर वान्ति निवृत्त हो जाती है। इस तरह आमकी गुठली और बेलकी छालका क्वाथकर उसमें शक्कर मिलाकर भी पिलाया जाता है।

(७) इन्द्रजौ, अतीस, बच, कालानमक और हरड़ १-१ तोला और भूनी हींग ६ माशा मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें, इसमेंसे २-२ माशे चूर्ण गरम जलके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे वातज छर्दि, उदरशूल और हृदयकी धड़कन दूर होती हैं।

(८) बर्फका जल थोड़ा थोड़ा देते रहनेसे आमाशयकी उग्रता शान्त होकर वमन बन्द हो जाती है। अथवा खस और चन्दनको घिसकर या चटनीकी तरह पीस, गरम करके, ठण्डे किये हुए जलमें मिला, फिर शक्कर मिलाकर पिलावें अथवा पित्तपापड़ेका क्वाथ शीतलकर २-३ बार पिलावें। या गिलोयका क्वाथकर शीतल होनेपर थोड़ा शहद मिलाकर पिलावें।

(९) आंवलेका रस और कैथका रस १-१ तोला मिला, उसमें ४ रत्ती कालीमिर्चका चूर्ण और ६ माशे शहद मिलाकर चटानेसे प्रबल वमन भी दूर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त सूतशेखर, वान्ति हृद रस, गुडूच्यादि क्वाथ, एलादि चूर्ण, चन्द्रकला रस (रक्त वमनपर) आदि शास्त्रीय औषधियां व्यवहृत होती हैं। जिस वमनमें उष्ण और अम्लरस विशिष्ट आमाशयरस

न निकलता हो एवं दुर्गन्धयुक्त द्रव्य भी बाहर न आता हो, उसे ताजे नीबूके रसमें थोड़ा जल और शक्कर मिलाकर पिलादेनेसे लाभ हो जाता है। इस तरह सन्तरेका रस या शर्बत-अनार पिलानेसे भी घबराहट, दाह, तृषा और वमन दूर हो जाती हैं।

६. **अतिसार** (Enteritis or colitis)—यह उपद्रव विशेषतः अपथ्य सेवनसे होता है। लघु अन्त्र या बृहदन्त्र अथवा दोनोंमें प्रदाह होकर पतले दुर्गन्धयुक्त दस्त होने लगते हैं। साथ साथ अरुचि, जिह्वापर सफेद या पीला मैल जमना, उदरवात और दुर्गन्धयुक्त डकार आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यदि अन्त्रमें क्षत हो जाता है, तो प्रवाहिकाके सदृश उदरमें वेदना भी होती है।

अतिसार होनेपर दूषित मल साफ न हो, तब तक रोगीको उबाले हुए जलके अतिरिक्त कुछ भी नहीं देना चाहिये। हो सके तो एरण्ड तैलकी वस्ति देकर अन्त्रमेंसे दूषित मलको तुरन्त दूर कर देना चाहिये।

कभी कभी समग्र पचन संस्था प्रभावित आमाशयान्त्रप्रदाह (Gastro-Enterocolitis) हो जाता है, फिर वमन और अतिसार दोनों उपस्थित होते हैं। ऐसा होनेपर रोग शीघ्र अधिक क्लेश दायक बन जाता है। अतः इसपर तत्काल लक्ष्य देना चाहिये।

इस उपद्रवके शमनार्थ कीटाणुनाशक दुर्गन्धहर उपचार पहिले करना चाहिये। कपूर या नीलगिरी तैल अथवा जीवनरसायन अर्कका सेवन १-१ घन्टेपर बताशे या शक्करके साथ ३-४ समय कराना चाहिये। फिर अतिसारनाशक या वमन-अतिसारनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। वमन हो तो चूसनेके लिये बर्फ देना चाहिये। केवल अतिसार हो, तो खस, सोंठ और नागरमोथेको जलमें मिलाकर उबाल लेवें। फिर यह शीतल किया हुआ जल देते रहना चाहिये। उदरपर गरम वस्त्र बाँधें, जिससे शीत लगकर प्रदाहमें वृद्धि न हो जाय, दस्त सफेद होता हो, तो यकृत्के

पित्तका स्राव कम माना जाता है। ऐसी अवस्थामें घी, शक्कर, मलाई आदि लाभदायक नहीं होते।

अतिसारहर परीक्षित सरल प्रयोग :—

(१) सोंठ, अतीस, नागरमोथा, पीपल और इन्द्रयवका क्वाथकर दिनमें ३ बार, २-३ दिनतक या २-२घण्टेपर ३-४ बार देनेसे आमपचन होकर लाभ हो जाता है।

(२) पाठा, इन्द्रयव, बड़ी हरड़ और सोंठका क्वाथकर दिनमें ३ समय २-४ दिनतक पिलानेसे अतिसार शमन हो जाता है।

(३) कच्चे बेलफल और आमकी गुठलीकी गिरीका क्वाथ बना, शहद मिलाकर दिनमें ३ समय पिलानेसे वमनसहित अतिसार दूर हो हो जाता है।

(४) वराटिकाभस्म ४-४ रत्ती और सोंठ १-१ माशेको घी और शहदमें मिलाकर दिनमें ३ बार २-४ दिनतक देनेसे अन्त्र-प्रदाह, क्षत, आतिसार और उदरवताकी निवृत्ति हो जाती है।

(५) कुटजादि कषाय—कुड़ेकी छाल, अनारका बक्कल, नागर-मोथा, धायके फूल, बेलगिरी, खस, लोध, लालचन्दन और पाठा, इन ९ औषधियोंको समभाग मिलाकर कूट लेवें। इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथकर दिनमें ३-४ बार शहद मिलाकर उदरवातसह पिलाते रहनेसे अन्त्रप्रदाह, व्रण, आमशूल, रक्तस्राव और अतिसार दूर हो जाता है। यह सब प्रकारके अतिसारपर हितावह है।

(६) बिल्वादि क्वाथ—बेलगिरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, खस और अतीस, इन ५ औषधियोंको मिलाकर क्वाथकर पिलानेसे आमसहित पित्तातिसारका नाश होता है।

(७) जसदभस्म चौथाई रत्ती और मिश्री ३-३ रत्ती मिलाकर दिनमें ४-६ बार देनेसे आमाशय अन्त्रप्रदाह दूर होकर वमन

और दस्त दूर हो जाते हैं। दुर्गन्ध दूर हो जानेके पश्चात् इस औषधिका प्रयोग किया जाता है।

(८) प्रियंगु, रसौंत और नागरमोथेका चूर्ण शहद और चावलोंके धोवनके साथ देनेसे अतिसार, वमन और तृषाका निवारण हो जाता है।

(९) कपूर और हींग समभाग मिलानेसे गीले गोंदके समान चिपचिपापन आ जाता है। फिर उसमेंसे १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना सोंठके चूर्णमें डालते जायें। इसमेंसे १-१ गोली १-१ घण्टेपर ३-४ बार देनेसे वमन और दस्त दूर होते हैं। यह प्रयोग कीटाणुनाशक, दुर्गन्धहर, अग्निप्रदीपक, उष्णवातहर और ग्राही है। इसका उपयोग निर्भयतापूर्वक हो सकता है।

(१०) धान्यपञ्चक क्वाथ—धनियां, सोंठ, नागरमोथा, खस और बेलगिरी, इन ५ औषधियोंका क्वाथकर पिलानेसे आमशूल और रुके हुये मलका निवारण होता है। दोषपचन होकर अग्नि प्रदीप्त होती है। ज्वरविष जल जाता है। उदरमेंसे दुर्गन्ध दूर होती है। फिर थोड़ा-थोड़ा दस्त होना बन्द हो जाता है।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय गंगाधर चूर्ण, दाडिमाष्टक चूर्ण तालीसादि चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण, आनन्दभैरव रस, सर्वाङ्गसुन्दर रस, कनकसुन्दर रस, कुटजारिष्ट और उशीरादि क्वाथ आदि अनेक औषधियाँ व्यवहृत होती हैं।

(७) मलावरोध (Constipation)—यह उपद्रव बृहदन्त्रकी निर्बलता या उसके कार्यमें प्रतिबन्ध होने पर यदि उसमें दूषितमल संग्रहीत होगा, तो उसमेंसे विषका शोषण रक्तमें होता रहेगा। फिर ज्वरकी निवृत्ति न होकर वह अधिक दृढ बनता जायगा। अतः मलशुद्धि

हुई है या नहीं, इस बातका सर्वदा लक्ष्य देते रहना चाहिए। कभी-कभी अन्त्रमें मल संगृहीत होता रहता है और उसमेंसे थोड़ा थोड़ा गुदनलिकामें आ जाता है। फिर उसे पिचकारीसे निकाल देनेपर परिचारक और नये चिकित्सकको कभी कभी उदरशुद्धि हो जानेका भ्रम हो जाता है। यथार्थमें उदर कठोर तो नहीं है, रोगीके उदरमें भारीपन तो नहीं भासता, यह देखते रहना चाहिए। ऐसी दशा में शाक, फल आदिका सेवन कराना चाहिये, जिससे उदरशुद्धिमें सहायता मिलती रहे। अन्त्रमें मल शुष्क हो गया हो, तो उदरपर तैलवाला हाथ लगा बाजरे या अन्य अन्नकी एक ओर सेकी हुई रोटी बांधते रहें, इससे ४-६ दिनतक रात्रिको बांधते रहनेसे अन्त्रमें चिपका हुआ कठोर मल शिथिल होकर खुल जायगा। कभी कभी मल गुदनलिकामें अति कठोर बनकर मार्गको रोक देता है, तब तैल चढ़ा, फिर अंगुलि डाल, तोड़ तोड़कर निकालना पड़ता है। इस तरह मल निकाल डालनेके पश्चात् बृहदन्त्रमें रहे हुए मलको, एरण्ड तैलका विरेचन देकर निकाल डालना चाहिये। अथवा श्रीवाग्भट्टाचार्य कथित कुटकी, मुन्नका, त्रायमाण और त्रिफला मिलाकर क्वाथ करें। उसमें गुड़ मिलाकर पिला देनेसे मल, आम, सूक्ष्मकृमि, विष और कफादि जो भी विकार भरा हो, वह सब निकल जाता है। उदरमें कृमि प्रकोप हो, तो कृमिघ्न औषधि देकर कृमियोंको निकाल देना चाहिए। फिर निशोथ चूर्णको शहदसे देकर उदर शुद्ध कर लेना चाहिये।

मलावरोधको दूर करने के लिये आवश्यकतापर शास्त्रीय प्रयोग—ज्वरकेसरी, इच्छाभेदी रस, आरग्वधादि क्वाथ, नारायण चूर्ण, नाराच घृत, द्राक्षासव और कुमार्यासव आदिका उपयोग किया जाता है।

(८) मूत्रावरोध (Retension of urine)—सामान्यतः श्वसनक ज्वर, आमवातिक ज्वर, मधुरा, इन ज्वरोंमे शारीरिक उत्तापकी वृद्धि हो जानेपर मूत्रावरोध होता है। इनके अतिरिक्त ज्वरावस्थामें

शराब, क्विनाइन या सोमल आदि औषधियोंके अतियोगसे वृक्कके कार्यमें शिथिलता होना, वृक्कप्रदाह, भूतकालमें सुजाक आदि रोग हो जानेपर पुनः मूत्रमार्गमें प्रदाह हो जाना, उदरकृमिका प्रकोप, आक्षेप, हिस्टीरिया, सगर्भावस्था, मल या वायुके दबावसे मार्गावरोध होना आदि कारणोंसे मूत्रावरोध हो जाता है। इस उपद्रवका उपचार करनेके समय मूल कारणको दूर करनेका भी प्रयत्न करना चाहिये।

मल, वायुका दबाव हो तो उसे दूर करना चाहिये। उदरकृमि हो, तो उन्हें कृमिघ्न औषधि देकर दूर करना चाहिये। शराब, क्विनाइन या सोमल आदिका अतियोग हुआ हो, तो उसे भी छोड़ देना चाहिये। क्विनाइनका अतियोग होनेपर निद्रानाश, रक्तदबाववृद्धि, घबराहट, मूत्रावरोध और मूत्रदाह उत्पन्न होते हैं। वृक्कप्रदाह अधिक हो, तो मूत्र विरेचन नहीं दिया जाता। स्वेद द्वारा रक्तमेंसे विष बाहर निकाल दिया जाता है और मूत्राशयमें भरा हुआ मूत्र रबरकी मूत्र-नलिका (Catheter) द्वारा निकाल लिया जाता है। फिर आवश्यकता अनुसार सौम्य प्रदाहशामक, मूत्रजनन औषधि दे सकते हैं।

सरल परीक्षित मूत्रल औषधियाँ:—

(१) खसकी जड़, गोखरू, जवासा, काली अनन्तमूल, खीरेके बीजोंकी गिरी, ककड़ीके बीजोंकी गिरी, शीतलमिर्च और बरने को छाल, इन सबको समभाग मिलाकर उसमेंसे १ तोला लेवें। इन सबको चटनीकी तरह पीस, गरम करके शीतल किये हुये १०—२० तोले जलमें मिला-छानकर पिला देवें। आवश्यकतापर १-१ घण्टेके अन्तरपर २-३ बार दे सकते हैं। इससे मूत्रावरोध और मूत्रदाह दूर होकर पेशाब साफ आ जाता है। फिर ज्वर भी कम हो जाता है।

(२) गोखरू २ तोलेका क्वाथकर, उसमें २ रत्ती शिलाजीत या

यवाक्षार मिलाकर पिलानेसे या काली अनन्तमूलकी चाय पिलानेसे उष्णता शमन होकर मूत्र साफ आ जाता है।

(३) सोरा और नौसादर २-२ माशे २०-२० तोले जलमें डाल फिर उसमें कपड़ा भिगोकर नाभिके नीचे बस्ति स्थानपर रखनेसे थोड़े ही समयमें मलशुद्धि हो जाती है।

(४) सुजाक हेतु हो, तो चन्दनका तैल २ बूँद या चन्दनका अर्क देनेसे प्रदाह शान्त होकर पेशाब साफ आ जायगा।

(५) आमवातके हेतुसे मूत्रावरोध हो, तब प्रस्वेद अधिक आता है, स्वेदमें एक प्रकारकी बास आती है। ऐसा होनेपर यवक्षार, केलेकाक्षार, तृणपंचमूलके क्वाथके साथ सोरा देना चाहिये।

(६) हिक्का (Hiccup)—यह उपद्रव बहुधा रक्तमें विष-वृद्धि होनेपर आक्षेपात्मक उपस्थित होता है। जब शराब, तमाखू विष औषधि विष, मूत्रविष अथवा अन्य अन्तरोत्पन्न विषका रक्तमें संग्रह होने-पर महाप्राचीरा पेशी (Diaphragm) जो उरोगुहा और उदरगुहाके बीच रहा है, उसे प्रभावित करता हैं तब हिक्का उत्पन्न होती है। कभी अपचन के हेतुसे भी आमाशयप्रदाह होकरके हिक्का उत्पन्न हो जाती है। यह उपद्रव अति घातक है अतः इसका तत्काल उपचार करना चाहिये।

परीक्षित प्रयोग :—

(१) हींग ३ माशे, उड़द १ तोला, कालीमिर्च ६ माशे और मक्खन १ तोला मिला निर्धूम अग्निपर डाल, ऊपर नली या चिलम रखकर धुआँ पिलानेसे हिक्का तुरन्त शान्त हो जाती है।

(२) नारियलकी दाढ़ीको चिलममें रखकर धुआँ पिलानेसे हिक्का शमन हो जाती है

(३) मैनसिल १ रत्ती और काली मिर्च ४ रत्ती, अदरखका रस २ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चटानेसे हिक्का निवृत्त हो जाती है।

(४) बिजौरेका रस या नीबूका रस २ से ४ तोले, शहद ६ माशे और कालानमक २ रत्ती मिलाकर पिलानेसे हिचकी बन्द हो जाती है।

(५) मोरके पंखके चंदवोंकी भस्म और पीपलका चूर्ण २-२ रत्ती मिलाकर शहदके साथ १-१ घण्टेपर २-३ बार देनेसे रक्तमें बढ़ा हुआ गैस दूर होकर हिक्का शान्त हो जाती है

(६) राईके ६ माशे चूर्णको, ४० तोले गरम करके शीतल किये हुये जलमें मिलाकर २० मिनट रख देवें फिर मसलकर छान लेवें। उसमेंसे ५-५ तोले जल १-१ घण्टेपर पिलानेसे आमाशय प्रदाह दूरहोकर हिक्का दूर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रयोग हिक्कान्तक रस, सूतशेखर रस, कनकासव, आरोग्यवर्द्धिनी और हरताल रसायन (माणिक्य रस) आदिका व्यवहार होता है।

(१०) कास (Cough)—यह उपद्रव श्वसनक संस्थामें प्रदाह होने, शुष्कता आने और कफोत्पत्ति होनेपर होता है। यदि गरम औषधियोंके अतियोगसे या शुष्कताके प्रकोपसे शुष्क कास आई हो, तो उष्ण प्रयोग बन्द करना चाहिये, एवं सूतशेखर, प्रवाल पिष्टी, सितोपलादि चूर्ण जैसी सौम्य वातपित्तशामक औषधियोंका आश्रय लेना चाहिये। यदि कफोत्पत्ति हो गई हो तो कफको बाहर निकालनेवाली उत्तेजक, कफघ्न औषधियाँ शृङ्गभस्म, अभ्रक भस्म, रससिन्दूर और द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ आदिका प्रयोग किया जाता है।

वातिक शुष्क कास हो, तो कसैले, शुष्क और शीतल पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। पैतिक शुष्क कास हो तो, चरपरे पदार्थ और

अधिक नमक नहीं लेना चाहिये । शराब तमाखू आदि हेतु हों, तो इनका व्यसन छुड़ा देना चाहिये। कफादिक कास हो, तो कफवर्द्धक आहार। नहीं देना चाहिये ।

परीक्षित सरल प्रयोग :—

(१) गुड़ और कड़ुआ तैल ६-६ माशे मिलाकर सुबह शाम चटानेसे वातिक कास शमन होती हैं।

(२) बहेड़ेपर घी चुपड़, उसपर कपड़ मिट्टीकर फिर पुटपाककृतिसे मन्द अग्निके भीतर रखकर पका लेवें। फिर उसमेंसे १-१ टुकाड़ा मुँहमें रखकर चूसते रहनेसे सूखी खांसी दूर हो जाती है । बहेड़ा पकाने की सुविधा न हो तो, कच्चा बहेड़ा भी मुँहमें रखा जाता है

(३) बहेड़ा मुलहठी और अनारके छिलकेको ४-४ माशे मिला क्वाथ करें। फिर ६ माशे मिश्री मिलाकर सुबह शाम पिलाते रहनेसे सूखी खांसी मिट जाती हैं।

(४) कमलगट्टेकी गिरीमेंसे जीभी निकालकर ६-६ माशेको शहदमें मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे पैत्तिक शुष्क कास शमन हो जाती है।

(५) मुनक्का, आँवला, पिण्डखजूर, छोटी पीपल और कालीमिर्च को मिला, चटनीकी तरह पीस, घी मिलाकर चटातेरहनेसे कफानुबन्धसहित पैत्तिक कासकी निवृत्ति हो जाती है।

(६) लिहसौड़े, मुनक्का और त्रिफला १-१ तोले (हरड़ादि ४-४ माशे) मिला क्वाथकर २ हिस्से करें। फिर सुबह शाम ६-६ माशे शहद मिश्री मिलाकर पिलाते रहनेसे ३-४ दिनमें कफ प्रकोपकी निवृत्ति होकर खाँसी शान्त हो जाती है।

(७) कफकी अधिकतावाले रोगीको पीपलका चूर्ण ४-४ रत्ती दिन-में ३ बार शहदके साथ देते रहनेसे पचनक्रिया सबल होती

है, कफ सरलतापूर्वक निकलता रहता है और फिर खांसीका कष्ट कम हो जाता है।

(८) आकके फूलोंकी कली और कालीमिर्च ५-५ तोले और कत्था १० तोले मिला जलमें आध आध रत्ती की गोलियां बना लेवें। इनमेंसे सुबह शाम १ से २ गोली तक देते रहनेसे कफ कास निवृत्त हो जाती है।

(९) जुकामसहित कास हो, तो २० तोले दूधमें कालीमिर्चका चूर्ण १ माशा और १ तोला मिश्री मिला उबालें और गुनगुना रहनेपर पिला देवें। फिर कपड़ा ओढ़ाकर लेटा देनेसे प्रस्वेद आ जाता है। फिर ज्वर जुकाम और खांसीका बल कम हो जाता है।

(१०) हरिद्रादि चूर्ण—हल्दी १ तोला, सोडाबाई कार्ब ३ माशे और पीपरमेन्टका फूल १ माशा लेवें। पहिले हल्दी और सोडाको किञ्चित् जलके साथ मिलाकर खरल करें। फिर पीपरमेन्ट के फूल मिलावें। इसमें से २ रत्ती चूर्ण दिनमें २-३ बार नागरबेलके पानमें रखकर खिलानेसे कफ कासकी निवृति हो जाती है।

(११) अतिस्वेदस्राव (Hyperhidrosis) :—यह उपद्रव श्वसनकज्वर आदिमें ज्वरविषसे उपस्थित होता है। एवं एस्पिरीन आदि औषधियोंके हेतुसे भी अति पसीना उत्पन्न हो जाता है। आमवातिक ज्वर, मूत्र विषवृद्धिसहित ज्वर, श्वसनक ज्वर आदिमें जब रक्तमें विष अति बढ़ा हुआ हो, तब दुर्गन्धमय स्वेद (Bromidrosis) स्राव होता है, इस तरह अति पसीना निकलनेपर शरीर शीतल हो जाता है। शारीरिक उत्ताप और शारीरिक शक्तिका अति ह्रास हो जाता है। अतः इसका तुरन्त उपाय करना पड़ता है।

स्वेद्र हरल परीक्षित प्रयोग :—

(१) कुलथी या चनेको सेककर पीस लेवें, उसकी या चूल्हेकी जली हुई मिट्टीके चूर्णकी मालिश करनेसे पसीना बन्द हो जाता है।

(२) अजवायन और भाँगरेका क्वाथकर पिलानेसे अधिक पसीना आना रुक जाता है।

(३) बच, कायफल, कालाजीरा, चिरायता, हिंगुल, वच्छनाग १-१ तोला और कालीमिर्च ४ तोले तथा धतूरेके फलकी राख ८ तोले मिला लेवें। फिर इस भस्मसे मालिश करनेसे अधिक स्वेद और शीत, दोनों दूर होते हैं।

इनके अतिरिक्त हृदयके संरक्षणार्थ हृदयपौष्टिक औषधि—हेमगर्भ पोटली रस, जवाहरमोहरा, शराब, संचेतनी वटी आदि दी जाती हैं।

(१२) प्रलाप (Delirium)—यह उपद्रव अति प्रबल है। यह ज्वर विष बढ़ने और शारीरिक उत्तापकी वृद्धि होनेपर उपस्थित होती है। श्वसनक ज्वर, आमवातिक ज्वर, मधुरा, प्रलापक ज्वर, शीतला, ग्रन्थिक ज्वर और वातश्लैष्मिक ज्वर आदिमें इतर ज्वरोंकी उपेक्षा अधिक प्रतीत होता है। अंशुघातज ज्वर, विषमज्वर (घातक तृतीयक ज्वर), मसूरिका ज्वर आदिमें अपेक्षाकृत कम होता है।

पहिले बहुधा मस्तिष्कमें रक्तदबाव बढ़ता है और निद्रानाश होती है। क्वचित् बिना निद्रानाश अकस्मात् विषप्रकोपसे प्रलाप प्रारम्भ हो जाता है। कभी प्रबल प्रलाप होता है, कभी मंद मंद। इसका उपचार यदि तत्काल न किया जायगा तो रोगी की दशा भयावह हो जायगी।

यदि मलावरोध या मूत्रावरोध हो, तो प्रथम उसे दूर करना चाहिये। अन्यथा रक्तमें विषवृद्धि क्रमशः होती रहेगी और उपचार करने पर भी सफलता नहीं मिलेगी। इस उपद्रव पर विशेषतः शामक और विषहर

प्रयोग किये जाते हैं। निद्रा आ जानेपर बहुधा प्रलाप शान्त हो जाता है।

प्रलापशामक परीक्षित सरल प्रयोगः—

(१) हिंगुकर्पूर वटी—हींग, कपूर १-१ तोला, कस्तूरी १॥ माशा लेवें। हींग और कर्पूरको मिलानेपर रबड़ी सदृश प्रवाही बनेगा, उसमें कस्तूरी मिला (आवश्यकता हो, तो २-४ बूँद शहद मिला) २-२ रत्ती की गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली अदरखके रसके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देनेसे प्रलाप शान्त हो जाता है। बहुधा पहिली ही गोलीसे लाभ हो जाता है। फिर प्रलाप, हृदयकी धड़कन, आक्षेप; बैठना, भागना, मारना, दौड़ना आदि दूर हो जाते हैं।

(२) नाड़ी अतितेज हो, शारीरिक उत्ताप १०५° या अधिक बढ़ गया हो, नेत्रमें लाली अधिक हो, तो शिरपर शत्-धौत घृतका ढेला रखें। पिघलने पर उसे हटाकर दूसरा रखें। ऐसा करनेपर प्रलाप शमन हो जाता है। बर्फकी थैली शिरपर रखते हैं, उससे भी लाभ हो जाता है।

(३) पर्पटादि क्वाथ—पित्तपापड़ा, कायफल, कूठ, खस, लालचन्दन, नेत्रवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकड़ासिंगी और पीपल इन १० औषधियोंको क्वाथकर पिलानेसे पित्त कफात्मक विकार दूर हो जाते हैं। प्रलाप, कफप्रकोप, दाह, नेत्रमें लाली, व्याकुलता, निद्रानाश, ये सब दूर हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रयोग सूतशेखर (वातपित्त प्रकोपपर), बृहद् कस्तूरी भैरव, चन्द्रकला रस और तगरादि कषाय, अर्कादि क्वाथ,

देवदार्वादि क्वाथ, (प्रसूता के लिये) आदि व्यवहृत होते हैं। एवं आगे निद्रानाश पर लिखे हुये उपचार भी किये जाते हैं।

(१३) निद्रानाश (Insomnia)—यह उपद्रव प्रायः रक्तमें विषवृद्धि और मस्तिष्कमें रक्तदबाववृद्धि होनेपर उपस्थित होता है। क्विनाइन आदि उग्र औषधियोंका अतियोग होनेपर भी निद्रा निवृत्त हो जाती है। इस उपद्रवको शीघ्र दूर करना चाहिये, अन्यथा रोग प्रबल हो जायगा और फिर काबूमें नहीं आयगा। इसके लिए अञ्जन, मर्दन और औषध सेवन आदि निम्न उपचार किये जाते हैं।

निद्राप्रद परीक्षित सरल प्रयोगः—

(१) मुगलाई एरण्डके फलको घृतदीपकी बत्तीपर सेक, ऊपरसे छिल्का निकाल पीस, ३ रत्ती कस्तूरी मिला लेवें। उसमेंसे थोड़ा अञ्जन करनेसे प्रलाप शमन हो जाता है। और शान्त निद्रा आ जाती है।

(२) घी या एरण्ड तैलको कांसीकी थालीमें, कांसीकी कटोरीसे १०-२० मिनट घिसनेसे काला-सा बन जायगा। उसमेंसे थोड़ा अञ्जन करनेसे निद्रा आ जाती है।

(३) पैरोंके तलपर शामको कांसीकी कटोरीसे घीकी मालिश करनेपर रात्रिको शान्त निद्रा आ जाती है। इस तरह मस्तिष्क और कनपटी पर तैलकी मालिश करायी जाती है।

(४) भूनी भांगका चूर्ण शहदके साथ शामको खिलानेसे रात्रिको निद्रा आ जाती है।

यदि औषधियोंका अति योग हो, तो उसके विषकी शामक औषधिका सेवन कराया जाता है। तमाखू या गरम गरम चायका अधिक सेवन हो, तो उसे छुड़ा देना चाहिये। चाय गरम दे सकते हैं, पर अधिक गरम नहीं। रक्तमें विषवृद्धि हो, तो सूतशेखर, मुक्तापिष्ठी, प्रवालपिष्ठी आदि

शामक औषधियोंका सेवन कराया जाता है। मानसिक चिन्ता हो, तो मनको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करना चाहिये।

(१४) तन्द्रा (Drowsiness)—आमाशयमें आम और कफका प्रकोप बढ़ जानेके पश्चात् उसमेंसे विषका शोषण या अन्य प्रकारके विषका शोषण रक्तमें होता है और वातसंस्था विषसे प्रभावित होती है, अथवा ज्वर अधिक दिनोंतक रहनेसे शरीर अति निर्बल बन जाता है, तब इस उपद्रवकी उत्पत्ति होती है। तन्द्रावस्थामें नेत्र आधे बन्द रहते हैं; पुतलियां फिरती हैं; नेत्रस्राव होता रहता है और मुँह कुछ खुला रहता है। इसे हो सके उतना जल्दी दूर करना चाहिये। अन्यथा अशक्तिकी वृद्धि होती जायगी। इस उपद्रवमें उत्तेजनाप्रद और हृदय पौष्टिक औषधि दी जाती हैं।

तन्द्राहर परीक्षित सरल प्रयोग :—

(१) मैनसिल और बचको लहसुनके रसमें खरलकर, नेत्रमें अञ्जन करें। अथवा मैनसिल, पीपल और हरतालको पीसकर अञ्जन करें।

(२) लोहभस्म, गोरोचन, कालीमिर्च और सफेद लोधको जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे तन्द्रा दूर हो जाती है।

(३) सिरके आगेके हिस्सेके बाल कटवाकर अदरखके रसकी या हींगके जलकी पट्टी लगावें। जबतक नेत्रमें लाली न आ जाय और रोगीको चेतना न आवे तबतक पट्टी रखें।

(४) छोटीकटेली, गिलोय, पुष्करमूल, सोंठ और हरड़का क्वाथकर दिनमें तीन बार पिलावें।

(५) लहसुन, राई और सुहिंजनेके बीज, तीनोंको १०-१० तोले लें गोमूत्रमें खरलकर उसकी रोटी बनावें और तवेपर घी लगाकर एक ओर सेकें। मस्तिष्क परसे बालोंको दूर करे, फिर वहां घी चुपड़कर सुहाती सुहाती गरम रोटी बांध देवें। चेतना आ

जानेपर रोटीको खोल देवें। १ घण्टेमें चेतना न आवे तो पुनः दूसरी बार रोटी बांधें।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रयोग हेमगर्भपोटली रस, पूर्णचन्द्रोदय रस, मल्लचन्द्रोदय, संचेतनी वटी, त्रैलोक्यचिन्तामणि और अर्कादि क्वाथ आदि का उपयोग होता है।

(१५) दाह (Burning sensation)—यह उपद्रव अति कष्टकर है। इसकी उत्पत्ति पित्तप्रकोप, ज्वरविष या भूतकालके देहमें रहे हुये गुप्तरोग उपदंश, सुजाक, कुष्ठ, वातरक्त आदिसे धातुओंका क्षय होकर होती है। इस उपद्रवके साथ शिरदर्द, व्याकुलता, बाहरसे शीत लगना और भीतर सर्वाङ्गमें दाह होना, तृषा, आवाज बैठ जाना और अन्तर्वेदना आदि लक्षण भी प्रायः प्रतीत होते हैं।

यदि ज्वरके आरम्भमें पित्त प्रकोपसे दाहकी उत्पत्ति हुई हो, तो वह शीतवीर्य औषधियोंका सेवन करानेसे ही शान्तहो जाती है और वह अधिक दुःखदायी नहीं है। जो दाह रस रक्तादि धातुओंका क्षय होकर ज्वर विषसे उत्पन्न होती है, उसके लिये अधिक सम्हालना पड़ता है। हृदयका रक्षण करते हुये अन्तर्दाह और बाह्य शीतका उपचार करना चाहिये। अन्य रोगोंके कीटाणु या विषसे दाह हो, तो उसका दमन सामान्यरूपसे हो सकता है। शराब, गांजा या तमाखू आदिमेंसे किसीका अधिक सेवन होनेसे दाह हुई हो, तो उसकी शामक चिकित्सा करनी चाहिये।

दाहहर परीक्षित सरल प्रयोग :—

(१) कुकरौंधेका रस या बकरीके ताजे दूधकी मालिश करानेसे पित्तप्रकोपज दाह और शारीरिक उत्तापका ह्रास हो जाता है। अथवा बेर या नीमके कोमल पानोंको नीबूके रसमें पीसकर शरीर पर मालिश करनेसे दाह शमन हो जाती है।

(२) काली गूलर (काकादुम्बर) और मुन्नकाका क्वाथकर पिलानेसे अन्तर्दाह पित्तप्रकोप और कण्ठशोष दूर होता है।

(३) सन्तरेका रस अथवा नीबू का शर्बत या गुलाबका शर्बत जलमें मिलाकर पिलानेसे पित्त ज्वरजन्य दाहकी निवृत्ति होती है।

(४) कांजीमें वस्त्र भिगो, निचोड़कर तमाम शरीरपर लपेट देनेसे बढ़े हुये नये ज्वरमें दाह और व्याकुलता दूर हो जाती है।

(५) रस, रक्त क्षय होनेके पश्चात् अन्तर्दाह हुई हो, तो सूतशेखरका सेवन गिलोय, खस, नागरमोथा और सोंठके क्वाथके साथ कराना चाहिये।

(६) जयमंगलरस और ६४ प्रहरी पीपल शहद्के साथ देकर ऊपर गिलोयका क्वाथ दिनमें २ बार पिलाते रहें।

(७) प्रवालपिष्टी, पीपल और गिलोय सत्वको शहदके साथ दिनमें ३ बार देते रहनेसे लीन ज्वरविष जल जाता है, हृदय और मस्तिष्कका रक्षण होता है तथा शनैः शनैः शक्ति बढ़ती जाती है।

६: परिचारिका को सूचना।

(१) रोगीके बिस्तर, वस्त्र, स्थान, जलपात्र तथा मल-मूत्रके पात्र आदिकी स्वच्छता और विशुद्धतापर पूर्ण लक्ष्य देना चाहिये। शरीरकी स्वच्छता का भी पूरा पूरा ख्याल रखें।

(२) रोगी को पथ्य भोजन और जलपान नियमित समयपर योग्य परिमाणमें ही देना चाहिये। रोगी का आग्रह होनेपर भी अपथ्य पदार्थ न दें। एवं पथ्य भोजन भी अधिक न दें।*

---

* गाँवोंकी अशिक्षित समाजमें इस प्रकारके भ्रमात्मक विचार पाये जाते हैं कि "यह काया तो अन्न की है।" अतः जहाँ लंघनकी परमावश्यकता होती है वहाँ भी रोगीको कुछ न कुछ खिलाया करते हैं। परन्तु उनको समझना चाहिये कि वे इस प्रकारकी भूलके कारण

(३) इसके साथ ही परिचारिकाको यह भी अच्छी प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि रोगीके लिये पथ्यपालन भी औषधके समान ही नितान्त जरूरी है। सेवन किया हुआ अपथ्य, जो निश्चय ही औषध परिमाणसे ज्यादा होता है, वह १–२ रत्ती हिततम औषधको अपना सुप्रभाव क्योंकर करने देगा ?

(४) जहाँतक हो सके आहार पतला दें। रोगीको पर्याप्त जल और पेय दें। कभी कभी कण्ठ जकड़नेपर रोगी जल पीनेमें भी उकताता है। तरुण और जीर्ण ज्वरके आहारमें महत् अन्तर होता है।

(५) रोगीके कमरेमें रात्रिको अति ज्यादा प्रकाशवाली विजली-की बत्ती या वायुको दूषित करनेवाली रोशनी न रक्खें और दीवारपर दर्पण भी न रक्खें। यदि दर्पण हो, तो उसे वस्त्रसे ढक देना चाहिये। कमरे में दुर्गन्ध न हो एवं मक्खियों का उपद्रव न हो, यह भी सम्हालते रहें।

(६) रोगी का पलंग दीवार को लगा हुआ न होना चाहिये, एवं बिस्तर कोमल होना चाहिये।

(७) रोगीके कमरेमें ताजे सुगन्धित पुष्प रखें और रोगोत्पादक कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये अगर बत्ती या दूसरी धूप सुबह शाम जलाते रहें।

(८) सेवा करनेवालोंको चाहिये कि रोगीको प्रसन्न रखनेका यत्न करते रहें। रोगकी व्यथाके हेतुसे रोगी नाराज़ हो जाय या क्रोध करे, फिर भी उसे शान्तिपूर्वक उत्तर देकर शान्त करें। रोगी को जिसतरह मानसिक प्रसन्नता बनी रहे और अधिक विश्रान्ति मिले, उसकी उसी तरह व्यवस्था करें।

रोगीके शरीरकी रोगसे मुकाबला करनेकी स्वाभाविक शक्तिको क्षीण करते और रोगके दूर करनेमें उसका सदुपयोग न होने देकर बलात्कारसे उसका अपव्यय कर रहे हैं, जिसका परिणाम भयावह हो सकता है।

(९) ज्वर बढना, घटना, श्वसनक्रिया, नाडीगति, दस्त और पेशाब आदि पर चिकित्सककी आज्ञानुसार ध्यान देते रहें।

(१०) आतुरालयके रक्षा विभाग (Ward) की परिचारिका-को चाहिये कि सम्बन्धी वर्ग मिलनेको आवें; उनको तब मिलने देवें, जब कि रोगी जागता हो, सम्बन्धीके कहनेसे रोगीको निद्रामें न जगावें। सम्बन्धी वर्गको चाहिये कि रोगीके कमरेमें अधिक समय न बैठें, अधिक वार्तालाप करके रोगीको कष्ट न देवें और रोगीको धैर्य देवें।

(११) अनेक संक्रामक रोग जैसे—रोमान्तिका, सीतला आदिमें ज्वर ही मुख्य आरम्भिक लक्षण होता है। ऐसी अवस्थामें आरम्भमें ही रोगका निदान कर सकना कठिन होता है, अतः असावधानी से घोर परिणाम निकल सकता है। अतः परिचारिकाको इनकी परिचर्याका परिचय जरूर होना चाहिये, ताकि रोगका दूसरोंमें और स्वयं परिचारिकामें संक्रमण न होने पावे।

(१२) संक्रामक रोगमें परिचारिकाको चाहिये कि कहीं अपनी प्रकृति न बिगड़ जाय और स्वयं उस पर ही कहीं कीटाणुओंका आक्रमण न हो जाय, इस बातका पूरा ध्यान रखे अतः अपने शरीर, वस्त्र, भोजन आदिकी स्वच्छताका पूरा ख्याल रखे।

(१३) परिचारिकाको भूलकर भी रोगीगृहमें किसी वस्तुका सेवन करके मृत्युको निमन्त्रण नहीं देना चाहिये।

(१४) रोगीके बिस्तरको रोज १-२ घण्टा धूपमें डाल देवें। मल, मूत्र और वमनको तुरन्त बाहर दूर भेजकर जमीनमें गड़वा देवें। कफके पात्रको खुला न रखे और पात्रमें थोड़ा मिट्टीका तैल डाल दे, ताकि मक्खियोंका त्रास न हो।

(१५) रोगीको पूर्ण विश्रान्ति मिले, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। ज्वरावस्थामें किञ्चित् मात्र भी श्रम रोगीके लिये भारी पड़ता है। अतः

मल मूत्र त्यागका भी शय्याके पास ही समुचित प्रबन्ध कर लिया जाय, तो सर्वश्रेष्ठ है ।

(१६) रोगीगृहके दरवाजे और खिड़कियां खुले रखें । इस बातका पूर्ण ख्याल रखें कि रोगीगृहमें विशुद्ध वायुका संचार अबाधरूपसे होता रहे । परन्तु रोगीको वायु सीधी आकर न लगने पावे ।

(१७) रोगीगृहको झाड़ते समय धूली न उड़ने देवें । सब ओर जन्तुघ्न धावनसे भिगोये वस्त्रसे धूलीको पोंछ लें ।

(१८) रोगी अधिक दिनोंसे बिमार रहा हो, तो गरम जलसे स्पंज या तौलिया भिगोकर तमाम शरीरको पोंछकर साफ करते रहें । ज्वरावस्था हो, तो जल मिले कोलन वाटर या अजवायनके क्वाथसे शरीरको पोंछना चाहिये ।

(१९) दीर्घकाल तक रोग रह जानेपर रोगी शय्यावश हो जाता है । उस अवस्थामें पीठ आदिपर शय्याव्रण न हो, यह सम्हालना चाहिये । जब बिछौनेका दबाव हड्डीके उभारपर पड़े तथा साथ साथ त्वचा और मांसमें रक्ताभिसरण क्रिया बन्द हो, तब वह भाग भरता है, फिर व्रण पैदा होता है । त्वचा सतत गीली रहे, तो वहां सड़ान्ध होकर व्रण हो जाता है । रोगी बेहोश रहे, असहाय स्थितिवाला हो, मूत्र सतत बहता रहे, कीटाणु प्रकोप तीव्र हो और रोगी अति कृश हो तो व्रण जल्दी हो जाता है ।

शय्याव्रण न हो जावे इसलिये दिनमें २-३ बार (निमोनियामें २-२ घण्टेपर) रोगीके दुखनेवाले भागका स्थान बदल देवें । फिर उस भागको तैल या साबुन वाला हाथ लगाकर नरम करें और उसपर अंगुलियोंसे मालिश करें, फिर तैल, स्पिरिट, सोहागेका फूला या बोरिक एसिड लगावें और वह भाग नीचे दबा रहे उस तरह रक्खें, तब वहांपर रूईकी गद्दी बांधें या वायु भरा हुआ बिछौना रखें अथवा रबरका चक्र रखें ।

कदाच शय्याव्रण हो गया हो तो चिकित्सककी आज्ञानुसार व्यवस्था करें। मृत भागको निकालनेके लिये कीटाणुनाशक सेक करें या कोयलेके चूर्णकी पुल्टिस बांधें, फिर त्रिफला क्वाथसे धोकर जात्यादि घृतकी पट्टी, वेसलीन, बोरिक एसिड या अन्य त्वचारक्षक औषधि लगाते रहें।

(२०) ज्वर जीर्ण हो जानेपर रोगी कृश हो जाते हैं, उनमेंसे कितनों ही को मलावरोध रहता है, उनको गेहूँके मोटे आटेकी रोटी, हलका भोजन, ताजे पान और फूलोंका शाक, अञ्जीर, मुनक्का, सन्तरा, मोसम्बी, सेब आदि फल और गरम करके ठण्डा किया हुआ गोदुग्ध आदि पथ्य भोजन प्रकृति, देहबल और ऋतुका विचार करके देवें। घी पचन हो उतना देवें। यकृत् अधिक निर्बल हो जानेसे दस्तका रंग सफेद हो, तो घी नहीं देना चाहिये। अच्छा पीला रंग हो, तो घी देना हितावह है। गरम गरम चाय, मैदेके पदार्थ, बेसनकी मिठाई, असमयपर भोजन, पहिलेका भोजन पचनेके पहिले ही दूसरी बार भोजन देना, ये सब हानिकर हैं।

(२१) पतले दस्त (अतिसार) हों तो गोदुग्धके स्थानपर बकरी का दूध देवें। फलोंमें अनार, सेब हितकारक हैं। भोजनमें खिचड़ी, पेया, मण्ड, यवागू, भात, विलेपी, मुद्गयूष आदि ग्राही अन्न देवें।

(२२) निराम ज्वरमें देने योग्य प्रकार:—

अ. पेया—लाल सांठी चावल ४ तोलेको ५६ तोले जलमें मिलाकर सिद्ध करें। चावल गलकर मिल जानेपर जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी और सैंधानमक आदि मसाला इच्छानुरूप मिला लेवें। यह पेया पिलाई जाती है। यह हल्की, ग्राही, स्वेदल, धातुपोषक, आमनाशक, रुचिकर अग्नि प्रदीपक है। वायु और मलको अनुलोम करती है।

आ. मण्ड—लाल शाल चावलोंको १४ गुने जलमें मिलाकर सिद्ध करें। चावल गल जानेपर ऊपरसे मण्ड (पतले प्रवाही जल) को नितार लेवें। फिर उसमें अनारदानेका रस, धनियाँ, जीरा, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, हल्दी और सैंधानमक आदि मसाला आवश्यकतानुसार मिला लेवें। यह मण्ड, दीपन, पाचन, ग्राही, हल्का, शीतल, धातुपोषक, तृप्तिकर और बलदायक है। पित्त, कफ और श्रमको दूर करता है। यह पेयाकी अपेक्षा अति हल्का होता है।

इ. यवागू—चांवलोंको ६ गुने जलमें सिद्ध करें। चावल गलकर जलमें मिल जाना चाहिये। फिर धनियां, जीरा आदि मसाला मिलाकर रोगीको खिलावें। यह यवागू हलकी, दीपन, तृषाहर वस्तिशोधक तथा श्रम और ग्लानिको दूर करती एवं वात, मूत्र और मलका अनुलोमन करती है।

कफप्रधान ज्वर, मदात्ययपीड़ित, पित्त कफकी अधिकता या ऊर्ध्व रक्तपित्त भी हो, तो यवागू न दें। शराबका व्यसन हो, तो भी यवागू न देवें एवं ग्रीष्म ऋतुमें भी यवागूका उपयोग नहीं करना चाहिये।

ई. भात—शालि चावलोंको ५ गुने जलमें पकावें। चावल सिद्ध हो जानेपर ऊपरसे मण्डको अलग निकाल लेवें, यह भात हलका, अग्नि प्रदीपक, पथ्य, तृप्तिकर और मूत्रल है।

उ. विलेपी—शालि चावलको ४ गुने पानीमें पकावें, चावल जलमें गलकर बिल्कुल मिल जाना चाहिये, यह विलेपी दीपन, बलदायक, हृदयको हितकर, मलको बांधनेवाली, लघु, तृप्तिकर और तृषाशामक है। दुर्बल, स्नेहपान करनेवाले तथा जीर्णज्वर, नेत्ररोगी और व्रण रोगीके लिये हितकर है।

ऊ. मुद्गयूष—८ तोले मूँगको उबलते हुए १२८ तोले जलमें डालें। जब मूँग बिल्कुल गल जाय और जल चतुर्थांश

कम हो जाय, तब चूल्हेपरसे उतार लेवें, फिर मसलकर जलको छान लेवें, उसमें अनारदानेका रस ४ तोले और सेंधानमक, धनियां, जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हल्दी आदि आवश्यकतानुसार मिला लेवें। यकृत अच्छा कार्य करता हो, तो यूषको जीरा मिलाकर घीका छोंक भी देवें। यह यूष कफ पित्त नाशक, लघु, दीपन, शीतल, पिपासाहर और दाहशामक है तथा निर्बलोंके लिए हितकर है। यह जीर्णज्वर, व्रणरोगी, कण्ठविकारसे पीड़ित और नेत्र रोगीके लिये व्यवहृत होता है। मलावरोध रहता हो, तो इसमें आंवला मिला लिया जाता है, इससे भेदन, पित्त, वातशामक और मेदोहर बनता है।

(२३) मूत्रकी प्रतिक्रिया अम्ल हो, खट्टी डकार आती रहती हो, मुखपाक रहता हो, भोजन करनेपर छातीमें जलन हो जाती हो, तो भात, मट्ठा, तेज खटाई, गरम मसाला और भारी भोजनका त्याग कराना चाहिये। मूत्रपिण्डोंमें प्रदाह हो, तो भी चावल, कुलथी, शराब, हींग, दही आदिका सेवन नहीं कराना चाहिये।

(२४) रोगीको हलवाईकी मिठाई, बिगड़े हुए फल, होटलोंका भोजन, मक्खी या चींटी गिरकर खराब हुआ भोजन, बासी भोजन, दुर्गन्धमय भोजन, बेस्वादु भोजन आदि कभी नहीं देने चाहियें, एवं अपवित्र बर्तन या बिना कलईवाले पीतलके बर्तनमें रहा हुआ भोजन या खुला हुआ भोजन भी उपयोगमें नहीं लेना चाहिये।

(२५) संक्रामक रोगसे पीड़ितोंके स्पर्शवाला या उस कमरेमें रखा हुआ भोजन दूसरोंको न खिलावें और स्वयं भी न खायें।

(२६) ज्वरपीड़ितोंको अधिक पुस्तक न पढ़ने देवें या अधिक मानसिक श्रम न करने देवें। खुली वायुमें बाहर न जाने देवें। रात्रिको जागरण न करने देवें। मानसिक चिन्ता हो, तो उसे भुलानेका प्रयत्न करें।

(२७) **बालकोंकी औषधमात्रा**—बालकोंकी आयु जितने वर्षकी हो उस संख्यामें १२ मिलाकर फिर आयुके वर्षसे भाग करें। जैसे १ बालककी आयु ४ वर्षकी है तो ४+१२=१६ होता है, उसे ४ से भाग करनेपर १/४ होता है। ३ वर्षकी आयु है तो ३+१२=१५ को ३ से भाग करनेपर १/५ होता है। इस नियमानुसार बड़े मनुष्यके लिये जितनी मात्रा दी जाय, उसकी १/४ मात्रा चार वर्षके बच्चेको और १/५ तीन वर्षके बच्चेको देनी चाहिये।

आयु	मात्राका हिस्सा	आयु	मात्राका हिस्सा
३ मास	१/१६	४ वर्ष	१/४
६ मास	१/२४	८ वर्ष	१/३
१२ मास	१/१२	१२ वर्ष	१/२
२ वर्ष	१/७	१६ वर्ष	३/३
३ वर्ष	१/५	६० वर्ष पूर्ण, फिर पुनः कम करें	

रोगीकी शक्ति जितनी अधिक क्षीण हुई हो और रोग जितना पुराना हो, उतनी ही मात्रा कम करनी चाहिए। अन्यथा हितकर औषधिका भी अतियोग हो जायगा।

(२८) **पिटिकादर्शन और विषशामनकाल**—अनेक संक्रामक रोगोंमें कीटाणुओंके प्रकोपके हेतुसे सारे शरीरपर पिटकाएँ निकल आती हैं। वे रोगोत्पत्तिके पश्चात् कब निकलती है, यह जाननेपर रोगबल विदित हो जाता है। एवं रोग शमन हो जानेके पश्चात् उसका विष शमन कब होता है; यह विदित हो जानेपर कुटुम्बी, सम्बन्धी या परिचितोंको उस रोगका विष न लग जाय, यह रोगी और परिचारिका सम्हाल सकते हैं।

रोग	पिटिकादर्शन	विषशामनकाल
मधुरा	दूसरा सप्ताह	४-६ सप्ताह बाद।
वातश्लैष्मिक ज्वर	×	२ सप्ताह बाद।

शीतला	तीसरे दिन	दानेकी त्वचा निकल जाय तब लगभग ३ से ८ सप्ताह तक।
मोतिया	पहिले दिन	२ से ४ सप्ताह।
कण्ठरोहिणी	×	कण्ठ खुला रहनेके पश्चात् २१ दिन

७. आयुर्वेदके मूलतत्त्व-त्रिदोष

विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥

जिस तरह चन्द्र, सूर्य और वायु क्रमशः संग्रह, पृथक्करण और उत्सर्जनक्रियाद्वारा जगत्को धारण करते हैं, उसी तरह कफ, पित्त और वात क्रमशः संग्रह, पचन और वियोजन क्रियाद्वारा इस देहको धारण करते हैं।

वात, पित्त, कफ अर्थात् त्रिदोष शारीरिक सर्व क्रियाओंके प्रवर्तक और शरीरके प्रत्येक घटकमें व्यापक द्रव्य हैं। वे अति सूक्ष्मतम अणुरूप हैं। अतः अन्य स्थूल द्रव्योंके समान वात, पित्त, कफ देखनेमें नहीं आते। ये उनके कार्यपरसे विदित होते हैं।

संसारमें अवस्थित दृश्य और अदृश्य, सेन्द्रिय और निरिन्द्रिय सर्व कार्य द्रव्योंके भीतर अहर्निश परिवर्तित होते रहते हैं। यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती रहती है कि किसी किसी यन्त्र विशेषकी सहायतासे भी विदित नहीं हो सकती, फिर भी होती रहती है। इसका अनुभव सब पशुओंमें होता रहता है। जैसे एक कपड़ा नया लाकर पेटीमें बन्द किया। १०—२० वर्षके पश्चात् देखते हैं तो विदित होता है कि वह सरलतासे फट जाता है। ऐसा क्यों हुआ क्या, सुदृढ़ तन्तु एक दिनमें बलहीन हो गये होंगे? अथवा, एक मकान बनवाया १००—२०० वर्षोंके पश्चात् उसकी दीवारका चूना सरलतासे निकलने लग जाता है, उसकी

यह अपक्षयात्मक क्रिया निरन्तर होती रहती होगी, यह अनुमान से जाना जा सकता है। इसी तरह, एक बच्चा कुछ वर्षमें युवा बन जाता है फिर वृद्ध होता है। उसके शरीरके प्रत्येक कोषमें वर्धन और अपक्षय होनेकी क्रिया (चयापचय Metabolism) सर्वदा होती रहती है। बाल्यावस्थामें वर्द्धन क्रिया सबल रहती और वृद्धावस्थामें अपक्षयात्मक क्रिया सबल रहती है; इस नियमानुसार शरीर बढ़ता और फिर बलक्षय होकर नष्ट हो जाता है। पर इस तरह ये सब क्रिया अनुभूत होने पर भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकती।

वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंकी क्रिया भिन्न भिन्न प्रकारकी है। वातका कार्य विक्षेप-फेंकना अथवा वियोजन करनेका है जो दूषित अणुको स्थानसे बाहर निकालता है। पित्त अणुका आदान-पचन या सात्म्यकरण करता है। कफ रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिये विसर्ग-उत्पत्ति या संग्रह करता है। ये तीनों क्रियाएँ जब तक सम भावसे चलती रहती हैं तब तक स्वास्थ्य बना रहता है। शरीरमें होनेवाली चयापचय क्रिया समभावसे होती रहती है, तब तक शरीर स्वस्थ रहता है। जब अत्यधिक अपथ्य, आहार विहार या कीटाणुओंके प्रबल आक्रमणके हेतुसे पहिले इन वात, पित्त, कफात्मक सूक्ष्मतम घटकोंका साम्यभाव नष्ट होता है, तब विनाशक्रिया सबल बनती और रोगोत्पत्ति होती है। इस हेतुसे आचार्योंने "विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च" अर्थात् वात, पित्त, कफ दोष विकृत होनेपर देहको नष्ट करते और अविकृत रहनेपर देह-बलकी रक्षा करते हैं। जब अपथ्य सेवन होता है या कीटाणु-आक्रमण होता है तब, उसके बलकी अपेक्षा यदि घटकोंमें बल (जीवनीय शक्ति (Vitality) अधिक है तो वह उस विरोधी द्रव्य या कीटाणुओंको नष्ट कर डालती है। अतः शरीरके स्वास्थ्यका सारा आधार उन दोषोंपर ही है।

महर्षि आत्रेय कहते हैं कि आयुर्वेदका प्रयोजन तीनों धातुओंकी

समताका संरक्षण करना है। किन्तु जब किसी प्रबल कारणसे धातुओंकी क्रियामें विषमता आ जाती है, तब उस धातु वैषम्यके निवारणार्थ विश्रान्ति, शरीर शोधन क्रिया, लंघन और औषध सेवन आदिकी आवश्यकता रहती है। वात, पित्त, कफ ये तीनों साथमें रहते हैं। रोग होनेपर तीनोंकी क्रियामें वैगुण्य आजाता है। तथापि कभी वात की कमी, पित्तको और कभी कफ दोषकी क्रियामें अधिक क्षति, होती है। क्वचित् इन विकृत धातुओंको अति उत्तेजितकी जाती हैं, तब ये विपरीत या प्रबल वेगयुक्त हो जाती हैं, ऐसी अवस्थाको आशुकारी (Acute) कहते हैं और जब ये क्रिया मन्द वेगपूर्वक होती रहती हैं, तब उसे चिरकारी (Chronic) कहते हैं। इस हेतुसे रोगकी आशुकारी और चिरकारी, दो अवस्था हैं।

वातादि धातुओंका साम्य नष्ट होनेपर क्षय, वृद्धि या प्रकोप होता है। इन तीनों स्थितिमें भिन्न भिन्न लक्षण पैदा होते हैं। इन लक्षणोंको दूर करनेवाली चिकित्सा करनेपर चिकित्सकोंको यश मिलता है। अतः इनके पृथक् पृथक् लक्षण, विकारहेतु और शामक उपाय संक्षेपमें लिखे जाते हैं।

अविकृत वायुके कार्य और गुण—वात ही केवल शरीरमें क्रियाशील है, जो अनेक प्रकारकी क्रियाद्वारा इस देहको धारण करता है। प्रत्येक अवयवको उत्साह देना, श्वासोच्छ्‌वास क्रिया कराना, शरीरके सब अवयवोंको अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति देना, मल मूत्र आदिका विसर्जन कराना, कफ और पित्त धातुकी सम्यक्‌गति कराना, तथा सब प्रकारके वेग उत्पन्न कराना आदि आदि, संक्षेपमें शरीरके छोटे-बड़े सब व्यापार वात ही कराता है।

वायुमें स्वाभाविक रूक्ष, हल्का, शीतल, खर, सूक्ष्म और चलगुण हैं। इनके अतिरिक्त यह योगवाही होनेसे पित्तके संयोगसे दाह

और कफके संयोगसे शीतकर हो जाता है। चरकमें इनके साथ ही इसमें विशद (फैलानेका गुण) गुणकी भी गणना की गई है।

अविकृत पित्तके कार्य और गुण—पित्त तैजस तत्व होनेसे आहारका पाक करता है तथा क्षुधा, तृषा और रुचिको उत्पन्न करना, कान्ति, नेत्रमें दर्शनशक्ति, बुद्धिमें विचारशक्ति, स्मरणशक्ति और शौर्य प्रदान करना, शरीरमें मृदुता एवं रक्तमें लाली लाना तथा अन्त्रके स्थूल पचनसे आरम्भ करके सूक्ष्म परमाणु पर्यन्त सब प्रकारके पोषक व्यापार करना, इत्यादि कार्य करता है।

पित्त स्वभावसे ही किंचित् स्नेहयुक्त, तीक्ष्ण (शीघ्रकारी), उष्ण, हल्का, खट्टा दुर्गन्धवाला, सर (ऊर्ध्वाधो-गमन करनेके स्वभावयुक्त) और द्रव (प्रवाही), इन गुणोंसे युक्त होता है।

अविकृत कफके कार्य व गुण—कफ स्थिरता, स्निग्धता, आर्द्रता, सन्धिबन्धन, मानसिक प्रसन्नता, शान्ति और सहन करनेकी शक्ति आदि प्रदान करता है।

कफ स्वभावसे स्निग्ध (स्नेहयुक्त), शीतल, गुरु, मन्द (चिरकारी), रेषायुक्त, चिपचिपा और स्थिर (व्याप्तिशील) गुणवाला होता है। *

वातक्षय लक्षण—सेवन किये हुए पोषक पदार्थोंसे वात धातुकी

---

* नूतन विज्ञानकी शैली से व्याख्या की जाय, तो वातवहा-नाड़ियोंमें वहन करनेवाले प्राणतत्व (विद्युत्) को वातधातु और उसके विकारसे उत्पन्न वायुको (अन्त्र आदि अवयवोंमें) दूषित वात, शरीरमें विभिन्न रासायनिक परिवर्तन करनेवाला आमाशय, यकृत् आदि अवयवोंमें उत्पन्न और विविध ग्रन्थियोंके रसको पित्त, ये रस विकृत होनेपर पित्त मल, तथा आमाशयकी श्लैष्मिक कलामेंसे उत्पन्न श्लेष्मा (रस) जो देहका पोषक है, उसे कफधातु तथा विकृत रसको कफ मल कह सकते हैं।

पुष्टि न होनेपर वातक्षयके कारण शारीरिक शिथिलता, शारीरिक चेष्टाका ह्रास और कफवृद्धि तथा कसैले, चरपरे, कडुवे, शीतल पदार्थ खानेकी इच्छा होना, ये लक्षण होते हैं।

वातवृद्धि लक्षण—कसैले, चरपरे, शुष्क पदार्थ आदिका सेवन अत्यधिक होनेपर व अन्य कारणोंसे वातवृद्धि हो जानेपर त्वचाकी श्यामता, शुष्कता, उत्साहनाश, कम्प, मलसंचय, भ्रम, स्वप्नमें उड़ना और स्निग्ध पदार्थ सेवनकी इच्छा आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

वातप्रकोप लक्षण—पित्त या कफ मलकी वृद्धि (रक्तमें अम्लताकी वृद्धि) अत्यधिक होनेपर वात उन्मार्गगामी बननेपर संधि स्थानोंकी शिथिलता, नाड़ियोंका खिंचाव, तीक्ष्ण दर्द, गात्रशून्यता, मल-मूत्रावरोध और मुँह कसैला हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

पित्तक्षय लक्षण—पाचकरस या धातु रूपान्तर करनेवाले रसकी उत्पत्तिका ह्रास होनेपर शारीरिक उष्णताका ह्रास, कान्ति घटना, अग्निमान्द्य और चरपरे, खट्टे और विदाही भोजनकी इच्छा होना, ये लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तवृद्धि लक्षण—चरपरे आदि पदार्थोंका अधिक सेवन आदि कारणोंसे पाचक रसोत्पत्ति बढ़ती है। फिर स्वेदवृद्धि, दाह, तृषावृद्धि, क्षुधवृद्धि, मल-मूत्रादिमें पीलापन, निद्राह्रास और शीतल पदार्थोंकी इच्छा आदि पित्तवृद्धिके लक्षण उपस्थित होते हैं।

पित्तप्रकोप लक्षण—अतिस्वेद, अतिशोष, व्याकुलता, खट्टी डकारें आना, दस्त पतले होना, निद्रानाश, अतिक्रोध उत्पन्न होना और मुँह कड़वा रहना आदि लक्षण होते हैं।

कफक्षय लक्षण—लङ्घन, भोजनका पाक योग्य न होना, विषप्रकोप, पित्तप्रकोप, मलवृद्धि आदि कारणोंसे कफ धातुकी उत्पत्तिका ह्रास होता है। फिर सँधियोंमेंसे शिथिलता, भ्रम, गात्र स्तब्धता, दाह, दिनमें

शयनकी इच्छा और मधुर, स्निग्ध, नमकीन और खट्टे पदार्थकी चाहना होती है।

कफवृद्धि लक्षण—अपथ्य या पौष्टिक भोजनके अत्यधिक सेवन और परिश्रम न होनेपर अग्निमान्द्य, मुँहमें जल आना, मुँह मीठा रहना, देह निस्तेज होना, शरीरमें भारीपन, शीतलता और निद्रावृद्धि आदि लक्षण पैदा होते हैं।

कफप्रकोप लक्षण—शीतलगना, मुँहसे लार गिरना, अरुचि, शरीर चिपचिपा होना, मलमें चिपचिपापन, निद्रावृद्धि, थकावट, विचार शक्तिका ह्रास और नमकीन पदार्थ खानेकी इच्छा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

वातविकृति हेतु—द्विदल धान्य रूक्ष, चरपरे और कसैले पदार्थोंका अधिक सेवन, उपवास, गरम गरम भोजन, अति परिश्रम, मल-मूत्र और अपानवायुका अवरोध, जागरण, देशप्रभाव और वर्षाऋतु आदि हैं।

पित्तविकृति हेतु—अति चरपरे, खट्टे और विदाही पदार्थोंका अतिशय सेवन, सूर्यके ताप या अग्निका अतिसेवन, शराब, तमाखू, गांजा, उपवास, भय, क्रोध, शोक, शरद ऋतु, शरद् ऋतुमें उत्पन्न अन्नका अतियोग और देशप्रभाव हैं।

कफविकृति हेतु—अभिष्यन्दि, मधुर, खट्टे और शीतल पदार्थोंका अतिसेवन, दिनमें शयन, धूम्रपान, शारीरिक श्रमका अभाव, वसन्त-ऋतु और देशप्रभाव हैं।

वातशामक उपाय—दीपन, पाचन औषधि, स्निग्ध, मधुर, अम्ल, पौष्टिक भोजन, गरम वस्त्र धारण और तैलमर्दन आदि वात प्रकोपको दूर करते हैं।

पित्तशामक उपाय—कसैली, मधुर और शीतवीर्य औषधिका विरेचन, शीतल वायुका सेवन, शीतल, मधुर, कड़ुवा और कसैला भोजन आदिसे पित्तशमन होता है।

कफशामक उपाय—तीक्ष्ण, वमन, चरपरी औषधिका विरेचन, चरपरा, कड़ुवा और कसैला भोजन, उपवास और परिश्रम आदि कफका ह्रास करते हैं।

जब ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं, तब कभी एक दोषप्रकोप, कभी दो दोषप्रकोप और कभी तीनों दोषोंके प्रकोपके लक्षण उपस्थित होते हैं। ऐसी अवस्थामें दोषप्रकोपपर लक्ष्य देकर चिकित्सा करनेसे सत्वर रोग शान्ति होती है। अनेक कीटाणुजन्य रोगोंमें कीटाणुप्रकोप मुख्य रहता है, तथापि उनमें वात, पित्त, कफके लक्षण भी प्रतीत होते हैं; ऐसी अवस्थामें केवल कीटाणुओंके नाशकी दृष्टिसे चिकित्सा करनेकी अपेक्षा वात आदि दोषोंकी विकृतिको देखकर उपचार करनेमें रोगीका अति हित होता है। अतः ज्वरावस्थामें प्रतीत होनेवाले वातादि दोषोंके प्रकोपके संक्षिप्त लक्षण यहाँ दिये जाते हैं।

वातज्वर—निद्रानाश, नाड़ियोंका खिंचाव, छींक आनेमें प्रतिबन्ध, मुखशोष, बार बार जम्भाई आना, अफारा, देहमें पीड़ा होना, मुँहका स्वाद बिगड़ जाना और विशेषतः मल मूत्रावरोध आदि लक्षण होते हैं।

पित्तज्वर—वमन, अतिसार (पीले पतले दस्त), मूत्रमें अधिक पीलापन, निद्राह्रास, अति स्वेद, घबराहट, तृषा, दाह, अरुचि, ज्वर अधिक रहना, बात बातमें क्रोध चढ़ना, नाड़ी तेज चलना आदि लक्षण होते हैं।

कफज्वर—अङ्गमें भारीपन, रोंगटे खड़े होना, निद्रावृद्धि, मल-मूत्रमें प्रतिबन्ध, मस्तिष्कमें भारीपन, मुँहमें मीठापन, त्वचाका चिपचिपापन, बदन अकड़ जाना और मन्द नाड़ी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

वातपित्तज्वर—तृषा, मूर्च्छा, दाह, निद्रानाश, जम्भाई आना, सन्धियोंमें वेदना आदि लक्षण होते हैं। यह ज्वर विशेषतः दोपहर और मध्य रात्रिको आता है।

वातकफज्वर—शरीर गीला रहना, निद्रावृद्धि, देहमें भारीपन, सन्धियोंमें दर्द, स्वेद अधिक आना, मस्तिष्क जकड़ जाना और ज्वरका मध्यम वेग आदि लक्षण होते हैं।

पित्तकफज्वर—मुँहमें कड़ुवा और चिपचिपापन, सन्धि स्थानोंमें पीड़ा, कभी दाह होना और कभी शीत लगना, तन्द्रा, मोह और तृषा आदि लक्षण होते हैं। यह ज्वर प्रातःकाल या सायंकाल सन्ध्याके समय आता है।

त्रिदोषजज्वर (सन्निपात)—इसकी उत्पत्ति तीनों दोष दूषित होनेपर होती है। तन्द्रा या निद्रानाश, प्रलाप, कास, श्वास, जिह्वाकाली और खरखरी हो जाना, मस्तिष्क विकृति, हृदयमें पीड़ा, मल-मूत्रावरोध, अति घबराहट आदि विविध लक्षण उपस्थित होते हैं।

श्वसनक ज्वर, वातश्लेष्मज्वर (Influenza), मधुरा, सूतिका ज्वर, प्रलापक ज्वर और ग्रन्थिक ज्वर आदिकी प्रबलावस्थामें बहुधा सन्निपातके लक्षण उपस्थित होते हैं। इनमें वात, पित्त, कफप्रकोपके लक्षण न्यूनाधिक परिमाणमें मिश्रित होते हैं। यह सब चिकित्सकोंका अनुभव है।

उपरोक्त विवरणके अतिरिक्त "त्रिदोष" आयुर्वेदका मूलभूत सिद्धान्त है। जिसकी महत्ताको समझनेके लिये विषयका गहन अध्ययन और मनन अत्यावश्यक है। पंच महाभूत और त्रिदोषका सम्बन्ध, इनकी धातु और दोष संज्ञाका कारण, दोषोंकी उत्पत्ति भेद और स्थान, इनके गुण और कार्यका विस्तृत विवेचन आदि गहन विषय हैं, जो इस पुस्तिकाकी सीमासे बाहर हैं। और साधारण पाठकोंको इनसे कोई लाभ होनेकी आशा नहीं की जा सकती। अतः अत्यन्त जरूरी अंशका ही ऊपर वर्णन किया गया है।

८. कीटाणु और रोगोत्पत्ति

कीटाणुओंको ही रोगोंकी उत्पत्तिका मूल कारण मान लेना निश्चय ही एक भ्रामक सिद्धान्त है। अनेक प्रकारके कीटाणु शरीरके अन्दर या स्पर्शमें हर समय रहते हैं परन्तु रोगोत्पत्ति क्यों नहीं होती? किसी प्रकारसे संक्रामक रोगके फैलनेपर क्योंकर कुछ आदमी रोगसे बच जाते हैं? इत्यादि प्रश्नोंका एकमात्र यही उत्तर है कि, दोष जबतक साम्यावस्थामें हैं अर्थात् जबतक शरीरकी जीवनीय शक्ति सबल है तब तक कीटाणु भी रोगोत्पत्ति करनेमें सफल नहीं हो सकते हैं। अतः इनको रोगोत्पत्तिका मूलभूत कारण न मानकर मिथ्या आहार विहारके समान ही दोष विकृतिकर परम्परा कारण माना जा सकता है।

इस विषयके विस्तृत विवादमें न जाकर पाठक वर्गके लिये केवल इतना ही जान लेना लाभप्रद सिद्ध होगा कि अनेक कीटाणुओंको विभिन्न संक्रामक रोगोत्पत्तिमें परम्परा हेतुरूप शक्तिशाली कारण सिद्ध किया जा चुका है।

प्राचीनकालमें और आज भी अपठित मूर्ख ग्रामीण जनता में अनेक जनपद व्यापी रोग—विसूचिका, ग्रन्थिक ज्वर, शीतला आदि चारों ओर फैल जाते हैं तब उनको दैवप्रकोप मानकर देवसेवा, पूजा, दान यज्ञादि किया करते हैं और अनेक प्रकारसे उनकी मनौती माना करते हैं। इसका मुख्य कारण जबतक अज्ञात रहा, तबतक यह मान्यता प्रचलित रही। गत शताब्दीमें अणुवीक्षण यन्त्रकी शोध होनेपर संक्रामक और जनपदव्यापी रोगोंके कारणोंका अन्वेषण होने लगा, परिणाममें कीटाणुओंकी सृष्टिका ज्ञान हुआ और फिर उनकी जाति, समूह आदिका निर्णय किया गया।

इन कीटाणुओंके मुख्य २ विभाग हैं। १. उद्भिद् कीटाणु (Bacteria) और प्राणिकीटाणु (Protozoa).

१. उद्भिद् कीटाणुविभाग—१. सरलाकृति (Bacillus); २ अण्डाकृति (Coccus) और ३. कर्षिणी आकृति अर्थात् मरोड़ी सदृश घुमावदार (Spirillum)। सरलाकृतिमें बहुसंख्य जाति हैं। अण्डाकृतिकी ५ जाति तथा कर्षिणीकी अनेक जाति हैं। मधुरा, कण्ठ-रोहिणी और राजयक्ष्माके कीटाणु सरलाकृत, श्वसनक ज्वर और सुजाक-के कीटाणु अण्डाकृति; और विसूचिकाके कीटाणु कर्षिणी जाति समूह का है।

अण्डाकुति जाति समूह–१. युग्मक (Diplococcus); २ जंजीर सदृश (Streptococcus); ३, चतुष्क अर्थात् (×) आकारके (Tetragenous); अष्टक (Sarcinal); समुदायवद्ध (Staphylococcus) ये सब पूयोत्पादक कीटाण हैं।

२. प्राणिकीटाणु जातिसमूह—सार्कोडिना (Sorcodina); २. इन्फूसोरियां (Infusoria); ३. मस्टिगोफोरा (Mastigophora); ४. स्पोरोज़ोआ (Sporozoa),

प्रवाहिका आदि रोगोंमें सार्कोडिना कभी कभी मिल जाते हैं। एवं विषमज्वरमें स्पोरोज़ोआकी प्लाज़मोडियम जातिके कीटाणु मिलते हैं। अनेक जाति समूहमेंसे कितनीही जातिके कीटाणु मिलते हैं। अनेक जाति समूहोंमें से कितने हो जातिके कीटाणु रोगोत्पादक नहीं है। जो मृत देहमें प्रतीत होते हैं। मधुरा, राजयक्ष्मा आदिमें विशेष प्रकारके कीटाणु प्रतीत होते हैं। ये कीटाणु मुख, नासिका, त्वचा और गुह्यमार्गसे देहमें प्रवेश करते हैं और कितनेही बाहर क्षत होनेपर प्रवेशित होते हैं तथा फिर वे कीटाणु देहमें प्रवेशकर कुछ समयतक अपनी सन्तानोंकी वृद्धि करने लगते हैं। इस अवस्थाको संक्रामक रोगोंका चयकाल कहते हैं। भिन्न भिन्न रोगोंमें यह चयकाल निम्नानुसार न्यूनाधिक दिनोंका है।

संक्रामक रोगोंका चयकाल

Incubation Period of Infectious Diseases.

रोग	चयदिन	रोग	चयदिन
मधुरा	८ से २१	परिवर्तित	४ से १०
वातश्लैष्मिक ज्वर	२ से ४	मसूरिका	१० से १४
ग्रन्थिक ज्वर	३ से ७	लघु मसूरिका	११ से २१
प्रसूति ज्वर	३ से १०	रोमान्तिका	७ से १४
विषम ज्वर	६ से २५	विदेशी रोमान्तिका	५ से २१
काला आजार	१० से १८०	कर्णमूलिक ज्वर	१२ से २३
प्रलापक ज्वर	५ से २१	कण्ठरोहिणी	२ से १०

जब इन कीटाणुओंकी आबादी बढ़ जाती है, तब उनसे निकले हुए विषसे रक्त आदि दूषित हो जाता है। फिर जिस जातिके कीटाणु हों उनके अनुरूप रोग उपस्थित होता है। इन सब रोगोंके लक्षण भिन्न भिन्न होते हैं। इनके लक्षणोंका विचार इन रोगोंके वर्णनमें यथा स्थान किया जायगा।

यदि इन संक्रामक रोगोंसे पीड़ित रोगी या उनके कुटुम्बी दुर्लक्ष्य करते हैं, तो वह रोगी अनेकोंको रोग प्रदान करता है। संक्रामक रोगसे पीड़ित रोगीको रोगावस्थामें सम्हालना चाहिये, इतना ही नहीं, बल्कि रोग निवृत्त होनेपर भी जबतक देहमेंसे कीटाणु निकलते रहें तबतक उसे जन-समाजसे पृथक् रहना चाहिये।

इन कीटाणुओंका आक्रमण सबपर समभावसे नहीं होता। भीतरकी शक्ति सबल है तो कीटाणुओंको नष्ट कर देती है। निर्बलोंपर कीटाणु अधिक सवार हो जाते हैं, एवं जो सीलदार मकानमें रहनेवाले और खाने-पीनेमें स्वच्छन्दी मनुष्य हैं, वे कीटाणु जन्य रोगोंके अधिक शिकार बनते हैं।

इन कीटाणुजन्य रोगोंमें अनेक रोग बाल्यावस्थामें, अनेक युवावस्थामें, और अनेक वृद्धावस्थामें लागू होते हैं और कतिपय रोग स्त्रियोंको और कतिपय पुरुषोंको अधिक पसन्द करते हैं। कितने ही रोग स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध, इन सबपर समभावसे आक्रमण करते हैं। मसूरिका रोमान्तिका, काली खांसी, ये रोग बाल्यावस्थामें अधिकतर प्रतीत होते तथा बड़े मनुष्योंको क्वचित् प्राप्त होते हैं।

कतिपय जातिके कीटाणुओंके आक्रमणसे बचने के लिये उन कीटाणुओंके विष द्रव्यका अन्तःक्षेपण करानेका नूतन रिवाज चला है। जैसे शीतला, विसूचिका, विषम ज्वर आदिके लिये कितने ही अन्तःक्षेपण (इञ्जेक्शन) रोगावस्थामें रोगको नष्ट करनेके लिये बनाये हैं। उदाहरणार्थ कालज्वर, विषमज्वर, कण्ठरोहिणी, परिवर्तितज्वर, उद्भिद्कीटाणुजन्य प्रवाहिका श्वसनक ज्वर और फिरङ्ग रोग आदि। इन सब विशेष औषधिसे (अन्तःक्षेपण से) लाभ होनेपर भी भीतर विषसंग्रह होता है या नहीं, या जीवनीय शक्तिको हानि पहुँचती है या नहीं, यह निर्णय करना शेष है यदि क्वचित् रोगपरीक्षा भूलवाली है, या शक्तिका विचार नहीं किया जाता, तो इन अन्तःक्षेपन औषधियोंसे भयंकर हानि पहुँच जाती है।

इन सब रोगोंपर आयुर्वैदिक औषधियाँ सर्वत्र सुलभ हैं। हानिका लेशमात्र भय नहीं है। परीक्षामें भूल होनेपर भी प्रबल हानि नहीं होती। जीवनीय शक्तिको सबल बनाती हैं, ताकि रोग निवृत होनेपर पुनः रोगाक्रमणका भय नहीं रहता।

९. रोग परीक्षा

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥

च० सं० सू० २१।२४

चिकित्सकोंको चाहिये, कि पहिले रोगकी परीक्षा करें; फिर रोगा-

नुसार औषधके गुण, धर्मादिका विचार करें; तत्पश्चात् देश, काल, प्रकृति आदिका विचारकर, ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करें।

रोगका जबतक निश्चय न हो, तब तक चिकित्सा निःसन्दिग्ध नहीं कहला सकती। अतएव महर्षियोंने रोगपरीक्षाका विधान किया है। रोग-परीक्षाके तीन उपाय कहे हैं। शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान*।

(१) **शास्त्रोपदेश** – शास्त्रमें कहे हुए लक्षणों परसे रोगनिर्णय करनेको शास्त्रोपदेश कहा है। इसका वर्णन पहिले उपोद्घात प्रकरणमें किया गया है।

(२) **प्रत्यक्ष**—आगे लिखे हुए नाड़ी, मल-मूत्रादि अष्ट स्थानों परसे रोग विनिश्चय करना, उसे प्रत्यक्ष परीक्षा संज्ञा दी है। +

(३) **अनुमान**—रोगका आरम्भ, दोष, बलाबल आदिका युक्तिपूर्वक निश्चय करना, उसे अनुमान कहा है ×। इस अनुमान परीक्षाके लिये अनेक प्रश्न किये जाते हैं; इस हेतुसे अष्टांग हृदयकारने इसे प्रश्न परीक्षा (इण्टरोगेशन Interrogation) नाम दिया है। ÷

प्रत्यक्ष परीक्षाके अष्ट स्थान—प्रत्यक्ष परीक्षाके आठ स्थानोंके लिये रावणकृत नाड़ीपरीक्षामें लिखा है, कि :—

गदाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाड़ी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृतीः॥

---

* "त्रिविधं खलु रोगविशेषविज्ञानं भवति तद्यथा आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानं चेति।" ॥ च० सं० वि० ४।१ ॥

+ "प्रत्यक्षतस्तु खलु रोगतत्वं बुभुत्सुः सर्वैरिन्द्रियैः सर्वानिन्द्रियार्थान् आतुरगतान् परीक्षेत, अन्यत्र रसज्ञानात्।" च० सं० वि० ४।९ ॥

× "अनुमानं खल्वपि तर्को युक्त्यपेक्षः।" च० सं० वि० ४।६ ॥

÷ "दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम्।" अ० हृ० ॥

रोगीके देहकी नाड़ी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, नेत्र और आकृति (दर्शन परीक्षा), इन आठ स्थानोंको भली भाँति देख, सोच-विचार कर रोग विनिर्णय करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त वर्तमानमें शारीरिक उत्ताप निर्णयार्थ थर्मामीटरको शोध हुई है, जो ज्वरनिर्णयमें साधन माना गया है। अतः उसका वर्णन सबसे पहिले करते हैं।

शारीरिक उत्ताप परीक्षा।

प्राणिमात्रके देहमें न्यूनाधिक उष्णता रहती है। उष्णताका ठीक उल्लेख हो सके इसलिये सेण्टीग्रेड और फारनहाइट, दो पद्धति चल रही हैं। यूरोपके अनेक भागोंमें सेण्टीग्रेड और इंगलेण्डमें फारनहाइट व्यवहृत होती है। बर्फकी शीतलताको सांकेतिक मूल्य शून्य डिग्री सेण्टीग्रेड और उबलते जलकी उष्णताको १००° सेण्टीग्रेड माना गया है तथा इनके बीचके अंशोंका समान विभाग किया है। फारनहाइट पद्धतिमें पाराकी शीतलताके शून्यको ३२° फारनहाइट और १००° सेण्टीग्रेडको २१२° फारननाइट कहते हैं।

द्विविध थर्मामीटरकी तुलना :—

फा०	से०	उष्णद्रव्य।
३२°	०°	बर्फकी शीतलता।
७२°	२२°	सामान्य कमरेका तापमान।
९८।४°	३७°	मनुष्य शरीरकी उष्णता।
२१२°	१००°	उबलते हुये जलकी उष्णता।
३२०°	१६०°	उबलते हुये तैलकी उष्णता।

सेण्टीग्रेडसे फारनहाइट उष्णतामान निकालनेके लिये ९ से गुणा करके ५ का भाग दें। फिर उस लब्धिमें ३२ मिलावें। उदाहरणार्थ—
६०° से० = ६०×९=५४०÷५=१०८+३२=१४०° फा०।
फारनहाइटसे सेण्टीग्रेड करना हो, तो ३२ कम करें और ५ से गुणा

करके ९ का भाग देवें। उदाहरणार्थ १४०° फा—३२ = १०८ × ५ = १४० ÷ ९ = ६०° से०।

मनुष्य शरीरकी उष्णता यूरोपमें सामान्यतः ९८·४° मानी है। परन्तु भारतीयोंकी उष्णता उससे कम रहती है। स्वस्थ व्यापारी समाज जो शाक भोजी हैं, उनकी उष्णता ९७·५° और शेष परिश्रमी वर्ग और मांसाहारियोंकी उष्णता ९८° मानी जाती है। ज्वर आने पर उष्णता सामान्यतः १०८° फा० से अधिक नहीं बढ़ती। इस हेतुसे शय्यागत रोगियोंके लिये थर्मामीटर (Clinical Thermometer) ९५° से ११०° पर्यन्त बनाया जाता है। थर्मामीटरसे परीक्षा करनेपर उष्णताका जैसा निर्णय होता है, वैसा निर्णय केवल हाथोंके स्पर्शसे नहीं हो सकता। थर्मामीटरको बगल, मुख और गुदा आदिमें रखकर निर्णय किया जाया है। गुदाके लिये थर्मामीटर अलग आते हैं।

थर्मामीटरकी प्रयोग-विधि :—आजकल सर्वसाधारणमें इसका अत्यधिक प्रचलन है। अतः इसका प्रयोग करते समय निम्न सूचनाओंपर पूर्ण ध्यान देना चाहिये।

१. तापमान १. त्वचा-काँख, जंघा या जानुपृष्ठमें घुटनेके पीछे; २. मुँहमें और; ३. गुदाशयमें इन तीन स्थानोंपर तापमान नापा जाता है। स्त्रियोंका उत्ताप कभी योनिमार्गसे भी लिया जाता है।

२. प्रत्येक रोगीका ताप नापनेके पश्चात् इसे अच्छी प्रकार जन्तुघ्न धावनसे धोकर रखना चाहिये।

३. जहां तक हो सके रोगीकी बगलमें ही ताप नापें। यदि रोगी अतिकृश होनेसे बगलमें थर्मामीटरके पारेपर दबाव न पड़ता हो, तो उदर या जंघामें थरमामीटर लगाकर तापमान लेवें।

४. ताप नापनेसे पूर्व बगलका पसीना आदि पोंछकर उसे अच्छी प्रकार सुखा लेना चाहिये।

५. ताप लेनेसे पूर्व पारेको भली भाँति झटका देकर उतार लेना चाहिये गर्मीके दिनोंमें जलमें डुबानेसे पारा जल्दी उतर जाता है।

६. त्वचा और थर्मामीटरके मध्यमें कपड़ा न रहने पावे। अगर तापमान मुँहमें लेना हो, तो जिह्वाके नीचे थर्मामीटर रखकर दोनों ओष्ठ बन्द करवा दें। रोगी दाँत भींचकर थर्मामीटर न तोड़ दे, यह सम्हालें।

७. थर्मामीटरके पास ही रोगग्रस्त या सूजा हुआ अवयव होनेपर वास्तविक तापमानसे अधिक उत्ताप प्रतीत होता है। श्वसनक ज्वरमें फुफ्फुस प्रदाहकी ओरके तापमान की अपेक्षा दूसरी ओरका तापमान १° से २° फा० अधिक प्रतीत होता है।

८. मुँहका तापमान लेनेपर, अगर अति गरम या अति शीतल अन्न, पेय आदि लिये हों तथा ओष्ठोंको बन्द न रक्खा हो, श्वासक्रिया अति वेगसे हो रही हो, मुँहमें व्रण या शोथ हो; अथवा रोगी प्रलाप, बेहोशी, आक्षेप या उन्माद ग्रस्त हो, उनका और छोटे बच्चोंका ताप मुँहसे न नापना चाहिये।

९. गुदासे तापमान लेनेका थर्मामीटर अन्य प्रकारका आता है। उसमें पारेवाला भाग फूटनेवाला नहीं होता। इसको मुँहमें डालने और मुँहवाले थर्मामीटरको गुदाका ताप नापने के लिये भूलकर भी उपयोग न करें। गुदामें लगानेसे पूर्व उसके अग्र भागको ग्लिसरीन लगाकर स्निग्ध कर लें, फिर १॥ इञ्च प्रवेश करें। गुदाका ताप मुखकी अपेक्षा १° फा० अधिक होता है।

१०. गुदाशय मलपूर्ण हो या वहाँपर रोग हो, तो वहाँका तापमान न लेवें।

११. तापमान लेनेके लिये जितना समय थर्मामीटरपर लिखा हो उससे दूने समयतक रोगीके स्पर्शमें रक्खें। अगर उसपर १ मिनट लिखा हो, तो २ मिनट तक रखें।
१२. रोगीको थर्मामीटर लगाकर किसी दूसरी तरफ न जायें, रोगीके पास ही रहें।
१३. संशय होनेपर तापमान पुनः लेना चाहिये।
१४. जिस देशमें अधिक गर्मी पड़ती है, उस देशमें ग्रीष्म ऋतुमें थर्मामीटर उपयोग करनेके पश्चात् तुरन्त उसे जलमें डुबो लेना चाहिये, अन्यथा देखते देखते ही उत्ताप बढ़ जाता है।
१५. रोगी अस्थिर (चंचल) होनेपर जंघा या जानुपृष्ठमें नाप लेना चाहिये।

कीड़े, मेंढक, सर्प, मछली आदि शीतरक्त प्राणीके अतिरिक्त सब प्राणियोंमें शारीरिक उत्ताप मर्यादित परिमाणमें रहता है। बाहर वायुमें कितनी ही उष्णता वा शीतलता क्यों न हो; फिर भी किसी भी ऋतुके दिन रातके उत्तापमें, स्वस्थ व्यक्तिमें १° या १।५° फारनहाइटकी अपेक्षा अधिक अन्तर नहीं पड़ता। छोटे बच्चे, वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्य, जो बाह्य तापमानका प्रतिकार करनेमें असमर्थ हैं, उनको न्यूनाधिक बाधा पहुँच जाती है। सामान्यतः मनुष्यका उत्ताप ९७° से ९९°, साधारणतः ९८°; खरगोशमें १०२°, कुत्ते, घोड़े, बैल आदिमें १०१° और पक्षियोंमें १०३° होता है। नये जन्मे हुये शिशुका उत्ताप ९९।५° होता है। एक मासमें वह घटकर ९८।४° हो जाता है। व्यायाम करनेपर उत्ताप १° से २° बढ़ जाता है; किन्तु प्रस्वेद आकर थोड़े ही समयमें पूर्ववत् हो जाता है। इस तरह सन्तप्त होनेपर, गरम जलसे स्नान करनेके पश्चात्, अंगीठीके पास बैठनेसे, आर्द्र और उष्ण वातावरण होनेसे और सायं संध्याके समय उत्ताप अधिक रहता है। उपवास, निन्द्रा और शीत सेवनसे उत्तापका ह्रास होता है।

मांसपेशियोंकी हलचल, शरीर वृद्धिके लिये होनेवाली रचना तथा जीर्ण निरुपयोगी द्रव्य और अपथ्य प्राप्त अणुओंको जलाने या बाहर निकालनेके लिये उष्णता उत्पन्न होती है। शारीरिक उत्ताप सतत मर्यादामें बना रहे, इसका पूरा ख्याल रखा जाता है। जब आम, मल या कीटाणुओंके विषका परिमाण अत्यधिक हो जाता है, तब उसे नष्ट करनेके लिये अधिक उष्णता उत्पन्न होती है, उसे ज्वर कहा जाता है। उत्ताप बढ़ना, यह रोग निवारणका नैसर्गिक उपाय है। इस बातको जानकर महर्षियोंने ज्वरमें जबतक सामावस्था हो, तबतक ज्वरहर औषधिके सेवनका निषेध किया है एवं लंघन करानेकी आज्ञा दी है।

ज्वर या शारीरिक उत्ताप बढ़ता है, तब मस्तिष्क, नेत्र, हृदय आदि कोमल अवयवोंको हानि पहुँचती है। मेद जलता है। मांसपेशियां शिथिल होती हैं, रक्त अधिक पतला और श्याम हो जाता है, रक्तके रक्ताणु नष्ट हो जाते हैं। त्वचा शुष्क हो जाती है एवं रसोत्पादक पिण्ड और पचनक्रिया दूषित हो जाती है। फिर भी बढ़ते हुये बुखारमें उष्णताको कम करनेवाली औषधि कदापि नहीं देनी चाहिये। जो चिकित्सक प्रमादवश उष्णता कम करानेका उपाय करता है। वह रोगीको भयंकर आपत्तिमें डाल देता है। भीतर प्रकुपित हुआ विष कुछ समयके लिये दब जाता है पर वह थोड़े ही समयमें अत्यधिक और बलवत्तर बनकर रोगीको अधिक सताता है तथा शारीरिक उत्ताप बहुधा अधिक हो जाता है या विष सर्व धातुओंमें लीन होकर रोगीको निर्बल बना देता है। और फिर दीर्घ कालतक रोगशमन नहीं होता।

शान्ति लेनेपर उत्ताप कम और परिश्रम करनेपर अधिक होता है; इस हेतुसे रात्रिको विश्रान्ति मिलनेसे सुबह उत्ताप कम होता है। फिर दिनमें जैसे जैसे परिश्रम होता है, वैसे वैसे उत्ताप बढ़ता जाता है; इसीलिये शामको उत्ताप अधिक होता है। दिनमें या ज्वरावस्थामें

यदि मनुष्य शान्त पड़ा रहे, तो मांशपेशियों और अन्य अवयवोंका चलन हलन कम होता है जिससे इनको विश्रान्ति मिल जाती है। यदि निद्रा लग जाती है, तो मस्तिष्कको भी विश्रान्ति मिल जाती है। फिर उष्णता स्वाभाविक कम हो जाती है। सामान्यतः शारीरिक उष्णता त्वचा, श्वसन क्रिया और मल-मूत्र मार्गसे बाहर निकलती है। त्वचा-द्वारा बाहर निकलनेपर वस्त्र गरम हो जाते हैं, एवं प्रस्वेद बाहर निकल आता है। पश्चात् शीतलता आ जाती है।

उक्त कारणोंके अतिरिक्त उष्णता न्यून होनेमें भी अन्य अनेक कारण हैं। वृद्धावस्था, लंघन या इतर हेतुसे बलक्षय, क्षयकी प्रथमावस्था (क्षयमें भी विशेषतः मस्तिष्क क्षयमें), सुवह, मोतीझरेके हेतुसे या ऑपरेशन आदि कारणोंसे अन्त्रमेंसे रक्तस्राव होनेपर, आमाशय आदि पचनेन्द्रियका प्रबल प्रदाह होने, शीतल वायुका अधिक सेवन, अतिसार होकर जल द्रव्य अधिक निकल जाना, मधुमेह, वृक्कप्रदाह, जीर्ण हृत्साद, मद्यपान, कामला, रक्तमें मूत्रविषवृद्धि इन रोगोंमें तथा फॉस्फरस, एट्रोपीन (सूचीबूटी सत्व), मॉर्फिया (अफीमसत्व), अफीम, कार्बोलिक एसिड और इतर तीक्ष्ण दाहक विषका सेवन करने पर उष्णता कम हो जाती है।

यदि उत्ताप स्वाभाविककी अपेक्षा भी कम हो जाय तो, विपरीत क्रिया होने लगती है। त्वचा कैशिकाएँ (बालसदृश सूक्ष्म रक्तवाहिनियां) आकुंचित होती हैं, त्वचा मुर्झा जाती है, स्वेद ग्रन्थियोंका कार्य बन्द हो जाता है, फिर विषसंग्रह होने लगता है। कभी शीत कम्प (Rigor) आकर मांसपेशियां आकुंचित होकर उष्णता उत्पन्न होने लगती है।

न्यूनाधिक उत्तापको दी हुई संज्ञा:—

९५° से कम	शक्तिपात (Collapse)
९५° से ९७°	उत्तापह्रास (Sub-normal)
९७.५° से ९९°	स्वाभाविक उत्ताप (Normal)

९९° से १०२°	सामान्य ज्वर (Simple fever)
१०२° से १०३°	मध्यम ज्वर (Modrate fever)
१०३° से १०५°	तीव्र ज्वर (High fever)
१०५° से अधिक	तीव्रतर ज्वर (Hyperpyrexia)

नाड़ी परीक्षा ।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रमें नाड़ी परीक्षाके सम्बन्ध में उल्लेख नहीं किया गया; किन्तु नाड़ी-परीक्षा, रोग विनिर्णयमें महत्वका साधन है। नाड़ी परीक्षासे वात, पित्त, कफकी गति, रोगीकी आन्तरिक शक्ति, हृदय बल और हृदय क्रियाकी नियमितता आदिका बोध हो जाता है। इस हेतुसे योगतरंगिणी आदि नव्य ग्रन्थकारोंने इसका प्रचार किया है।

हृदयपर हाथ रखनेपर यह विदित होता है कि, हृदय धड़क रहा है। यह धड़कन एक मिनटमें लगभग ८० बार होती है। इस धड़कन-की आवाज़ हृदयके बन्द होने आकुंचन (Systole) पर होती है। प्रत्येक बार ३-४ औंस रक्त हृदयके ऊपरके अलिन्द (Auricle) खण्डसे नीचेके निलय (Ventricle) खण्डमें जाता है, फिर दाहिनी ओर रहे हुये निलयमेंसे अशुद्ध रक्त फुफ्फुसमें जाता है तथा बायीं ओर रहे हुये निलयमेंसे शुद्ध रक्त महाधमनी (Aorta) में जाता है। जो यह ३-४ औंस रक्त धमनीमें फेंका जाता है, उससे क्षणिक रक्तदबाव बढ़ता है, इस हेतुसे महाधमनीके भीतर रक्तसंग्रहपर आघात (Impulse) पहुंच जाता है। यह आघात सारे शरीरमें रही हुई छोटी-मोटी सब धमनी शाखा-प्रशाखाओंमें पहुँच जाता है। इन धमनियोंकी दीवारोंमें स्थिति स्थापक (Elasticity) गुण होनेसे इस क्षणिक दबावका और होनेवाली रक्तवृद्धिका समावेश हो जाता है। इस आघातकी तरङ्गको नाड़ी-स्पन्दन (Pulse) कहते हैं। इस नाड़ी स्पन्दनका प्रारम्भ महाधमनीके मूलमें होता है और लय धमनी प्रशाखाओंमें पहुँचने पर होता है। कैशिकाओंमें केवल इस तरंग या

स्पन्दनकी प्रतीति नहीं होती। बाहरसे नाड़ी स्पन्दन उन स्थानोंमें जान पड़ता है, जिन स्थानोंमें अस्थिके सदृश कठोर धमनी के पाससे धमनी गुजरती है। इन स्थानोंमें मणिबन्धपर बहिः प्रकोष्ठिया (Radial) धमनी मुख्य है। इसके अतिरिक्त पाद पृष्ठिका (Dorsalispedis), जंघाकी पिछली ओर अवस्थित पश्चिम जंघिका (Posterior tibial), कानके पास अनुशंखा (Temporal) धमनी, ये मुख्य हैं। इन धमनियोंके अलावा हृदयके दक्षिण अलिन्द खण्डसे सम्बन्धवाली मन्याशिरा (Jugular vein) में भी स्पन्दन प्रतीत होते हैं। इस मन्याशिराकी गति देखनेके लिये रोगीको सीधा रख कण्ठको कुछ पीठकी ओर झुकाना पड़ता है। इन सबमें बहिः प्रकोष्ठीया धमनीको मुख्य माना है। इसकी गति देखकर स्वास्थ्य और रोगका बोध हो जाता है। योगतरंगिणीकार लिखते हैं कि :—

अंगुष्ठमूलमार्गे या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः॥

आयुर्वेदीय नाड़ीपरीक्षाका सम्यक् बोध लेखनीद्वारा नहीं कर सकते; केवल अनुभवसे ही हो सकता है। जैसे मुँहके उच्चारणमें अ, क से आदि लेकर ५२ अक्षर, इनमें भी सानुनासिक, निरनुनासिक स्वरादि आदि भेद तथा पशु-पक्षी और यन्त्रआदिकी ध्वनि मिलकर अनेक प्रकार होते हैं। इसी तरह नाड़ीकी गतिमें भी अनेक प्रकारके भेद हो जाते हैं। जैसे वाणी परसे सुख-दुःख, प्रेम-द्वेष, सरलता-दुष्टता (कपट), सद्भावना दुर्भावना, क्रूरता, क्रोध, भय, अभिमानआदि हार्दिक वृत्ति; बालक, युवा या वृद्धकी आवाज; स्त्री या पुरुष; रोगी या निरोगी की स्थिति; मुँहसे पानआदि खाते हुए या कफ आते हुए उच्चारण, परिचित या अपरिचित व्यक्तिकी आवाज इन सब बातोंका बोध हो सकता है। वैसे ही नाड़ी-परीक्षासे आन्तरिक स्थिति और नाना प्रकारकी व्याधियोंका बोध हो जाता है।

मणिबंध और अंगुष्ठके मूलमें जो धमनियोंका संधिस्थान है, उसपर उँगली रखकर नाडीकी गति देखनेको नाडी-परीक्षा कहते हैं। यद्यपि शरीरमें अनेक (दोनों पैरोंके गुल्फ, नाक और कण्ठआदि स्थानोंकी) अस्थियोंपरसे गमन करनेवाली धमनियोंपर उँगली रखकर भी देखा जाता है, तथापि इन अनेक स्थानोंमेंसे हाथकी नाडीको ही प्राधान्य दिया है। मुमुर्षु अवस्थामें जब हाथकी नाडी टूट जाती है, तब उक्त कण्ठादिकी नाडियोंसे परीक्षा की जाती है। (कण्ठमें रही हुई मन्याशिरा-की गति अनेक प्रकारके हृदयके रोगोंमें भी देखी जाती है)।

जीवन-मरण, शिरोरोग, कण्ठरोग, कर्णरोग और मुखरोगका बोध नासानाडीसे हो सकता है। यदि पैरोंकी नाडीपरसे स्पंदन देखना हो, तो अन्तर्गुल्फके नीचे (गाँठके पीछे) रही हुई पश्चिम जंघिका (पिछली ओर रही हुई) धमनीपरसे देखा जाता है।

नाडी-परीक्षामें विशेषतः पुरुषके दक्षिण और स्त्रियोंके वामहस्तकी नाडी देखी जाती है। कारण, स्त्री-पुरुषके देह भेदसे नाडी आदि अङ्गों-के मूल विपरीत होते हैं। यदि दोनों हाथोंकी नाडी देखी जाय, तो कभी कभी विशेष परिचय मिलता है। जैसा वीणाके सब रागोंको तन्त्री स्पष्ट कर देती है, वैसे ही हाथकी नाडी सब रोगोंका प्रकाशित कर देती है। शरीरमें वात, पित्त, कफमेंसे जो दोष कुपित होता है, उस दोषके अनुसार नाडीकी स्थिति बदल जाती है, अर्थात् वायुमें विकृति होनेपर गति दूषित हो जाती है। पित्तप्रकोपसे स्वाभाविक उष्मामें परिवर्तन और कफप्रकोप होनेपर नाडीमें शिथिलता आ जाती है। नाडीमें वायुका स्थान प्रथम (अंगूठेके मूलके पास), पित्तका स्थान मध्यमें, और कफका स्थान अन्तमें माना*। वायुके स्थानमें सर्पादि प्राणीकी तरह कुछ टेढ़ी गति,

---

* अग्रे वातवहा नाडी मध्ये वहति पित्तला।
अन्ते श्लेष्मविकारेण नाडी ज्ञेया सदा बुधैः ॥ यो० त० ॥

पित्तके स्थानमें मेंढकके समान उछलती और कफके स्थानमें हंस, मोर, कबूतरआदि पक्षीकी तरह मन्दगति प्रतीत होती है। इन वात, पित्त, कफके स्थाननिर्णयमें भी आचार्योंके मतभेद हैं†। परन्तु वात, पित्त, कफकी अनुक्रमसे साँपके समान टेढ़ी, मेंढ़क समान उछलती हुई और राजहंसके समान मन्द गतिमें मतभेद नहीं है। अतः इन निश्चित लक्षणोपरसे वात पित्त और कफका निर्णय सामान्य बोधवाले साधक भी कर सकते हैं।

मणिबन्धमें जिस स्थानपर धमनीके साथ दूसरी छोटी रक्तवाहिनीका सम्मेलन होता है और जहाँपर रक्त उछलता हुआ प्रतीत होता है, उस स्थानको पित्तका स्थान माना है। शरीरमें उष्णताके कारण रक्ताभिसरण क्रियामें जितनी उत्तेजना होती है, उतनी ही सन्धिस्थानमें (पित्त स्थान-में) रक्तके उछलनेकी प्रतीति होती है। उस स्थानके ठोकों परसे आन्तरिक शक्तिका हिसाब लगाया जाता है।

पित्तस्थानसे आगे अंगुष्ठकी ओर वातधातुकी प्रकृति-विकृति अनुरूप रक्तकी गति टेढ़ी और वेगवती या मन्द बनती है। अतः उस स्थानको वात-स्थान कहा है। एवं पित्तस्थानके ऊपर (कूर्परकी ओर) नाड़ी कफकी गतिका बोध कराती है, अतः उसे कफस्थान माना है। इस तरह एक ही नाड़ी वात, पित्त और कफका बोध कराती है।

आयुर्वेदकी पद्धति अनुसार नाड़ीकी परीक्षाके लिये रोगीके हाथको अपने बाँये हाथसे थोड़ा टेढ़ा कर कुहनी (कूर्पर) में रही हुई नाड़ीको थोड़ा दबा, फिर मणिबन्धमें स्थित नाड़ीपर अपने दाहिने हाथकी उँगलियोंको रखनी चाहिये ताकि तर्जनी उँगलीसे वात, मध्यमासे पित्त और अनामिकासे कफकी गतिका सम्यक् बोध हो सके।

इस नाड़ीज्ञान विषयक अपने देशमें अनेक दन्तकथाएं प्रचलित हैं। कोई कहते हैं, कि आज आपने क्या भोजन किया, इसको अमुक वैद्य

† वाताद्वक्रगता नाड़ी, चपला पित्तवाहिनी।
स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया मिश्रिते मिश्रिता भवेत्॥

बता सकते हैं। अमुक वैद्य ६ मास पहिलेके आहारको बता देते थे, और भूतकालके अनेक पूर्वज तो राजमहिलाओंके हाथपर बँधी हुई डोरीको पकड़नेमात्रसे रोगका वर्णन कर देते थे। इन सब बातोंमें सत्यका अंश कितना है, यह ईश्वर ही जाने। सब कल्पनाओंके राजमहल हैं। नाड़ी केवल वात, पित्त और कफकी प्रकृति-विकृतिका बोध कराती है। जिस परसे आन्तरिक शक्ति कितनी बलवती है या कौनसा रोग है तथा रोगका बल कितना बढ़ा है, इन बातोंका सामान्य। रूपसे अनुमान हो सकता है।

नाड़ीके ठोके धमनीके बल और गति तथा हृदयकी सबलता-निर्बलता और संकोच-विकासके अनुरूप न्यूनाधिक होते हैं। स्वस्थ अवस्थामें नाड़ी प्रबल, स्थिर और समान वेगसे चलती है। किन्तु देह अस्वस्थ होनेपर वात आदि धातुओंमें विकार होनेसे नाड़ीके बल और रक्ताभिसरण कियाके वेगमें न्यूनाधिकता हो जाती है; जिससे नाड़ी अस्थिर, निर्बल, भारी, कठोर या अन्य दोषयुक्त प्रतीत होती है।

स्वस्थावस्था और रुग्णावस्थामें नाड़ीके ठोकेका मीलान करनेसे जाना जाता है, कि नाड़ीके ठोकेमें नियमितता (Regularity) है या नहीं ? तालबद्ध ठोके होते हैं या नहीं ? इस बातके बोधसे रोगबलका अनुमान होता है। जो नाड़ी अत्यन्त अनियमित हो, तो वह अरिष्टका लक्षण माना जाता है। रक्त प्रवाहके बल (Force), और धमनीकी दृढ़ताके अनुसार नाड़ीकी आकृति (पुष्ट या कृश), साम और निरामावस्था तथा पित्तआदि धातुप्रकोप अवगत होते हैं।

रस-रक्तआदि दूष्योंकी विकृति वात, पित्त और कफके दूषित होनेपर होती है। किसी दोषमें कम विकृति और किसीमें ज्यादा। किसी समय वात, पित्त, इन दो दोषोंमें विकृति विशेष हो जाती है, तब बार-बार नाड़ी टेढ़ी और बार बार कूदती हुई भासती है*। वात और कफमें

---

* मुहुः सर्पगतिं नाडी मुहुर्भेकगतिं तथा ।
वाय पित्त द्वयोद्भूतां भाषन्ते तद्विदोजनाः ॥

विकृति होनेसे टेढ़ी और मन्द चाल प्रतीत होती है†। पित्त और कफ विकृत होनेपर नाड़ी बारबार कूदती और मन्द होती हुई मालूम पड़ती है×। इसी तरह क्वचित् वात, पित्त और कफ, तीनों दषोंमें विकृति हो जानेपर तीनों प्रकारकी चाल विकृत होती हुई विदित होती है÷।

जितने अंशमें नाड़ीमें विकृति आई हो, उतना ही रोगका बल समझना चाहिये। जब नाड़ी क्षण-क्षणमें विषम स्पंदन युक्त (स्थान बदलती), कूदती, अति वेगयुक्त, अति वक्रगति वाली अथवा अति मंद, अति पुष्ट (स्थूलाकृति) या अति कठिन हो जाय, तब रोग असाध्य माना जाता है। यदि ३० ठोंके तक नाड़ीकी गति सम रहती है, तो जीवनीय शक्ति अपना सफल प्रयत्न कर रही है, ऐसा माना जाता है। परन्तु १०-१२ ठोके बाद नाड़ीमें प्रतिबन्ध हो जाता हो, तो जीवनीय शक्तिका क्षय होकर रोग प्रबल हुआ है, रोगने घातक रूप धारण किया है, ऐसा माना जाता है।

नाड़ीकी गति स्वाभाविक स्थितिसे कम हो, तो दुर्बलता या मस्तिष्कमें रक्तकी अधिकता समझनी चाहिये। ज्वरमें नाड़ी-गति तेज हो जाती है। तथा वात नाड़ियोंकी निर्बलतामें नाड़ी मृदु और पुष्ट हो जाती है। यदि बड़ी आयुवालेकी नाड़ीके ठोके १२० से ऊपर चले जाते हैं, तो रोगका प्राबल्य अधिक माना जाता है और १४० से बढ़नेपर भयप्रद अवस्था मानी जाती है। अथवा किसी हृद् रोगकी भी सूचक होती है।

---

† भुजंगादि गतिस्थानां राजहंसगतिं तथा।
वातश्लेष्म समुद्भूतां प्रवदन्ति महाधियः॥

× मण्डूकादि गतिं नाड़ी मयूरादि गतिधराम्।
पित्तश्लेश्म समुद्भूतां प्रवदन्ति मनीषिणः॥

÷ कदाचिन्मन्दगा नाड़ी कदाचिच्छीघ्रगा भवेत्।
त्रिदोष प्रभवे रोगे विज्ञेया च भिषग्वरैः॥

यद्यपि नाड़ी देखनेमें पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बाँये हाथकी नाड़ी अधिक बोध कराती है, तो भी दोनों हथोंकी नाड़ियोंको देखना, विशेष लाभदायक है। जब मरणासन्न रोगीके हाथकी नाड़ी नहीं जान पड़ती, तब हाथके ऊपरके भागमें या कंठ, पैरोंके गुल्फ और नासानाड़ी परसे चेतना-शक्तिको जानना चाहिये।

निद्रितावस्था, परिश्रम, व्यायाम, भोजन, बाहरसे चलकर आना, तैल मर्दन, अग्नि और सूर्यके तापका सेवन, इन कर्मोंके करनेपर तुरन्त तथा क्षुधातुर और तृषातुरकी नाड़ी नहीं देखनी चाहिये। कारण, ऐसी स्थितिमें नाड़ी रोग या शारीरिक शक्तिका यथार्थ बोध नहीं करा सकती। प्रतःकाल मल-मूत्र त्यागकर थोड़ी विश्रान्ति लेनेके पश्चात् नाड़ीको परीक्षा करना उत्तम है। मध्याह्नमें नाड़ीमें स्वभावतः उष्णताधिक्य और वेग-न्यून हो जाता है, पुनः तीसरे प्रहरमें बढ़ जाता है, तथा रात्रिमें वेग कम हो जाता है†।

स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी केंचुएकी गतिके समान मृदु, प्रबल, जड़ता रहित तथा बलवान् रहती है। प्रातःकाल स्निग्धा, मध्याह्नमें उष्णा और सायंकालको वेगवती भासती है; किन्तु रोग होनेपर नाड़ीकी गतिमें नाना प्रकारकी विभिन्न गति हो जाती है।

भिन्न-भिन्न हेतुओंसे नाड़ीकी गतिमें निम्नानुसार भेद हो जाता है।

(१) दीप्ताग्नि वालोंकी नाड़ी हल्की और तेजयुक्त।

(२) सुखी मनुष्यकी नाड़ी स्थिर और सबल।

(३) क्षुधातुरकी नाड़ी चपल और भोजन करलेनेपर स्थिर।

(४) अधिक भोजन और मैथुनके बाद नाड़ी उष्ण स्पर्श और मन्द।

† प्रातः स्निग्धमयी नाड़ी मध्याह्नेऽप्युष्णतान्विता।
सायाह्ने धावमाना च रात्रौ वेग विवर्जिता॥

(५) मन्दाग्नि और धातुक्षीणतामें नाड़ी क्षीण और धीमी।

(६) उद्वेग, काम, भय या चिन्ताका उदय होनेपर नाड़ी क्षीण।

(७) मलावरोधमें वेगवती, वक्रगति, ऊपर चढ़ती हुई और भारी।

(८) अजीर्णमें नाड़ी कठिन और मन्द। आमदोषसे भारी और स्थूल। अजीर्णकी निवृत्ति होनेपर पुनः तेज, निर्मल और चंचल और कुछ कम्पित।

(९) सगर्भाकी नाड़ी भारी, मन्द और ऊर्ध्वगतियुक्त।

(१०) ज्वरमें नाड़ी उष्ण-स्पर्श और वेगवती। वातज्वरमें नाड़ी कुछ भारी, कठिन और वेगवती; पित्तज्वरमें अत्यन्त वेगपूर्वक चलती हुई और कठिन (या द्रुत, सरल, दीर्घ और शीघ्र) कफज्वर में मन्द वेगयुक्त और मन्दोष्ण। वातपित्तज्वरमें चंचल, स्थूल और कठिन, वातकफज्वरमें मन्द और थोड़ी गरम (कचित् वात स्थानमें तेज); कफपित्तज्वरमें नाड़ी शीतल-सी और मृदुगामिनी। त्रिदोषजमें नाड़ी क्षण-क्षणमें अनियमित होती हुई। सामज्वरमें नाड़ी भारी (पुष्ट) और निरामावस्थामें हल्की।

(११) अतिसारमें पहिले तेज, परन्तु निर्बलता आजाने के बाद शनैः शनैः क्षीण। फिर मन्दगति वाली।

(१२) संग्रहणीमें नाड़ी उछलती हुई।

(१३) कफ कास और राजयक्ष्मामें रोग प्रबल हो जानेके पश्चात् नाड़ी अस्थिर (कम्प युक्त), क्षीण और द्रुत। शुष्क कासमें नाड़ी बारबार अस्थिर सी।

(१४) श्वास प्रकोप होनेपर नाड़ीकी गति तेज। नाड़ीकी चाल बहुधा जोंकके सदृश्य।

(१५) हिक्कामें नाड़ी अस्थिर और वेगपूर्वक।

(१६) आमवातके तीव्र प्रकोपमें नाड़ीकी गति तेज और, भारी

होनेपर भी संकोचक्षम (Compressible)। रोग जीर्ण होनेपर शिथिल नाड़ी।

(१७) त्रिदोषज असाध्य व्याधिमें नाड़ी कभी मन्द, कभी तेज, कभी शिथिल। कभी रुक-रुककर चलती है; कभी एकदम विलुप्त भी मालूम होती है।

यदि उपर्युक्त नाड़ीकी गति सूर्यके तापमें भ्रमण, अधिक परिश्रम, दौड़ना, गिरना, तीव्र अतिसार, विसूचिका, विषप्रकोप, मानसिक अस्व-स्थता, मूर्च्छा, भय, शोक, निर्बलता, मैथुन करनेके पश्चात्, क्षयरोग तथा शुक्रक्षय आदि हेतुओंसे हो जाय, तो केवल उतनेसे ही रोगको सत्वर घातक न मान लें। बालकोंकी नाड़ी भी अनेक बार ऐसी ही हो जाती है। फिर भी थोड़े समयमें वह स्वस्थ हो जाती है।

यदि देहमें अति उष्णता हो और नाड़ीमें शीतलता हो; या नाड़ीमें उष्णता और शरीरमें शीतलता हो अथवा बारबार गति बदलती रहे और संज्ञानाश हो जाय, तो रोगको असाध्य मानें।

(१८) त्रिदोषज रोगी और मुमुर्षुकी नाड़ी चल-चलकर बारबार स्थिर हो जाय और शरीरमें शोथ न आया हो, तो रोगी एक सप्ताह जीवित रहता है।

पैरोंके अंगुष्ठमें जो धमनी गई है, वह यदि अतिचंचल हो, तो ३ दिन जीवन शेष माना जाता है। यदि वह नाड़ी उष्ण और वेग-वती हो तो ४ दिनके भीतर मृत्युको प्राप्त हो जाता है। यदि वह नाड़ी मंद मंद होती जाती है तो ५ दिनमें मृत्यु हो जाती है।

जिसकी नाड़ी अपने स्थानसे आधे यव प्रमाण स्खलित हो जाय; वह ३ दिनमें मृत्युकी शरण लेता है।

केवल अनामिका के नीचे स्पन्दन हो, तो ४ प्रहरमें; दो अंगुल दूर होनेपर १॥ प्रहरमें; २॥ अंगुल अन्तर पड़नेपर १ प्रहरमें; और तीनों उँगलीके नीचे नाड़ीकी अप्रतीति होनेपर आध प्रहरमें मृत्यु हो जाती है।

जिसकी नाड़ी मात्र तर्जनीके नीचे प्रतीत हो, इतर दो उँगली के नीचे न हो, वह ४ दिन जीवित रहेगा।

यदि शरीर अति उष्ण और नाड़ी अति शिथिल हो जाय, तो रोगी ३ दिनमें चला जायगा। यदि नाड़ी बार-बार टूट जाती है; या अदृश्य हो जाती है, तो वह उसी दिन चला जाता है।

इस नाड़ी-परीक्षामें रोगोकी प्रकृति वातप्रधान पित्त प्रधान, अथवा कफ प्रधान है, इस बातको लक्ष्यमें रखकर परीक्षा करनी चाहिये। अनेकानेक व्याधियोंमें नाड़ीकी चालमें समानता भासती है। जैसे चिन्ता और भयसे नाड़ी क्षीण होती है। मन्दाग्नि और क्षीण धातुवालोंकी नाड़ी मन्द-मन्द चलती है। इसलिये नाड़ी परीक्षाके अतिरिक्त अन्य परीक्षाओंकी सहायता भी लेनी चाहिये।

नाड़ीकी गति रोगीके विश्रान्तिके समय देखना चाहिये। रोगी बैठ सके तो उसे बैठाकर हाथको बाजूमें स्थिर करें। लेटे हुयेकी नाड़ी देखना हो तो छातीपर हाथ आड़ा और ढीला रखावें। कूपर और मणिबन्धनको मोड़कर नाड़ीको दबावें, मणिबन्धनकी नाड़ीपर ३ अँगुलियाँ रखें। फिर नाड़ी १ मिनटतक देखें। डाक्टरीमें नाड़ीके स्पन्दन १५ सेकण्डतक गिनकर चारगुना कर लेते हैं। कभी-कभी दोनों हाथोंकी नाड़ीमें अन्तर रहता है। अतः आवश्यकतापर दोनों हाथोंकी नाड़ी देखी जाती है।

आयुर्वेदके मतानुसार नाड़ीकी गतिमें वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषोंकी स्थिति देखी जाती है। डाक्टरी मतमें स्पन्दन (Ferquency) नियमितता (Regularity), आकार (Volume), तालबद्धता (Rhythm) और संहति (Tension) देखते हैं अर्थात् नाड़ीके स्पन्दनोंकी संख्या कितनी है, नाड़ी नियमित चलती है या नहीं। नाड़ी टूट-टूटकर तो नहीं चलती, नाड़ी स्पन्दन समान आकारके होते हैं या नहीं, नाड़ीकी दिवारोंमें मृदुता है या कठिनता, जितनी कठोरता आती है, उतना स्थिति स्थापक गुण घटता है ? नाड़ी तालबद्ध चलती है या

नहीं, अँगुलीके नीचे फिरती तो नहीं, तालबद्धता नष्ट होनेपर कितने बलपूर्वक और कितने निर्बल होते हैं एवं कितने जल्दी-जल्दी और कितने देरसे होते हैं इत्यादि ?

जितने अंशमें नाड़ीमें विकृति प्रतीत हो, उतना ही रोगका बल माना जाता है। नाड़ी क्षण-क्षणमें विषम स्पन्दनयुक्त (स्थान बदलती हुई) होती हो, वह कूदती, अतिवेगवती, अति वक्रगतियुक्त या अति मन्दगतियुक्त अतिपुष्ट (स्थूलाकृति) या अति कठिन हो जाय, तब रोग असाध्य माना जाता है। यदि ३० ठोंके तक नाड़ीकी गति सम रहती है, तो जीवनीय शक्ति सफल प्रयत्न कर रही है। ऐसा माना जाता है। यदि १०-१२ स्पन्दनोंके बाद नाड़ीमें प्रतिबन्ध हो जाता है, तो रोग प्रबल है, रोगने घातकरूप धारण किया है, ऐसी कल्पना होती है।

ज्वर आनेपर देहमें अपचन क्रिया सबल बनती है। जिससे रक्त-संग्रह बढ़ जाता है। शारीरिक उत्ताप १० फा० बढ़नेपर नाड़ीस्पन्दन १० बढ़ जाते हैं। यदि ६° उत्ताप बढ़ता है अर्थात् १०४° हो जाता है, तब नाड़ी स्पन्दन लगभग १४० हो जाता है। नाड़ी स्पन्दन १२० से अधिक होनेपर रोगबल अधिक माना जाता है और १४० के ऊपर हो जानेपर अवस्था भयप्रद मानी जाती है।

निद्रावस्था, परिश्रम, व्यायाम, भोजन कर लेनेपर तुरन्त बाहरसे चलकर आनेपर, तैल मर्दन करनेपर, अग्नि या सूर्यके तापका सेवन करनेपर तथा क्षुधातुर और तृषातुरकी नाड़ी नहीं देखनी चाहिये। कारण, ऐसी अवस्थामें नाड़ी, रोग या शारीरिक शक्तिका सच्चा बोध नहीं करा सकती। प्रातःकाल मल-मूत्र त्यागकर थोड़ी विश्रान्ति लेनेके पश्चात् नाड़ी परीक्षा करना, यह उत्तम समय है। मध्याह्नमें स्वभावतः नाड़ीवेगका ह्रास हो जाता है। पुनः परिश्रमके कारणसे तीसरे प्रहरमें बढ़ जाता है। लेटे रहनेकी अपेक्षा बैठा रहनेपर और बैठनेपर ७० और खड़े रहनेपर स्पन्दन

संख्या कम हो जाती है। व्यायामके आरम्भमें स्पन्दन बढ़ जाता है। फिर थकावट आने और पसीना आजानेपर स्पन्दन घट जाते हैं।

नाड़ी गतिके अनुरूप श्वासोच्छ्वास संख्या प्रति मिनिट सामान्यतः तुरन्त जन्मे हुए शिशुमें ३५-४०; ५ वर्षतक २५-३०; १२ वर्षतक २०-१५; १५ वर्षतक १८-२० और युवावस्थामें लगभग १६-१८ हो जाते हैं। स्त्रीके श्वास २ अधिक चलते हैं। इस दृष्टिसे श्वासोच्छ्वाससे नाड़ीके ठोके लगभग ८ गुने होते हैं। यह स्थिति स्वस्थावस्था और अनेक रोगोंमें कायम रहती है। किन्तु श्वसनक ज्वरमें श्वासोच्छ्वाससे नाड़ी स्पन्दनोंकी संख्या मात्र १॥-२ गुनी ही होती है। नाड़ी संख्या १०० होनेपर श्वसनक संस्था लगभग ५० तक बढ़ जाती हैं। इसी तरह फुफ्फुसोंमें भी अन्तर हो जाता है।

सरल श्वसन परीक्षा

श्वासोच्छ्वास क्रिया करनेमें फुफ्फुसोंके भीतर रहे हुए वायुकोषों (Alveolis) की दिवारोंमें अवस्थित प्रवाही रक्तमेंसे वायु आती जाती रहती है। इससे सारे शरीरके सजीव कोषोंके आवश्यक प्राणवायुकी सतत पूर्ति होती रहती है। क्षोभ उत्पन्न करानेवाली आँगारिक वायु (Carbon Dioxide) बाहर निकलती रहती है।

फुफ्फुसोंके वायुकोषोंमें वायुका दबाव बाहरकी वायु जितना रहता है। श्वास भीतर लेनेपर यह दबाव कुछ कम हो जाता है और ताजी वायु भीतर प्रवेश करती है तथा श्वास बाहर निकालनेके समय दबाव अधिक होता है। जिससे भीतरकी अशुद्ध वायु बाहर फेंकी जाती है।

बड़ा मनुष्य प्रत्येक मिनटमें १६ से १८ बार श्वास लेता है। श्रम करने या मन क्षुब्ध होनेपर यह गति बढ़ जाती है। तुरन्त जन्मे हुए शिशुमें ३५ से ४० और ५ वर्षकी आयुमें श्वसन लेने की संख्या लगभग २५होती है। गति नापनेके समय रोगीका लक्ष्य उस ओर नहीं जाने देना चाहिये अन्यथा गति न्यूनाधिक हो जायगी। इस श्वासोच्छ्वास क्रिया के

नापमें श्वास लेने की संख्या, नियमितता, गहरापन वा अगम्भीरपन और श्वास लेने की रीतिका निरीक्षण किया जाता है। श्वसन क्रियामें छाती और उदर दोनोंमें हल चल होती है। महाप्राचीरा पेशीका आकुंचन होनेसे उदर हिलता है। स्त्रियोंमें छातीके ऊपरका हिस्सा और शिशुओंमें उदर अधिक चलता है।

श्वसन संख्या विश्रान्ति, निद्रा और थकावटमें स्वाभाविक कम हो जाती है, एवं मस्तिष्क पर आघात होनेपर अचेतनावस्था (Coma) उत्पन्न होनेपर तथा अफीम खानेपर (रोगी अफीमका व्यसनी होनेपर) श्वसन संख्या कम हो जाती है। ज्वर, फुफ्फुस और हृदयके रोग तथा धतुरा, सची बूटी, सूचीसत्व (Atropin) का सेवन करनेपर भी श्वसन संख्यामें वृद्धि हो जाती है। (इसका सिस्तृत विवेचन "सिद्ध-परीक्षापद्धति" में किया गया है।

सरल मूत्र परीक्षा।

आयुर्वेदकी रीतिसे मूत्र परीक्षा करनेके लिये रोगीको सूर्योदयसे लगभग घण्टे डेढ़ पहिले उठाकर काँच या काँसीके बर्त्तनमें पेशाब करावें। किन्तु प्रथम धारा और अन्तकी धाराको बाहर निकाल दें। मात्र बीचकी धाराको बर्त्तनमें लें। बादमें शीशी या पात्रको ढककर रख दें। २-३ घण्टे बाद सूर्यके प्रकाशमें पात्रको रखकर परीक्षा करें।

आयुर्वेदीय रीत्या मूत्र परीक्षाके लिये पहिले एक मोटी सलाईसे मूत्रको चलाकर, फिर सूक्ष्म तृण शलाकासे तैलको केवल एक ही बूँद डालनी चाहिये। यदि ज्यादा तैल गिर जायगा, तो परीक्षा यथोचित नहीं हो सकेगी।

पेशाबमें तैलकी बूँद डालनेसे वह फैल जाय, तो रोग साध्य; स्थिर रहे तो कष्टसाध्य और डूब जाय, तो रोग असाध्य समझना चाहिये। यदि मूत्रमें चालनीके सदृश या दो मस्तकवाली मनुष्याकृति बन जाय,

तो कुल दोष, प्रेत वा भूत बाधा जानें। ऐसे ही देवाकृति परसे देव-बाधा आदिका बोध हो जाता है।

यदि रोग वात प्रधान है, तो मूत्र ज्यादा परिमाणमें होता है तथा मैले रंगका या कुछ पीले रंगका रूक्ष होता है। पित्ताधिक्य रोगोंमें मूत्र लाल-पीला, दुर्गन्धयुक्त, बहुत गरम और थोड़े परिमाणमें होता है। कफप्रधान रोगोंमें पेशाब गदला, मैला, सफेद और झागयुक्त होता है। कफवातमें पेशाब काँजीके समान; वात-पित्तमें थोड़ा मैला और पीला; कफ-पित्तमें कुछ पीला और चिपचिपा तथा त्रिदोषज व्याधियोंमें सबके मिश्रित लक्षणयुक्त होता है*।

सन्निपातमें बहुधा मूत्रका रंग रक्त या कृष्ण होता है। यदि वातका प्रकोप अधिक हो, तो मूत्रका वर्ण कृष्ण; पित्तविकृति अधिक हो, तो मूत्र थोड़ा समय पड़ा रहनेपर ऊपर पीतवर्ण और नीचे रक्तवर्ण; तथा कफाधिक्य हो, तो मूत्र थोड़ा समय रहनेपर नीचे श्वेत वर्ण या गदलापन लिये हुए प्रतीत होता है। विविध विकारोंके हेतुसे पेशाबमें निम्नानुसार अन्तर हो जाता है।

(१) पेशाबमें रक्त जानेसे रंग धुआँ जैसा हो जाता है।

(२) पाचन क्रियाकी विकृति और रक्तमें अम्लता बढ़ जानेपर मूत्रमें खट्टापन (अम्ल प्रतिक्रिया (Acidic Re-action) बढ़कर [illegible] पीला-लाल और भोजनके बाद पेशाब पीला तैल मिला-सा होता है।

(३) पित्त वृद्धिसे पेशाब गहिरे-पीले रंगका बन जाता है।

(४) पाण्डु, कामला और पित्तविकारमें पेशाब हरा-पीला होता है।

---

* वातेन पाण्डुरं मूत्रं रक्तं नीलञ्च पित्ततः।
रक्तमेव भवेद् रक्ताद् धवलं फेनिलं कफात्॥

(५) भयंकर असाध्य रोगमें पेशाब गहरा काले रंगका हो जाता है।

(६) मूत्रातिसारमें मूत्र पानी जैसा और बार-बार विशेष परिमाणमें होता है।

(७) ज्वर यकृद्विकार और मस्तिष्कके दोषसे पेशाब पीले-लाल रंगका और थोड़े परिमाणमें होता है।

(८) आम और पित्तदूषित रोगोंमें तैल जैसे पीले रंगका और दुर्गन्धयुक्त होता है।

(९) क्षयरोगमें मूत्रका रंग काला; और असाध्य अवस्थामें पेशाबका रंग सफेद बन जाता है।

(१०) हृदयकी निर्बलता और मूत्राशयके रोगोंमें मूत्र मांसके धोवनके समान हो जाता है।

(११) सगर्भा स्त्रीका मूत्र स्वच्छ रहता है, परन्तु उसमें रूईके अणु समान परमाणु दीखते हैं।

(१२) वातज्वरमें पेशाबका रंग थोड़ा नीला-पीला, पित्तज्वरमें पीला और कफज्वरमें किंचित् पीला झागदार होता है। त्रिदोषमें मत्रका रंग प्रायः लाल या काला हो जाता है। पित्त प्रधान सन्निपातमें लाल रंगका पेशाब होता है। निरामज्वरमें मूत्र ईखके रसके समान तथा जीर्णज्वरमें बकरीके मूत्रसदृश गंधवाला प्रतीत होता है।

(१३) सूतिका रोगमें पेशाब नीचे काला, ऊपरमें पीला और बुद्बुदे वाला होता है।

(१४) वस्तिके दाहशोथ और मूत्रप्रसेक नलिकाके क्षतमें पेशाब अति जलनके साथ बूंद-बूंद पीले रंगका उतरता रहता है। वस्ति शिथिल हो जाने, वस्ति ग्रीवाका आकुंचन हो जाने तथा मस्तिष्कगत केन्द्र स्थानमें विकृति होनेपर मूत्राशयमें मूत्रसञ्चित होनेपर भी स्राव नहीं होता।

(१५) अतिसारमें पेशाब कम परिमाणमें और पीले रंगका होता है। बोतलमें भरकर देखनेपर नीचेका रंग ज्यादा पीला दीखता है।

(१६) रसधातुके प्रकोपसे पेशाब ईखके रसके समान, और रक्त प्रकोपसे पेशाब नीला-लाल होता है।

(१७) अजीर्णमें मूत्र दुर्गन्धयुक्त पीले रंगका और थोड़े परिमाणमें बारबार होता है। नित्य घृतका अधिक सेवन करनेसे अजीर्ण हुआ हो, तो मूत्र तैलके समान चिकना, दुर्गन्धयुक्त और पीला होता है।

(१८) मलाशय और मूत्राशयमें छिद्र हो जानेपर मूत्रमें मल मिल जाता है। जिससे मूत्रमें मलकी दुर्गन्ध आने लगती है।

(१९) वृक्क स्थान या मूत्राशयमें पीप हो जानेपर पेशाबमें दुर्गन्ध विशेष रहती है; और मूत्र की प्रतिक्रिया क्षारीय हो, तो धागेके समान पदार्थकी प्रतीति भी होती है।

(२०) सेन्टोनीन, शीतलमिर्चका तैल, तार्पिन तैल, केवल दूधका भोजन या इतर गंधयुक्त पेयका अधिक सेवन करनेपर मूत्रमें सेवित द्रव्यके सदृश बास आती है।

सरल मल परीक्षा।

अनेक मनुष्य स्वस्थावस्थामें २४ घण्टेमें १ बार प्रातःकालको, कितनेही २ बार प्रातः सायंको और कोई कोई ३ या अधिक बार मल त्याग करते हैं। विशेषतः यह अभ्यासानुरूप न्यूनाधिक समय होता है। बालकोंको दिनमें ४—५ बार मल त्याग होता है।

मल परीक्षाके लिये पहिले मुख्य दो बातोंपर लक्ष्य देना चाहिये।

१. मल त्याग कितनी बार होता है? खान-पान, व्यायामकी व्यवस्था और मल त्यागका समय जानना चाहिये।

२. मल त्याग क्रियाका स्वभाव, मल त्यागके समय अधिक उदर-वेदना, अपानवायुका निकलना, कुंथन, मल त्याग कालमें बुद बुद

आवाज, विविध वेदना, गुदामें जलन या खाज, उवाक, अर्श, गुदापर क्षत, दरार, भगंदर आदि रोगोंका पूछकर निर्णय करना चाहिये।

मल स्वभाव—मलके वर्ण, प्रतिक्रिया, रचना और गन्धका निर्णय करना चाहिये। मलमें कृमि, कीटाणु और अस्वाभाविक पदार्थ है या नहीं, इसका आवश्यकतापर अणुवीक्षण यन्त्रसे निर्णय करना चाहिये,

मलका वर्ण आहार भेदसे मलके स्वाभाविक वर्णमें अन्तर हो जाता है। दुग्धाहार मात्र करनेपर मलका रंग हलका सफेद पीला होता है। अधिक मांसाहारसे रंग अति गहरा पीला-लाल होता है। विविध औषधिसे मलका रंग बदल जाता है। विलायती लोह और बिस्मथसे काला, आयोडाइडसे नीला, केलोमलसे हरा, लॉगवुडसे लाल पीला तथा फ्युसिनसे लाल हो जाता है।

यकृत् पित्तके अनुसार वर्णमें हलकापन या गहरापन आता है। यकृत्की निर्बलताके कारण पित्तका स्राव कम होता हो, तो मलमें हलका-पीलपन तथा पित्तस्राव अधिक होनेपर गहरा पीलापन होता है। आमाशय और लघु अन्त्रमेंसे रक्तस्राव होनेपर मल काला हो जाता है। गुदनलिकामेंसे रक्तस्राव होनेपर मल लाल होता है। कामला रोगमें पित्त रक्तमें मिल जानेके हेतुसे मल सफेद हो जाता है और मूत्रमें पीलापन आ जाता है।

मलकी प्रतिक्रिया—मल अम्लगुण विशिष्ट या क्षारगुण विशिष्ट होता है। मलकी प्रतिक्रियाकी स्थिरता नहीं है। मधुरामें मल क्षारीय तथा बालकोंको आशुकारी आमातिसार और अन्त्रप्रदाहमें सामान्यतः अम्ल प्रतिक्रियायुक्त होता है।

मलरचना—अतिसार आदिमें अन्त्रकी परिचालन क्रिया तीव्र होनेपर मल पतला तथा मलावरोधमें अत्यन्त कठिन होता है। प्रवाहिकामें कभी-कभी केवल थोड़ी आम या कुछ रक्तकी बूँदें गिरती हैं। अन्त्रमें

कीटाणु-प्रकोप होनेपर मलमेंसे तरलांश बहुत कुछ अंशमें पृथक् हो जाता है। विसूचिकाके अन्तमें केवल जल जैसा मल बार-बार आता है।

मलकी बास—अपचनके कारणसे मलमेंसे सड़नेकी बास आती है। यकृत् पित्तकी न्यूनतासे दुर्गन्ध बढ़ जाती है। अन्नकी अपेक्षा माँसके मलमें दुर्गन्ध अधिक होती है। उदरमें वायुकी उत्पत्ति अधिक होनेपर मल दुर्गन्धमय बन जाता है।

मलमें अस्वाभाविक द्रव्य—मलमें पित्ताश्मरीके कण; श्लेष्मा, श्लैष्मिककलाके टुकड़े, मेद (अग्न्याशयपर कर्कस्फोटमें), पूय, रक्त, विविध कृमि, अन्त्रकृमिके अण्डे, कीटाणु तथा निगले हुये पत्थर, काँच, धातु आदि द्रव्य मिल जाते हैं। इनमेंसे अनेक द्रव्य नेत्रसे दीखते हैं और कितनेही द्रव्योंके लिये मलको जलमें मिला छानकर अणुवीक्षण यन्त्रसे देखना पड़ता है।

मलपरीक्षाके लिये सुबह उठनेपर या किसी भी समय मलका ग्रहण करें। पहिले मत्र विसर्जन कर, फिर स्वच्छ काँच या चीनी मिट्टीके बर्तनमें मल त्याग करावें। भिन्न-भिन्न रोगोंमें नीचे लिखे अनुसार मलकी स्थितिमें अन्तर होता है।

(१) वायुका प्रकोप होनेसे मल झागमिला, मैले धुएं के रंगका और शुष्क हो जाता है।

(२) पित्तविकारसे हरा-पीला, दुर्गन्धयुक्त, उष्ण और पतला।

(३ कफदोषसे सफेद रंगका, गोला, स्निग्ध और बँधा हुआ।

(४) दो दोषमें दो दोषवाला और त्रिदोषमें मल सफेद या काला-पीला, पतला और गाँठवाला हो जाता है। सन्निपातमें यदि मल अति दुर्गन्धयुक्त, मयूर चन्द्रिकाके समान रंगवाला हो, तो रोगको असाध्य समझना चाहिये।

(५) वातज्वरमें मलावरोध होकर मल शुष्क और काला हो जाता है। पित्तज्वरमें पतला और पीला; कफज्वरमें सफेद चिपचिपा तथा

मधुरामें पतला, पीला और दुर्गन्धयुक्त होता है। जीर्णज्वरमें मल थोड़ा शुष्क और थोड़ा पतला तथा उसका रंग बहुधा मैला रहता है।

(६) प्रदीप्त अग्निवालोंका मल पीले रंगका बँधा हुआ और मन्दाग्निवालोंका पतला होता है। यदि मलावरोध रहता है, तो वह शुष्क काला-सा हो जाता है।

(७) अजीर्णमें मल दुर्गन्धयुक्त और ढीला होता है। तीव्र अजीर्णमें शाकाहारियोंके उदरमें सड़ा होनेसे मल अति दुर्गन्धयुक्त, झागयुक्त पीला-हरा बन जाता है।

(८) अतिसारमें मल पतला और पीले रङ्गका होता है। परन्तु आगे इतर द्रव पदार्थ मिश्रित हो जानेसे रङ्ग हलका हो जाता है। बालकोंके अतिसारमें मलका रङ्ग बहुधा हरा-पीला हो जाता है।

(९) पेचिस होनेसे आम अथवा रक्तयुक्त थोड़ा-थोड़ा मल बार-बार उदर पीड़ा सहित आता रहता है। तीव्र प्रवाहिका और अन्त्रके तीव्र दाहमें मलका रङ्ग चावलोंके धोनेके समान हो जाता है।

(१०) अन्त्रमें व्रण होकर जब कोथ (Gangrene) हो जाता है, तब मलमें सड़े हुए मांसके समान दुर्गन्ध आने लगती है।

जिह्वा परीक्षा।

जिह्वाके देखनेसे विशेषत: कण्ठ, आमाशय और अन्त्रकी अर्थात् पचन संस्थाकी स्थितिका बोध होता है। स्वस्थ मनुष्यकी जीभ गीली, स्वच्छ और आगेके भागमें लाल रहती है। किन्तु अनेक व्याधियोंके हेतुसे इसमें विकृति हो जाती है। जीभकी चौड़ाई, मोटाई, पतलापन, व्रण, वर्ण, गीलापन, शुष्कता और मल आदिसे पचन संस्थाकी स्थिति या व्याधिनिर्णय और साध्यासाध्यताका अनुमान हो जाता है।

मैली जिह्वा—मलावरोध, अपचन, आमाशयप्रदाह, यकृत्प्रदाह, ज्वर, क्षय, आमवात, शीतला, विसर्प, धुमेह, और प्रमेह आदि रोगोंमें

जीभ मललिप्त प्रतीत होती है। उदरशुद्धि और रोगबल कम होनेपर जिह्वा परसे मैल कम हो जाता है।

आशुकारी, अजीर्ण, आशुकारी आमाशय प्रदाह, नूतनज्वर और मलावरोध होनेपर जीभपर पतला सफेद मैल जम जाता है। सविराम ज्वरमें प्रायः खड़िया मिट्टी लगानेके समान पतली तह छा जाती है। तीव्र ज्वरमें कभी-कमी जिह्वपरसे आवरण निकल जाता है (यह शुभ लक्षण है) और फिर नया आ जाता है। आवरण हट जानेपर जिह्वा लाल दीखती है, फिर वहाँ मलकी तह आने लगती है। यह मल आगे और पार्श्व भागसे आरम्भ होकर पुनः निकल जाता है। तीव्र ज्वरमें जिह्वाके आगेके हिस्से और दोनों पर्श्वपर जोभ काँटेदार लाल और पतले मैलवाली दीखती है। आमवातकी तीव्रावस्थामें जीभ सफेद मलयुक्त किन्तु चिकनी मालूम देती है। भोजन अच्छी तरह न चबानेसे तथा ज्वरमें अधिक स्वेद आनेपर लालास्राव कम हो जानेपर जीभपर गाढ़े मैलकी तह जमती है। जो जीभको साफ नहीं करते रहते और पान अधिक खाते हैं, उनकी जीभपर लाल मल जमता रहता है।

मलका वर्ण श्वेत है, जिह्वाके मध्य भागमें मल है तथा किनारी लाल है तो आमाशयादि श्लैष्मिककलामें विकृति मानी जाती है। यदि मलका वर्ण पीला है तो यकृत्‌का विकार माना जाता है।

शुष्क जिह्वा—विषमज्वर, सन्ततज्वर, त्रिदोषज ज्वर, वातज्वर, जीर्ण ज्वर, अजीर्ण, आमाशय विकार, अन्त्र विकार, विषप्रकोप, दाह, विसर्प, शीतला, रोमान्तिका आदि संक्रामक ज्वर, जिसमें रोगी मुँहसे श्वास लेता हो, निद्रानाश, कामला, और फुफ्फुस प्रदाह आदिमें जिह्वा शुष्क और मैली हो जाती है।

जब ज्वर, वृक्क सन्यास या अन्य कारणोंसे मस्तिष्ककी शक्तिका ह्रास हो जाता है, तब जीभ सूख जाती है। इनके अतिरिक्त मद्यपान, अफीम, चरस, गांजा आदिके सेवनसे भी जीभ सूखी रहती है।

आन्त्रिकज्वर (मधुरा) में जिह्वा शुष्क और तेजस्वी भासती है। एवं राजयक्ष्माकी तृतीयावस्थामें भी जीभ नीरस और तेजस्वी प्रतीत होती है। जब जीभ सूखी, खुरदारी और धूसर वर्णकी हो जाती है तथा उसपर मलकी तह छा जाती है तब भी अरिष्टावस्था मानी जाती है।

नीली-काली जिह्वा सन्निपात, सतत ज्वर, राजयक्ष्मा, मधुराकी भयप्रद अवस्था, फुफ्फुसक्रिया विकृति, हृदयविकार, धमनीकोषकाठिन्य, विसर्प, चिरकारी आमाशयप्रदाह, कामला और रक्तपित्तमें जिह्वा मैली-काली या नीली-सी हो जाती है। जीभका सूखी और अधिक काली हो जाना, यह अशुभ लक्षण माना जाता है।

स्थूल जिह्वा—अपचन, अग्निमान्द्य, रक्तभारका ह्रास, प्रादाहिक ज्वर, मस्तिष्क विकार और वातनाड़ियोंकी विकृति होनेपर जीभ मैली और मोटी भासती है।

जिह्वा कम्प—तीव्र ज्वर, अन्त्रक्षत, कम्पवात, मद्यसेवन और अनेक संक्रामक रोगोंमें बोलनेसे जिह्वामें कम्पनसा प्रतीत होता है।

जिह्वा क्षत, भेद और स्फोट—पित्तप्रकोप, शुष्ककास, अम्लपित्त, अन्त्र भेद, मधुमेह, जीर्ण प्रवाहिका, उपदंश, मुखपाक, विसर्प, मदात्यय और क्षारादिके सेवनसे जिह्वापर क्षत हो जाता या जिह्वा फट जाती है। बहुधा अपचन होनेपर भी जिह्वापर क्षत हो जाता है।

जिह्वान्तमें मल भेद—मधुरा आदिकी भयप्रद अवस्थाके पश्चात् जैसा-जैसा रोगबल न्यून होता जाता है (प्रकृति सुधरती जाती है), वैसा-वैसा मलभेद होता जाता है। जिह्वाके पीछेके हिस्सेमें मैलके भीतर सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्र प्रतीत होते हैं।

कठिन जिह्वा—जीभ सहसा कठोर, मोटी, सफेद, शुष्क, गुरु, श्याम, मैलपूर्ण और अचेतना शून्य हो जाय तो वह अरिष्ट चिन्ह माना जाता है। जिह्वा का कठिन लकड़ी जैसी जड़, झागयुक्त और मोटी बन जाना, यह लक्षण मृत्युकालका बोधक है।

मुख परीक्षा ।

वातप्रकोपमें मुँहका स्वाद फीका वा खारा, पित्तविकारमें कड़ुवा और कफवृद्धिमें मधुर हो जाता है, अपचन, आमाशय विकार, कतिपय मस्तिष्करोग तथा पारद, आयोडाइड, खट्टी या कड़ुवी औषधिके सेवनसे मुँहमें लालास्राव बढ़ता है। इनमेंसे आमाशयके पित्तप्रकोपमें प्रायः मुखपाक भी हो जाता है ।

जीर्ण अपचन, तीव्रज्वर तथा प्रमेह आदि रोगोंमें दाँत मैले और शिथिल हो जाते हैं। तीव्र ज्वर अधिक कालतक रहने या रसकपूर प्रधान औषधिका सेवन करनेपर दाँत निर्बल होकर गिर जाते है। इनमें रसकपूरके विषसे मसूढे भी फूल जाते हैं ।

ओष्ठ परीक्षा ।

जिह्वा और मुँहके समान ओष्ठोंकी दर्शन परीक्षा भी रोग निर्णयमें सहायक होती है। अतः उसका संक्षिप्त वर्णन किया जाता है ।

अपचन होनेपर होंठ सूख जाते हैं ।

शीतप्रधान विषमज्वरमें होंठके ऊपरसे त्वचा निकलती रहती तथा ज्वरके अन्तमें होठोंपर छोटी-छोटी पिड़िकाएँ निकल आती हैं ।

शीत अधिक लगनेपर होंठ फट जाते हैं ।

कितनेही ज्वरोंमें रोगी मुँहसे श्वास लेता है, जिससे मुँहमेंसे थूंकका जलीय अंश निःश्वासके साथ होंठ और दाँतोंमें लगा रहता है, फिर वही मलरूपसे जम जाता है ।

क्षयरोगमें होंठ छोटे, मोटे और लाल हो जाते हैं ।

गन्ध-परीक्षा ।

अन्य परीक्षाओंके समान मुँह और देहकी गन्ध-परीक्षा भी रोगविनिश्चयमें सहायक होती है ।

(१) मुँह साफ न करनेसे, दन्तवेष्ट रोग, कृमिदन्तक (दाँतोंमें कृमि होना Caries), ज्वर, मलावरोध, अपचन ज्वरमें अपचन,

पञ्चनेन्द्रियकी विकृति, गलग्रन्थिशोथ, मसूड़ेमें शोथ और प्रमेह रोगमें मुँहमेंसे दुर्गन्ध आती रहती है।

(२) गलग्रन्थिरोग, जीर्ण मलावरोध, ज्वर, ज्वरमें अपचन, पीनस आदि नासारोग, मस्तिष्कमें व्रण होना, उरःक्षत, श्वास-नलिका-विस्तार-युक्त कास, जीर्ण कास, इन रोगोंमें श्वासमें दुर्गन्ध आती है।

(३) शराब, धूम्रपान आदिसे कारणानुरूप मुँह और नाकमेंसे बास निकलती है। इस तरह अफीम, तार्पिन तैल; क्लोरल, विषमथ आदि पदार्थोंसे कारणानुरूप गन्ध आती है। शराब, धूम्रपान और लहसुनका अति सेवन किया जाय, तो प्रस्वेद-युक्त वस्त्रोंमेंसे भी गन्ध निकलती रहती है।

(४) वृकसंन्याससे अर्थात् मूत्रोत्पत्तिकार्यका त्याग हो जानेपर रक्तमें मूत्र-विषकी वृद्धि (यूरेमिया Uraemia) होकर श्वासमें मूत्रके समान दुर्गन्ध आती है।

(५) शरीरमें उष्णता अधिक बढ़नेपर श्वास उष्ण और दुर्गन्धयुक्त चलता है। यह स्थिति ज्यादा दिनतक रहनेसे श्वास-यन्त्र या नासिकाके भीतरकी त्वचा फट जाती है और उसमेंसे रक्तस्राव होने लगता है।

(६) फुफ्फुसकोथ होनेपर मुँह और नाकसे दुर्गन्ध आती रहती है।

(७) कोथ, मधुमेह, मधुरा, इतर तीव्रज्वर तथा कामला रोगोंमें दुर्गन्धयुक्त प्रस्वेद आता है।

(८) मेदवृद्धिवालोंके पसीनेमें दुर्गन्ध अधिक रहती है।

(९) अनेक प्रकारके विष सेवनसे प्रस्वेदमें मूल विषके समान वास आती है।

नेत्र-परीक्षा।

नाड़ी आदि परीक्षाके साथ नेत्रपरसे अनेक व्याधियोंके निर्णयमें सहायता मिलती है। नेत्र बाह्य लक्षणोंके अतिरिक्त आन्तरिक भावोंको भी प्रकाशित करते हैं। उदर्य्याकला शोथ, हृदावरण शोथ, हृदयविकृति तथा

न्यूमोनिया आदि मारक रोगोंमें नेत्रभावी विपत्तिका बोध कराते हैं, और अफीम, धत्तूरा आदि विषप्रकोपको भी स्पष्ट प्रकट कर देते हैं।

इनके अतिरिक्त विविध प्रकार के नेत्र रोगोंकी परीक्षा नेत्रको देखकर की जाती है; परन्तु नेत्ररोगोंकी परीक्षा यहाँ नहीं दी गई क्योंकि उसका विशेष विचार "नेत्ररोगविज्ञान" नामक पुस्तकमें किया गया है।

(१) नेत्र वायु प्रकोपसे टेढ़े, रूक्ष, धूम्रवर्ण, दाहयुक्त और चंचल पित्त-प्रकोपसे पीले, ताम्रवर्ण, दाहयुक्त और चंचलवृत्ति (प्रकाश देखनेके लिये असमर्थ) युक्त कफदोषसे निस्तेज, चिकने, स्रावयुक्त और स्थिर दृष्टिवाले दीखते हैं। सन्निपातमें नेत्र काले या लाल रंगके बैठे हुए तन्द्राच्छन्न प्रतीत होते हैं। न्युमोनियांकी अरिष्टावस्थामें नेत्र लाल और खुले रहते हैं; पुतलियाँ ऊपर चढ़ जाती हैं और श्वास बड़ी आवाजसे चलता रहता है।

(२) जीर्णज्वरके पश्चात् निर्बलता और पाण्डु रोगमें नेत्र निस्तेज हो जाते हैं; तथा नेत्रकी अधोपलकके भीतर देखनेसे रक्तन्यूनताका स्पष्ट बोध हो जाता है।

(३) मस्तिष्कमें रक्त-वृद्धि होना, सूर्यके तापमें फिरना, नेत्रको धुआँ लगना, पित्तप्राधान्य ज्वर; तमाखू, गाँजा, या चरस पीना, नेत्रमें धूल या जन्तु घुस जाना, वमन होना, और दिनमें शयनादि कारणोंसे भी नेत्र लाल हो जाते हैं।

(४) आम प्रकोप होनेसे नेत्रकी पलकें बन्द करनेमें कष्ट होता है।

जीर्ण अजीर्ण, निर्बलता और निद्रानाशमें नेत्रके नीचेका भाग काला-सा हो जाता है।

(६) अधिक अश्रुपात, अधिक पठन, मस्तिष्कमें उष्णता पहुँचना, तमाखू सूँघना, अति पित्तवर्धक भोजन, सूर्यपर त्राटक करना, रात्रिका जागरण, बिजलीकी तेज बत्तीके प्रकाशमें पठन आदि कार्यकरना, स्त्रियोंके मासिकधर्ममें प्रतिबन्ध, पुरुषोंके वीर्यमें उष्णता और पतलापन, विष-

प्रकोप, रक्तविकार, मूत्रावरोध, जीर्ण मलावरोध, बार-बार जुलाब लेना, मोतीझरा, पित्तप्रधान विषमज्वर अधिक दिनतक रहना, सूर्यके प्रखर तापमें खुले पैरसे चलना, शराब तथा धूम्रपान आदि कारणोंसे नेत्रज्योति निर्बल हो जाती है।

(७) शुक्रजनित निर्बलता और मस्तिष्ककी निर्बलतासे दूर देखनेकी दृष्टि मन्द हो जाती है।

(८) राजयक्ष्मा बढ़ जानेपर नेत्र निस्तेज, मैले, सफेद रङ्गके हो जाते हैं; भ्रू की आकृति अधिक गोल हो जाती है या गोलाई न्यून हो जाती है; तथा ग्रीवा लम्बी हो जाती है।

(७) मरणासन्न अवस्थामें नेत्र खड्डेमें घुसे हुए और स्थिर-से दीखते हैं। पलकें खुली हुई, बैठे हुये गाल तथा मुँह भयानक प्रतीत होता है।

स्वप्न परीक्षा।

स्वप्नपरसे अनेक बार रोग होनेकी चेतावनी, रोगका स्वरूप, भावी आपत्ति और मृत्युकी सूचना मिल जाती है। स्वप्नमें २ प्रकार हैं। सत्य और मिथ्या फलदायी। सत्य फल देनेवालोंमें भी दिनके स्वप्न भावी लाभ-हानिरूप फल अल्प देते हैं; और रात्रिके अन्त भागमें आये हुए स्वप्नमें सत्यता अधिक होती है। जिसको पहिले अशुभ स्वप्न आकर फिर शुभ स्वप्न दिखाई देता है; वह शुभ फल ही पाता है।

(१) स्वप्नमें यदि भोजन किया जाता है; तो समझना चाहिये, कि पचन क्रिया अशक्त हो जानेसे अपचन हो गया है। अतः दूसरे दिन लंघन करना चाहिये।

(२) वस्ति मत्रपूर्ण होनेपर या रक्तमें विषवृद्धि होनेपर नदी, तालाब आदि जलाशय दीखना, जलक्रीड़ा करना, जलमें डूबना आदि जल सम्बन्धी स्वप्न आते हैं।

(३) मिर्चा आदि अधिक चरपरे भोजन, पित्तप्रकोप और क्षयरोगमें अग्निके स्वप्न दिखाई देते हैं ।

(४) वातवहा नाड़ियोंमें विकृति होनेपर पक्षीकी तरह उड़कर आकाश मार्गसे गमन करनेके स्वप्न बार-बार आते रहते हैं ।

(५) मानसिक विकार या अधिक मानसिक परिश्रम होनेपर व्यवहारिक नाना प्रकारके व्यर्थ असम्बद्ध स्वप्नमें ही निद्राकी समाप्ति हो जाती है ।

(६) मानसिक पापवृत्तिका परिपाक होनेपर स्वप्नमें नाना प्रकारके कष्टका अनुभव होता रहता है; और पुण्य संस्कार फलोन्मुख होनेपर विविधसुख-सन्तोष देनेवाले स्वप्न आते रहते हैं ।

(७) हृदयकी निर्बलता, मानसिक बलक्षय और महापाप होनेपर बार-बार भयप्रद स्वप्न आते रहते हैं । कचित् पूज्योंका अपमान, गरीबोंको हाय, दुष्ट अन्नका सेवन या दुष्ट कार्यमें प्रवृत्तिका विचार होनेपर भी भयप्रद स्वप्न आ जाता है ।

(८) रोगीको बार-बार यमराज, देवदूत, स्वर्ग-नरक आदि स्थान, अपनी मृत्यु या अमुक सम्बन्धीकी मृत्यु हो गई है, ऐसा स्वप्नमें बोध होनेपर भी उनसे वार्तालाप होना या इतर भावी भय सूचक स्वप्न आते रहते हों, उस रोगीका रोग असाध्य माना जाता है; या मृत्युकालको समीप समझना चाहिये ।

(९) क्षय रोगी यदि स्वप्नमें भैंसे ऊँट, कुत्ते, या गधेपर बैठकर दक्षिण दिशामें गमन करता है; तो वह थोड़े ही दिनोंमें यमराजके गृहका अतिथि बन जाता है ।

(१०) स्वप्नमें जो प्रेतोंके साथ शराब पीता है और जिसको कुत्ते घसीटते हैं, वह थोड़े ही दिनोंमें घोर ज्वरकी पीड़ासे ग्रसित होकर मर जायगा ।

(११) स्वप्नमें जो आकाशको अपने समीपमें लाक्षाके वर्ण सदृश

रक्त वर्णका देखता है, वह रक्तपित्त व्याधिसे पीड़ित होकर अपनी जीवन-यात्राको समाप्त कर देता है।

इस तरहके दुष्ट या सूचना करनेवाले स्वप्नोंपरसे विचारकर भावी आपत्तियोंसे संरक्षण करनेके लिये प्रयत्न या प्रबन्ध करना चाहिये। जैसे स्वप्नमें भोजन करनेपर दूसरे दिन लङ्घन करना चाहिये। मानसिक विकृति जन्य असम्बद्ध क्रिया विषयक स्वप्न आनेपर मनबुद्धिपरसे बोझा कम करके विश्रान्ति लेना चाहिये, इसी तरह मृत्यु सूचक या व्याधि सूचक स्वप्न आनेपर मंगल मन्त्रोंका जप करें या करावें; भावी भयकी सूचना मिले, तो अनुचित प्रवृत्तिको छोड़ दें; और धर्मशास्त्र कथित इतर पुण्य-कर्म करें। रोग सूचक स्वप्न आनेपर अपथ्य आहार-विहारका त्याग कर, हितकर औषधिका सेवन करना चाहिये।

अनुमान परीक्षा।

उपर्युक्त लक्षणोंके अतिरिक्त देश, काल, रोग संप्राप्ति, रोगका हेतु, उपद्रव, रोगकी गति, रोगका बल, रोगीकी जठराग्नि, शारीरिकबल, मानसिक शक्ति, आहार, सात्म्य, रोग बढ़ने-घटनेका समय, वंशगत रोग, बालकके लिये माताको रोग है या नहीं? स्त्री रोगी हो, तो सगर्भा है या नहीं? अधोवायु और मल-मूत्रावरोध है या नहीं? मासिकधर्मके रक्तकी प्रवृत्ति यथा समय यथोचित होती है या नहीं? गर्भाशयमें कष्ट होता है या नहीं? पहिले उपदंश-सुजाकादि रोग हुए थे या नहीं? औषधि कौन-कौनसी सेवन की है? इत्यादि आवश्यक बातोंकी शास्त्र परीक्षा, प्रत्यक्ष परीक्षा, प्रश्न परीक्षा आदिपरसे जो नहीं जाना गया हो; उन बातोंका अनुमानद्वारा ही निर्णय किया जाता है। जब परीक्षाके साधनोंसे भी किसी समय रोग निर्णय न हो सके, तब रोग विनिश्चयार्थ चिकित्सोपयोगी कोई औषधि दी जाती है। फिर औषधि प्रभाव या परिणामपरसे रोग विनिर्णय किया जाता है। ऐसे प्रयोगको डाक्टरीमें थिर्याप्युटिक टेस्ट (Threapeutic test) कहते हैं।

बालक, अज्ञानी; सन्निपात, हिस्टीरिया, मूर्च्छावस्था और उन्माद रोगसे पीड़ितोंके लिये निदान और उपचारसे अनुमानका अधिक आधार लेना पड़ता है। जब अपथ्य सेवन करनेपर भी रोगी मिथ्या कहते हैं, तब अनुमानसे ही निर्णय करना पड़ता है।

कालज्ञान।

जैसे धुँआ देखनेपर अग्निका बोध और बद्दल देखकर वर्षा होनेका बोध होता है; वैसे अनेक शारीरिक और मानसिक विशेष लक्षणोंपरसे मरणकालका ज्ञान होता है।

(१) भरणी और मघा नक्षत्रमें तीक्ष्ण संक्रामक रोग होनेपर एवं सोमवार और पंचमी, गुरुवार और द्वितीया, शुक्रवार और चतुर्थी, इन दिनोंमें रोगोत्पत्ति होनेपर प्रायः रोग रोगीको मार डालता है।

(२) दुष्टवारमें ७ दिन, दुष्ट योगमें २१ दिवस तथा दुष्ट तिथि और नक्षत्र योगमें १ मास पीड़ा भोगनी पड़ती है। यदि तीव्र संक्रामक या संसर्गज ज्वरादि रोगोंकी उत्पत्तिमें वार, तिथि, नक्षत्रयोग, ये सब दुष्ट मिल गये हों; तो बहुधा रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

(३) कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेशा, अनुराधा- शततारका और रेवती नक्षत्रोंमें व्याधि होनेपर ३ से १० दिन तक पीड़ा रहती है। चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, धनिष्ठा और पूर्वा भाद्रपदा नक्षत्रोंमें रोग होनेपर १५ से २० दिन तक दुःख भोगना पड़ता है। पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढा और श्रवण नक्षत्रोंमें रोगोत्पपत्ति होनेपर १–२ मास या दीर्घकालतक बीमारी बनी रहती है।

(४) जिस मनुष्यकी घृत.तैलादि स्निग्ध पदार्थ लगाये बिना बाल और त्वचा तेजस्वी स्निग्ध प्रतीत हो; नेत्र चंचल, स्तब्ध, संकुचित, खड्डेमें गिरे हुए या विकृत हो गये हों भ्रूसंकुचित हो गई हो; नेत्रके बाल गिर

गये हों; तथा नासिका बडी, संकुचित, टेढ़ी, मुडी हुई, फूली हुई या इतर विकार युक्त हो गई हो, वह एक वर्षके भीतर चला जायगा।

(५) स्त्री-समागम करनेसे वीर्यस्रावका समय होनेपर जिसे पेशाब करनेका वेग उत्पन्न हो जाता है, वह १ वर्षके भीतर यमराजके यहाँ चला जाता है। इसी तरह जिसके मल,-मूत्र और अधोवायु, तीनों एक साथ निकलते रहते हों, वह एक वर्षमें मृत्युकी शरण ले लेता है।

(६) नेत्र निरोगी होनेपर जिसको अपना नाक नहीं दीखता; और नेत्रके समीप बालके सदृश या भ्रमर आनेके समान भास होता रहता है, उसकी ६ मासमें मृत्यु हो जाती है।

(७) जिसके आचार-विचारमें अकस्मात् विपरीतता आ जाती है; या स्मरणशक्ति, ज्ञान और क्रिया नष्ट हो जाती हैं, वह ६ मास भी जीवित नहीं रहता।

(८) जिसका स्वर बाँये नासापुटमेंसे अहोरात्र सतत १ मास पर्यंत चलता रहता हो या दिनमें सूर्य स्वर (दक्षिण नासापुटसे श्वासोच्छ्वास होना और रात्रिको चन्द्रस्वर चलता रहे, वह ६ मासमें चला जाता है, एवं सतत अहोरात्र दक्षिण स्वर ही चलता रहे, तो १५ दिनमें ही जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है।

(९) जिसका नासाग्र भाग मुड जाता है और कर्ण गिरजाते हैं, वह थोड़े ही दिनोंमें चला जाता है। इसी तरह गन्ध, रस, स्पर्शका बोध जिसका चला गया हो, वह मरनेके लिये तैयारी कर रहा है।

(१०) रक्ताभिसरण क्रिया जनित आवाज़, जो कानमें उँगलियाँ रखनेपर सुननेमें आती है, वह आवाज़ यदि सुननेमें नहीं आती; तो रोगी ७ दिनमें चला जाता है।

(११) जिह्वा बाहर निकालकर देखनेपर, जिसको जिह्वाका अग्र-भाग नहीं दीखता, वह १ दिनमें ही मर जाता है।

(१२) अपस्मारसे क्षीण हुए रोगीको तीव्र संक्रामक ज्वर आ जाय; तो वह थोड़े ही दिनोंमें प्राण त्याग कर देता है।

(१३) शीतल देह, कण्ठमेंसे कफकी घर-घर आवाज निकलना, थूक कर कफको जो बाहर नहीं फेंक सकता, न कण्ठसे नीचे उतार सकता है, वह १२ घण्टेके भीतर संसारसे चला जाता है।

(१४) जिसकी देहमेंसे अहेतुक मधुर गन्ध या नाना प्रकारके पुष्पोंकी सुगन्ध निकलने लग जाय; और इन्द्रियोंकी शक्ति निर्माल्य हो जाय, वह एक वर्षके भीतर इस संसारका त्याग करेगा।

(१५) जिस रोगीकी दृष्टिमें विपरीत आकृति या वर्ण प्रतीत हो, या सब वस्तुएँ केवल एक ही वर्णको भासें; मेघ रहित आकाशमें मेघ दीखें; या जिसे मेघ रहित आकाशमें विद्युत, वायु या भूत-प्रेत आदिका दर्शन हो अथवा जो असमय बिना पर्व सूर्य और चन्द्रको ग्रसा हुआ (ग्रहण) देखे; वह शीघ्र ही परलोकमें गमन करता है।

साध्यासाध्य लक्षण (Prognosis) *—जिसका मुख तेजस्वी, नाड़ीकी गति समान, मस्तक शीतल, मन चिन्ता रहित, अग्नि प्रदीप्त और छींकें आना आदि लक्षण प्रतीत हो, उस रोगीका रोग साध्य है।

यदि रोगीको देखनेपर मृत्यु लक्षणसे विपरीत लक्षण दृष्टिगोचर हों, दूत सम्बन्धी कुलक्षण या रोगीके पास आनेके समय रास्तेमें कोई अशुभ निमित्त (अपशकुन) प्रतीत न हो; रोगीका बर्ताव, श्रद्धा, वासना, स्वभाव आदिमें परिवर्तन न हुआ हो; तो रोगको साध्य मानें।

जिसके शरीरमें अकस्मात् वर्णभेद हो जाय, स्वरभेद हो जाय, गन्ध

---

* अनियमित या अकस्मात् विकृति लक्षण जो प्रतीत हो, उसीको अरिष्ट (Grave Prognosis) समझें। अनेक लक्षण, जो जन्मसे या दीर्घकालसे दोष प्रकोपसे हो गये हों, उन (उन लक्षण या लक्ष्य निमित्त विकृति) को आयु परीक्षामें प्रमाण रूप न मानें।

विकृत हो जाय, मुखका स्वाद विपरीत हो जाय, स्वाद चला जाय, जिसकी एक आँख बन्द और एक आँख खुली रह जाय अथवा पुतलीमें भ्रम हो जाय, उस रोगीके रोगको असाध्य समझें। जिसके हाथ-पैर ठण्डे, मुँह निस्तेज, बड़बड़ाहट, नेत्र और नाखून अत्यन्त लाल अथवा अत्यन्त पीले, तीक्ष्ण ज्वर (१०६ डिग्रीसे अधिक), कण्ठावरोध, हिचकी, मूर्च्छा आदि उपद्रव हो, मन भ्रमित और शरीर भयंकर दीखे, उस रोगको असाध्य समझें।

जिसकी नाक टेढ़ी और स्वर बन्द होकर मुँहमेंसे जल बहने लगे, वह मर जायगा।

रोगीके चेहरेपर व्यंग, तिल, पिडिकादि अकस्मात् उत्पन्न हो जाय, या देहके एक भागमें प्रसन्नता, दूसरे भागमें ग्लानि; एक भागमें शुष्कता, दूसरे भागमें स्निग्धता, भ्रम और तन्द्रा प्रतीत हो; तो उस रोगीकी मृत्यु हो जायगी।

यदि रोग प्रबल होनेपर रोगीकी जीवनीय शक्ति अति निर्माल्य हो गई हो, फिर निम्न उपद्रवोंकी उत्पत्ति हो जाय, तो रोगको असाध्य समझें।

(१) अफारा और तृषा।

(२) अफारा, शूल और अतिसार।

(३) अतिसार, प्यास और वातज शोथ।

(४) भयंकर अतिसारके साथ श्वास, शिरदर्द, मोह, आटोप और अति कृशता;

(५) रक्त-मांसका क्षय होनेके पश्चात् दोनों मन्या नाड़ियोंको व्यथित करके वायुका मस्तिष्कमें प्रवेश होना।

(६) वाताष्ठीला होकर हृदयमें दारुण वेदना, तथा भयंकर तृषा लगना।

(७) वात प्रकोपसे नाक टेढ़ी और दोनों भवोंका स्थान भ्रष्ट हो जाना, अन्तर्दाह और हिक्का भी हो जाना।

(८) आमाशय और गुदामें कैंचीसे कतरने समान व्यथा और तृषा लगना;

(९) बल, ज्ञान, ग्रहणीकी शक्ति, मांस और रक्त नष्ट हो जाना।

(१०) प्रातःकालसे ज्वर वृद्धि होती हो; तथा शुष्क दारुण कास और बल-मांस विहीनता हो।

(११) गाँठदार मलमूत्रकी प्रवृत्ति, जठरकी उष्णता नष्ट होना और श्वास वृद्धि।

(१२) उदरसे शोथ प्रारम्भ होकर हाथ-पैरपर फैल जाना; (वह दीर्घकाल दुःख भोगकर चला जायगा)।

(१३) दोनो पैरोंपर शोथ, दोनों पिण्डलियोंमें शिथिलता तथा जंघाओंमें तीव्र वेदना होना।

(१४) हाथ, पैर, गुह्य स्थान और उदर, इनपर शोथ, तथा वर्ण बल और अग्नि नष्ट हो जाना।

(१५) कृश और बलक्षीण रोगीको तीनों दोष प्रकुपित होकर भयंकर कष्ट उत्पन्न हो जाना।

(१६) दुर्बल रोगीको ज्वर और अतिसार होकर शोथ या शोथ होकर ज्वरातिसार हो जाना।

(१७) हनुग्रह, मन्याग्रह, तृषा, अत्यन्त निर्बलता और ऊपर-ऊपर श्वास चलना आदि उपद्रव हो जाना।

(१८) दोनों होंठ जामुन जैसे नीले और दाँत काले या नीले हो जाना।

(१९) देह अति कृश हो जाने और आहार अति कम हो जानेपर भी मलमूत्रकी प्रवृत्ति अत्यधिक होते रहना।

इन १९ प्रकारोंमेंसे कोई भी एक प्रकारके उपद्रवकी प्रतीति होनेपर रोगको असाध्य माना जायगा, एवं अति तेज ज्वर (१०६ डिग्रीसे अधिक), प्रलाप, नेत्रमें लाली, शीतल हाथ-पैर, कण्ठावरोध, हिक्का,

शरीर भयंकर [illegible]त होना, मूर्च्छा भ्रम और कम्पादि लक्षण हों, तो रोगको असाध्य मानें।

रात्रिको दाह, दिनमें शीत लगना, कण्ठमें कफकी घर-घर आवाज़, नेत्र लाल, जिह्वा काली, मुँहसे दुर्गन्ध निकलना, अत्यन्त अशक्तता, हितकर औषधिसे भी प्रतिदिन निर्बलता बढ़ना और नये-नये उपद्रवोंकी उत्पत्ति होना, इत्यादि लक्षण प्रतीत होनेपर रोग असाध्य समझें।

शब्दपरीक्षा।

वात प्रकोपमें शब्द कण्ठमेंसे निकलता हुआ और हलका; पित्त दोषमें स्पष्ट; तथा कफ दोषमें जड़ और घरघराहट युक्त होता है। उदर और फुफ्फुस आदिकी व्याधियोंमें बोलनेके समय व्यथा-सी मालूम होती है। वात या पित्त प्रकोप होनेपर प्रलाप बढ़ जाता है। निर्बलता आ जानेपर बोलनेमें परिश्रम पड़ता है। कण्ठशोथ, स्वरयन्त्रशोथ, प्रतिश्याय, कास, कफयुक्त श्वास, क्षय, उपदंश और अर्बुद आदि रोगोंमें आवाज़ भारी हो जाती है। क्षय, उपदंश, अर्बुद या वातवहा नाड़ियोंमें विकार होनेसे यदि स्वरयन्त्र अधिक विकृत हो जाता है, तो स्वरका उच्चारण बिल्कुल नहीं हो सकता। जिह्वाके पक्षाघातमें स्पष्ट उच्चारण नहीं होता, तथा नासावरोध और तालु फट जानेपर उच्चारण नाकमेंसे होता हुआ भासता है।

स्पर्शपरीक्षा।

स्पर्श परीक्षा (पल्पेशन Palpation) से मृदुता, कठोरता, कृशता, शोथ, ज्वर, पीड़ा, उष्णता, शीतलता, शुष्कता और स्निग्धता आदिका बोध होता है। वायु दोषमें शरीर शुष्क और शीतल स्पर्शवाला; पित्त दोषमें उष्ण स्पर्श; तथा कफ प्रकोपमें शरीर चिकना और शीतल प्रतीत होता है। शीतांग सन्निपातमें शरीर बर्फके समान शीतल और अन्तक आदि पित्तप्रधान सन्निपातमें भयंकर गरम रहता है। विषूचिकामें शरीर बाहरसे धीरे-धीरे शीतल होने लगता है, किन्तु गुदामें थर्मामीटरसे

परीक्षा की जाय, तो भीतर १०० से १०२ डिग्री तक उष्णता प्रतीत होती है।

यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, गुल्म, ग्रन्थि, शोथ, मेदवृद्धि, पक्षाघात, जलोदर, व्रणकी पकापक्क अवस्था, उरःक्षत, आध्मान, उरस्तोय, विद्रधि, दन्तवेष्ट और शून्यवात आदि रोगोंमें स्पर्शसे निश्चय होता है।

१०. निजज्वर

वतादि दोष प्रकोपज्वर-बुखार-Febricul A.

निदान—सूर्यके तापका अधिक सेवन, जागरण, अधिक श्रम, ऋतु परिवर्तन, अपथ्य या अत्यधिक आहारका सेवन और अपचनसे आमवृद्धि और मलावरोध होता है फिर रस धातु और वात आदि दोष दूषित होनेपर ज्वर आ जाता है। निर्बल देहवाले ही प्रायः ज्वरसे पीड़ित रहा करते और पुरुषोंकी अपेक्षा युवा स्त्रियां इससे अधिक पीड़ित रहती हैं। इस क्षुद्र ज्वरमें वात, पित्त और कफ दोषोंमेंसे एक या दो के मिश्रित लक्षण अस्पष्ट या स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

लक्षण—अरुचि, क्षुधानाश, अजीर्ण, उदरमें भारीपन, मलावरोध, उबाक, बेचैनी, हाथ पैर टूटना, तन्द्रा आलस्य, मुँह बेस्वादु रहना, शारीरिक उष्णताका १ डिग्री बढ़ जाना और मूत्रमें पीलापन आदि सौम्य लक्षण उपस्थित होते हैं।

क्यचित् शारीरिक उत्ताप २ डिग्री या इससे भी अधिक बढ़ जाता है तब वातप्रकोप लक्षण; पित्तविकृति लक्षण, कफ प्रकोप लक्षण या द्विदोषज लक्षण निम्नानुसार स्पष्ट उपस्थित होते हैं।

१. वातज्वर—कम्प, कभी ज्वर अधिक कभी कम, नाड़ी तेज, कण्ठशोष, निद्रानाश, छींक आनेमें प्रतिबन्ध, शिर हृदय और सारे शरीरमें पीड़ा, मुँहका बेस्वादुपन, मलावरोध, पेशाबमें पीलापन, जिह्वा

कांटेदार, अफारा, उदरशूल और जम्भाई आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

२. पित्तज्वर—१०४° या इससे भी अधिक, पतले पीले दस्त, निद्राका ह्रास, खट्टी और उष्ण वमन, कण्ठ, मुख, नाक और ओष्ठ पक जाना, अति स्वेद, घबराहट, कभी-कभी प्रलाप, मुँह कड़ुवा रहना, तृषा, दाह मल-मूत्रमें पीलापन, शिरदर्द, चक्कर आना, शीतल वायुकी इच्छा होना और अरुचि आदि लक्षण होते हैं। यह ज्वर विशेषतः दोपहरको और मध्यरात्रिमें आता है। शरदृऋतुमें यह ज्वर अत्यधिक आक्रमण करता है।

३. कफज्वर—अंगमें भारीपन, शोत लगना, उबाक, रोंगटे खड़े होना, निद्रावृद्धि, स्वेदस्रावमें प्रतिबन्ध, मल-मूत्रमें रुकावट, शिरमें भारीपन, मुँहमें मीठापन, ज्वर १००° से १०१° तक बढ़ना, जुकाम, शरीर अकड़ जाना, मलके साथ आम गिरना, मूत्रकी अधिकता और मन्द नाड़ी आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

४. वातपित्तज्वर – इस प्रकारके ज्वरमें वात और पित्तप्रकोपके मिश्रित लक्षण प्रतीत होते हैं। तृषा, भ्रम, बेहोशी, निद्रानाश, शिरदर्द दाह, कण्ठशोथ, वमन, रोंगटे खड़े होना, अरुचि, हाथ-पैर टूटना, जम्भाई और चक्कर आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

५. वातकफज्वर—देहमें गीलापन, सन्धियोंमें दर्द, निद्रावृद्धि, देहमें भारीपन, मस्तिष्क जकड़ जाना, जुकाम, खांसी, स्वेद अधिक आना, व्याकुलता, मलमें मैलापन और ज्वरका मध्यम वेग आदि लक्षण होते हैं।

६. पित्तश्लेष्मज्वर—मुँहमें कड़ुवा और चिपचिपापन, तन्द्रा, बेहोशी, कास, अरुचि, तृषा, शिरदर्द, हाथ-पैर टूटना, थोड़े-थोड़े समयमें दाह और ठण्डी होना, ठण्डीके बाद स्वेद आना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यह ज्वर विशेषतः रात्रिके और दिनके अन्तमें आता है।

अधिक परिश्रमसे हरारत आई हो तो वह बहुधा रात्रिको होती है।

अपचनसे ज्वर आया हो, तो उदरमें दुर्गन्ध हो जाती है, फिर उसमेंसे रसका शोषण रक्तमें होनेसे रक्त दूषित बनता है, जिससे कुछ-कुछ दिनोंके अन्तरपर थोड़ी-सी भूल होनेपर बार-बार ज्वर आता रहता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

अपचनजनित ज्वर होनेपर आमाशय और अन्त्र पीड़ित होते हैं, ऐसी अवस्थामें बहुधा उदरमें दुर्गन्ध हो जाती है. अतः शीघ्र ज्वर मुक्त होनेके लिये उपवास सर्वोत्तम साधन है। १ दिन या २-४ दिन लंघन करनेपर दोष जल जाता है, फिर उदरशुद्धि न हुई हो, तो मृदु विरेचन औषधि ले लेवें। आरोग्यवर्द्धिनी कुछ दिनों तक दी जाय या त्रिफलाका सेवन कराया जाय, तो रक्तमेंसे विष नष्ट होकर रक्त शुद्ध बन जाता है। और पचनक्रिया भी सुधर जाती है।

आजकल माताएँ १-१ वर्षके शिशुओंको प्रायः अनाज और घी खिलाना प्रारम्भ कर देती हैं एवं अनेक प्रान्तोंमें गरम-गरम चाय पिलाती रहती हैं। परिणाममें कुछ वर्षोंके बाद (८-१० वर्षकी आयुमें या युवा अवस्थामें) वे मलावरोधसे पीड़ित रहने लगते हैं, ऐसे रोगियोंकी जबतक उदरकी शुद्धि नहीं करायी जायगी, तबतक बुखार नहीं जा सकेगा। अतः पेट कठोर है या नरम, मल शुद्धि हुई है या नहीं, इस बातका निर्णय अवश्य ही करना चाहिये!

यदि यकृत् निर्बल होनेसे दस्त सफेद या मैले रङ्गका और दुर्गन्ध-युक्त होता हो, तो पीपल (वर्द्धमान पिप्पली) का उपयोग भी हितकारक होता है!

जो ज्वरकी सामावस्थामें ही क्विनाइन आदि तीक्ष्ण औषधि देकर ज्वरको नष्ट करनेका उपाय करते हैं, वे रोगीकी रोगनिरोधक शक्तिको अधिक शिथिल कर देते हैं और ऐसे रोगी फिर साधारण कारण उपस्थित होनेपर भी ज्वर पीड़ित हो जाते हैं।

जब क्षुधा प्रदीप्त हो, देहमें लघुता आवे, बेचैनीका अभाव हो,

सरलता-पूर्वक अधोवायुकी प्रवृत्ति हो, तब शमन औषधि देनी चाहिये। बहुत करके १ दिन उपवास करने मात्रसे आम पक जाते और निरामावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है।

उपवास करनेपर जल गरम करके शीतल किया हुआ पिलाते रहें। मुँहका बेस्वादुपन हो, तो १०-२० मुनक्काको कालीमिर्च और नमक लगाकर देवें। यदि आमाशयका पित्त तेज हो गया हो, तो एक नीबूका रस और ३ माशे शक्करको १०-२० तोले जलमें मिलाकर पिला देनेसे पित्त शान्त हो जाता है।

यदि रोगी पहिले दिन जलपर और दूसरे दिन दूध, चाय और मोसम्बीके रसपर रह जाय, तो रोग निरोधकशक्ति सबल बन जाती है। बार-बार ज्वराक्रमण नहीं होता। ज्वर दूर होकर अच्छी क्षुधा लगनेपर तीसरे दिन गेहूँकी रोटी, मूँगकी दाल (चावल खानेवालोंको चावल या खिचड़ी) परवल या चौराईका शाक, पोदीनेकी चटनी, अदरखका अचार, सोंठ, लौंग, दालचीनी आदि मसाला या शरीरके अनुकूल लघु भोजन देना चाहिये। यदि रोगी पथ्य बिगाड़ देता है, तो फिरसे ज्वर आ जानेका भय रहता है।

यदि शरीर अति निर्बल होने और अधिक परिश्रमके हेतुसे हरारत आ जाती हो, तो ऐसी अवस्थामें लङ्घन नहीं कराना चाहिये। उदर शुद्ध है या अशुद्ध यह देखना चाहिये। उदर अशुद्ध, हो तो आरोग्यवर्द्धिनी और त्रिफलेका सेवन कराना चाहिये। उदर शुद्ध हो, तो पौष्टिक औषधि और लघु पौष्टिक भोजन-दुग्ध आदिकी योग्य व्यवस्था करनी चाहिये। रोगीको अधिक परिश्रकसे मुक्त कराना चाहिये। सीलदार मकान हो, तो उसे बदल देना चाहिये।

सूर्यके ताप या उष्णताका अधिक सेवन होनेसे ज्वर आ गया हो तो नींबूका शर्बत जल मिलाकर पिलावें या इमलीका पानक या

आमझोरा पिलावें। इस प्रकारका विशेष उपचार आगे अंशुघात (लू लगनेसे आनेवाले ज्वर) की चिकित्सामें लिखा जायगा।

यदि उदरकृमिके कारण देह निस्तेज हो गयी हो और हरारत बनी रहती हो, तो उदरकृमिको दूर करने का उपचार करना चाहिये।

वात आदि दोषोंकी विकृतिके पूर्ण लक्षण प्रकाशित हुए हों, तो जबतक वे लक्षण शान्त न हो जायँ या सौम्यरूप धारण न कर लेवें (सामावस्था दूर न हो) तब तक लंघन कराना चाहिये

कभी वातज्वर ७ दिनतक, पित्तज्वर १५-२० दिनतक (जीर्णावस्था धारण कर ले, तो ४-६ मास तक), कफज्वर ४—६ दिनतक, द्विदोषज ज्वर ५ से १५ दिन तक रह जाते हैं। कभी इन ज्वरोंमेंसे मधुरा, शीतला, रोमान्तिका आदि ज्वरका रूप धारण कर लेते हैं। इन ज्वरोंकी अस्पष्ट अवस्थामें बलात्कारसे ज्वरको शमन करनेवाली क्विनाइन आदि औषधियाँ नहीं देनी चाहिये, अन्यथा विष धातुओंमें लीन होकर, ज्वर अधिक प्रबल भावसे उपस्थित होता है।

पित्त प्रधान लक्षण होनेपर यदि क्विनाइन दी जायगी, तो रक्त-दबाव वृद्धि, निद्रानाश और घबराहटकी वृद्धि हो जायगी। उदरमें अफारा हो, तो उदरपर एरण्ड तैल लगाकर गरम जलसे सेक करें और पीनेके लिये जल गरम करके शीतल किया हुआ देवें।

जब ज्वर १०२° से अधिक हो तब किसी भी प्रकार के ज्वरमें प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती १-२ घण्टेपर ज्वरशमन होने तक (या ३ बार) शहदके साथ देवें। प्रबल दोष पाचनमें अति सहायक औषधि है, एवं मस्तिष्का रक्षण करती है।

यदि अपचन, आम या कफ प्रकोपके कारण ठण्डी देकर बुखार आया हो, तो ३-३ माशे अजवायन २-२ घण्टेपर २ बार खिलानेपर ठण्डीका बल जल्दी कम हो जाता है। फिर पसीना आने लगता है और बुखार जानेके बाद थकावट भी कम आती है।

ज्वर अधिक दिन रहकर अकस्मात् उतरने लगे, पसीना अधिक आकर शरीरको अति शीतल बना देवे और शक्तिको कम करा दे, तो अजवायनको सेक, चूर्णकर मालिश करनेसे अनुचित ठण्डापन आना रुक जाता है।

ज्वर पित्तप्रधान हो, घबराहट, दाह, तृषा, पसीना आना, पतले दस्त होना, ज्वर १०४° तक हो जाना आदि लक्षण हो, तो ऐसे रोगीके कमरमें उष्णता न हो जाय—यह सम्हालें। आवश्यकतानुसार ताड़, खस या मोरपुच्छके पंखेसे धीरे धीरे हवा करते रहें पर बिजलीके पंखेका तो भूलकर भी उपयोग नहीं करना चाहिये।

भोजन कर लेनेपर तुरन्त ज्वर आ गया हो, तो बलवान् रोगीको नमक मिला निवाया जल या राई मिला जल पिलाकर तुरन्त वमन करा देनी चाहिये।

निजज्वर चिकित्सा

१. धान्यकादि पाचन—धनियां और परवल के पत्ते १-१ तोलेको जौ कुटकर १६ तोले जलमें मिलाकर उबालें आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें इसका २ हिस्सा कर ३-३ घण्टेके अन्तरसे पिला देनेसे आमका पचन होता है, उदरकी शुद्धि हो जाती है, कफ दूर हो जाता है, वातपित्तका अनुलोमन होता और अग्नि प्रदीप्त होती है।

२. नागरादि पाचन—सोंठ, धनियां, छोटी कटेली, बड़ी कटेली और देवदारु, इन पाँचोंको समभाग मिला २ से ४ तोलेका क्वाथकर दो हिस्से करें, दिन में २ बार सुबह और २ बार रात्रिको पिलावें। यह क्वाथ सब प्रकारके नूतन ज्वरोंमें कच्चे दोषोंको पकानेके लिये निर्भय औषधि है। इसके सेवनसे पचनसंस्था शुद्ध और सबल बनती है, इतना ही नहीं बल्कि, फुफ्फुसोंमें कफ संग्रह हुआ हो, तो वह भी बाहर निकल जाता है, एवं रक्तमें प्रवेशित विष जल जाता है।

३. नागरादि कषाय—सोंठ, गिलोय, चिरायता, बेलगिरी, नेत्रबाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और लध, इन ९ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। इसमें से ४ तोलेका क्वाथकर, ४ हिस्से कर दिनमें ४ बार पिलावें।

यह क्वाथ अतिसार युक्त ज्वर होनेपर दिया जाता है। इसके सेवनसे आमका पचन होता है, दूषित मल बाहर निकल जाता है। मल बँधता है, अरुचि, दाह, शिरदर्द और अग्निमान्द्य दूर होते हैं। फिर ज्वर शमन हो जाता है।

४. आरोग्य पंचक—अमलतासकी फलीका गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड़ इन ५ औषधियोंको समभाग मिला, २-३ तोलेका क्वाथ कर दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको पिलावें। पिलानेके समय १-२ माशे निशोथका चूर्ण मिला लेवें। इस क्वाथके सेवनसे अपचन मलावरोध, आमप्रकोप, उदरशूल, अफारा ये सब दूर होते हैं। अग्नि प्रदीप्त होती और ज्वर दूर होता है। यह कच्चे आमका पचन कराता और पक्केको बाहर निकालता है। यह अतिनिर्भय औषधि है।

जिनका कोष्ठ क्रूर हो, थोड़े विरेचनसे उदरशुद्धि न होती हो, उदरमें शूल चल रहा हो। वातकफज्वरके लक्षण प्रतीत होते हों उनके लिये यह अधिक उपयोगी है।

५. गुडूच्यादि क्वाथ—नीम गिलोय, नीमकी अन्तर छाल, नया पद्माख, लाल चन्दन और धनियाँ, इन ५ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथ करें। फिर ४ हिस्सा करें। आवश्यकतानुसार १-२-३ या ४ बार पिलावें।

यह क्वाथ पित्तकफप्रधान ज्वरपर प्रयोजित होता है। जिन रोगियोंको अपचन हो, आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें प्रदाह होनेसे उबाक या वमन आती हो, उनके लिये यह अति हितावह है। इस क्वाथके सेवनसे

विष जल जाता है; कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और पचन क्रिया सुधर जाती है। दाह, उबाक, तृषा, वमन और अरुचि दूर हो जाती हैं एवं प्रस्वेद आकर ज्वर निवृत्त हो जाता है।

६. पंचमूल्यादिकषाय—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, छोटे गोखरू, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इन ९ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर ४ तोलेका क्वाथकर २ हिस्सेकर सुबह और रात्रिको पिलावें।

यह कषाय वात-पित्तशामक, आमपाचन, विषहर और ज्वरघ्न है, वातपित्त प्रधान लक्षण होनेपर कच्चे दोषोंको पकाता है तथा तृषा, दाह, निद्रानाश, शिरदर्द, वमन, हाथ-पैर टूटना, जम्भाई, चक्कर आना आदि लक्षणों सहित ज्वरको दूर कर देता है।

७. पर्पटादि क्वाथ—पित्तपापड़ा, अडूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा और प्रियंगु, इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर ४ तोलेका क्वाथकर आधा सुबह और आधा रात्रिको ३-३ माशे शक्कर मिलाकर पिला देनेसे दाह, शिरदर्द, अति स्वेद आना, मलावरोध, रक्तपित्त और घबराहट सहित पित्तज्वरको दूर कर देता है।

८. आमलक्यादि चूर्ण—आँवला, चित्रकमल, हरड़ पीपल और सैंधानमक इन ५ औषधियोंको मिला, कूटकर ४ माशे निवाये जलके साथ देनेसे अपचन, अरुचि और उदर शूल दूर होते हैं; डकार शुद्ध आने लगती है। उदर साफ हो जाता है। फिर सरलतासे ज्वर शमन हो जाता है।

अजवायन ३-३ माशे और २-२ रत्ती सैंधानमक ३-३ घन्टेके अन्तरसे २-३ बार देनेसे भी अपचन, अरुचि, अफारा, उदरशूल और मलावरोध दूर होते हैं; कीटाणु नष्ट होते हैं, रक्तमें प्रवेशित विष नष्ट हो जाता है; पचनक्रिया सबल बन जाती है और फिर ज्वर स्वयमेव दूर हो जाता है।

९. किरातादि कषाय—चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाठा, खस और नेत्रबाला, इन ८ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर इसमेंसे २ तोलेका आठगुने जलमें क्वाथकर २-४ दिनतक रोज सुबह पिलाते रहनेसे मलावरोध सहित ज्वर दूर हो जाता है। जिन रोगियोंका पेट दीर्घकालसे साफ न होनेसे दुर्गन्धमय रहता हो, उनके लिये यह उपचार अच्छा है।

ज्वर दूर होनेपर कुछ दिनोंतक त्रिफलाका सेवन करानेसे भीतरकी शक्ति सबल बनकर बार-बार ज्वर आना बन्द हो जाता है।

१०. पुनर्नवादि क्षीर—सफेद पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा और बेल-छाल १-१ तोला लेकर जौकूट चूर्ण करें। उसे २४ तोले गोदुग्ध और ९६ तोले जल मिलाकर दुग्धावशेष क्वाथ करें। फिर उसे छान लें। शीतल होनेपर पिला देवें। उस क्षीरके सेवनसे मूत्रद्वारा विष निकलकर ज्वर शमन हो जाता है।

जिन रोगियोंको पहिले सुजाक हुआ हो या वृक्क प्रदाहपीड़ित रहते हों और अधिक क्विनाइन सेवन करके जिन्होंने अपनी क्षमता शक्तिको नष्ट कर दी हों, उन रोगियोंके लिये यह क्षीर भोजन और औषधरूपसे लाभदायक है।

११. लवंगादि कषाय—लौंग १ माशा, कालीमिर्च १ माशे, सौंफ, पोदीना, मुलहठी, सोंठ और गिलोय १-१ तोला मिलाकर ८ गुने जलमें क्वाथकर ३ हिस्से करें दिनमें ३ बार ३-३ माशे मिश्री मिलाकर पिलानेसे आमका पाचन होकर स्वेद आ जाता और वातप्रकोपसे उत्पन्न लक्षण शमन होकर ज्वर दूर हो जाता है।

१२. बनफशादि शर्बत—गुलबनफशा ५ तोले, सौंफ २ तोले, लौंग, लाल चन्दन, मुलैठी गावजवां और खूबकलां ६-६ माशे तथा उन्नाब और मुनक्का ११-११ दाने लेवें। सबको मोटा मोटा कूट, मिट्टी (या चीनी मिट्टी) के पात्रमें रात्रिको १ पाव जलमें भिगो देवें सुबह अर्धावशेष क्वाथ करके छान लेवें। इसमें १ पाव मिश्री मिलाकर

शर्बत बना लेवें। इसमें २-२ तोले शर्बत थोड़ा जल मिलाकर पिलाते रहनेसे तृषा, कण्ठशोष, दाह, शिरदर्द, घबराहट, मूत्रमें जलन आदि लक्षण होते हैं। गर्मीके दिनोंमें यह अति हितावह है। लू लगनेसे जुकाम हुआ हो तो उसे भी दूर करता है।

कटुकादि क्वाथ—कुटकी चित्रकमूल, नीमकी अन्तरछाल, हल्दी, अतीस, बच, कूठ, इन्द्रजौ, मूर्वा और परवलके पत्ते, इन १० औषधियोंको समभाव मिला, जौकूटकर ४ तोलेका क्वाथ करें। फिर २ हिस्साकर सुबह और रात्रिको पिलावें। पीनेके समय कालीमिर्चका चूर्ण ४ रत्ती और शहद ६ माशे मिला लेवें। इस क्वाथके सेवनसे मलावरोध, अग्निमान्द्य, उबाक आदि लक्षणोंसहित कफ ज्वर दूर हो जाता है।

१४. पटोलादि कषाय—परवलके पान, लालचन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाठा और गिलोय इन ६ औषधियोंको मिला, जौकूटकर ४ तोलेका क्वाथ करें। इसमेंसे २ हिस्सा कर सुबह और रात्रिको पिलानेसे मलावरोध, अरुचि, वमन और विषप्रकोपयुक्त पित्तकफज्वरका नाश हो जाता है।

महासुदर्शन चूर्ण—हरड़, बहेड़ा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, कचूर, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल मूर्वा, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, कुड़ेकी छाल, मुलहठी, नागरमोथा, त्रायमाण, नेत्रबाला, पुष्करमूल, नीमकी अन्तरछाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारङ्गी, सुहिंजनेके बीज, फिटकरीका फूला, मीठा बच, दालचीनी, पद्माख, सफेद चन्दन, अतीस, खेरटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी बायबिडंग, तगर, चित्रकमूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, काकोली, श्वेतकमलपुष्प, जीवक, ऋषभक, खस, लौंग बंशलोचन, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र, इन ५३ औषधियोंको समभाग लेवें और सबसे आधा चिरायता मिलाकर कपड़छान चूर्ण करें। इसमेंसे २ से

४ माशे चूर्ण दिनमें ३ बार जलके साथ दें। या ४ से ६ माशे चूर्ण का फाण्ट करके पिलावें।

यह चूर्ण सब प्रकारके पुराने और नये बुखार, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, शीतज्वर, विषमज्वर, धातुगत ज्वर, इन सबको दूर करता है। एवं ज्वरके लक्षण या उपद्रवभूत मन्दाग्नि; अपचन, निर्बलता, शिरदर्द, कास, पाण्डु, हृद्रोग, कामला, कटिशूल आदिको भी नष्ट करता है। यह चूर्ण ज्वर हो तब उतारनेके लिये, न हो तब रोकनेके लिये दिया जाता है। इस चूर्णके उपयोगमें किस जातिका ज्वर है, इस बातके निर्णयकी विशेष आवश्यकता नहीं है। यह चूर्ण बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता, सबको निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं।

ज्वरोंकी उत्पत्ति विशेषतः आमप्रकोप होनेके पश्चात् प्रस्वेदद्वारा विष बाहर न निकनेपर होती है। इस चूर्णसे आमका पचन कोष्ठ-शुद्धि, विषको निर्विष बनाना और प्रस्वेद ग्रन्थियोंका प्रतिबन्ध दूर करना, ये चारों कार्य होते हैं।

जबतक ज्वरकी जातिका निर्णय न हुआ हो, तबतक क्विनाइन आदि उग्र औषधि नहीं दी जाती। ऐसी अवस्थामें इस चूर्णका सेवन करानेमें हानि नहीं होती। मुद्दती ज्वर न हो, तो वह दूर हो जाता है और कीटाणुप्रधान ज्वर हो, तो उसका बल कम हो जाता है। ज्वर हो तो, तब यह उसे उतारनेके लिये और न हो तब, रोकनेके लिये दिया जाता है।

ज्वर अधिक दिनों तक बना रहने या बार बार आता रहनेपर देह निर्बल हो जाती है। फिर धातुओंमें विष लीन हो जाता है। जिससे किसी किसीको मन्द ज्वर बना रहता है, इसे अस्थिगत ज्वर कहते हैं। किसीको रात्रिके समय कुछ हरारत आ जाती है, ऐसी अवस्थामें सुदर्शन चूर्ण ४-६ माशेका फाण्ट बना १ रत्ती कपूर, २ रत्ती शिलाजीत

और ६ माशे शहद मिलाकर दिनमें २ बार दिया जाता है। इस तरह थोड़े दिन सेवन करानेपर धातु शुद्ध होकर ज्वरका निवारण हो जाता है।

१६. लघु सुदर्शन चूर्ण—गिलोय, छोटी पीपल, हरड़, पीपलामूल सफेद चन्दन, कुटकी, नीमकी अन्तरछाल, सोंठ और लौंग, इन ९ औषधियोंको २-२ तोले और चिरायता ५ तोले लेवें। सबको मिलाकर कूट, कपडछान चूर्ण करें। इसमेंसे ३ से ४ माशेतक दिनमें २ वा ३ बार जलके साथ देवें।

इस चूर्णमें महासुदर्शन चूर्णके समान ही गुण है। इसका उपयोग जनतामें महासुदर्शन चूर्णकी अपेक्षा अधिक हो रहा है।

१७. ज्वर केसरी वटी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छ-नाग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा आँवला और शुद्ध जमाल गोटा, इन १० औषधियोंको समभाग लेवें। पहिले पारद गन्धक मिला-कर कज्जली करें। फिर बच्छनाग, जमालगोटा और शेष औषधियोंका कपडछान चूर्ण क्रमशः मिला, भांगरेके रसमें १२ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली ५-७ काली-मिर्चके साथ निगलवाकर ऊपर से १ घूँट जल पिला देवें। बालकोंको सरसोंके बराबर मात्रा देवें।

यह रसायन मलावरोधसे उत्पन्न होनेवाले ज्वरमें प्रयोजित होती है। यह उदरको साफ करती है, आमका पचन करती है, स्वेद लाती है तथा अपचन, उदरशूल, अफारा, उदरकृमि और रक्तमें प्रवेशित विषको दूरकर ज्वरको उतार देता है। सब प्रकारके ज्वरपर यह निर्भय और उत्तम औषधि है।

सूचना—अतिसारवालेको तथा सगर्भाको यह रसायन नहीं देनी चाहिये।

१८. अश्वकंचुकी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाग सोहागेका फूला, शुद्ध हरताल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, कालीमिर्च,

पीपल और शुद्ध जमालगोटा, इन १२ औषधियोंको समभाग लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें। फिर और औषधियाँ मिलाकर भाँगरेके रसमें २१ दिन खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से ४ गोली सुबहको जलके साथ देवें। बालकको आधी गोली या कम मात्रामें, बड़े मनुष्यको दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको देवें।

इस रसायनको अश्वचोली और घोड़ाचोली भी कहते हैं। इस रसायनका उपयोग भारतमें सर्वत्र अनेक रोगोंपर होता है। यह रसायन वातकफ, पित्तकफ और कफ प्रधान ज्वरोंपर प्रयोजित होती है, उदरको शुद्ध करती है, आमका पचन कराती है, कीटाणुओंका नाश करती है तथा उनाक उदरशूल, अफारा, श्वास, कास, तन्द्रा, शीर्षशूल आदि लक्षणों सहित ज्वरको दूर करती है। बालकोंके डब्बारोग, यकृद्-वृद्धि, धनुर्वात, क्षुद्र कुष्ठ (त्वचाविकार) और चूहेका विष आदि रोगोंमें यह व्यवहृत होती है।

१६. प्रवाल पिष्टी—प्रवाल (मूँगे) की लाल अच्छी शुद्ध शाखाओंको कूट कपड़छान चूर्णकर २१ दिन गुलाबजलके साथ खरल कर लेनेपर पिष्टी बन जाती है। खरल करनेके लिये पक्का खरल लेना चाहिये। सामान्य भस्म बनानेका खरल घिस जाता है। इस पिष्टीमेंसे १ से ३ रत्ती दिनमें २ या तीन बार शहद या गिलोयसत्व और शहद अथवा रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

प्रवालपिष्टी क्षय, पित्तविकार, रक्तपित्त, शुष्ककास, श्वास, विषप्रकोप उन्माद, नेत्ररोग, ज्वर, हड्डियोंकी निर्बलता, वमन, उरःक्षत, शुक्रकी उष्णता, जीर्ण सुजाक, सगर्भाकी निर्बलता, बालकोंकी निर्बलता और रक्तप्रदर आदि रोगोंपर लाभदायक है। ज्वर रोगमें शारीरिक उष्णता बढ़नेपर मस्तिष्कका रक्षण करनेके लिये उष्णता कम न हो तब-तक २-२ घण्टेपर २-२ रत्ती शहदके साथ दी जाती है। वमन,

खाँसी, दाह घबराहट, मस्तिष्कमें उष्णता, पसीना अधिक आना, तृषा अधिक लगना, शीर्षशूल, निद्रानाश, प्रलाप और चक्कर आना आदि लक्षण उपस्थित हुए हों, तो प्रवालपिष्टीसे वे सब शमन हो जाते हैं।

यह पिष्टी बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता आदि सबके लिये निर्भय और हितावह औषधि है। सब प्रकारके ज्वरोंमें मस्तिष्कके रक्षण और आम विषको जलानेके लिये उपयोगी है।

२०. मृत्युञ्जय रस—शुद्ध हिंगुल २ तोले, शुद्ध बच्छनाग, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सोहागाका फूला और पीपल, ये सब १-१ तोला लेवें। फिर सबको मिला अदरखके रसमें ३ दिन खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से ३ गोली तक अदरखके रस या जलके साथ दिनमें २ या ३ बार देवें। यह रसायन सब प्रकारके कफज और वात कफज नये बुखारोंको दूर करती है। जुकाम, कास, सारा अङ्ग टूटना आदि लक्षण होनेपर यह दी जाती है।

यह रस कफघ्न और स्वेदल है। अन्त्रस्थ मल और आमका पचन कराता है। विषको स्वेद और मूत्रद्वारा बाहर निकालकर ज्वरका निवारण करता है।

सूचना—सूखी खाँसी हो, तब यह रसायन नहीं देनी चाहिये। एवं अति तृषा, दाह, अति स्वेद, घबराहट और ज्वर १०२° से अधिक हो, तब भी यह रसायन नहीं देनी चाहिये।

२१. महाज्वरांकुश रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, तीनों १-१ तोला, धतूरेके शुद्ध बीज ३ तोले, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, तीनों २-२ तोले लेवें। पहिले पारद गन्धक मिलाकर कज्जली करें। फिर बच्छनाग मिलावें। पश्चात् शेष औषधियोंका कपड़छान चूर्ण मिला, अदरख और नीबूके रसमें ६-६ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली अदरखका रस और शहद या जलके साथ दिनमें ३ बार देवें।

यह रसायन, वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर, द्वन्द्वजज्वर, त्रिदोषजज्वर, विषमज्वर, इन सबपर प्रयोजित होती है। यह वेदनाशामक, स्वेदल, आमपाचक और ज्वरघ्न है। यह अपचन, पतले दस्त होना, उदरमें पीड़ा होना, अफारा, हाथ-पैर टूटना, शिरदर्द, सूखी खांसी आदि लक्षणों सहित ज्वरको दूर करती है।

२२. सूतशेखर—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, सुहागेका फूला, शुद्ध वच्छनाग, सुवर्ण भस्म, ताम्र भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धतूरेके शुद्धबीज, दालचीनी, तेजपात, नागकेसर, छोटी इलायचीके दाने, बेल-गिरी, शंखभस्म और कचूर, इन १७ औषधियोंको समभाग मिला भांगरेके रसमें २१ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

भांगरेके रसको अच्छी तरह छान लेना चाहिये। अन्यथा स्थूल अंश मिलकर औषधिका वजन बहुत बढ़ जाता और फिर गुण कम हो जाते हैं।

इन गोलियोंमेंसे १ से २ गोलीको पर्पटादि क्वाथ, दूध-मिश्री या शहदके साथ दी जाती हैं। पित्तशमनार्थ प्रवालपिष्टी और गिलोय सत्व भी मिला दिया जाता है। यह उत्तम शामक, विषहर, ज्वरनाशक, और हृद्य रसायन है। पित्तज्वर, मधुरा, सूतिकाज्वर, सगर्भाका ज्वर, वातपित्त प्रधान सन्निपात, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, आक्षेपकवात, हैजेमें नाड़ियाँ खिचना, गर्भपातके पश्चात् झटके आना, पित्तप्रधान सिरदर्द, वातप्रकोपज शीर्षशूल, चक्कर आना, अतिसार, संग्रहणी, पित्तप्रकोपज शुष्ककास, आमाशय विकारसे उत्पन्न हिक्का और उदावर्त आदि अनेक रोगोंपर यह निर्भय और श्रेष्ठ औषधि है। यह बालक, युवा वृद्ध, स्त्री और पुरुष, कुमारी, सगर्भा, और प्रसूता, सबके लिये उपकारक है।

जब पित्तप्रकोपज ज्वर अधिक तेज हो तब सूतशेखरके साथ मुक्तापिष्टी या प्रवालपिष्टी या कामदुघा मिलाकर गिलोयसत्व और शहदके साथ सेवन करानेपर तुरन्त लाभ पहुँचता है।

पथ्यापथ्य—नये बुखारमें लंघन कराना हितावह है। किन्तु बालक सगर्भा, वृद्ध और निर्बलोंको अधिक निर्बलता न आ जाय, इस तरह सम्हालपूर्वक लंघन कराना चाहिये। सामान्यतः ज्वर निराम बनकर क्षुधा लगनेपर यवागू, पेया आदि अन्न या दूध, मोसम्बीका रस आदि देना चाहिये। अन्नकी अपेक्षा गोदुग्ध और मोसम्बीका रस अधिक हितावह है। गोदुग्ध और मोसम्बीके रसका पचन जल्दी होता है। यकृत् और अन्त्रको कष्ट नहीं पहुँचता एवं इनसे जो मल बनता है, उसमें दुर्गन्ध उत्पन्न नहीं होती। इनके विपरीत अन्नके पचनमें यकृत् और अन्त्रको पित्त और रस देना पड़ता है; तथा उस अन्नमें स्वभावतः न्यूनाधिक दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है।

रोगियोंको दूध देना हो, वह दूध गौका होना चाहिये। इस दूधको १-२ उफाण आवे उतना गरम कर लेवें फिर ठण्डा करके पिलावें। दोपहरके लिये दूध रखना हो, तो सुबह दूध गरम होनेपर तुरन्त कलई-वाले बर्तनमें डाल देवें। जिससे ऊपर मलाई आ जायगी, जो दूधका रक्षण करती है और उसे जल्दी बिगड़ने नहीं देती।

सूचना—दूधको अधिक समयतक उबालकर गाढ़ा न करें। अन्यथा वह पचनमें भारी हो जाता है। यदि शहरकी गायका दूध हो, तो उसमें थोड़ा जल मिला ३-४ उफाण आनेतक उबालना चाहिये।

यदि मलमें दुर्गन्ध हो और मलका रंग सफेद हो या मल कच्चा हो (जलमें डालनेपर तलेमें बैठ जाता हो) तो रोगीको अन्न बिल्कुल नहीं देना चाहिये। अन्यथा ज्वर अनेक दिनोंतक कष्ट पहुँचायेगा।

जिन रोगियोंको दूध, मोसम्बीका रस अनुकूल न रहे या अन्न देनेकी आवश्यकता मानी जाय उनको ज्वर निराम बननेपर लघु पौष्टिक अन्न थोड़े परिमाणमें देवें। पचन क्रिया सबल न बने तबतक मांसका सेवन नहीं कराना चाहिये। इस तरह नये सामज्वरमें घीका भी निषेध किया गया है। सामान्यतः पुराना साँठी और शालि चावल, मूँग, मसूर, चने, कुलथी

और मोठका यूष, गेहूंका दलिया, परवल, कच्चे केले, पोई, बेंगन, करेला, सुहिंजनेकी फली, ककोड़ा, कच्ची मूली, सोंथकी भाजी, चौलाई, बथुवा, पुनर्नवाके पान, चूका, गिलोयका पान, तोरई, लौकी, मीठी तुम्बी लहसुन हींग आदिका शाक, होम, अदरख, कालीमिर्च, पोदीना, जीरा, धनियां, सैंधानमक, हल्दी, लौंग, अजवायन, दालचीनी आदि मसाला, नीबू, पके मीठे आम; कैंथ, आंवले और अनार आदिमेंसे पथ्य योजना करनी चाहिये।

जिन रोगियोंको मुंहमें छाले हों, आमाशयमें खट्टा पित्त हो, भोजन करनेपर उदरमें भारीपन आ जाता हो, छातीमें और कण्ठमें दाह होती हो, उन रोगियोंको चावल नहीं देना या कम देना चाहिये। इसी तरह ऐसे रोगियोंको कुलथी भी नहीं दी जाती।

अपथ्य—ज्वरावस्थामें पूर्व दिशाकी वायु या खुली तेज वायुका सेवन, सूर्यके तापमें घूमना, परिश्रम करना, चढ़ते बुखारमें भोजन, कसैले स्वादवाली औषधियोंका सेवन, तैलकी मालिश, ठण्डे जलका सेवन स्नान, मैथुन, क्रो करना और मानसिक चिन्तायें, ये सब हानिकर हैं। इनसे आग्रहपूर्वक बचना चाहिये।

११. त्रिदोषजज्वर।

त्रिदोषज ज्वर—सन्निपात—Sever Toxamia or Septicemia or Pyaemia.

इस ज्वर के लक्षण भेदसे अनेक प्रकार होते हैं। इस ज्वरकी उत्पत्ति वात, पित्त, कफ, तीनों धातु दूषित होनेपर होती है। फिर भी जिस दोष विकृतिके लक्षण अधिक प्रबल हों, उसकी प्रधानता मानकर चिकित्साकी जाती है। आचार्यों ने भिन्न-भिन्न दोषकी प्रधानता अनुसार भिन्न-भिन्न नाम निम्नानुसार दिये हैं।

क्रमांक	रोगसंज्ञा	दोषप्राधान्य	परिपाक दिन	साध्यासाध्यता
१.	शीतांग	कफ	१५	असाध्य
२.	तन्द्रिक	वात	२५	कष्टसाध्य
३.	प्रलापक	पित्त	१४	असाध्य
४.	रक्तष्ठीवी	,,	१०	,,
५.	भुग्ननेत्र	,,	८	,,
६.	अभिन्यास	वात	१६	,,
७.	जिह्वक	पित्त	१६	कष्टसाध्य
८.	संधिक	वात	७	साध्य
९.	अन्तक	पित्त	१०	असाध्य
१०.	रुग्दाह	,,	२०	अतिकष्टसाध्य
११.	चित्तविभ्रम	वात	२४	कष्ट साध्य
१२.	कर्णक	पित्त	३०	,,
१३.	कण्ठकुब्ज	,,	१३	,,

१. शीतांग—देह अति शीतल रहना, श्वासावरोध, कफकास, हिक्का, बेहोशी, मंद प्रलाप, मन्द-मन्द आवाज, घबराहट, वमन, अतिसार, दाह, थकावट आदि लक्षण होते हैं। यह कफप्रधान सन्निपात है।

२. तन्द्रिक—रात-दिन तन्द्रामें पड़ा रहना, तृषा, अतिसार, घबराहट, श्वास, कास, दाह:, जिह्वा श्याम, कठोर और कांटेदार; कानसे कम सुनना और कण्ठमें कफकी घर-घर आवाज होना आदि लक्षण हैं। इसके कई एक लक्षण इन्फ्लुएञ्जामें मिलते हैं।

३. प्रलापक—इसका वर्णन अलग किया गया है। डाक्टरोंमें इसे टाइफस संज्ञा दी गई है।

४. रक्तष्ठीवी—इसका वर्णन अलग फुफ्फुसप्रदाह (निमोनिया) में किया गया है।

होकर रक्तमें शोषित हो जाता है विष जितना अधिक शोषित होता है, उतना ही लक्षण भी उग्र होता है।

चिह्न—रक्त परीक्षा करनेपर रक्त पतला और काला प्रतीत होता है। प्लीहा बढ़ जाती और मुलायम हो जाती है। सामान्यतः सूक्ष्म रक्त ग्रन्थियोंमेंसे विशेषतः पतली श्लैष्मिक कलामें रक्तस्राव होता है, फिर धमनियोंकी दीवार दूषित हो जाती है। वृक्क और अन्य इन्द्रियोंपर श्याम शोथ आता है।

सार्वाङ्गिक लक्षण—वेपन, स्वेद, उत्ताप ९७° से बढ़कर १०५° तक। कुछ समयतक उत्ताप बढ़ना, फिर घटना, नाड़ी लघु, मुलायम और द्रुत, पचनसंस्थाकी विकृतिसे जिह्वा कांटेदार, बहुधा शुष्क जिह्वा, अग्निमान्द्य, मलावरोध स्थिति गंभीर बननेपर अतिसार, निर्बलतावृद्धि होनेपर प्रलाप, रक्ताणुओंके नाशसे पाण्डु, प्लीहावृद्धि, सन्धिस्थानोंमें शोथ और मृदुता, किन्तु दर्दका अभाव, त्वचापर कभी कभी रक्तके धब्बे हो जाना, कभी मूत्रमें शुक्रग्रथिन (एल्ब्युमिन) आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

यदि अपचनजनित विकार हो, तो ज्वर, शिरदर्द, तृषा, वमन, आमाशय और अन्त्रकी उग्रता, मांशपेशियोंकी क्षीणता और शक्तिपात आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि दूषित भोजनसे बने हुये विष (Food poisoning) से वनस्पति कीटाणु उत्पन्न होकर रक्तमें शोषित हो जाते हैं, तब लगभग मधुराके सदृश लक्षण प्रतीत होते हैं। इस प्रकारकी स्थिति थोड़े समय तक रहती है।

यदि विषप्रकोपसे वृक्क प्रभावित होते हैं, तो भी मधुराके सदृश लक्षण भासते हैं। विशेषतः शिरदर्द और दोनों वृक्कोंमें तीक्ष्ण वेदना उपस्थित होती है। जिह्वा मोटी और मललिप्त भासती है। वेपन, शीत और स्वेदावस्था आती है। तीव्र आक्रमण हो, तो

विषमज्वरके लक्षण उपस्थित होते हैं। (किन्तु इस प्रकारपर क्विनाइन कभी नहीं देना चाहिये)

(२) पूयज ज्वर

निदान—पायीमियामें पूयका केन्द्र स्थान देहके किसी न किसी भागमें रहता है। पकी हुई विद्रधि, मज्जाप्रदाह (Ostedomyeltis), मध्यकर्णप्रदाह, उपान्त्र विद्रधि (Appendicitis), सड़ा हुआ संधिस्थान (Septic arthritis) आदि इसके कारण होते हैं। यकृत् या अन्न रसवाहिनीपर विद्रधि या क्षत हुआ हो तो उसके द्वारा विष फैलता है। बाह्य विद्रधि हो, तो उससे सम्बन्धवाली शिरा द्वारा तथा हृदावरणप्रदाहज विष हो, तो धमनी द्वारा रक्तमें प्रवेशित होता है।

सार्वाङ्गिक लक्षण—उक्त सेप्टीसिमियाके सदृश वेपन, शीत और अति स्वेद। इस रोगमें दिनमें कई बार ज्वर चढ़ता है। १-२ दिनके भीतर नेत्र और देह निस्तेज हो जाते हैं। प्राय: अविराम ज्वरके सदृश लक्षण प्रकाशित होते हैं। अति तृषा, क्षुधानाश, उबाक, वमन, अतिसार, तन्द्रा, द्रुतनाड़ी, द्रुत श्वास, श्वासोच्छ्वाससे नासापुट प्रसारित होना, ज्वर १०५° से १०७° तक बढ़ जाना, संधिस्थान प्रसारित और वेदनामय और रूक्ष त्वचा आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

विष प्रबल होनेपर रोगी कृश हो जाता है। रक्त धीरे धीरे जलता रहता है। मृत्युके पहिले मुखमण्डल अति निस्तेज और कृश प्रतीत होता है। मनोवृत्ति विकृत हो जाती है। कभी कभी मन्द मन्द प्रलाप होता है। कभी आक्षेप होता है। कभी क्षणिक मूर्छा आती है।

इस प्रकार में लक्षण सबल बननेपर श्वासकृच्छ्रता, कास, रक्तमय थूक, फुफ्फुसावरण में द्रवोत्पत्ति, हृदयावरणप्रदाह, दर्दमयप्लीहावृद्धि, रक्तमेह और मस्तिष्कगत विद्रधि आदि उपस्थित होते हैं।

शिराविद्रधिजन्यज्वर हो, तो जानुसंधिपर कुछ शोथ होता है। चलनेमें कुछ अधिक वेदना, जिह्वा सफेद और मोटी हो जाना, शिरदर्द, शीत वेपनसहित ज्वराक्रमण, उत्ताप १०१° से १०२° तक बढ़ना, नाड़ी की गति १२० से १३० तक हो जाना और शेष लक्षण ऊपर कहे अनुसार प्रतीत होते हैं।

सन्निपात चिकित्सोपयोगी सूचना।

आचार्योंने सन्निपातकी चिकित्साको मृत्यु के साथ लड़ाई करना लिखा है, इसकी चिकित्सामें लङ्घन, बालुकास्वेदन (आज-कल रबरकी थैलीमें गरम जल भरकर स्वेदन करना। नस्य (वर्तमानमें विविध औषधियोंकी वाष्पको फुफ्फुसमें पहुँचाना—Inhalations). निष्ठीवन (मुँहमें रसौषध धारण करा बार-बार थूकने की क्रिया कराना), उद्धूलन (अतिस्वेद को रोकनेके लिये अजवायन आदिकी मालिश), अवलेहन (औषध चटाना) और अंजन आदि उपचार आवश्यकतानुसार किये जाते हैं।

आमका पचन और दूषित कफका ह्रास कराने के पश्चात् पित्तप्रकोप और वातप्रकोपको शमन करना चाहिये, एवं जबतक दोष साम हो, कच्चे हों, तबतक लंघन कराना चाहिये। लंघन ३ से १० दिनतक कराया जाता है।

उदरमें मल भरा हो तो, एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी देकर उसे तुरन्त दूर करना चाहिये, इस तरह रोज सुबह पिचकारी देकर बृहदन्त्र और गुदनलिकाको साफ करते रहना चाहिये, आवश्यकता हो तो अमलतास, निसोथ मेंग० कार्ब० या अन्य विरेचन देकर उदरको शुद्ध कर लेना चाहिये क्योंकि उदर अशुद्ध रहनेपर कभी रक्त शुद्ध नहीं होगा और रक्त विषमय रहनेपर कभी ज्वरका निवारण नहीं होगा।

यदि पूयोत्पत्ति हो रही हो तो तुरन्त उसका उपचार करना चाहिये। अन्यथा उपचार करते हुए भी रोग प्रबल हो जायगा।

वात और कफप्रकोप लक्षण सबल हों, तो स्वेदन करें। श्लेष्म प्रकोपमें शुष्क सेक और वातप्रकोपमें स्निग्ध सेक करना चाहिये अथवा रबरकी थैलीसे सेक करें। श्लेष्माको दूर करनेके लिये और श्वसनसंस्थाको सबल बनानेके लिये आज-कल लोहबानके अर्कका नस्य नीचेलिखे अनुसार कराया जाता है।

लोहबानका अर्क (Tr. Benzoic Co.) १ ड्रामको १० छटाँक उबलते हुए जलमें मिलाकर सूंघावें। इसके लिये विशेष प्रकारका पात्र आता है; उसे अंगीठीपर रखते हैं, एवं उसमेंसे निकली हुई नलीसे बाष्प सूंघाते हैं।

नेलसनका बाष्पयन्त्र (Nelson's inhalor) चीनी मिट्टीका सुराही जैसा होता है। उसका उपयोग विशेष होता है। कभी प्राणवायु आॅक्सिजन) का ही श्वसन कराया जाता है, जिसके लिये आॅक्सिजन सिलिन्डरका उपयोग किया जाता है।

बेहोशी हो तो उसे दूर करनेके लिये निम्न अञ्जनरस या अन्य तीक्ष्ण अञ्जन किया जाता है।

अञ्जनरस—पारद, गन्धक, लोहभस्म और पीपल १-१ तोला तथा शुद्ध जमालगोटा १२ तोले लेकर २१ दिनतक नीम्बूके रसमें खरल करके वर्ति बना लेवें। इस वर्तिको नींबूके रस या जलमें घिसकर अञ्जन करनेसे बेहोशी दूर होती है।

कफसे कण्ठावरोध हो, तो त्रिकटु और सैंधानमकको अदरखके रस और शहदमें मिला मुँहमें भर-भरकर बार-बार थूकनेकी क्रिया करायी जाती है। अधिक अशक्त होनेपर और आसन्न मृत्युकालमें रोगी थूकनेकी क्रिया नहीं कर सकता, ऐसी अवस्थामें श्वसनक्रियामें प्रतिबंध होता है, उस समय जिह्वाको दबाकर रूईके फायेसे कण्ठमें लगे हुए कफको पोंछ देना पड़ता है।

कभी-कभी उदरमें वायु भर जाता है, जो सरलतासे नहीं निकलता, जिससे रोगी अति पीड़ित होता है अतः उसे बाहर निकालनेके लिये वायु निःसारक नलिका (Flatus Tube) को वेसलीन लगाकर गुदद्वारमें प्रवेश करावें। वायु निःसारक नलिकाके शिरेपर छेद होता है और मोटी होती है। जिसे प्रवेश करानेपर वायु सरलतासे बाहर निकल आता है। यदि गुदनलिकामें मल भरा रहनेसे वायु न निकलता हो, तो पहिले मलको निकाल डालना चाहिये।

रोगी बालक हो, तो ग्लिसरीनकी वर्ति (सपोजिटरी) गुदामें चढ़ाकर मलशुद्धि करा लेनी चाहिये।

ज्वर १०४° से अधिक बढ़ जाय, तब मस्तिष्कका रक्षण करनेके लिये मस्तिष्कपर शीतल जलकी पट्टी या बर्फकी थैली रखें।

किसी स्थान विशेषमें रक्त दूषित हो तो जलौकाद्वारा या सिंगी लगवाकर उसे निकाल डालना चाहिये।

त्वचा, वस्त्र, वायु और मकानकी शुद्धिका परा लक्ष्य रखें। देहको गीलेवस्त्रसे पोंछें तथा आग्रहपूर्वक स्वच्छताका पालन करें।

मूत्रमार्गमें विकृति हो, तो मूत्रविरेचन औषधि देवें। पुनर्नवादि क्वाथ, काली अनन्तमूलका फाण्ट, यवक्षार, शिलाजीत और अनन्तमूलका फाण्ट मूत्रजनन है। शिलाजीत दोषको सुखानेवाला है। यवक्षार और केलेका क्षार मूत्र प्रतिबन्धको दूर करनेमें सहायक होतेहैं अतः यदि मूत्रावरोध हो, तो छोटे गोखरुके क्वाथमें शुद्ध शिलाजीत और जवाखार मिलाकर पिलावें। उक्त क्वाथ से भी मूत्रावरोध दूर न हो तो, रबरकी नली (कथेटर) लगाकर संग्रहीत पेशाबको बाहर निकाल लेवें।

शारीरिक उष्णता अधिक बढ़ी हुई हो, तो बकरीके दूधकी मालिश करें, अथवा कपूर, सफेद चन्दन और नीमके पानोंको मट्ठेमें पीस, चटनी बनाकर लेप करें।

नाक या मुँहसे रक्तस्राव हो, तो मिश्री मिले अनारके फूलोंका रस, १०-१० बूँद नाकमें डालें तथा चन्द्रकला या सूतशेखर रसका सेवन करावें। अथवा अड़ूसेका रस २ तोलेको ६ माशा शहदमें मिलाकर पिला देवें।

जिह्वा फट गई हो या मुँह बेस्वादु हो गया हो तो, किशमिस या मुनक्काको शहदमें पीस, थोड़ा घी मिलाकर जीभपर मालिश करें; यदि जीभमें जड़ता आ गई हो तो, त्रिकटु, आँवला, सैंधानमक और तैल या घी मिलाकर मालिश करें या पहिले कही हुई थूकनेकी क्रिया करावें। रूक्षता आई हो तो, सनायके चूर्णको शहदमें मिलाकर मालिश करनेसे काँटे और रूक्षता दूर हो जाती है और जिह्वा मुलायम बन जाती है।

शरीर अति शीतल हो गया हो, तो हाथ, पैर और पार्श्वभागमें गरम जलसे भरी हुई बोतल या रबरकी थैली रखें।

अति प्रस्वेद आ रहा हो, तो भूनी अजवायनका चूर्ण या भूनी कुलथी या भूने चनेके आटेसे मालिश करें।

निद्रानाश हो गई हो, तो पैरोंके तलमें कांसीकी कटोरीसे घीकी मालिश करें। भांगको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करें। घी या एरण्ड तैलको काँसीकी थालीमें काँसीकी कटोरीसे घोटकर अञ्जन करें।

एक औषध देनेके थोड़े समय बाद ही उससे विरोधी दूसरी औषधि नहीं देनी चाहिये; अन्यथा कष्टमें वृद्धि हो जायगी।

कोष्ठमें शूल चलता हो, तो तार्पिन तैलकी धीरे हाथसे उदरपर मालिश करें, आवश्यकता पर आध घन्टे बाद; तथा पार्श्वशूल हो तो उस पर सेंक करें; हृदयशूल होने पर अधिक सेक नहीं करना चाहिये।

तन्द्रा होनेपर—अञ्जनरस अथवा मैनसिल और वचको लहसुनके रसमें घिसकर अञ्जन करनेसे तुरन्त तन्द्रा दूर हो जाती है।

हिचकी होनेपर मोरपंखके चन्दलोंकी भस्म १-१ रत्ती हालोंके क्वाथके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार देवें या सर्पकी हड्डियोंकी भस्म ४-४ रत्ती जलके साथ २-२ घण्टे पर २-३ बार देवें; शास्त्रीय हिक्कान्तक रस भी इसके लिये उत्तम औषधि है।

निद्रानाश हो तो मुगलाई एरण्डके फलको लेकर घीकी बत्तीपर सेक, ऊपरसे छिल्का दूरकर पीस लें और उसमें ३ रत्ती कस्तूरी मिला, उसमेंसे थोड़ा-सा अञ्जन करें. इससे प्रलाप शमन होकर शान्त निद्रा आ जायगी। यदि १ घण्टेमें प्रलाप शमन न हुआ हो तो, पुनः अंजन करें।

शिरः शूल हो तो घिया (लौकी) के बीजोंकी गिरी ५ तोले और कलमी शोरा २ तोले मिला बकरीके दूधमें पीसकर ब्रह्मरन्ध्रके बालोंको साफकर लेप करें, लेप सूखनेपर उसे निकाल पुनः नया लेप करें, इस तरह ३-४ बार लेप करनेपर शिरःशूल शमन हो जाता है।

कर्णमूल अर्थात् कानोंकी जड़के पास गाँठ हो जाय तो उसपर सेक करें या आगे लिखा गाढ़ा लेप करें। इतनेसे भी शोथ दूर न हो तो जलौकाद्वारा रक्तमोक्षण करा देवें, फिर भी कदाचित् पाक न होने लगे तो पकानेके लिये पुल्टिस आदि क्रिया करें, पश्चात् मलहम लगाकर विद्रधि अनुसार चिकित्सा करें।

रास्ना, सोंठ बिजौरेकी छाल, चित्रकमूल, दारुहल्दी और अरणीकी छाल, इनको जलके साथ पीसकर बार-बार लेप करनेसे कर्णमूल बैठ जाती है अथवा हल्दी, कूठ, इन्द्रायण, सैंधानमक, देवदारु और हिंगोटके मूलको आकके दूधमें पीसकर निवायाकर लेप करनेसे कर्णमूल बैठ जाता है तथा बच्छनागको नीबूके रसमें घिसकर दिनमें ५-६ बार लेप करते रहनेसे कर्णमूलका रक्त फैल जाता है।

आज-कल आयोडिनमिला वेसलीन (आयोडेक्स) मसलनेका रिवाज है, इससे भी सरलतापूर्वक रक्त फैलकर गाँठ बैठ जाती है।

सन्निपात चिकित्सा।

वातप्रधान सन्निपात—कस्तूरी १ माशा, केशर, लौंग, जायफल और पीपल ६-६ माशे मिला, अदरखके रसमें ६ घण्टे घोटकर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। फिर १-१ गोली अदरखके रस और शहदके साथ २-२ घण्टेपर २-३ बार या दिनमें २-३ बार देनेसे वातप्रकोपज लक्षण—तन्द्रा, बेहोशी, प्रलाप, घबराहट आदि दूर होकर रोग शमन हो जाता है।

शास्त्रीय प्रयोगोंमें कस्तूरीभैरव, कालारि रस और लक्ष्मीनारायण रस विशेष प्रयोजित होते हैं। यदि रोगी अधिक बेहोश हो गया हो, तो हेमगर्भपोटली रस लगभग १-१ रत्ती अदरखके रसमें घिसकर १-१ घण्टेपर २ बार चटानेसे होश आ जाती है।

१. कस्तूरीभैरव रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्धबच्छनाग, सोहागेकाफूला, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, कपूर और कस्तूरी, इन ९ औषधियोंको समभाग लेवें। कस्तूरीको छोड़ शेष औषधियोंको ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिनतक खरल करें, फिर कस्तूरी मिला ३ घण्टे नागरबेलके पानके रसमें खरल करके आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें; इसमेंसे २ से ३ गोली दिनमें २-३ बार जल या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

यह रसायन ज्वरकी तरुणावस्थामें आमपाचन और ज्वर निवारणार्थ दी जाती है। आम पचनार्थ अदरखके रस और शहदके साथ देनी चाहिये। मधुरा, प्रलापकज्वर, वातप्रधान सन्निपात, कफप्रधान सन्निपात, सूतिका ज्वर इन सबपर, यह रस दिया जाता है। यह रस प्रसूताके धनुर्वात, कम्प, दाँत भिंचजाना, श्वास, कास और हृदयावरोधको सत्वर दूर करता है तथा हिस्टोरिया, अपस्मार, उन्माद, और मूर्च्छामें मस्तिष्क को शान्त रखता और हृदयको सबल बनाता है।

२. कालारि रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कालीमिर्च, सोहागेका फूला और जायफल, ये ५ औषधियाँ ५-५ तोले, शुद्ध बच्छनाग, धत्तूरेके शुद्ध बीज और अकरकरा ३-३ तोले, लौंग ४ तोले और पीपल १०

तोले लेवें। पहिले कज्जली करें। फिर अन्य औषधियां मिलाकर कैर (करीर) और अदरखके रसमें २-२ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बनावें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनभ में २ या ३ बार गरम जल या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें। अनुपानरूपसे अर्कादि क्वाथ और तगरादि क्वाथ विशेष हितावह पाया गया है।

यह रसायन सन्निपातमें उत्पन्न श्वास, कास, हिक्का और प्रलाप आदि लक्षणोंका शमन करनेमें बहुत उपयोगी है। यह वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें हितकर है। यह आमका पचन, उदरका शोधन और विषका नाशकर रोगको सत्वर काबूमें ले आता है।

पित्तोल्बण सन्निपात—सूतशेखर और तगरादिकषाय (प्रलापक ज्वरमें लिखा हुआ) अति हितावह है, एवं निम्न लिखित परुषकादि क्वाथ भी लाभ पहुचाता है।

३. **परुषकादिक्वाथ**—फालसा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, कायफल, लालचन्दन, पद्माख, कुटकी और पृष्टपर्णी, इन १० औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें, इसमेंसे ६ तोलेका क्वाथ कर, फिर उसके ३ हिस्से कर, दिनमें ३ बार पिलानेसे पित्तप्रकोपज लक्षण—तृषा, दाह, मूर्च्छा, उत्तापाधिक्य, स्वेदाधिक्य, घबराहट, मलावरोध, और तीक्ष्ण प्रलाप आदि दूर हो जाते हैं।

कफोल्बणसन्निपात—इस सन्निपातपर शास्त्रीय औषधियोंमेंसे समीरपन्नग रस, शीतभंजी रस, संचेतनी वटी, त्रैलोक्य चिन्तामणि रस और कालकूट रस, ये विशेष प्रयुक्त होते हैं। समीरपन्नग रस कफको सत्वर बाहर निकालकर तेजी ला देता है। शीतभंजीरस पचनसंस्थाको शुद्ध करने, शीतको दूर करने, दूषित कफको बाहर निकालने और धीरे-धीरे रोगीकी शक्तिको बढ़ानेमें श्रेष्ठ है। संचेतनी वटी अति शिथिलता आई हो, तो उसे दूर कर देती है। यदि हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क आदिमें अधिक निर्बलता आकर शक्तिक्षय हो गई हो, नाड़ी अति मन्द हो गई

हो, तो ऐसी अवस्थामें त्रैलोक्यचिन्तामणि देनेसे दूषित लक्षण दूर होकर शक्तिका संरक्षण होता है। देह अति शीतल हो गया हो और नाड़ी अति मन्द हो गई हो, तो ऐसी अवस्थामें कालकूट रस देनेसे आध घण्टेके भीतर नाड़ी सुधरकर रोगी सचेत हो जाता है।

वातपित्तप्रधान सन्निपात—इसपर सूतशेखर और पञ्चमूल्यादि-क्वाथ प्रयुक्त होता है।

वातकफप्रधान सन्निपात—इसपर शास्त्रीय औषधियाँ—त्रैलोक्य-चिन्तामणि, समीरपन्नग रस, त्रिभुवनकीर्ति रस और संचेतनी वटी आदि विशेष व्यवहृत होती हैं। एवं सरल औषधियोंमें निम्न अर्कादि और कट-फलादिक्वाथ अति हितावह माने गये हैं।

४. **त्रैलोक्यचिन्तामणि रस** रससिन्दुर हीराभस्म, सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म, ताम्र भस्म, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, मुक्ता भस्म शंख भस्म, प्रवाल भस्म, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसिल, इन १३ औषधि-योंको समभाग मिला, चित्रकमूलके क्वाथमें ४ दिन खरल करें, फिर आकके दूध, निर्गुण्डीका क्वाथ, जमीकन्दका रस, और थूहरके दूधमें क्रमशः ३-३ दिन खरल करें, फिर शुद्ध पीली कौड़ियोंके भीतर भर, आकके दूधमें मिले सोहागेसे मुँह बन्द करें। फिर कौड़ियोंको सरावमें भर, संपुट कर, कपड़ मिट्टी करें, सूखनेपर गजपुट अग्नि दें फिर स्वाँग शीतल होनेपर कौड़ियांसहित पीस लेवें; फिर सबके समान रससिन्दूर, रस-सिन्दूरसे चौथाई हिस्सा वैक्रान्त भस्म मिला, सुहिंजनेकी छालके क्वाथकी ७, चित्रकमूलके क्वाथकी २१, अदरखके रसकी ७ और बिजौरेके रसकी ७ भावना क्रमशः देवें, तत्पश्चात् शुष्क चूर्ण बना, चूर्णसे चौथाई चौथाई हिस्सा सोहागेका फूला, शुद्धबच्छनाग और कालीमिर्च मिलावें, तथा लौंग, सोंठ, हरड़, पीपल, जायफल प्रत्येक बच्छनागके चतुर्थांश मिला, बिजौरेके रस और अदरखके रसकी १-१ भावना देकर, आध-

आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से ४ गोली शहद, पीपल, अदरखके रस अथवा सोंठके क्वाथ और गुड़के साथ देवें।

यह रसायन अति दिव्य औषधि है। अग्नि, बल, तेज और वीर्यको बढ़ाता है। विषको हरण करता है, कीटाणुओंको नष्ट करता है। आमका पचन करता है। श्लेष्मप्रधान ज्वर, वातश्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा), श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया), सन्निपात आदिपर प्रयोजित होता है। कास, क्षय, श्वास, हृदयशूल; वातविद्रधि, पाण्डु, शूल, ग्रहणी, प्रमेह प्लीहा, जलोदर, अश्मरी, भगंदर, कुष्ठ आदि रोगोंमें यदि कफकी प्रधानता है, तो यह रसायन उसे दूर कर देता है।

५. समीरपन्नग—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोमल मैनसिल और हरताल, प्रत्येक १०-१० तोले मिलाकर कज्जली करें। फिर तुलसीके रस या घीकुंवारके रसकी ३ दिन तक भावना देवें। उसे आतशी शीशीमें भरकर ५०-६० घण्टे तक अग्नि देनेसे शीशीके गलेमें काला, तेजस्वी और कठोर समीरपन्नग तैयार हो जाता है। इसमेंसे आधसे १ रत्तीतक दिनमें २-३ बार नागरबेलके पान या अदरखके रस और शहदके साथ देवें। श्वासावरोध हो तो कफस्राव करानेके लिये वासाके पान, मुलहठी, बहेड़ा, भारंगी और मिश्रीके क्वाथके साथ देवें।

यह रसायन सन्निपात और न्युमोनियामें घबराहट, संधिवात, उन्माद, कास, श्वास, ज्वर और जुकामको दूर करती है। उपदंश या सुजाकसे उत्पन्न संधिवात, रक्तविकार, त्वचारोग, जीर्णपक्षाघात आदि उपद्रवोंपर यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

६. त्रिभुवनकीर्ति रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्धबच्छनाग, सोंठ, काली-मिर्च, पीपल, सोहागेका फूला, पीपलामूल, जीरा और सौंफ इन सबको समभाग मिला, तुलसी, अदरख और धतूरेके रसकी ३-३ भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें

२ बार अदरखके रस और शहदके साथ या अन्य रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

यह रसायन, ज्वरघ्न, कफहर, स्वेदल और वेदनाहर है। सब प्रकारके वातज्वर, कफज्वर, वातकफज्वर और विषमज्वरको दूर करता है। रोमान्तिकामें भीतरका विष बाहर निकालनेके लिये अन्य औषधिके साथ वह व्यवहृत होता है। इन्फ्लुएञ्जापर इसका उपयोग बहुत अच्छा होता है। निमोनियामें भी कफप्रकोपका ह्रास करानेको दिया जाता है।

७. **संचेतनी गुटिका**—सोंठ, पीपलामूल, बायविडंग, चित्रकमूल, दालचीनी, तेजपात, जावित्री, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध कुचिला, मल्ल भस्म, ताम्र भस्म और कस्तूरी, इन सबको समभाग मिला १२ घण्टे भांगरेके रसमें खरल कर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली निवाये जलके साथ ३-३घण्टेके अन्तरमें दिनमें ३-४ बार देवें।

यह रसायन बेहोशी दूर करनेमें अति उपयोगी है। मरता हुआ रोगी भी एक बार होसमें आ जाता है। कफ, आम, विष और वातप्रकोपको यह वटी तत्काल दूर करती है। हृदयकी गतिको उत्तेजना देती है और तीनों दोषोंको सम बनाती है।

८. **अर्कादि क्वाथ**—आकके मूलकी छाल, धमासा, देवदारु, चिरायता, रास्ना, निर्गुण्डीके पान, बच, अरनीकी छाल, सुहिंजनेकी छाल, चित्रकमूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अतिविष, और भांगरा, इन १६ औषधियोंको समभाग लेकर जौकुट चूर्ण करें। इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथ कर ३ हिस्साकर २-२ घण्टेपर ३ बार पिलानेसे तन्द्रा, आक्षेप, धनुर्वात, शीत, श्वासप्रकोप, कफप्रकोप, दाँत मिचजाना, पसीना अधिक आना आदि दूर होते हैं। छातीमें संगृहीत कफ सरलतासे बाहर निकलता है। यदि स्वेद न आता हो, तो स्वेद लाता है। यह वातनाशी उत्तेजक कफघ्न, उष्ण और उत्तम प्रभावशाली क्वाथ है।

९. कटफलादि क्वाथ—कायफल, नागरमोथा, बच, पाठा, पुष्कर-मूल, जीरा, पित्तपापड़ा, देवदारु, छोटी हरड़, काकड़ासिंगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारंगी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, रोहित घास और धनियाँ इन १९ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमेंसे ३ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्सा करें। फिर ३-३ घण्टेपर ३ बार पिलावें। पिलानेके समय १ रत्ती भुनी हींग, ६ माशे शहद और ३ माशे अदरखका रस मिला देवें।

इस क्वाथके सेवनसे कफवातज लक्षण—कफप्रकोप, स्वरभेद, हिक्का कर्णमूलशोथ, गलेकी सूजन आदि गलेके सब विकार और खांसी दूर होती है।

पित्तकफोल्वण सन्निपात—इस प्रकार शास्त्रीय अश्वकंचुकी रस, कफका शमन करनेके लिये शीतभंजी रस और हरताल रसायन आदि उपकारक हैं।

१०. शीतभंजी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, शुद्ध बच्छनाग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन ७ औषधियोंको समभाग मिला चित्रकमूलके क्वाथकी ३, अदरखके रसकी ७ और नागरबेलके पानके रसकी ३ भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली अदरखके रस और शहद या निवाये जलके साथ दिनमें २ बार देवें।

यह रसायन कफज्वर, शीतांग, सन्निपात, विषमज्वर आदिको दूर करता है। शीतको १५-२० मिनटमें ही दूरकर शरीरमें गरमी उत्पन्नकर देता है। सतत रहनेवाले ज्वरोंमें उष्णताका शमन करके शरीरको शीतल बनाता है। यह उत्तम पाचन औषधि है। अपथ्य या विरुद्ध औषधिसे बिगड़े हुए ज्वरपर इस रसायनका प्रयोग करनेपर विकारको जल्दी शमन कर देता है।

११. हरताल रसायन—तपकिया हरतालका चूर्ण कर अभ्रकके २ पत्रोंके बीच फैला, दोनों पत्रोंको बन्दकर गोबरीकी निर्धूम अग्निपर रखें। ३-३ मिनटपर ३ बार पलटनेसे माणिकके समान हरतालका रंग हो जाता है। साफ रंग होनेपर अग्निपरसे उतार लेवें। शीतल होनेपर माणिक रस निकाल लेवें। इसमेंसे १-१ रत्ती जुकाम और कफज ज्वरमें नागरबेलके पानके साथ देवें। कुष्ठ और रक्तविकारमें गोघृत या शहदके साथ देवें। ऊपर खैरकी छालका क्वाथ पिलावें।

यह रसायन वातश्लेष्मज्वर, विषमज्वर, सन्निपातमें कफप्रकोप, श्वास, कास, हृदयावरोध, गलतकुष्ठ, वातरक्त, भगंदर, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, उपदंश, व्यचो, भयंकर क्षत और त्वचारोगादिको दूर करता है।

१२. पर्पटादि कषाय—पित्तपापडा, कायफल, कूठ, खस, रक्त-चन्दन, नेत्रवाला, सोंठ, नागरमोथा, काकडासिंगी, और पीपल, इन १० औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। इसमेंसे ६ तोलेका क्वाथकर ३ विभागकर दिनमें ३ बार पिलानेसे तृषा, तन्द्रा, कास थोड़े समयमें गर्मी और थोड़े समयमें ठण्डी आना, फिर पसीना आना, संधि-स्थानोंमें पीड़ा होना और कफ प्रकोप आदि लक्षणोंसह पित्तकफोल्वण सन्निपात शमन हो जाता है।

वात-पित्त-कफोल्वणसन्निपात—इस प्रकारमें तीनों दोषोंके लक्षणोंकी प्रधानता रहती हैं। इनमें शास्त्रीय औषधियां—शीतभंजी रस, हेमगर्भपोटली रस और संचेतनीवटी व्यवहृत होते हैं।

१३. हेमगर्भपोटली रस—शुद्ध पारद ४ तोले, शुद्ध गंधक, २ तोले, सुवर्ण भस्म १ तोला, ताम्र भस्म ३ तोला और समीरपन्नग रस ६ माशे लें। सबको मिला, घीकुवाँरके रसमें ७ दिनतक खरल करें, फिर पोटली (शिखराकार गोली) बनाकर सुखावें; इन प्रत्येक पोटलीको पृथक्-पृथक् नये रेशमी कपडेमें दृढ़ बाँधें, फिर एक साथ कपडेमें रख, डोरेसे बांधकर हाँडीमें दण्डा गन्धक इतना भरें कि गन्धक पिघलनेपर उसमें

पोटली डूब जाय फिर कपड़ेकी बत्तीको तैलमें भिगोकर उससे गन्धकको ताप देवें लगभग आध घण्टेमें गन्धक पघलनेपर औषधिका पाक होने लगता है। १ घण्टातक उसे पकावें। पश्चात् पोटली निकाल लेवें। शीतल होनेपर खोलकर गरम जलसे धो लेवें और ऊपर लगी हुई गन्धकको चाकूसे खुरचकर साफ कर लेवें। इसमेंसे चौथाई रत्तीसे १ रत्तीतक पानी या अदरखके रसमें घिसकर २-२ घण्टेपर २-४ बार देवें।

यह रसायन अतिशय तीव्र और उष्णवीर्य है। इस रसायनसे अनेक असाध्य और मृत्युमुखमें प्रवेश करनेके लिये तैयार हुये रोगियोंको जीवनदान मिला है। न्युमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा और अन्य सन्निपातोंकी बेहोशी या अन्तिम दशामें शरीर शीतल होनेपर यह प्रयोजित होता है। श्वास बढ़ जाता है, नाड़ी अति मन्द और क्षीण हो जाती है, तन्द्रा, कपालपर शीतल स्वेद, हाथ-पैर शीतल होना आदि लक्षण होनेपर यह रसायन तत्काल कार्य करता है।

१४. योगराज क्वाथ—सोंठ, धनिया, भारंगी, पखाख, लाल-चन्दन, पटोलपत्र, नीमकी अन्तरछाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी, खिरैंटी, मिश्री, कुटकी, नागरमोथा, गजपीपल, अमलतासका गूदा, चिरायता, गिलोय, दशमूल और छोटी कटेली इन ३० औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। कोई कोई चिकित्सक चिरायता दुगुना लेते हैं। इनमेंसे ६ तोलेका क्वाथकर ३ हिस्सा करें। क्वाथको दिनमें ३ बार पिलानेसे सब प्रकारके लक्षण शमन होकर सन्निपात दूर हो जाता है।

१५. काश्यादि क्वाथ—कालाजीरा, पुष्करमूल, एरण्डमूल, त्राय-माण, सोंठ, गिलोय, दशमूल (१०), कचूर, काकड़ासिंगी, धमासा, भारंगी, पुनर्नवा, इन २१ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। इसमेंसे ३ तोले चूर्णको १५ तोले गोमूत्रमें मिला, अर्धावशेष क्वाथ करें। फिर इसके ३ विभागकर ३-३ घण्टेपर ३ बार पिलावें या ६

तोलेका जलमें क्वाथकर ३ हिस्सा करें। फिर ३-३ घण्टेपर देवें। साथमें १-१ छटांक गोमूत्र पिलाते रहें, तो सब नाड़ियोंकी शुद्धि होकर घोर अभिन्यास सन्निपात दूर हो जाता है।

अतिसार होनेपर निम्नलिखित उशीरादि क्वाथ या कुटजादि कषायका सेवन कराना चाहिये।

१६. **उशीरादि क्वाथ**—नेत्रबाला, खस, नागरमोथा, धनिया, कच्चे बेलफल, मजीठ, धायके फूल, लोध और सोंठ, इन ९ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूटकर चूर्ण करें। इसमेंसे ४ तोलेका क्वाथकर उसका ४ हिस्साकर दिनमें ४ बार पिलावें।

यह क्वाथ दीपन, पाचन है। ज्वर में उत्पन्न आम, उदरशूल, अतिसार, और रक्तातिसारको दूर करता है। यदि इस क्वाथसे २ दिनमें मल न बंध जाय, तो निम्नलिखित कुटजादि कषाय देवें।

१७. **कुटजादि कषाय**—कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी और पृष्टपर्णी, इन ७ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर ४ तोलेका क्वाथकर ४ हिस्साकर मिश्री और शहद मिलाकर ३-३ घण्टेपर पिलावें, यह क्वाथ मलको बांधता, आमका पचन और पित्तकफज अतिसारको शीघ्र शमन करता है।

१८. **कर्णमूलशोथहर मलहम**—अलसी २ तोले, सिन्दूर ३ माशे, कपूर १ माशा और एक अण्डेकी जर्दी लेवें। अलसीके आटेको १५-२० मिनट तवेपर सेक लेवें, किन्तु शुष्क न होने देवें। फिर सिंदूर, कपूर अण्डेकी जर्दी मिलावें; पश्चात् कुछ बूँदें गरम जलकी मिला, मलहम जैसा बनाकर पट्टीपर लगाकर गांठपर लगा देवें। आवश्यकतापर १२ घण्टे बाद पुनः नयी पट्टी लगावें। २-३ बार इसकी पट्टी लगानेसे शोथ शमन हो जाता है।

जीर्ण सन्निपात चिकित्सा।

योग्य चिकित्सा न होने या पथ्यमें भूल होनेपर सन्निपात जीर्णरूप

धारणकर लेता है। और रोगीको १-२ मासतक दुःख देता रहता है। ऐसे समयपर रक्त आदि धातुओंमें लीन विषको जलानेवाली औषधि दी जाती है। यदि मलावरोध नियमपूर्वक रहता हो, तो विरेचन प्रधान औषधि देनी पड़ती है। शास्त्रीय प्रयोगोंमें लक्ष्मीनारायण रस, गदमुरारि रस और जयमंगल रस इसके लिये उत्तम औषधियां हैं। लक्ष्मीनारायण रस लीन मलको पचन कराता है; शारीरिक शक्तिका संरक्षण करता है और ज्वरको निर्विघ्नतया उतार देता है। यदि पचनसंस्थामें दूषित आम बनता रहता हो, तो गदमुरारि रसका सेवन कराया जाता है। मन्द मन्द ज्वर रहता हो, शरीर अति कृश और निर्बल हो, तो जयमंगल रस देना चाहिये।

१९. लक्ष्मीनारायण रस—शुद्ध हिंगुल, अभ्रक भस्म, शुद्ध गंधक, सोहागेका फूला, शुद्धबच्छनाग, निर्गुण्डिके बीज, अतीस, पीपल, कुड़ेकी छाल और सैंधानमक, इन १० औषधियोंको समभाग मिला, दन्तीमूल और त्रिफलाके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लें। इनमेंसे १ से २ गोलीतक अदरखके रस और शहदके साथ दिनमें दो बार देवें।

यह रसायन आन्त्रिक ज्वर दुष्ट ज्वर, तथा सन्निपात, जीर्ण सन्निपात, विषमज्वर सूतिकारोग, बालकोंके आक्षेपसहित ज्वर, वातप्रकोप, शूल और अतिसार आदिको दूर करता है। यह रसायन उत्तम ज्वरघ्न, स्वेदल, पाचक, सेन्द्रिय विषकी नाशक, कीटाणुहर और हृद्य है। हम इसका नये वातप्रधान सन्निपात, बिगड़ते हुए जीर्ण सन्निपात, मधुरा, मुद्दती ज्वर, सूतिकारोग, बालकोंके आक्षेप आदि रोगोंपर बार-बार उपयोग करते रहते हैं। यह निर्भय और श्रेष्ठ रसायन है।

२०. गदमुरारि रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध मैनसिल, लोह-भस्म, अभ्रकभस्म, और ताम्र भस्म प्रत्येक १-१ तोला तथा शुद्ध बच्छनाग ३ माशे लेवें। पहिले पारद गन्धककी कज्जली करें, फिर शेष औषधियाँ

मिला, अदरखके रसमें १२ घण्टे खरलकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली दिनमें २ बार अदरखके रस या तुलसीके रस अथवा निवाये जलसे देवें।

यह रसायन आमप्रधान जीर्णज्वरोंको शमन करती है, यकृतको बलवान बनाती है और आमको धीरे धीरे जलाती है। रस, रक्तादि धातुओंके परिपोषण क्रमको सुधारती है। धातुओंमें लीन विषको जलाती है और शनैःशनैः सब दृढ़ विकारोंको दूरकर ज्वरको शमन कर देती है।

२१. **जयमंगल रस**—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागाका फूला, ताम्र भस्म, वंगभस्म, सुवर्णमाक्षिक भस्म, सैंधानमक, सफेदमिर्च, लोह-भस्म और रौप्य भस्म, ये १० औषधियाँ १-१ तोला और सुवर्ण भस्म २ तोले लेवें। पहिले पारद, गंधककी कज्जलीकर, शेष औषधियाँ मिला, धतूरेका रस, हारसिंगारके पत्तोंका रस, दशमूल क्वाथ और चिरायतेके क्वाथकी क्रमशः ३-३ भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २-३ बार जीरेके चूर्ण और शहदके साथ या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

यह अति दिव्य औषधि है। धातुओंमें विष लीन होनेसे दृढ़ हुये ज्वरमें यह अति हितावह है। यह कीटाणुनाशक, विषघ्न, मस्तिष्कपोषक और ज्वरहर है। हम अनेक वर्षोंसे इसका प्रयोग करते रहते हैं। हजारों रोगियोंको इसने जीवनदान दिया है। बिगड़े हुये ज्वरोंमें शीतल या उष्ण औषधि सहन नहीं होती, ऐसी अवस्थामें यह रसायन अपना प्रभाव तत्काल दर्शाती है। बालक, वृद्ध, युवा, प्रसूता और सगर्भा आदि सबको निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं।

१२. विषमज्वर (Malaria)

यह काफी प्राचीनकालसे सुप्रसिद्ध रोग है। आयुर्वेदके प्राचीनतम ग्रन्थोंमें भी इसका वर्णन मिलता है, यह ज्वर अनियमित समयपर आता

रहता है। इसमें रोगीको कभी ठण्ड और कभी गरमी लगती है और यह अधिक समयतक बना रहता है या अनिश्चित समयतक बार-बार उलट-उलट कर आता रहता है। इसके वेगकी शक्ति और समयमें हर समय काफी अन्तर रहता है। इस प्रकार प्रत्येक बातमें इस ज्वरमें "विषमता" रहती है अतः इसका नाम "विषमज्वर" दिया गया है।

यह ज्वर विशेषतः भारतके समान उष्णकटिबन्धके देशोंमें होता है। उष्णता, अन्धकारवाले मकान आर्द्रस्थान, गन्दी नालियां, बन और झाड़ी आदि इस विषमज्वरकी उत्पत्तिके सहायक हैं।

उत्पत्तिका कारण:—आज यह भली-भाँति प्रगट हो चुका है कि, इस ज्वरकी उत्पत्ति एक विशेष प्रकारके प्राणी-कीटाणु, जिसे प्लेसमोडियम (Plasmodium) कहते हैं, और जो मच्छरोंके दंशद्वारा मनुष्य शरीरमें प्रवेश करते हैं, उनके विषद्वारा यह ज्वर उत्पन्न होता है।

कीटाणुवाहक मच्छर—जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, विषमज्वरके कीटाणुओंका वहन मच्छर करते हैं। मच्छरोंकी अनेक जातियाँ हैं। इनमेंसे "नामक मच्छरों" से विषमज्वरकी उत्पत्ति होती है। इस मच्छरकी दो जातियां भारतमें मिलती हैं। ये मच्छर सामान्यतः १-२ माइलतक उड़ सकते हैं, परन्तु वायु कभी इनको १०-१० माइलतक भी घसीटकर ले जाती है। इन मच्छरोंका बल दिनकी अपेक्षा रात्रिमें बहुत बढ़ जाता है।

सृष्टिके अखण्ड नियमानुसार इन मच्छरोंमें नर और मादा दो भेद होते हैं। इनमेंसे नर वनस्पतियोंका रस चूसकर जीवन निर्वाह करते हैं। अतः ये मनुष्योंकी आबादीके स्थानमें न रहकर जंगलमें रहना ज्यादा पसन्द करते हैं, इनको ग्रामीण जनता डांस कहकर पुकारती हैं। ये क्वचित नगर या ग्राममें भी आते हैं तो भी काटते नहीं हैं। इनसे विषमज्वरके संक्रमणका कोई भय नहीं रहता परन्तु, मादा मच्छर रक्त पीनेकी अधिक इच्छुक होती हैं, इसलिये मानवके साथ ही नगरों और

ग्रामोंमें निवास करती हैं। दिनके समयमें तो प्रायः रक्त चूसनेके लिये आनेकी इसकी हिम्मत नहीं होती, परन्तु घरके अन्धेरे भाग, काले कपड़े, गन्दे स्थानोंपर छिपे रहते हैं। और ज्योंही रात्रिका आगमन होता है और मनुष्य दिनभर परिश्रम करनेके पश्चात् निद्रा माताकी गोदका सहारा लेना चाहते हैं कि, ये दुष्ट प्रकृतिवाली उनका रस चूसनेका कार्य आरम्भ कर देती हैं।

पहिचान—अन्य प्रकारका मच्छर जब बैठता है तो अपना पीछेका भाग भी दिवारको लगा देता है, परन्तु इस प्रकारका मादा मच्छर अपना पीछेका भाग ऊपर रखता है और उसके पिछले भागमें आगेकी ओर एक सूंडके समान बाल जैसा भाग लगा रहता है। प्रत्येक मच्छरके ६ पैर, सूंड, मुँह, २ आंखे, मूँछ २ भाग और दो पंख होते हैं। पीछेकी तरफ इनका उदर होता है। सूंड इन्जैक्शन लगानेकी सूईके समान पोली होती है, यह जिसे मनुष्यकी त्वचामें घुसेड़कर मनुष्यका रक्त चूस लेती हैं।

जब मादा मच्छर विषमज्वरसे पीड़ित किसी रोगीको काटती है, तब रक्तके साथ विषमज्वरके कीटाणुओंका भी शोषण कर लेती है, इसके पश्चाद् जब यह कीटाणु मच्छरके आमाशयमें निवास करते हैं, तब वहां १० दिनके पश्चात् यह रोग फैलानेके योग्य हो जाते हैं और इसके पश्चात् ये कीटाणु इसकी लालामें आजीवन उपस्थित रहते हैं तथा "मैथुनी चक्र" द्वारा अपनी संख्या वृद्धि करते रहते हैं। ऐसे ही समयमें यह मच्छरी जब किसी अन्य व्यक्तिको काटती है तो, वहांपर अपना लाला (Saliva) लगा देती है और फिर जब सूंड द्वारा त्वचाका छेदन करके रक्तका शोषण करती है तब, लालामें रहे हुये कीटाणु मनुष्यके रक्तमें प्रवेश कर जाते हैं और वहां "अमैथुनी चक्र" द्वारा निरन्तर बड़ी तीव्र गतिसे अपनी संख्या वृद्धि करने लग जाते हैं।

अमैथुनी चक्र—कीटाणु मच्छर दंशके साथ मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट होकर रक्ताणुओंमें चले जाते हैं। वहां नियत समयतक रक्ता-

णुओंमें रहकर और उन्हींको अपना भोजन बनाकर वृद्धिको प्राप्त होते हैं। यह समय प्रत्येक प्रकारके विषमज्वरके कीटाणुके लिये पृथक् पृथक् है, इस नियत समयके पश्चात् जब ये अपनी पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर चुकते हैं तो, रक्ताणुओंको फाड़कर बाहर निकल आते हैं और पुनः अपने चक्रके लिये नये रक्ताणुमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार इनके द्वारा प्रत्येक समय पहिलेसे १०-२० गुणा अधिक रक्ताणुओंका विनाश होता है। जिस समयसे विषम ज्वरोत्पादन कीटाणु रक्ताणुओंको फाड़कर बाहर निकलते हैं तो, रोगीको शीत लगता है और फिर ज्वर चढ़ जाता है, क्योंकि रक्ताणुओंके फटनेसे कीटाणुओंका विष रक्तमें आकर मिल जाता हैं। इस प्रकार पाठकगण समझ जायेगें कि, मनुष्य शरीरमें कीटाणुओंकी वृद्धिके लिये नर मादाकी कोई जरूरत नहीं होती। जब कई बार इस प्रकार मनुष्य शरीरमें चक्कर लग जाता है तो इससे विशेष जीवाणु नर और मादाके रूपमें पृथक्-पृथक् हो जाते हैं और रक्तमें भ्रमण करते हैं परन्तु रक्ताणुओंमें कभी प्रविष्ट नहीं होते। इस अवस्थामें प्राप्त रोगीको जब मादा मच्छर काटती है तो, यही कीटाणु उसके आमाशयमें जाकर "मैथुनी चक्र" द्वारा अपनी वृद्धि करते हैं।

मैथुनी चक्र—यह मच्छरके आमाशयमें होता है। रक्तके साथ ही यह भी उसके आमाशयमें प्रविष्ट हो जाता है। आमाशय रसकी क्रियाके कारण इनके ऊपरका आवरण गल जाता है। मादा मच्छरके शरीरसे केन्द्र निकल जाता है और पुरुषके केन्द्रके ५-७ भाग हो जाते हैं। इस समय स्त्री मच्छरके शरीरमें एक छिद्र बनता है। उसके अन्दर नर मच्छरका केन्द्र भाग जो, अबतक कोषाणु बन जाता है, इसमें प्रविष्ट हो जाता है। इस अवस्थामें ये अपनी नोंकसे आमाशयकी कलाको विदीर्ण-कर श्लेष्मकलाके बीच रहने लगता है। यहां यह अनेक भागोंमें विभक्त हो जाता है। इसे "स्पोरोजाइट" (Sporozoit) कहते हैं। पूर्ण वृद्धि होनेपर इसपरका भी आवरण दूर हो जाता है। इसके पश्चात् यह कीटाणु

मच्छरके सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है और ऐसा मच्छर जब किसीको काटता है तब, उसके शरीरमें प्रविष्ठ होकर "अमैथुनी चक्र" से अपना विकास और वृद्धि आरम्भ कर देता है।

कीटाणु प्रकार—मनुष्योंके विषमज्वरसे पीडित कर देनेवाले कीटाणुओंके निम्नानुसार ४ प्रकार हैं—

१. सौम्य तृतीयक-विनायन टर्शियन—प्लाज्मोडियम विवेक्स।

२. अतिसौम्य तृतीयक—ओवल टर्शियन—प्ला० ओवल।

३. चातुर्थिक—क्वार्टन—प्ला० मलेरिया।

४. गम्भीर तृतीयक—मेलिग्नेण्ट टर्शियन—सब टर्शियन—प्ला० फेल्सी पेरम।

इन सब प्रकारोंके जीवन चक्रका अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि सामान्यतः इनका जीवन चक्र लगभग एकसा ही होता है। जीवन चक्रकी गम्भीर तृतीयक जातिकी अवधि १२ दिनकी है। और अन्य जातिकी ७ से १० दिनकी है। मच्छरोंके भीतर मध्यवर्तीकालमें संक्रमणता नहीं रहती।

विषमज्वर सम्प्राप्ति—उपरोक्त कीटाणु रक्तकणोंको खाते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप दिन प्रतिदिन रक्त न्यूनता और निर्बलता बढ़ती जाती है। इसके साथ ही श्वेत जीवाणु भी कुछ अंशमें कम हो जाते हैं और प्लीहाकी वृद्धि हो जाती है। प्लीहावृद्धिका कारण यह होता है कि मृत रक्तकणोंकी विकृतिसे देहके अन्य यन्त्रोंको सुरक्षित रखनेके लिए इनका शोषण करनेका कार्य प्लीहा करती है। मृत रक्तकण अधिक हो जानेसे प्लीहाको बड़ी होकर अपना कार्य पूरा करना पड़ता है। मृत कणोंके साथ ही कीटाणुओंका भी प्लीहामें प्रवेश हो जाता है और इस प्रकार प्लीहामें भी शरीरके शत्रुओं और मित्रोंमें युद्ध आरम्भ हो जाता है। यदि यह युद्ध लम्बे समयतक होता रहता है, तो विषप्रकोपके बढ़ जानेसे

प्लीहामें सौत्रिक तन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे प्लीहा दृढ़ और बड़ी प्रतीत होने लग जाती है। इसी प्रकारका परिवर्तन यकृत्में भी हो जाता है। असंख्य रक्तकणोंके नाशके कारण देहका वर्ण पाण्डु हो जाता है।

विषमज्वरके प्रकार– निज यानी मिथ्या आहार-विहार आदि कारणोंसे वातादि दोष प्रकुपित होकर ज्वर आना और आगन्तुक या बाह्यहेतुजन्य, ऐसे दो भेद किये गये हैं। वर्तमानमें इन दो प्रकारोंमें आगन्तुक विषमज्वर चारों ओर अधिकांशमें देखनेमें आता है।

इसके अतिरिक्त ५ मुख्य विभाग किये हैं—सन्तत, सतत, एकाहिक (अन्येद्यु), तृतीय और चातुर्थिक। इनके अतिरिक्त उपद्रवके अनुसार एवं अपने विषम वेगके कारण कालाज्वर, राजयक्ष्मा, क्षतक्षीण, प्रलेपक ज्वर, वातबलासक, श्लैपदिक ज्वर और आक्रमणस्वरूप उत्पन्न ज्वर भी विषमज्वरमें सम्मिलित किये जा सकते हैं। ये प्रलेपक आदि सब भेद विषमज्वरकी जीर्णावस्थामें उत्पन्न होते हैं।

प्राचीन आचार्योंने सन्तत ज्वर रसके आश्रय, सतत रस-रक्ताश्रय, अन्येद्यु मांसाश्रय, तृतीयक मेदाश्रय और चातुर्थिक अस्थि-मज्जाश्रय बतलाया है। परन्तु नव्यसिद्धान्तानुसार सबके कीटाणु रक्तमें ही रहते हैं।

पाश्चात्यमतानुसार निम्न चार भेद किये गये हैं:—

१. सौम्य तृतीयक ज्वर—Benign & ovale Tertion fever.

२. चातुर्थिक ज्वर—Quarten fever.

३. गम्भीर तृतीयक ज्वर—Malignant tertion fever.

अ. नियमितविरामयुक्त (Regular intermittent).

ब. अनियमित और अविरामयुक्त (irregular & remittent).

स. घातकप्रकार–Pernicious.

१. बेहोशी और मस्तिष्कविकृतिसह (Comatose & Cerebral type).

२. उत्तापह्रासयुक्त (Algid type).

३. यकृतविकारमय अविराम. (Bilious remittent).

४. जीर्ण विषमज्वर—Malarial Cachexia.

विषमज्वरके सामान्य लक्षण—सब प्रकारके विषमज्वरोंमें लगभग निम्न लक्षण प्रतीत होते हैं—

१. शीत लगनेसे पूर्व जमुहाई, अँगड़ाई, वमनेच्छा, आलस्य, शिर भारी होना और स्तब्धता।

२. प्रायः शीत लगकर ज्वर चढ़ता है। सततमें साधारण शीत लगता है। तृतीयक और चातुर्थिकमें प्रायः अधिक।

३. सततज्वरमें कभी कभी विना शीत लगे ही ज्वर आ जाता है।

४ ज्वरवेगकालमें वमन, तृषा, व्याकुलता, शिरदर्द, कमर-दर्द प्रायः होते हैं।

५. कब्ज प्रायः रहता है। कभी कभी दस्त भी लगने लग जाते हैं।

६. मुँहका स्वाद कटु हो जाता है, पर जिह्वा मलिन नहीं होती।

७. वमनमें प्रायः पित्त निकलता है।

८. दो-चार आक्रमणोंके बाद प्लीहा बढ़ जाती है। कभी-कभी यकृत् भी बढ़ जाता है।

९. तीव्र ज्वर हो, तो प्रायः कामला भी हो जाता है।

१०. पसीना आकर ज्वर उतरता है।

११. मूत्र मात्रामें कम और लाल-पीला उतरता है।

१२. ज्वर प्रायः विसर्गी होता है।

१३. मिश्रित ज्वर प्रायः अधिक विसर्गी होते हैं।

१४. ज्वर उतर जानेपर रोगी शिथिल, सुस्त हो जाता है और प्रायः निद्रा भी आ जाती है।

१५. रक्तपरीक्षामें मलेरियाके कीटाणु मिल जाते हैं।

उपर्युक्त चिन्होंसे सरलतापूर्वक रोगनिदान किया जा सकता है। परन्तु दो जातिके कीटाणुओंका ज्वर मिश्रित हो और जब अविसर्गी या अर्धविसर्गी हो तथा विना शीतके ज्वर हो जाय, तब उस समय वैद्यको निदान करनेमें अपनी बुद्धि खर्च करनी पड़ती है। यदि वैद्य विचारसे काम ले और ज्वरके चढ़ाव-उतारके समयको ठीक ठीक देखता रहे तो रोगनिदान सरलतासे हो सकता है। इस ज्वरका प्रायः मधुरा और कालज्वरसे भ्रम होता है।

अ. सन्तत ज्वर।

(Malarial Remittent Fever)

यह ज्वर १०-१२ दिनतक सतत बना रहता है, बीचमें नहीं उतरता। इस ज्वरमें तीनों दोष प्रकुपित होते हैं और वातोल्वणता होनेपर ७ दिनमें, पित्तोल्वणता होनेपर १० दिनमें और कफोल्वणता होनेपर १२ दिनमें ज्वर उतरता है या रोगीको मार डालता है।

इसमें सन्निपात ही के समान दारुण लक्षण—मोह, प्रलाप आदि लक्षण न्यूनाधिक मात्रामें रहते हैं। विष कम हो तो समयपर रोग-शमन हो जाता है। इस ज्वरका विष वातादि दोष, रक्तादि धातु और मल-मूत्र इन सबमें प्रवेश कर जाता है। अनेक समय १२ दिन रोगीका पीछा छोड़कर १३ वें दिनसे पुनः आरम्भ करके दीर्घकालतक जीर्ण रूपमें रहता है। इसका उपशम होना दुर्लभ होता है।

यह ज्वर ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें अधिक होता है। इस ज्वरमें उत्ताप अनियमित समयपर थोड़ी देरके लिए कम हो जाता है, किन्तु बिल्कुल उपशम नहीं होता।

लक्षण—प्रलाप, तृषा, निद्रानाश, शिरदर्द, बेचैनी, जिह्वापर सफेद या पीला मैल जम आना, क्षुधानाश, तन्द्रा, खट्टी वमन, नेत्र लाल,

उदरके हृदयाधरिक प्रदेश (Epegestric region) में पीड़ा, मलावरोध या अतिसार और क्वचित् कामला ।

ज्वर आनेके समय किञ्चित् ठण्ड लगती है और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह ज्वर घटकर १०१° और बढ़कर १०४° तक हो जाता है। सम्यक् चिकित्साकी अनुपस्थितिमें इसका परिणाम जीर्ण। दुःखदायी ज्वर या मृत्यु ही होता है।

आ. सततज्वर ।

(Double Quotidian Fever)

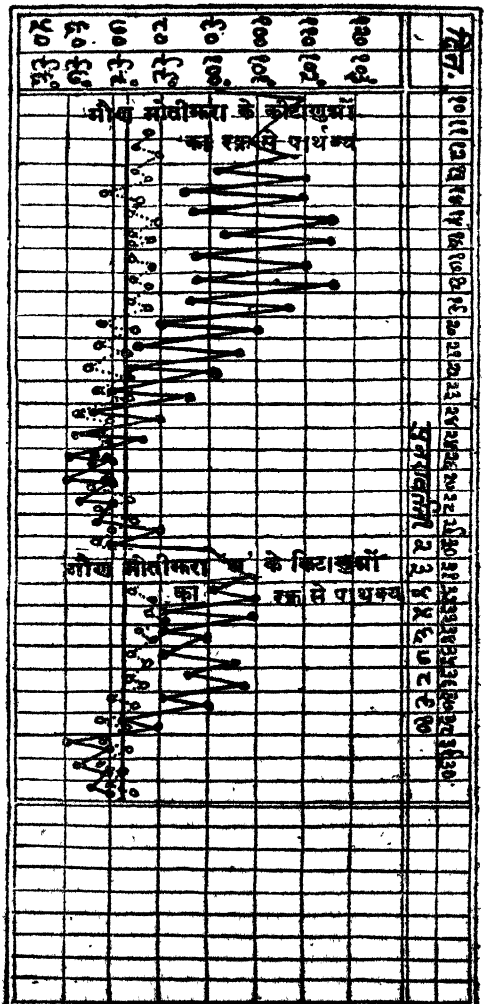
यह ज्वर २४ घण्टोंमें दो बार आता है। कभी कभी तो बिल्कुल उतरकर और अनेक समय कुछ अंशमें हल्का होकर पुनः आक्रमण कर देता है। इस प्रकार एक रात और दिनमें संतापोत्पत्ति दो समय होती है। आयुर्वेदके मतानुसार यह ज्वररस और रक्तका आश्रय करके उत्पन्न होता है, अतः दो समय आक्रमण कर सकता है।

लक्षण—रोगीका मुँह निस्तेज, श्याम, शरीर कृश और मलावरोध बना रहना, ये प्रतीत होते हैं। पित्तकी अधिकता होनेपर नेत्र लाल या पीले, नाखून पीले, पतले दस्त, अधिक प्यास, स्वेद, बेचैनी और निद्रानाश आदि लक्षण होते हैं। कफाधिक्य होनेपर छातीमें भारीपन, शीत लगना, आममय दस्त और अरुचि आदि लक्षण होते हैं।

इ. एकाहिक ज्वर ।

(Quotidian Fever)

आयुर्वेदके मतमें यह ज्वर मांसको आश्रय करके उप्पन्न होता है और २४ घण्टोंमें एक समय आनेवाला तथा दूसरे दिन कुछ न्यूनाधिक समयपर आनेवाला होता है।



एकाहिक ज्वर

लक्षण—यह ज्वर अगस्त, सितम्बरमें फैलता है। इसका आरम्भ प्रायः पीठमेंसे ठंडी लगकर होता है। शीत, क्षुधानाश, फीका मुँह, प्यास, ऊबाक, शिरदर्द, प्रलाप, बार बार थोड़ा थोड़ा पेशाब, मन्द नाड़ी, हाथ-पैर टूटना, तन्द्रा, बहुधा मलावरोध।

६. तृतीयक ज्वर।

(Tertion Fever)

आज प्रत्येक मनुष्य इस घोर, कष्टप्रद, विनाशकारी ज्वरसे भली-भाँति परिचित है। हिन्दुस्तानके किसी भी गांवमें चले जाइये, इससे अनेक रोगी सरलतासे मिल सकते हैं। यह ज्वर एक दिन बीचमें छोड़कर अर्थात् तीसरे दिन आता है। यह प्रायः शीतकालमें अधिक होता है और इसमें प्रायः प्लीहावृद्धि भी हो जाती है।

लक्षण—लक्षणानुसार इसके दो विभाग किये गये हैं—

१. मृदु—इसमें ज्वर १०५° से १०७° तक अतितेज होता है। शीत लगना, ज्वरावस्था और घर्मावस्था, ये तीन अवस्थाएं १० से १२ घण्टेमें पूर्ण होकर ज्वर उतर जाता है। इस ज्वरकी चिकित्सा जल्दी न होनेसे ज्वर जीर्ण हो जाता है, तो क्षुधानाश, बद्धकोष्ठता, पाण्डुता, दुर्बलता, प्लीहावृद्धि, मुँह कालासा हो जाना, मुँहपर काले धब्बे हो जाना और अनियमित ज्वर आना।

२. दारुण—यह भी तीसरे दिन ही आता है। इस रोगकी उत्पत्ति रोगनिरोधक शक्ति कम हो जानेपर ही होती है। इसमें ज्वरका वेग अति तेज नहीं होता। इसमें द्वितीयावस्था (ज्वरावस्था) २४ से ३६ घण्टे तक रहती है। कभी कभी दूसरी पारी आने तक ज्वर विष सूक्ष्मांशमें शरीरमें शेष रह जाता है। इसमें वमन, शिरःशूल, कटिशूल, अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश), बेहोशी, प्रलाप, कभी कभी मुँह या गुदासे रक्तस्राव और क्वचित कामला, ये सब रूप देखनेमें आते हैं।

इसमें कभी शीतावस्थाके अनुभव हुए विना ही ज्वरावस्था आ जाती है। कभी स्वेदावस्था अस्पष्ट रह जाती है। यह कभी कभी सन्तत ज्वरके समान उग्र मारकरूप धारण कर लेता है।

ङ. चातुर्थिक ज्वर

(Quartan fever)

इसे दारुण विषमज्वर माना है। यह शरीरके समस्त धातुओंका शोषण करता है, तथा बल, वर्ण और अग्निका नाश करता है। यह ज्वर चौथे दिन अर्थात् दो दिन बीचमें छोड़कर आता है। इसके दो भेदोंमेंसे कफप्रधान होनेपर ज्वरका आरम्भ दोनों जंघाओंकी पीड़ासे और वातप्रधानका शिरदर्दसे आरम्भ होता है। कभी कभी यह ज्वर मध्यके दो दिन आकर प्रथम और चतुर्थ दिन उतर जाता है। ऐसी अवस्था में इसे "चातुर्थिक विपर्यय" कहते हैं।

लक्षण—इस ज्वरमें भी तीनों अवस्थाएं सतत ज्वरके समान ही होती हैं। दूसरी पारीमें ज्वरका वेग और समय, दोनों बढ़ते हैं। इसके बाद यह अनियमित बन जाता है। कभी जल्दी तो कभी देरीसे आने लग जाता है। कभी ४-६ पारी आ जानेपर स्वयमेव चला जाता है, परन्तु इससे रुधिरका अत्यधिक विनाश होता है, प्लीहावृद्धि बढ़ जाती है और फिर पुनः पुनः आक्रमण करता रहता है। अतः ज्वरके पीछा छोड़ देनेपर भी प्लीहावृद्धि नष्ट न होने तक पथ्यपालन करते रहना चाहिये।

विषमज्वरके डाक्टरी निदान आदि

डाक्टरी मतानुसार विषमज्वरोत्पत्तिका कारण, सम्प्राप्ति और प्रकार पहले लिखे जा चुके हैं। यहाँ पर प्रत्येक भेदका संक्षिप्त परिचय, लक्षणादिसहित लिखना समुचित प्रतीत होता है।

सौम्य तृतीयक ज्वर।

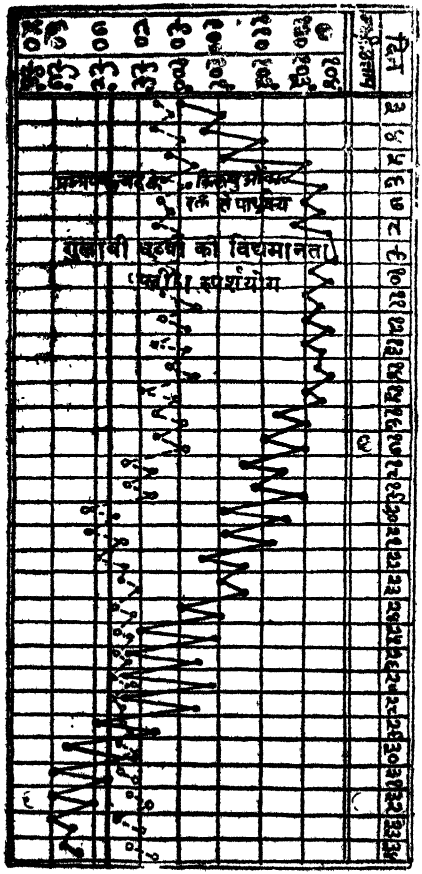
(Benign & ovale tertian fever)

ये दोनों ही सौम्य प्रकार हैं। इनमें शीत-वेपनावस्था, उष्णावस्था और स्वेदावस्था, ये तीनों अवस्थाएं नियमित उपस्थित होती हैं।

चयकाल—अनिश्चित।

इसका वेग चार अवस्थाओंमेंसे गुजरता है। १. **पूर्वावस्था** (Premonatory stage)—इसमें कुछ घण्टों तक बेचैनी रहती है। २. **शीतावस्था** (Cold stage)—अकस्मात् आक्रमण, क्लान्ति, शिरदर्द, प्रायः उबाक और जम्भाई, वेपनका तीव्र गतिसे बढ़ना। इस अवस्थामें रोगीकी त्वचा निस्तेज और बलहीन हो जाती है और भीतर उत्तापवृद्धि का आरम्भ हो जाता है। फिर ताप १०४° से १०६° तक बढ़ना, त्वचा शीतल और नीली हो जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्थाकी स्थिति १५ मिनटसे २ घण्टे तक होती है। ३. **उष्णावस्था** (Hot stage)—इसका आरम्भ मुखमण्डलकी तेजीसह होता है। शीत दूर होकर देह उष्ण हो जाती है। मुख, हाथ और त्वचा रक्तसंग्रहयुक्त हो जाते हैं। रोगी उष्णता और शिरदर्दकी फर्याद करता है। तृषा, उबाक आदिका शमन, नाड़ीपूर्ण, श्वसन तेजीसे होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। यह अवस्था आघसे ६ घण्टे तक रहती है। ४. **स्वेदावस्था** (Sweating stage)—पहले स्वेद मुखमण्डल पर आता है। फिर देहमें सर्वत्र आने लगता है। ज्वरके उपरामका भास होता है और प्रायः निद्रा आने लगती है।

इस ज्वरमें प्लीहा प्रायः बढ़ जाती है। कोष्ठ पर पीटिका और शुष्क कास ये इसके मुख्य उपद्रव हैं। अनेक समय इसकी शीतावस्था अत्यन्त अस्पष्ट हो जाती है और उष्णतावस्था ज्यादा स्पष्ट। सब अवस्था मिलकर १०-१२ घण्टोंमें सम्पन्न हो जाती है।



तृतीयक ज्वर

इस ज्वरके दो आक्रमणोंके मध्यवर्ती समयमें कोई लक्षण नहीं भासता। इसका पुनः आक्रमण विशेषतः ४८ घण्टेके बाद सामान्यतः मध्याह्नसे मध्य रात्रितक होता है।

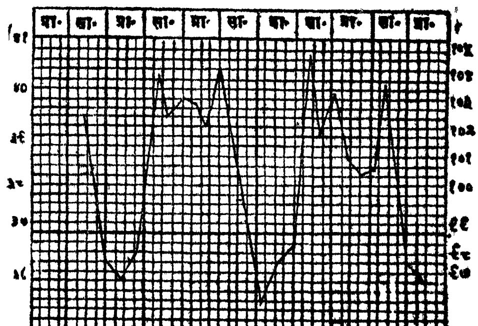
गम्भीर तृतीयक ज्वर

(Malignant Teertian or Sub tertian fever)

चयकाल २ से १४ दिन।

यह ज्वर समशीतोष्ण कटिबन्धमें विशेषतः ग्रीष्म और शरदऋतुमें तथा उष्ण कटिबन्धमें सब ऋतुओंमें उत्पन्न होता है।

इसका जीवनचक्र २४ या ४८ घण्टे नियमित विरामसह होता है। इस ज्वरके स्वभाव, लक्षण और क्रम अनियमित तथा विविध प्रकारके हैं। शक्तिक्षय अत्यधिक होता है। वर्णनकी सुगमताके लिए यहाँ पर ३ भेद किये जाते हैं—१. नियमित सविराम, २. अनियमित संतत, ३. घातक।



गम्भीर तृतीयक विषमज्वरमें मिथ्याउपशमसह उत्ताप-दर्शक रेखाचित्र

१. नियमित सविराम (Regular Intermittent)— इसकी अवस्था और लक्षण सौम्य तृतीयक और चातुर्थिकके सदृश होते हैं। आक्रमण १६ से ३६ घण्टेके भीतर होता है। शीतावस्था प्रायः बहुत कम होती है और इसका असर केवल कमर पर ही होता है। उष्णावस्था लम्बी होती है और उत्ताप अति धीरे धीरे बढ़ता है।

२. **अनियमित संतत** (Irregular and remittent)—इस प्रकारमें ज्वर दीर्घकालपर्यन्त बना रहता है। इसमें ज्वरका आक्रमण, उपशम और लक्षणादि सब अनियमित होते हैं।

लक्षण—लक्षण विविध प्रकारके होते हैं। निर्बलता, मललिप्त जिह्वा, उत्ताप १०१° से १०३°, नाडी पूर्ण, प्लीहा बढ़ी हुई, लगभग मधुरा के सदृश लक्षण, किन्तु अतिसार क्वचित् ही होता है।

यदि योग्य चिकित्सा न की जाय, तो १. सौम्य प्रकार १-२ सप्ताह तक बना रहता है, २. कभी मधुरा के समान (Typhoid remittent fever) बन जाता है; अथवा ३. पाण्डुता और निर्बलताकी वृद्धि करके गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

घातक प्रकार (Pernicious form)—इसमें ज्वरवेग अति तेजीसे बढ़ता है। ज्वरकी सब अवस्थाओंमें कीटाणु प्रायः विशाल संख्यामें विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार उष्ण कटिबन्धमें अधिक होता है और इसमें मृत्युसंख्या ज्यादा रहती है।

कीटाणु विविध स्थानोंमें अवस्थित होकर प्रबल लक्षण प्रकट करते हैं। क्वचित् सौम्य तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरके कीटाणु भी इस प्रकारके रूपको धारण कर लेते हैं।

इन गम्भीर कीटाणुओंसे उपर्युक्त प्रकारोंके अतिरिक्त कभी कभी अन्य ३ प्रकार भी दृष्टिगोचर होते हैं—१. मूर्च्छायुक्त, २. उष्णु ह्रास-युक्त, ३. पौष्टिक प्रकार।

उपद्रव और भावी क्षति—वातनाड़ियोंके अन्तभागका प्रदाह, अर्धाङ्ग पक्षाघात, सामान्य अचिरस्थायी दृष्टिनाश, अतिक्वचित् मांस-पेशियोंका कम्पन। सगर्भाको विषमज्वर कुछ अधिक समय रह जाने पर मस्तिष्कविकृति-दर्शक लक्षण।

एकाहिक ज्वर (Quotidian fever)

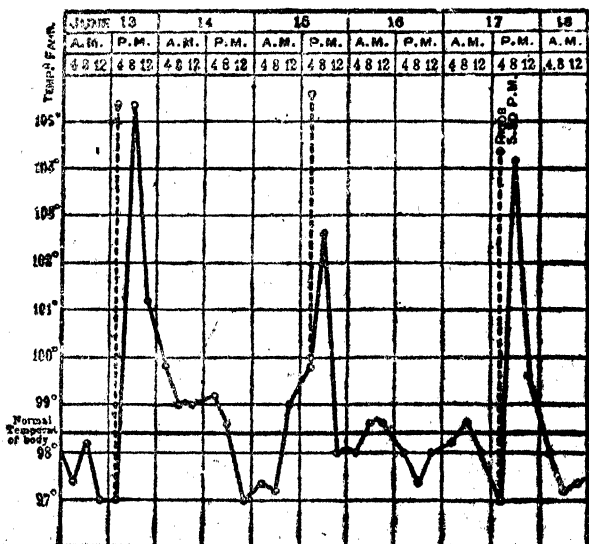
इस प्रकारके ज्वरकी सम्प्राप्ति सौम्य तृतीयक ज्वरके और गम्भीर

तृतीयकके द्विगुण कीटाणु या चातुर्थिक ज्वरके त्रिगुण कीटाणुओंसे होती है। कभी मिश्रित प्रकारके संक्रमणसे भी ऐसा होता है।

चातुर्थिक ज्वर (Quartan fever)

चयकाल—११ से १८ दिन।

इसके लक्षण और अवस्था लगभग पूर्ववर्णित सौम्य तृतीयकके समान ही होते हैं। इसका चक्र ७२ घण्टेका है। इसकी पुनराक्रमणकी गतिविधिमें हमेशा अन्तर होता है। ज्वर कितनेक रोगियोंमें १०५°—१०६° तक बढ़ जाता है। बालकोंमें ज्वर अधिक और शीघ्र बढ़ता है। निर्बलोंमें ज्वर कम रहता है।



-Benign tertian ague.

(चातुर्थिक ज्वर)

कभी कभी यह ज्वर दुराग्रही बनकर दृढ़ हो जाता है और वर्षोंतक कितनेही रोगियोंको कष्ट पहुँचाता है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि क्विनाइनका इसके कीटाणुओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

जीर्ण विषमज्वर (Malarial Cachexia)

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि विषमज्वर अधिक समय तक रहकर जीर्णावस्थाको प्राप्त हो जाता है। यह अवस्था प्राप्त होनेके दो कारण होते हैं—पाण्डुता और प्लीहावृद्धि।

लक्षण—त्वचा धूसराभ नीली, क्षुधानाश, मुँह बेस्वादु, अपचन, व्याकुलता, चक्षु निस्तेज, मुखमण्डल उदासीन, निद्रानाश, हाथ-पैर टूटना, कमरमें दर्द, मलावरोध, पेशाब थोड़ा और पीला होना, उदरमें भारीपन, थोड़े परिश्रमसे श्वास भर जाना, शीतोष्ण सहन करनेकी शक्तिका ह्रास आदि।

आशुकारी अवस्थामें प्लीहा शोथमय और मुलायम होती है तथा जीर्णावस्थामें बढ़ी हुई और अति कठोर। जिन्होंने क्विनाइनका अधिक सेवन किया हो या शराब, तम्बाखू आदिका अधिक सेवन हो, तो रोगीके प्रायः मुँह, नाक या गुदा आदिमेंसे रक्तस्राव होने लग जाता है।

इसका बारम्बार आक्रमण होता रहता है। सौम्य तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें ५० % पुनः आक्रमण हो जाता है। गम्भीर प्रकारमें सामान्यतः कम आक्रमण होता है। पुनराक्रमण शीत लगने, अस्वस्थ होने, शस्त्रक्रिया करने आदिसे हो जाता है।

उपद्रव—चातुर्थिक ज्वरमें वृक्कप्रदाह एवं उसके साथ मधुरा, फुफ्फुसप्रदाह, प्रवाहिका आदिकी सम्प्राप्ति हो सकती है।

साध्यासाध्यता—तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें बहुत मृत्यु होती है। उपद्रव उपस्थित होने या जीर्णावस्थाकी प्राप्ति होने पर कृशता और अत्यधिक क्षय होनेसे अशुभ परिणाम आ सकता है। गम्भीर तृतीयकसे मृत्युसंख्या ज्यादा रहती है।

पार्थक्यदर्शक रोगविनिर्णय—कालाआजार आदि ज्वर, मधुरा, क्षय, प्रलेपक ज्वर (Hectic fever), अंशुघात (लू लगने) में गम्भीर प्रकार और पीतज्वर आदिसे इसके लक्षण मिलते-जुलते होते हैं, अतः निदान करते समय इनका ध्यान रखना चाहिये। इसकी जीर्णावस्थामें पाण्डु और प्लीहावृद्धि अत्यधिक हो जाती है ।

भेददर्शक कोष्ठक ।

लक्षण	विषमज्वर	मधुरा
ज्वर	ज्वर नियत समय पर पसीना देकर उतरता है और चढ़ता है । इस उतार-चढ़ावका समय बदलता रहता है ।	ज्वर चढ़कर उतरता नहीं है । आधी रात्रि के पश्चात् प्रभात होनेतक २-३° कम हो जाता है । फिर मध्यान्ह-काल आनेपर बढ़ जाता है। यह क्रम एकसा चलता रहता है ।
दर्द	ज्वरावस्थामें शिरदर्द, कमर और शरीरमें जड़ता तथा पीड़ाका अनुभव होना ।	पीड़ा साधारण होती है, परन्तु अधिक समयतक बनी रहती है। कभी कभी पीड़ा होती ही नहीं।
प्रस्वेद	अत्यधिक ।	बिल्कुल नहीं ।
निद्रा	ज्वरावस्थामें निद्रानाश और व्याकुलता। ज्वरनिवृत्तिके पश्चात् निद्रा।	ज्वरकी आरम्भिक अवस्थामें ही तन्द्रा रहने लग जाती है। व्याकुलता होने पर भी बालक तन्द्राके कारण आँख बन्द करके पड़े रहते हैं। निद्रा नहीं आती।

लक्षण	विषमज्वर	मधुरा
जिह्वा	जिह्वा प्रायः साफ लाल होती है। क्वचित साबुनके समान लसदार मल।	ज्वरकी आरम्भिक अवस्थामें ही इसपर श्वेत मलकी पतली तह, जिसपर जिह्वांकुर निकले रहते हैं। किनारे प्रायः लाल।
कम्पशर्दी	प्रायः सर्दी और कम्प लगकर ज्वर आता है। कम्प वेगवान् होता है।	विना सर्दी लगे चढ़ जाता है। कभी कभी रोमाञ्च होता है।
पेटकी स्थिति	नाभिके पास दबानेपर किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती।	नाभिके पास दबानेपर अन्त्रक्षतके कारण पीड़ा होती है।
वमन	प्रायः पित्तकी वमन।	वमन नहीं होता। वमन हो तो भी पित्त नहीं निकलता है।
तृषा	तृषा बहुत लगती है।	तृषा कम लगती है।
त्वचा	साधारण रुक्ष।	विशेषतः रुक्ष होती है।
पीटिकादर्शन	इसमें साधारणतः शरीरकी त्वचापर किसी प्रकारकी पीटिकायें नहीं निकलती (परन्तु ऐसे अनेक रोगी देखे गये हैं जिनमें तीव्र ज्वरके अन्दर मधुराके समान पीटिकाएं निकल आती हैं)।	यदि शीतवीर्यप्रधान औषध न दी गयी हो, तो सप्ताहान्तमें मुक्तावत् गले और पेट पर दाने निकल आते हैं।
प्लीहा-यकृत्	प्रायः प्लीहा बढ़ जाती है।	जीर्णावस्थामें प्रायः यकृत् बढ़ जाता है। रोग प्रबल होनेपर प्लीहा भी।

विषमज्वर-चिकित्सा ।

इसकी चिकित्साके दो मुख्य विभाग हैं । १. प्रतिबन्धक (रोगोत्पत्ति रोकना); २. रोगशामक (उत्पन्न हुये रोगको शमन करना) । इनमें हमें प्रतिबन्धक चिकित्सा पर ज्यादा ध्यान देना चाहिये, ताकि पाठक और ग्रामीण निःसहाय जनता, जिनको वैद्य और डाक्टरोंकी सहायता मिल सकना एक स्वप्नमात्र ही है, स्वयं प्रयत्न करके इस विनाशकारी 'विषमज्वर' से अपने आपको बचा सकें ।

१. प्रतिबन्धक चिकित्सा—संक्रामक रोगोंके लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अगर प्रत्येक भारतवासीको यह भलीभाँति मालूम हो जाय कि विषमज्वर किस कारण से फैलता है, तो प्रत्येक मनुष्य व्यक्तिगत रूपसे और सामाजिक रूपसे, दोनों ही से इस विनाशकारी रोगसे बचनेका सहज ही प्रयत्न कर सकता है । उपर्युक्त वर्णनसे रोगके संक्रमण होनेका कारण और उपायका ज्ञान पाठकवर्गको सहज ही हो गया होगा । उसको मध्यनजर रखते हुए इस रोगसे बचनेके उपायोंका संक्षेपमें यही वर्णन किया जायगा ।

विषमज्वरके कीटाणुओंका वहन मच्छर करते हैं अतः मच्छरोंकी उत्पत्ति न हो सके या उत्पत्तिके पश्चात् शीघ्रतासे नष्ट किये जा सकें ऐसे उपाय करने चाहियें ।

मच्छर मुख्यतः गन्दे पानीके छोटे छोटे गड्ढोंमेंसे उत्पन्न होते हैं । अतः मोरी, टट्टी आदि स्थानोंको स्वच्छ रखें और मलिन जल या वर्षाका जल किसी स्थानमें संचित न हो इसका पूर्ण खयाल रखें ।

अपना निवासस्थान ऐसे स्थान पर होना चाहिये जिससे आसपास पानीका संचय न होनेके साथ ही साथ जो जलमय भूमिसे कुछ ऊँचाई पर हो । । मकान स्वच्छ, प्रकाशवाला और सील (आर्द्रता) से रहित होना चाहिये । स्मरण रखना चाहिये कि अंधेरे और सीलयुक्त स्थानोंमें मच्छरोंके अड्डे बन जाते हैं, जहाँ दिनभर आरामसे ये मस्त

रहते हैं और रात्रि होते ही आपको अपना शिकार बना लेनेके लिए बाहर निकल आते हैं।

कदाच मकानके पास गन्दे पानीका संचय होता हो तो उसपर मिट्टीका तैल थोड़े थोड़े दिनोंके पश्चात् छिड़कते रहनेसे मच्छरोंकी उत्पत्ति रुक जाती है।

जिस मकानमें मच्छर हों, उसके अन्दर लोहबान, गूगल, गंधक या तमाखुका धुआँ करना चाहिये। इससे मच्छर उस स्थानसे भाग जाते हैं। मच्छर आदि घातक जन्तुओंके मारनेके लिये शहरोंमें फ्लिट छिड़कते रहते हैं।

सूचना—गन्धक और तमाखुका धुआं करते समय इनसे खराब हो जानेवाला सामान पहले बाहर निकाल डालना चाहिये और कमरेके सब दरवाजे तथा खिड़कियां बन्द करके स्वयं भी बाहर आजांव।

रात्रिको मच्छरोंवाले मकानमें सोना भी पड़े तो ऐसे कपड़े पहनकर सोवें कि शरीरका कोई भाग नंगा न रहने पावे और अगर सम्भव हो सके तो मच्छरदानी का उपयोग करके मच्छरोंसे बचे रहनेका प्रयत्न कर लें। प्रतिदिन कड़ुए तैल (सरसोंके तैल) का अभ्यंग करके कार्बोलिक साबुनसे स्नान कर लेनेसे भी मच्छरोंसे कुछ बचा जा सकता है। रात्रिको मुँह और हाथ पैरों (खुले रहनेवाले भाग) पर सिट्रोनेला तैल (Oil Citronella) लगाते रहनेपर भी बचाव हो सकता है।

विषमज्वरके प्रकोपके दिनोंमें मनुष्य ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उसकी शारीरिक क्षमता कम होकर ज्वरके कीटाणुओंका दांव लग जाय। इन दिनोंमें भूलकर भी अपचनमें भोजन, भोजन पर भोजन, बासी अन्न, फल शाक आदि न खावें।

पीने आदिके लिए जिस जलका उपयोग किया जाता है, वह स्वच्छ तो है? जल भारी तो नहीं है? यह देख लेना चाहिए जिन प्रान्तोंमें

विषमज्वरका अत्यधिक प्रकोप होता हो, उनके निवासियोंको पानी उबालकर शीतल करके सेवन करना चाहिये। इस उपायका अवलम्बन करनेसे अनेक हानियोंसे बचा जा सकता है।

विषमज्वरसे एक समय पीड़ित हो जाने पर औषध-सेवनके साथ ही साथ पथ्यका पूर्ण खयाल रखें। अधिक घी और मीठा खानेसे ज्वर जीर्ण हो जाता है और अनेक मासतक पीछा नहीं छोड़ता।

डाक्टरी मतानुसार प्रतिबन्धक चिकित्साके रूपमें एकाध मासतक प्रतिदिन ५-१० ग्रेन क्विनाइन लेते रहना अच्छा माना जाता है। परन्तु अब यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि 'इस उपायसे शरीरमें विष उत्पन्न होता है और इसकी उग्र प्रतिक्रियाके फलस्वरूप मनुष्यकी स्वाभाविक रोगनिरोधक शक्तिका काफी ह्रास होता है।

विषमज्वरके प्रकोपके समयमें ६ माशा तुलसी और सात काली मिर्च-को पीसकर पी जानेसे आसानीसे इस ज्वरसे बचाव हो सकता है।

२. रोगशामक चिकित्सा।

कुछ ऐसी आधारभूत बातें हैं, जिनका प्रत्येक प्रकारके विषम ज्वरकी चिकित्सामें महत्वपूर्ण स्थान है। अतः अलग अलग चिकित्सा लिखनेसे पूर्व इन सामान्य बातोंको जान लेना पाठकोंके लिए लाभप्रद होगा।

रोगीको पूर्ण विश्रान्ति मिल सके इसका समुचित प्रबन्ध करें।

अगर रोगीको कोष्ठबद्धता (कब्जियत) है, तो मृदु विरेचन देकर (गुलकंद, अमलतासकी गुद्दी आदिसे) कोष्ठशुद्धि कर लें।

पानीको उबालकर शीतल होनेपर पीलाते रहें। अनेक समय अज्ञानवश रोगीको पानी पिलानेमें संकोच किया जाता है। यह भ्रामक विचार है।

रोगोकी प्रारम्भमें आमावस्था दूर होने तक लङ्घन करावें और फिर दूध या फलोंके रसपर रखें। कितनेक चिकित्सक दूध या फलोंके

रसका निषेध करते हैं। किन्तु दूध और फलोंका रस विशेष हितावह है, ऐसा अनेक रोगियोंपर प्रयोग करनेसे निर्णीत हुआ है। प्राचीन शास्त्रकारोंने ज्वरकी चिकित्सामें सर्वश्रेष्ठ उपाय लङ्घनको बताया है। परन्तु इस समय हीनशक्तिवाले मनुष्य ऐसा कर सकनेमें असमर्थ हैं। अतः दूध, मोसम्बीका रस, अंगूर, अमरूद आदि दे सकते हैं। विषमज्वरकी चिकित्सामें अगर इस प्राथमिक और सर्वश्रेष्ठ उपायका अवलम्बन किया जाय तो अन्य कोई भी उपद्रव उत्पन्न न होगा और दोषपचन हो जाने पर स्वयं ज्वरकी निवृत्ति हो जायगी।

जिस रोज ज्वरकी पाली हो, उस दिन समय चला जाय, तबतक रोगीको कुछ भी खानेको नहीं देना चाहिये। अन्यथा भोजन विषरूप बन जायगा और ज्वर अत्यन्त वेगयुक्त आवेगा।

कमरेमें प्रातः और सायं धूप जलावें। अगर शीतप्रधान संतत ज्वर आता हो, तो आरम्भमें ही रोगीको सुलाकर कम्बल आदिसे उसको उष्णता पहुँचानेका प्रयत्न करें।

अगर ज्वर अत्यन्त तीव्र हो, तो मस्तिष्कके रक्षणके लिए नौसादर, कलमीशोरा, नमक १-१ तोलेको आध सेर शीतल जलमें मिलाकर, पट्टी भिगोकर उसे निचोड़कर ललाट पर रखें। थोड़े थोड़े समयमें इस पट्टीको बदलते रहें।

रोगीको प्रस्वेद लानेके लिए बफारा, चाय आदिका अवलम्बन करें।

रोगीको खूब प्रस्वेद आ जानेपर सावधानीपूर्वक कपड़ेसे पोंछकर दूसरे कपड़े बदल दें। पसीना पोंछते और कपड़े बदलते समय खयाल रखें कि रोगीको सीधी शीतल वायु न लग जाय।

ज्वर शमन हो जानेपर भी ज्वरोत्पादक सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेके लिए कुछ दिनों तक औषध सेवन करते रहना चाहिये।

विषमज्वरमें तैल, गुड़, तेज खटाई और अधिक घृतका सेवन हानि पहुँचाता है। अनेक समय देखा गया है कि जीर्ण तृतीयक ज्वरने किसी रोगीका बड़ी कठिनाईसे पीछा छोड़ा और उसके एक समय किसी प्रकारकी भारी मिठाई खा लेने पर इसका पुनः आक्रमण हो गया है।

ग्रामोंके निवासी अक्सर अशिक्षित होनेके कारण विषमज्वर आ-जानेपर दैवी प्रकोप मानकर अनेक प्रयत्नोंसे देवी-देवताओंको मनानेका उपाय करते हैं और तन्त्र-मन्त्रका सहारा लेते हैं। परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप जानकर इस विनाशकारी रोगसे पीछा छुड़ानेका लेशमात्र भी प्रयत्न नहीं करते। प्रत्येक भारतवासीको भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि भारतमें अधिकतम मृत्युसंख्या इसी रोगके कारण होती है और राजयक्ष्मा आदि जैसे भयंकर रोग इसकी जीर्णावस्थामें उपद्रवस्वरूप प्रकट हो जाते हैं। अतः इसका आक्रमण होनेपर इसे मामूली व्याधि समझकर इसकी उपेक्षा न करें, अपितु उचित चिकित्साका प्रबन्ध करें।

एकमात्र क्विनाइन, जो कि विषमज्वरका आजकल उत्कृष्ट औषध माना जाता है, का सेवन करके इसके आक्रमणका विरोध बलात्कारसे करके ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री न मान बैठें। क्विनाइनके सेवनसे रक्ताणुओंका बड़ी संख्यामें विनाश होता है। अतः क्विनाइनकी तीव्र प्रतिक्रियाके फलस्वरूप उत्पन्न हानिप्रद प्रभावसे बचनेके लिए रोगीको चाहिये कि आमदोष जलनेतक या जबतक मलावरोध, शिरदर्द, पेशाबमें पीलापन, जिह्वाका मलावृत्त, मुँह बेस्वादु रहना, अरुचि, हाथ-पैर टूटना आदि लक्षण विद्यमान हों, तबतक क्विनाइनका सेवन न करें। नीचे लिखे अनुसार समुचित चिकित्सा कराता रहे।

शीत लगकर ज्वर आनेपर सबको मलेरिया मानकर बिना सोचे-विचारे क्विनाइनका प्रयोग आरम्भ न करा दें। शीतला, रोमान्तिका या मधुरा आदि होनेपर क्विनाइन हानि पहुँचा देता है एवं आमज्वर

होने पर बढ़ते हुए ज्वरमें क्विनाइनका सेवन करानेसे ज्वर अत्यन्त जोर देता है और कुछ समय तक लगातार बना रह जाता है।

किसी उपद्रवके उपस्थित हो जानेपर सबसे अधिक कष्टप्रद उपद्रवकी चिकित्सा सर्वप्रथम करें।

विषमज्वर चिकित्सा।

जैसा कि पाठकवृन्दको पूर्व वृत्तान्तसे ज्ञात हो गया होगा कि ज्वर आम या कीटाणुविषको जलाने और किसी भी प्रकारकी हानिसे शरीरकी रक्षा करनेके परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। इसलिए इसे एकदम रोक देनेसे परिणाममें हानि होने ही की सम्भावना रहती है। अतः सर्वप्रथम आमपचनार्थ उपाय करना चाहिये। दोषपचन हो जानेके पश्चात् भी ज्वर पीछा न छोड़े, तो ज्वरशामक और ज्वरनिरोधक चिकित्सा करनी चाहिये।

विषमज्वरकी चिकित्सामें मुख्य दो भेद किये जा सकते हैं—१. ज्वरावस्था यानी ज्वरकी पालीके दिन की जानेवाली चिकित्सा और २. ज्वर न हो यानी जिस दिन ज्वर न हो, उस दिन की जानेवाली चिकित्सा।

आजके यान्त्रिक युगमें विषमज्वरकी अनेक सद्यःफलप्रद औषधियाँ हैं, जो तत्काल अपना प्रभाव प्रदर्शित करती हैं। परन्तु क्या ऐसी उग्र वीर्यवाली औषधियोंके दुरुपयोगका परिणाम शरीरके लिए हानिप्रद नहीं होता? सिर्फ क्विनाइन तक ही संतोष नहीं माना जा रहा है। संयोजित रसायन (Synthesis) द्वारा ऐसी उग्र औषधियाँ प्राप्त करनेका प्रयत्न चालू है, जो क्विनाइनको भी भुला देगी।

अपना हित चाहनेवाले संतत ज्वरके रोगीको चाहिये कि प्रथम १, २ या ३ दिन शक्ति अनुसार लंघन करें और सिर्फ निम्न विधिके अनुसार औटाया हुआ जल पीता रहे।

दो-चार सेर स्वच्छ पानीको लेकर साफ बर्तनमें गरम रखें। बर्तन एकदम साफ लेना चाहिये और उसे ढक देना चाहिये ताकि उसमें राख या मिट्टी न गिर जाने पावे। आज हमारा दुर्भाग्य है कि अशिक्षाके कारण स्वच्छता और पवित्रता क्या वस्तु है और हमारे जीवनमें इनका कितना महत्व है, इस बातसे भारतकी अधिकतर जनता, जो ग्रामोंमें निवास करती है, अपरिचित है।

प्रत्येक मनुष्य यह जानता है कि अगर अशिक्षित ग्रामीणको पानी उबालनेके लिए कहा जायगा तो ४-६ माशा राख व मिट्टी उस पानीमें गिर जाना मामूली बात है। अतः इस ओर पूर्ण ध्यान रखते हुए पानीको उबालें और आधा जल शेष रहने पर उतार लें। शीतल करके आवश्यकतानुसार उसमेंसे पिलाते रहें। सुबह उबालें, उसे शामतक उपयोगमें लेवें और शामको उबालें, उसे सुबहतक काममें लेवें।

अगर आरम्भके ३ दिनोंमें रोगीको अत्यधिक तृषा लगती हो तो पूर्ववर्णित षडंग पानीयका उपयोग किया जा सकता है। नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लालचंदन, नेत्रवाला और सोंठ इनको समभाग मिला जौकूट चूर्णकर २ तोले लेवें, उसे ३। सेर जलमें मिला ४-६ उफान आनेतक उबालकर छान लेवें। इसे षडंग पानीय कहते हैं।

उपवास करनेपर सबल और पित्तप्रकृतिवाले मनुष्योंके आमाशयका पित्त तेज हो जाता है। फिर खट्टी और गरम गरम वमन होने लगती है अतः ऐसे रोगियोंको नीबूका रस जलमें मिलाकर ४-६ माशे शक्कर डालकर दिनमें दो बार देना चाहिये। अथवा मोसम्बी या सन्तरेका रस पिलाना चाहिये।

कोष्ठबद्धता—ज्वरसे पीड़ित रोगीको अक्सर कोष्ठबद्धता रहती है, जबतक मलशुद्धि न हो जायगी, तबतक ज्वरका पीछा छुड़ाना असम्भव है। अतः इसपर उचित ध्यान देकर मृदु रेचन द्वारा उदरशुद्धि करा दें।

मलशुद्धिके लिये रोगीको सुबह अमलतासकी गुद्दी २ तोले उबाल छानकर थोडा गुलकंद मिलाकर पिला दें। अमलतासकी गुद्दी सब प्रकारके ज्वरमें निर्भयरूपसे दे सकते हैं। केवल पेचिशवालोंको नहीं देना चाहिये। इसके सेवनसे मल कच्चा और पक्का जैसा हो, वैसा ही निकल जाता है। १-२ दस्त साफ आकर उदर शुद्ध हो जाता है। अथवा काला दाना ४ से ६ माशे घीमें भूनकर खिलाने और ऊपरसे गरम पानी पिला देनेसे भी जल जैसे पतले दस्त होकर उदर साफ हो जाता है। या सनाय ६ माशे, मिश्री ३ माशे, गुलाबके फूल ३ माशे और मुनक्का ३ माशेको मिला आध सेर पानी डालकर उबालें। चौथाई (१० तोला) शेष रहनेपर उतारकर छान लें। शीतल होनेपर पिला दें। इससे भी एक या दो दस्त साफ आजायेंगे। इस तरह इन्द्रजौ, परवलके पत्ते और कुटकीका क्वाथ पिलानेसे पतले दस्त होकर उदरशुद्धि हो जाती है।

रोगी अत्यन्त दुर्बल या बालक हो या अन्य किसी कारणसे उपर्युक्त विरेचन न दिया जा सके, तो सबसे अच्छा, सुलभ, निर्भय और सद्यःफल-प्रद ग्लिसरीनकी पिचकारी है। यह बहुत ही उत्कृष्ट उपाय सिद्ध हुआ है। पिचकारीमें ग्लिसरीनको भरकर रोगीको उलटा जानु और कोहनीके बल पैर सिकोड़कर लोटा दें और ग्लिसरीनको गुदामें प्रवेश करादें। अगर आवश्यकता समझी जाय तो पिचकारी दुबारा और ग्लिसरीनसे भरकर गुदामें प्रवेश कर सकते हैं। इससे कुछ ही मिनिटों पश्चात् रोगीको दस्त आ जाता है और गुदनलिकामें भरा हुआ मल निकल जाता है।

सूचना—पिचकारीका उपयोग करनेसे पूर्व उसे पानीमें डालकर उबाल लेना चाहिये।

उपर्युक्त दोष पचन हो जानेपर ज्वरका स्वयमेव शमन हो जाता है। परन्तु अगर ऐसा न हुआ हो, तो निम्नप्रकार से औषध-चिकित्साका अव-लम्बन किया जा सकता है।

रोगीको ज्वर अत्यधिक तीव्र हो और कोष्ठशुद्धि कर लेने पर भी १०४°-१०५° से हल्का न हुआ हो, तो रोगीको निम्न शामक (स्वेदल) औषधका सेवन कराके ज्वरशमनार्थ प्रयत्न करना चाहिये।

अगर रोगी ज्वरकी तीव्रताके कारण अत्यधिक घबरा रहा हो और तापका मस्तिष्कपर कुप्रभाव हो जानेकी आशंका हो, तो शीतल पानीमें कुछ कलमी शोरा या एसेटिक एसिडकी चन्द बूँदे डालकर उसमें कपड़ेकी पट्टी तर करके रोगीके मस्तक पर रखें। इससे रोगीकी मानसिक शक्ति मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होकर असंतुलित न होने पायेगी। इस प्रयोजनके लिए "बर्फकी थैली (Ice cap)" में बर्फ भरकर भी मस्तिष्क पर रखी जा सकती है।

शामक औषधियां।

इतनी सावधानी करनेके पश्चात् हृदयका रक्षण हो और स्वेद आकर ज्वर हल्का हो जाय इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेदके शास्त्रीय प्रयोगोंमेंसे लक्ष्मीनारायण रस, महाज्वरांकुश रस, शीतभंजीरस, विश्वतापहरण रस आदि बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। हम अधिकतर लक्ष्मीनारायण रस ही का उपयोग करते रहते हैं। इससे रोगीको शीघ्र पसीना आकर ज्वर हल्का हो जाता है।

१. ज्वरान्तक योग—नौसादर, गोदन्ती हरताल, सोहागेका फूला, श्वेत फिटकरीका फूला इन चारोंको ५-५ तोले मिला आकके दूधमें खरल करके टिकिया बना लें। फिर टिकिया सुखाकर शराव सम्पुटकर गजपुटकी अग्निसे भस्म तैयार कर लें। इसकी ३-४ रत्तीकी मात्रा शक्करके साथ देनेसे चढ़ा हुआ ज्वर पसीना आकर उतर जाता है। इसमें रोगीके बलाबलका पूर्ण खयाल रखें और सिर्फ एक ही मात्राका सेवन करावें।

कीड़ामार (Aristolochia Brecteate) के घनकी २-२ रत्तीकी २-२ गोली निवाये जलके साथ देनेसे भी पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

ज्वरावस्थामें हृदयरक्षणार्थं व घबराहटको दूर करनेके लिये अन्य प्रयोग करने पर भी प्रवालपिष्टी २-२ रत्तीकी मात्रामें महासुदर्शन अर्कसे २-२ घण्टेके अन्तर पर देते रहें। प्रवाल उत्तम पाचन औषधि है और मस्तिष्कका रक्षण करती है। सुदर्शन अर्क यह ज्वरविषको जलानेमें "सुदर्शनचक्र" के समान औषधि है।

सब प्रकारके विषमज्वरमें ईसरमूल (Aristolochia Indica) का उपयोग होता है। ज्वर नया हो या पुराना, सबपर यह गुणकारी है। पालीके बुखारोंमें ६ घण्टे पहलेसे २-२ घण्टेमें ईसरमूल १॥-१॥ माशा और तगर १॥-१॥ माशा मिला फाण्टकर पिलाते रहें। यदि ज्वर आ जाय, तो दूसरी पालीमें चला जाता है। यह औषधि बढ़े हुए ज्वरमें भी दे सकते हैं। उससे क्विनाइनके समान कभी हानि नहीं होती। यह स्वेदल और मूत्रल होनेसे जहरको पसीना और पेशाब-द्वारा बाहर निकाल देती है।

फिटकरीका फूला २-२ रत्ती शक्करके साथ दिनमें ३ बार देनेसे विषमज्वर रुक जाता है।

ततैयाके घर, जो गर्मीके दिनोंमें खाली हो जाते हैं, उनको जला, राखकर २-२ रत्ती दिनमें ३ बार शहदके साथ देनेसे सब प्रकारके विषमज्वरोंकी निवृत्ति हो जाती है।

ज्वर निराम हो गया हो तो ज्वर न होने पर क्विनाइन ४ ग्रेन (२ रत्ती) जलमें मिलाकर देनेसे सब प्रकारके विषमज्वर रुक जाते हैं। पालीके दिनमें ज्वर आनेके ४ घण्टे पहले एक मात्रा देवें। फिर २ घण्टे पर दूसरी बार देवें। पुनः ज्वर न आया हो तो तीसरी बार देनेसे ज्वरके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

अन्य दिनोंमें क्विनाइन दिनमें ३ बार सुबह, दोपहर और शामको देते रहना चाहिये।

पित्तप्रधान प्रकृतिवालोंसे और जिनके रक्त की प्रतिक्रिया अम्ल हो, उनसे क्विनाइन अधिक मात्रामें सहन नहीं होती। उनको क्विनाइन देनेसे निद्रानाश, रक्तद्रावबृद्धि, मूत्रावरोध, व्याकुलता आदि लक्षण उपस्थित होकर ज्वरवृद्धि हो जाती है। उनको पहले सोडाबाईकार्ब (खानेका सोडा—सज्जीक्षार) १-१ माशा १-१ घण्टे पर ३ बार जलमें मिलाकर पिला देना चाहिये, या क्विनाइनको सोडाके जलके साथ देना चाहिये।

सगर्भावस्थामें स्त्रियोंको क्विनाइन नहीं देनी चाहिये। यदि विषम-ज्वरका निर्णय न हो, तो कभी क्विनाइन नहीं देनी चाहिये।

जिनको शान्त निद्रा न आती हो, रक्तद्रावबृद्धि हो, जो वृक्कप्रदाह अथवा सुजाकविषसे पीड़ित हों, उनसे क्विनाइन सहन नहीं होता। अतः हो सके तबतक उनको नहीं देना चाहिये।

२. ज्वरमुरारि अर्क—यह क्विनाइनप्रधान मिश्रण है। केवल क्विनाइनकी अपेक्षा इसका प्रयोग सद्यःफलप्रद सिद्ध हुआ है। एक लक्षसे अधिक रोगियोंपर प्रयोग हो चुका है। सब प्रकारके विषमज्वरमें तत्काल लाभ पहुँचता है। महीनोंसे चातुर्थिक ज्वर पीड़ित रोगीका ज्वर, जो अन्य औषधिके सेवनसे शमन न हुआ हो, वह इसके सेवनसे २-३ दिनमें ही दूर हो जाता है। प्रयोग निम्नानुसार है।

क्विनाइन सल्फास	१० ग्रेन
एसिड सल्फ्युरिक डाइल्यूट	२० बूंद
टिंचर नक्सवामिका	७ बूँद
टिंचर डिजिटेलिस	२० बूँद
एक्वा गेन्था	३ औंसतक

पहले थोड़े जलमें क्विनाइन मिलावें, फिर तेजाब मिलावें। क्विनाइन मिल जानेपर क्रमशः शेष औषधियाँ मिला लेवें। इस मिश्रणमेंसे १-१ औंस दिनमें ३ बार पिलाते रहें।

सूचना—देहबल कम हो अथवा आयु छोटी हो, तो उसके अनुरूप मात्रा कम देनी चाहिये। जो सूचना ऊपर क्विनाइन-सेवनमें की है, वह इस अर्कके लिए भी है। इस अर्कके सेवनमें भी क्विनाइनके सब नियम पालन करने चाहियें।

अनधिकारीको सेवन कराने, अधिक मात्रा देने, मधुग आदि रोगोंमें देने या पथ्यका पालन न करनेपर लाभके स्थानमें हानि ही पहुँचती है। अतः इसका प्रयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये।

३. **करञ्जादि वटी**—श्वेत करंजकी मींगी २ तोला, अर्कमूलत्वक् २ तोला, कालीमिर्च १ तोला, कुटकी १ तोला, अतीस १ तोला, चिरायता १ तोला, नीमकी कोमल पत्तियां व सोंठ ६-६ माशे, भीमसेनी कपूर (बोर्नियोका कपूर) ३ माशा, इन सबका कपड़छान चूर्ण बना पानके रसमें १ दिन खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियां बना लें।

मात्रा—२-२ गोली ज्वर आनेसे पूर्व दिनमें ३ समय शीतल जलसे सेवन करावें।

उपयोग—अब परीक्षणसे और अनुभवसे यह सिद्ध हो गया है कि कटु करञ्ज मलेरियाकी एक उत्कृष्ट औषधि है। इसमें पाया जानेवाला कटु तत्व ऊँचे दर्जेका पौष्टिक और ज्वरघ्न है। इसके अतिरिक्त इसकी श्रेष्ठता इससे भी ज्यादा बढ़ जाती है कि इसके उपयोगसे क्विनाइनके समान भूखका नाश, भ्रम, बधिरता आदि उपद्रव उत्पन्न नहीं होते।

उपर्युक्त करंजादि वटी मलेरियाके लिए सर्वश्रेष्ठ प्रयोग है। इसके उपयोगसे जाड़ा देकर ज्वर आना, शिरःशूल, तृषा, हाथ-पैर फूटना आदि मलेरियाज्वरके लक्षण होनेपर ज्वरका वेग जब शान्त हो जाय तब इस वटीका प्रयोग करनेसे पुनः आक्रमण नहीं होता।

सूचना—इस वटीका उपयोग करानेसे पूर्व अगर रोगीको थोड़ा-सा दूध या चाय पिला दिया जाय तो अच्छा रहता है, क्योंकि भूखे

पेटपर इसे देनेसे अनेक समय वमन हो जाता है या जी-मिचलाहट होती है।

अनेक समय क्विनाइन सेवन करनेसे ज्वरका आक्रमण तो रुक जाता है परन्तु मृदु ज्वर हर समय बना रहता है। थर्मामीटरसे नापने पर तो ऐसे रोगीको ज्वर मालूम नहीं पड़ता, किन्तु रोगी दिन पर दिन दुर्बल होता जाता है और चिकित्सकको प्रतिदिन संध्यासमय कुछ न कुछ ज्वर हो जानेकी शिकायत करता है। ऐसे रोगीको इस वटीका सेवन एक वरदान सिद्ध होता है।

विषमज्वरके रोगीका अनेक समय ज्वर इसलिए पीछा नहीं छोड़ता कि उसे कोष्ठबद्धता रहती है। अतः करंजादि वटीका उपयोग करानेसे पूर्व मल-शुद्धिके लिए मृदुरेचन दे देना अच्छा माना जायगा।

तृतीयक विषमज्वर (तिजारी) में नागरबेलके २ पानोंमें भुने हुये करंजुवेकी १ गिरी, एक रुपयेके आकार जितना आकका पत्ता, और ४ लौंग मिलाकर पाली आनेके ६ घण्टे पूर्व २-२ घण्टेके अन्तरसे ३ मात्रा दे देनेसे पाली टल जाती है। रोगीको पथ्यमें केवल, दूध, जल या चायके अतिरिक्त कुछ न दें।

सप्तपर्ण—ठीक करंज ही के समान सप्तपर्ण (छितवन Alstonia scholaris) भी मलेरियाकी एक उत्कृष्ट महौषधि है। इसकी छालमें पाये जानेवाले सत्व "डिटेनिन" में इसकी छाल ही के समान ज्वरघ्न, रक्तशोधक, पौष्टिक और ग्राही गुण विद्यमान होते हैं।

इण्डियन प्लेण्ट्स एण्ड ड्रग्सके लेखक डा० नादकर्णीने इससत्व "डिटेमिन" की काफी तारीफ की है और लिखा है कि इसमें ऊँचीसे ऊँची जातिके सल्फेट आफ क्विनाइनके समान ही विषमज्वरको रोकनेकी शक्ति है। इसके साथ ही क्विनाइन होनेवाली प्रतिक्रियाएँ भी इससे उत्पन्न नहीं होतीं।

विषमज्वरमें इसका उपयोग २ तोलाके क्वाथ या हिम बनाकर या ३-६ माशे तक छालका चूर्ण दिनमें ३ समय लेना चाहिये। छालसे बनाया हुआ घन सत्व भी अच्छा कार्य करता है। सप्तपर्णघनवटी (रसतन्त्रसार० द्वि० खं०) अच्छा कार्य करती है।

उपर्युक्त दो सर्वसुलभ वनौषधियोंके अतिरिक्त कालमेघ और गोरख इमलीके समान कुछ औषधियां और हैं जिनपर उचित अनुसन्धान करके पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

विविध सिद्ध औषधियां—

विश्वतापहरण रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाग, ताम्र भस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और अकरकरा, इन ८ औषधियोंको समभाग मिला, खरलकर करेलेके पत्तोंके रसमें १२ घण्टे घोटकर आध आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार ६-६ रत्ती जीरा-मिश्रीके साथ देवें।

यह रसायन सब प्रकारके विषमज्वर, धातुगत ज्वर, अपचनजनित ज्वर, जीर्णज्वर, द्वन्द्वज ज्वर, वातज्वर और कफज्वरको दूर करनेमें अतिहितावह है। यह धातुओंमें विष लीन होनेपर दिनोंतक त्रास देनेवाले विषमज्वरके विषको पचन कराकर दूर कर देता है।

नारायणज्वरांकुश रस—शुद्ध सोमल, शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरताल, शुद्ध बच्छनाग, धतूरे के शुद्ध बीज, वराटिका भस्म, सोहागाका फूला, भांग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल, इन १२ औषधियोंको समभाग लेवें। यथाविधि मिलाकर अदरखके रसमें ३ दिन खरलकर आध आध रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली जलके साथ देवें। ज्वर होनेपर ज्वरको उतारनेके लिये २-२ घण्टेपर ३ बार और ज्वर न होनेपर उसे रोकनेके लिए दिनमें ३ बार देवें।

यह ज्वरांकुश सब प्रकारके विषमज्वर, सन्निपात, कफज्वर, वातज्वर

और जीर्णज्वरको नष्ट करता है। पित्तप्रकृतिवालोंको एवं शरदऋतु और ग्रीष्मऋतुमें भी इसका प्रयोग न करावें।

अमृतचूर्ण—नौसादर और फिटकिरी समभाग मिलाकर डमरू-यन्त्र द्वारा उड़ाये हुए पु० ४० तोले, अपामार्गक्षार और आकका क्षार ५-५ तोले मिला तुलसी और आकके पत्तेके रसमें ६-६ घण्टे खरलकर शुष्क चूर्ण बना लेवें। इनमेंसे २ से ३ रत्ती निवाये जल, चाय या दूधसे दिनमें ३ बार या २-२ घण्टे पर ३ बार देवें।

यह चूर्ण सब प्रकारके विषमज्वरों तथा अपचनजनित आमज्वरों पर प्रयुक्त होता है। यह स्वेद लाकर ज्वरविष और उष्णताको २-४ घण्टेमें ही बाहर निकाल देता है, हृदयको किसी भी प्रकार हानि नहीं पहुँचाता एवं ज्वरोत्पादक कीटाणुओंका नाशकर ज्वरको दूर करता है।

सुवर्णमालिनीवसंत—सुवर्णभस्म १ तोला, मोतीपिष्टी २ तोले, रससिन्दूर ३ तोले, सफेद मिर्च ४ तोले और जसदभस्म ८ तोले लेवें। इन सबको मिला २॥ तोले गोदुग्धमेंसे निकाला हुआ मक्खन मिलावें। फिर ८-१० दिन तक (जबतक घृतका अंश विलीण न हो तबतक) फिल्टर पेपरसे छाने हुए नीबूके रसमें खरल करें। पश्चात् ३ माशे कस्तूरी और १ तोला केशर मिला ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ रत्ती दिनमें २ बार सुबह और रात्रिको शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

यह रसायन भारतके सर्व प्रान्तोंमें समादरसे व्यवहृत होता है। जीर्णज्वर, क्षयज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृद्‌विकार, अग्निमान्द्य, शारीरिक निर्बलता, धातुक्षीणता, प्रदररोग, शुक्ररोग, हृदयरोग, जीर्णातिसार, कास और मस्तिष्कपीडामें लाभदायक है। बालक, वृद्ध, प्रसूता, सगर्भा आदि सबको निर्भय रूपसे दिया जाता है।

बृहन्मालिनीवसंत—सुवर्णभस्म, बंगभस्म, अभ्रकभस्म और प्रवालपिष्टी ३-३ तोले, मोतीपिष्टी ४ तोले, रससिन्दूर ५ तोले, सफेदमिर्च ७ तोले, केशर, कस्तूरी, गोरोचन और पीपल १-१ तोला, नागभस्म २ तोला और जसदभस्म ११ तोले लेवें। इन सबको मिला गोदुग्धमेंसे निकाले हुए ३ तोले मक्खनके साथ खरल करें। फिर २ दिन या चिकनाई दूर हो तबतक नीबूके रसमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ रत्ती दिनमें २ बार शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपानके साथ देवें।

यह रसायन जीर्णज्वरपर अति प्रशस्त है। बालक, युवा, वृद्ध, सगर्भा, प्रसूता सबको लाभ पहुँचाता है। ज्वरको दूरकर सत्वर शक्ति बढ़ा देता है एवं रक्तमेह, मेढ्शूल, पाण्डु, कामला, शिरःशूल, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, क्षय, सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणी, अर्श, शुक्रक्षय, घोरपीड़ायुक्त पित्तप्रकोप, बालग्रह, सगर्भाके रोग, योनिशूल, प्रदरका अतिस्राव, सूतिकारोग और सोमरोग आदिको दूर करता है। इन सबमें यह विशेषतः जीर्णज्वरके साथ शहद-पीपलके साथ व्यवहृत होता है। इस रसायनमें कस्तूरी और गोरोचन अधिक मात्रामें मिलाया है। इस हेतुसे यह प्रचलित सुवर्णवसंतकी अपेक्षा सत्वर लाभ पहुँचाता है, हृदयको यह खूब बल देता है एवं मस्तिष्कपर शामक असर पहुँचाता है। पचनक्रिया और धात्वग्निको सबल बनाता है, जिससे शरीर थोड़े ही दिनोंमें सबल बन जाता है।

लघुमालिनीवसंत—हिंगुल और खर्पर ८ तोले और सफेदमिर्च ४ तोलेको २ तोले मक्खनमें मिला फिर चिकनापन दूर हो तबतक फिल्टर पेपरसे छने हुए १०० नीबुओंके रसके साथ खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दूध, चाय या शहद-पीपलके साथ दिनमें २ बार देवें।

यह रसायन जीर्णज्वर, धातुगत ज्वर, विषमज्वर, अतिसार, क्षय,

अग्निमान्द्य, अर्श, वातविकार, प्रदर, रक्तार्श और नेत्ररोगको नष्ट करता है। इन सबमें जीर्णज्वर और ज्वरके पीछेकी निर्बलतापर विशेष व्यवहृत होता है। थोड़े दिनोंके सेवनसे पाण्डुता और निर्बलतासह मंद-मद ज्वरको दूर कर देता है।

प्लीहान्तक गुटिका—फिटकिरीका फूला, सोहागाका फूला, गिलोयसत्व, लोहभस्म और शंखभस्म १-१ तोला; एलुआ और शुद्ध गंधक २-२ तोले लें। सबको मिला घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरल-करके २-२ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे २-२ गोली दिनमें २ बार निवाये जलके साथ देवें।

यह गुटिका प्लीहावृद्धिमें अतिप्रभावशाली है। प्लीहावृद्धिसह ज्वर, यकृद्वृद्धि, मंदाग्नि, पाण्डु, उदरशूल और मलावरोधको दूर करती है।

विषमज्वरपर आयुर्वेदके उपर्युक्त शास्त्रीय प्रयोगोंमें विश्वतापहरण रस, शीतभंजी रस, मलेरियावटी, नारायणज्वरांकुश, मल्लादि वटी, अचिन्त्यशक्ति रस, भूतभैरव रस, त्रिभुवनकीर्ति रस, हरताल भस्म, हरताल-रसायन अच्छे काम करते हैं।

रोगीको अगर कोष्टबद्धता हो तो ज्वरकेशरी या अश्वकंचुकी सर्व-श्रेष्ठ औषधि हैं। इनका उपयोग दिनमें एक समय शीतल जलके साथ करनेसे ४ घण्टे पश्चात् दस्त आ जाता है।

मल्ल और ताल—विषमज्वरमें मल्ल (संखिया) और हरताल बहुत प्रभावशाली औषधियां हैं। आयुर्वेदका सिद्धान्त तो दोषशमन कराके ही ज्वरसे मुक्तिप्राप्ति करनेका है; परन्तु इस आधुनिक यान्त्रिक युगमें रोगीको इतना धैर्य कहां कि वह इस बातकी प्रतीक्षा कर सके कि कब उसके दोष साम्यावस्थाको प्राप्त हों और ज्वरसे मुक्ति मिले। आजका यान्त्रिक मानव तो आज ज्वर आया और १-२ घण्टेमें या कल उससे छुटकारा पाना चाहता है। अतः ऐसी औषधिकी तलाशमें रहता

है जो निश्चय ही एकदम ज्वरको रोक दे चाहे इसके परिणामस्वरूप उसके स्वास्थ्यको कितनी ही अप्रत्यक्ष हानि क्यों न होती हो। इसी बदली हुई मनोवृत्तिके फलस्वरूप एवं चिकित्साजगत्‌में पाश्चात्य औषधियोंका मुकाबला करनेकी दौड़में मल्लादि उग्र औषधियोंके मिश्रणसे ऐसे प्रयोग तैयार किये गये हैं जिनसे ज्वरका एकदम निरोध हो जाता है।

उपर्युक्त प्रयोगोंमें मल्लादिवटी, मलेरियावटी, भूतभैरव रस, नारायणज्वरांकुश, अचिन्त्यशक्ति रस, संखिया और हरतालके प्रयोग हैं। इन सबका उपयोग विषमज्वरके पुनरावर्तनको रोकनेके लिए होता है। इन सबमें नारायणज्वरांकुश अत्यन्त प्रभावशाली व निर्भय औषधि है। इसका वात तथा कफप्रधान ज्वरमें ज्वरके वेगको शमन करनेके लिए निर्भयपूर्वक उपयोग किया जा सकता है। वराटिका और सुहागाका मिश्रण करनेसे इससे दोषपचनमें भी अत्यन्त सहायता मिलती है। अगर ज्वरके साथ अतिसार हो तो इससे चमत्कारिक लाभ होता है।

सूचना—उपर्युक्त सब प्रयोग सोमलके हैं, इसलिये खान पानमें अपथ्य नहीं करना चाहिये। जहांतक हो सके इनका उपयोग ज्वरके तीव्र वेग, ग्रीष्म ऋतु और पित्तप्रधान ज्वर व प्रकृतिवाले रोगीको न करावें। औषध बिल्कुल खाली पेटपर भी सेवन न करावें।

महाज्वरांकुश—कफप्रधान विषमज्वरमें, जब कि रोगी शारीरिक वेदना और जड़ताके कारण अत्यधिक कष्ट पा रहा हो, तब महाज्वरांकुशरस १-१ रत्तीकी मात्रामें अदरखके रस और शहदके साथ सेवन करानेसे पसीना आकर रोगीका शरीर हल्का हो जाता है। इस योगमें वच्छनाग व धतूरेके बीज मुख्य औषधि होनेसे वेदनाशामक धर्म उत्कृष्ट है। सोंठ, काली मिर्च, पीपलके मिश्रणसे इससे आमपचन भी होता है। अतः स्वेदल, ज्वरघ्न, वेदनाशामक और आमपाचक इस रसायनके मुख्य गुण हैं।

शीतभंजीरस—अनेक रोगियोंमें विषमज्वर बहुधा शीत लगकर आता है एवं बारबार आक्रमणके कारण रोगीका प्लीहा और क्वचित यकृत् भी बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें शीतभंजीरसका उपयोग करें। बच्छनागप्रधान औषधि होनेके कारण शीतावस्थामें अत्यधिक लाभ करती है। ताम्रके सम्मिश्रणके कारण यकृत् और प्लीहाको भी बल-प्रदान करता है।

विश्वतापहरण—उपर्युक्त प्रयोगोंके अतिरिक्त विश्वतापहरणरस ऐसा रसायन है जो अत्यन्त सौम्य रूपसे स्थिर प्रभाव करता है। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञानमें क्विनाइन विषमज्वरको उत्कृष्ट औषधि मानी जाती है, परन्तु अनेक रोगी इसे सहन नहीं कर सकते एवं रक्त-दबावसे पीड़ित, वृक्करोगी और पित्तप्रधान प्रकृतिवालेपर इसका प्रयोग करनेसे ज्वरवेग तीव्र रूप धारण कर लेता है और रोगी व्याकुलता, निद्रानाश, हृत्स्पन्दन, उबाक, खट्टी खट्टी वमन, मूत्रमें जलन, मूत्रा-वरोध, तृषा आदि अनेक उपद्रवोंसे पीड़ित हो जाता है। ऐसी अवस्थामें सुवर्णमाक्षिकभस्म और सूतशेखरकी २ मात्रा देकर व्याकुलता आदि कष्टप्रद उपद्रवोंको शमन करा देनेके पश्चात् रोगीको विश्वतापहरण-रसका सेवन मिश्री और भूने जीरेके साथ करानेसे लाभ हो जाता है।

वमन—ज्वरावस्थामें अत्यधिक वमन हो रहा हो तो ५-७ तुलसीके पत्ते व २ लौंगको पानीमें घिसकर जरासा उसमें सैंधानमक मिला गरम करके पिला दें। इससे पैत्तिक वमन सत्वर रुक जाता है अथवा नीबूका रस शक्करके साथ देनेसे भी वमन बन्द हो जाता है।

आयुर्वेदके प्रसिद्ध प्रयोगोंमें इसके लिए सूतशेखर और कामदुघा-रस सर्वश्रेष्ठ रहते हैं।

अतिसार—यदि अपथ्यसेवनसे दुर्गन्धयुक्त अतिसार हो जाय तो निश्चय ही रोगीको लंघन करावें और अनारका सेवन करावें। इस अवस्थामें सर्वांगसुन्दररस और सूतशेखररस बहुत लाभ करते हैं।

अतिसार बन्द होनेपर यदि आवश्यकता हो, तो पुनः विषमज्वरकी औषधिका सेवन कराना चाहिये।

प्रलाप होनेपर—जैसा कि प्रथम लिखा जा चुका है, ज्वरका वेग अत्यधिक होनेपर मस्तिष्कपर शीतल पट्टी रखें ताकि मानसिक स्थितिमें किसी प्रकारकी बाधा न आ सके। अगर असावधानी या अन्य कारणोंसे मानसिक शक्ति असंतुलित होकर प्रलाप हो जाय या रोगी उठ उठकर भागने लगे, ज्वर अत्यधिक हो, तो कस्तूरीभैरव और यदि ज्वरांक कम हो, तो संचेतनी वटीका उपयोग करें। सूतशेखर, वातकुलान्तक और आगे लिखी हुई हिंगकर्पूरवटी भी अच्छा कार्य करते हैं।

४. हिंगुकर्पूर वटी—उत्तम प्रकारकी हीरा हींग और कपूरको समभाग मिलाकर खरल करनेपर गोली बाँधने योग्य गीलापन आ जाता है। उसमेंसे २-२ रत्तीकी गोली बनाकर कालीमिर्चके कपड़छन चूर्णमें डालते जांय। इनमेंसे १-१ गोली २-२ घण्टेपर अदरखके रस २-३ माशेमें (या २-४ तोले दूधमें) देनेसे प्रलाप शमन हो जाता है एवं शक्तिपात, कफप्रकोप, बेहोशी, निद्रानाश, आध्मान, शीतांगावस्था और आक्षेप आदि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं। इस वटीके सेवनसे रक्ताभिसरणक्रिया सबल बनती है, शारीरिक उत्तेजना और मानसिक स्फूर्ति आ जाती है।

जीर्णावस्था—अगर असावधानी, अपथ्यसेवन और योग्य चिकित्साके अभावसे ज्वर पुराना हो जाय, तो उस अवस्थामें भिन्न-भिन्न औषधियोंका सेवन कराया जाता है। जब ज्वर अपथ्यसेवन आदि कारणोंसे जीर्ण हो जाता है, तब बहुधा पचनसंस्था भी दूषित रहती है। मलावरोध बना रहता है, ऐसी अवस्थामें निम्न त्रिवृतादि कषायका उपयोग किया जाता है।

५. त्रिवृतादि कषाय—निसोत, इन्द्रायनमूल, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आँवला और अमलतासका गूदा, इन ७ औषधियोंको समभाग

मिला जौकूटकर १·२ तोलेका क्वाथ कर २ रत्ती जवाखार मिलाकर ३ दिन तक रोज प्रातःकाल पिलाते रहनेसे पचनसंस्था शुद्ध हो जाती है। फिर ज्वर सरलता से दूर हो जाता है।

६. **वर्धमान पिप्पली**—आध सेर दूधमें ४ गुना जल मिलाकर दूध शेष रहे पर्यन्त मन्दाग्निसे ओटावें। प्रथम दिन एक पीपलसे आरम्भ करके प्रतिदिन एक एक या तीन तीन पीपल बढ़ाते जांय। इस प्रकार क्रमशः १० दिन बढ़ावें। जो अधिक मिर्च खाते हों, वे ३-३ पीपल बढ़ावें। कम मिर्च खाते हों, वे १-१ बढ़ावें। पीपलको पीसकर दूध मिलावें और चूल्हेपर रखकर उबालें। पानी जल जानेके बाद दूधमात्र शेष रहनेपर उतार शीतल होनेपर पी जांय। १० दिनके पश्चात् बढ़ानेके क्रम ही से क्रमशः कम करते जांय। इस प्रकार यह कल्प करनेसे विषमज्वर शीघ्र पीछा छोड़ देता है, पचनक्रिया सुधर जाती है और शरीरबलकी प्राप्ति हो जाती है।

सूचना—यदि सूखी खांसी हो जाय, तो पीपलका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये।

सिद्धप्रयोग—उदरशुद्धि हो जानेपर शास्त्रीय सिद्ध प्रयोगोंमेंसे जयमंगलरस, सुवर्णमालिनीवसंत, लघुमालिनीवसन्त, चन्दनादि लोह, मलेरिया वटी, प्लीहान्तक वटी, अमृतारिष्ट आदिका अवस्थानुसार उपयोग करावें।

जयमंगल रस—इन सबमें जयमंगल सर्वश्रेष्ठ योग है। इससे धातुगत विषमज्वर दूर होता है, मस्तिष्कमें पहुँची हुई उष्णता दूर होती है, मस्तिष्कस्थ तापनियामक केन्द्रको बल प्राप्त होता है।

अनेक समय अहित आहार-विहारके फलस्वरूप या अन्य कारणसे विषमज्वर लम्बे समयतक पीछा नहीं छोड़ता, ऐसा ज्वर शीतल और उष्ण उपचार, दोनों से बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें यह रसायन अद्वितीय सिद्ध होता है।

सेन्द्रिय विषको जलाकर कीटाणुनाशका उत्कृष्ट गुण इस रसायनमें विद्यमान है।

सुवर्णमालिनी—यह ज्वरकी निवृत्तिके पश्चात् शेष निर्बलता, मंदाग्नि, धातुगत मन्द ज्वर, प्लीहावृद्धि, यकृद्विकार, मस्तिष्कदौर्बल्य, धातुक्षीणता, कफयुक्त खांसी, हृद्रोग, स्त्रियोंमें प्रदर आदि विकारोंपर यह दिव्य औषधि है।

अनेक समय जीर्ण ज्वरका वेग तो शान्त हो जाता है, परन्तु संध्या या रात्रिको मन्द ज्वर बना रहता है। ऐसी अवस्थामें सुवर्णमालिनीका चन्दनादि लोहके साथ उपयोग करनेसे शीघ्र लाभ हो जाता है।

ज्वरकी विकृतिके पश्चात् रोगी अक्सर मन्दाग्निकी शिकायत करते हैं। ऐसी अवस्थामें ऐसी औषधयोजनाकी जरूरत होती है, जो कीटाणुनाशक, ज्वरघ्न, सेन्द्रियविषशामक, बलप्रदान करनेवालीके साथ ही साथ पाचक रसकी उचित परिमाणमें उत्पत्ति कराके पाचक क्रिया उत्तम प्रकारसे करावे। ये सब लाभ सुवर्णमालिनीको चौसठ प्रहरी पीपलके साथ सेवन करानेसे प्राप्त हो जाते है।

सुवर्णमालिनीका सुप्रभाव आमाशय और अन्त्रतक ही सीमित नहीं है। इसका रसवाहिनियों और रसोत्पादक पिण्डोंपर भी बहुत अच्छा प्रभाव होता है। विषमज्वरके कारण दूषित और दुर्बल हुए प्लीहा तथा यकृत्‌के दोषोंको दूर करके भी यह पचनक्रियामें सहायता पहुँचाती है।

लघुमालिनी—यह न्यून मूल्यवाली उत्कृष्ट औषधि है। इसका मुख्य अंग 'खर्पर' है, जो निश्चय ही जसदका यौगिक है। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जसद्‌में एक लम्बे समयतक अपना प्रभाव कायम रखनेकी स्वाभाविक शक्ति है। अतः जीर्णज्वरमें इसका प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होता है।

१३. कालज्वर

(कालाआजार—Kala Azar, Blackfever, Assamfever)

यह भी एक प्रकारका सततज्वर ही है, परन्तु उसकी अपेक्षा यह अत्यधिक बलवाला, अतिदुःखदायी और दीर्घस्थायी रोग है, अतः इसका पृथक् वर्णन किया जाता है। इस रोगमें अनियमित उत्तापवृद्धि, यकृत्प्लीहावृद्धि, रक्तस्राव, रक्तन्यूनता और दुर्बलता विशेषरूपमें देखनेमें आती है। इस ज्वरका विष काफी लम्बे समयतक धातुओंमें लीन रहनेके सामर्थ्यवाला होनेसे लम्बे समयतक ज्वरका पुनरावर्तन (पुनः आक्रमण) होता रहता है। इसमें रोगीके शरीरका रंग काला हो जाता है इसलिए इसका नाम काला-आजार रखा है।

इतिहास—सबसे पूर्व सन् १८८२ में इस रोगका वर्णन किया और १८६९ के लगभग यह ज्वर आसाममें एक नये अजीब रोगके रूपमें लोगोंको भयभीत कर रहा था। रक्तमें मलेरियाके कीटाणुओंकी अनुपस्थिति और क्विनाइनकी प्रभावहीनताने इस रोगका पृथक् अस्तित्व कायम करनेमें सहायता दी है।

काला-आजार काफी विस्तृत भूभागमें फैली हुई बीमारी है। भारतमें मुख्यतः आसाम, मद्रास और ब्रह्मपुत्रा नदीकी घाटीके साथ साथके प्रदेशमें यह पाया जाता है। भारतके अतिरिक्त भी अनेक देशोंमें यह रोग उत्पन्न होता है।

देशव्यापी रूपसे इसका विस्तार सर्वप्रथम १८७० में आसाममें देखा गया। उस समयसे अबतक कुछ समयके अन्तरसे इस प्रान्तमें इसका आक्रमण होता रहता है। देशव्यापी रूपमें इसका प्रभाव ७ वर्षमें कुछ सौ माइलकी रफ्तारसे ब्रह्मपुत्रा नदीकी घाटीके समानान्तर हुआ है। साधारणतः एक स्थानपर ६ वर्षतक उपस्थित रहनेपर वहांपर

स्वयमेव शमन हो जाता है। एक घरमें इसका संक्रमण अनेक मासतक रह सकता है।

इस समय कालाआजार आसाम, बंगाल, विहार, उड़ीसा और संयुक्तप्रान्तमें लखनऊतक देखा जाता है। भारतके पूर्वी समुद्री किनारेके साथ साथ भी मद्रासमें तूतीकोरन तक फैल गया है।

इसकी भयंकरताके कारण प्रभावित क्षेत्रोंके निवासी इतने डरे हुए हैं कि जो मनुष्य इस ज्वरसे पीड़ित हो जाता है, उसे गांवसे बाहर निकाल दिया जाता है और कभी कभी रोगीको मादक द्रव्यके प्रयोगसे संज्ञाहीन करके जंगलमें लेजाकर जीवित ही जला देनेकी दर्दनाक घटना भी हो जाती है। किसी गांवमें इसका प्रकोप हो जानेपर आस-पासके गांववाले संक्रमणके भयसे इससे हर प्रकारसे सम्बन्धविच्छेद कर लेते हैं या उस गांवको छोड़कर दूर अन्य प्रान्तमें जा बसते हैं।

अक्सर यह देखा गया है कि इसका प्रकोप मैदानोंके ग्रामीण क्षेत्रोंतक ही सीमित रहता है और समुद्रतटसे ४००० फीटकी ऊँचाईपर यह नहीं फैल सकता। यह मार्चसे मई मासतक फैलता है, परन्तु आसाममें शीतऋतुमें नवम्बरसे फरवरीतक।

कारण—इस रोगका मुख्य कारण एक प्रकारका परोपजीवी कीटाणु है, जिसकी शोध लीशमन (Leishman) साहबने की है। इसका नाम लिशमानिया-डोनोवनी (Leishmania Donovani) कहते हैं। इनका आकार अण्डाकार या गोल लगभग २-४ म्यू० तक व्यासवाला होता है। कीटाणुओंका विकास और वृद्धि प्लीहा, मज्जा और लसिकाग्रन्थियोंके कोषाणु पर होता है।

कीटाणुओं का वहन—कीटाणुओंका वहन एक प्रकारके पिस्सू (Sandfly) द्वारा होता है। जब यह पिस्सू इस रोगसे पीड़ित किसी रोगीको काटता है, तब उसमें कीटाणुओंका प्रवेश हो जाता है। यह भी देखा गया है कि इसका संक्रमण रोगीके मल द्वारा भी दूसरे आदमीको हो

सकता है। यह सचाई इस बातपर निर्भर है कि काला-आजारके कीटाणु अन्त्रकी श्लैष्मिककलामें भी विद्यमान रह सकते हैं। इसके कीटाणुओंका जीवन-चक्र किस प्रकार चलता है यह अभी ज्ञात नहीं हो सका है।

काला-आजार समान रूपसे सब आयुके स्त्री और पुरुषोंको पीड़ित करता है। मुख्यतः इसका आक्रमण उन मनुष्योंपर ज्यादा होता है, जो अन्य प्रान्तोंसे उन प्रान्तोंमें स्थानपरिवर्तन करते हैं, जिनमें कि इस ज्वरका प्रकोप होता है। भूमध्यसागरके आसपासके देशोंमें यह बच्चोंको ज्यादा पीड़ित करता है, जबकि भारतमें किसी भी उम्रमें हो सकता है।

सम्प्राप्ति—प्लीहा अत्यधिक बढ़ जाती है। तीव्रावस्थामें कोष चिकने, मोटे और ग्रन्थिमय हो जाते हैं। इसका वल्क (Pulp) बढ़ जाता है और सूत्रमय होता है। यह कल्पना की जाती है कि सम्पूर्ण प्लीहाका पांचवा भाग परोपजीवी कीटाणुओंका बन जाता है और काला-आजारके कीटाणु शरीरके दूसरे अङ्गोंकी तुलनामें इसमें ज्यादा पाये जाते हैं।

यकृत्—यह भी बढ़ जाता है। इसकी जीर्णावस्थामें अन्तरखण्डीय यकृद्दाल्युदर हो जाता है।

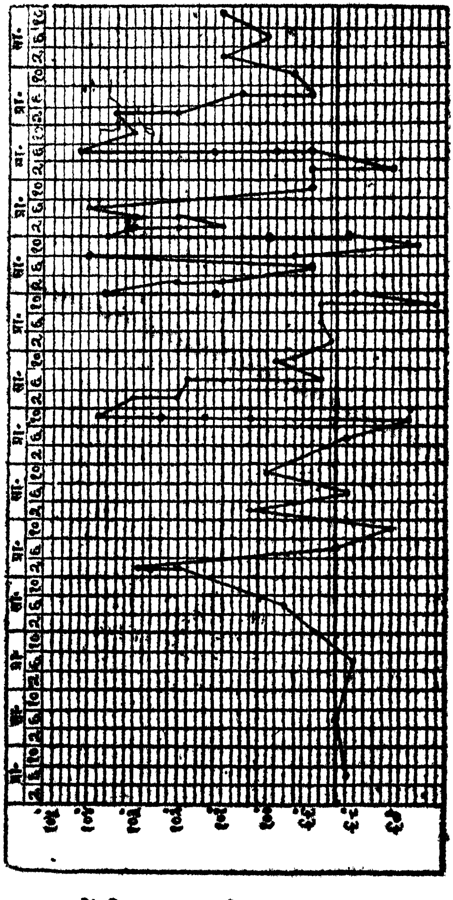
अस्थिमज्जा—यह रक्तवर्णीय और कीटाणुमय हो जाती है। इसमें अत्यधिक हानि पहुँचनेके कारण रक्तनिर्माण करनेवाले तन्तु नाममात्रके शेष रह जाते हैं।

वृक्क—इसमें भी रक्तसंचारके साथ कीटाणु पहुँच जाते हैं। मूत्रमें इनकी उपस्थिति शायद मूत्राशय पर आक्रमण हो जानेपर होती है।

लसीका-ग्रन्थियां—साधारणतः बढ़ जातीं और कठोर हो जाती हैं। ग्रसनिका और नासिकास्रावमें इस ज्वरके कीटाणु देखे जा सकते हैं। अन्त्रमें भी यह पाये जा सकते हैं।

चयकाल—३ से ६ मास या १ वर्ष।

चित्र नं० ५



कालज्वरमें द्विगुण आकस्मिक उपरामसह उत्ताप

लक्षण—इस रोगका आक्रमण अकस्मात् अत्यधिक ज्वरसह होता है

है। ज्वरसे पूर्व कँपकँपी और वमन हो सकता है। उत्तापकी अनियमितता (दिन और रात बढ़ते रहना), कितनेही सप्ताहतक उत्ताप रहना और निरन्तर लक्षणोंकी वृद्धि, प्लीहाकी अत्यधिक वृद्धि। यकृत्की वृद्धि, उदर समुन्नत होना, कृशता, निर्बलता आना, स्वेदकी अधिकता, त्वचा मलिन या श्याम हो जाना, पाण्डुता, श्वेताणु और रक्ताणुओंकी न्यूनता। अस्थिमज्जामें विकृतिके कारण रक्ताणुओंमें विविध परिवर्तन हो जाता है। अन्त्रक्षतके कारण अतिसार हो जाता है। यह २ से ६ सप्ताहतक रहता है और कभी इससे भी ज्यादा। प्रत्येक ४ घण्टेके पश्चात् ताप मापनेपर यह स्पष्ट मालूम हो जायगा कि २ या ३ समय उत्तापवृद्धि हुई है, जो कि इस रोगका मुख्य लक्षण है। प्लीहाकी वृद्धि रोगके आरम्भमें ही हो जाती है, जब कि यकृत् कुछ समय रोग पुराना पड़ जाने पर बढ़ता है।

इस रोग का उपशम हो जानेपर भी थोड़े दिनों में पुनराक्रमण हो जाता है। फिर उपशम और पुनः आक्रमण इस तरह लम्बे समयतक यह कष्ट पहुँचाता रहता है। यहाँ तक कि कुछ आक्रमणों के पश्चात् रोगी को निरन्तर हल्का ज्वर रहने लग जाता है।

बाल शुष्क भंगुर हो जाते हैं और गिरने लगते हैं। मसूढ़ों से अक्सर रक्त निकलने लगता है

इस रोगका यह मुख्य लक्षण है कि उपरोक्त सब लक्षण होनेपर रोगीको भूख खूब अच्छी लगती है और उसकी जिह्वा स्वच्छ होती है। रोगी १०२° ज्वरतक काम करता रहता है। जैसे कि उसे ज्वर ही न हो। बेचैनी और घबराहट नहीं होती है। रोग जीर्ण हो जाने पर यकृद्दाल्युदर के कारण जलोदर, सर्वांगशोथ; श्लैष्मिककलामें रक्तस्राव आदि उत्पन्न हो जाते हैं। त्वचापर काले धब्बे हो जाते हैं और बहुत बढ़ जाते हैं। ३-४ आक्रमण के पश्चात् देह निर्बल हो जाती है।

योग्य चिकित्साके अभावमें अतिशय क्लान्ति आकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

रोगविनिर्णयः—विषमज्वर, प्लीहासे उत्पन्न रक्तन्यूनता, घातक हृदयावरणप्रदाह, यकृद्दाल्युदर आदि इसके लक्षण मिलते हैं। अतः निदान करनेमें इनका खयाल रखना चाहिए।

स्पष्ट अत्यधिक स्वच्छ जिह्वा और अच्छी निरोगी के समान भूख इस ज्वर को जीर्ण विषमज्वरसे भेद करने में अत्यधिक सहायक होती है। अत्यधिक रक्तन्यूनता; एक ही दिनमें २ समयमें उत्तापवृद्धि (८८ प्रतिशत रोगियों में, उदरपर नीली-नीली शिराओंका दिखाई देने लग जाना और शाखाओंपर धब्बे ऐसे मुख्य लक्षण हैं, जिनकी सहायतासे उपर्युक्त रोगोंसे आसानीसे भेद किया जा सकता है।

साध्यासाध्यताः—काला आजार अधिकतर एक चिरकारी स्वभाववाली व्याधि है परन्तु देशव्यापीरूपसे प्रकोप होनेपर इसके तीव्र अवस्थाके रोगी भी देखे जा सकते हैं। आन्त्रिक विकृति, जलोदर, यकृद्दाल्युदर रोगीकी कष्ट सांध्यता प्रगट करते हैं। विषमज्वर प्रवाहिका भी साध्यासाध्यतापर प्रभाव पड़ता है। इस रोगकी आशुकारी तीव्रावस्थामें ८० प्रतिशत मृत्यु हो जाती है। चिरकारी अवस्थामें मृत्युसंख्या कम है। यह रोग १-२ वर्षतक रह रहकर रोगीपर आक्रमण किया करता है।

चिकित्सोपयोगी सूचनाः—घरेलू और व्यक्तिगत सफाई का इसमें अत्यधिक महत्त्व है। संक्रमित कुत्तोंको मार देना चाहिए और जिस देशमें इसका प्रकोप हो उसमें कुत्तोंको मनुष्योंसे दूर रखें। यह देखा गया है कि कुत्तेकी संख्या अत्यधिक कम कर देनेसे इससे पीड़ित देशोंमें रोगका प्रकोप अत्यन्त कम हो गया है।

रोगीको एक दम स्वच्छ वायुमें गाँवसे बाहर रक्खें और उसके वस्त्र झोंपड़ी, फरनीचर आदि सब जला दें। भूलकर भी दूसरा मनुष्य इनको उपयोगमें न लेवें।

इसके कीटाणुओंको वहन करनेवाली सेण्डफ्लाई के विनाश और उत्पतिको रोकनेके लिए प्रभावशाली उपायोंका अवलम्बन करें । यह सीलदार मकानोंके भीतर अन्धेरेमें रहती है, अतः ऐसे मकानोंमें निवास न करें। प्रकोपके समय पानीको उबालकर शीतल हो जानेपर पिलावें।

मीठेका सेवन न करें, क्योंकि इससे कीटाणु सबल बनते हैं।

कालज्वर-चिकित्सा ।

तीव्रावस्थामें अत्यन्त सावधानीसे दोषशमनार्थ उपचार करें । प्रारम्भिक अवस्थामें निम्न 'रत्नगिरी रस', मैनसिल और हिंगुलका प्रयोग होनेसे अच्छा काम करता है । यह भी एक प्रकारका सततज्वर होनेसे विषमज्वरमें वर्णित सततज्वर-चिकित्सा-प्रणालीका भी अवलम्बन किया जा सकता है।

१. रत्नगिरी रस—शुद्ध मैनसिल, शुद्ध हिंगुल, लौंग और जायफल, इनको समभाग मिलाकर १२ घण्टेतक अदरखके रसमें खरल-कर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ गोली। बच्चोंको $\frac{1}{3}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती।

अनुपान—धनिया और मिश्री ६-६ माशेको जौकुट कर ५ तोले जलमें १ घण्टेतक भिगो देवें । फिर मसल, छानकर औषधिके साथ पिला देवें। जीर्ण ज्वर होनेपर दूधके साथ देवें।

उपयोग—यह बड़े और बच्चोंको बने रहनेवाले ज्वरको उतारनेके लिये अमोघ और निर्भय औषधि है। धनिया मिश्रीका अनुपान देनेपर स्वेदल गुण दर्शाता है और आमविषको जला डालता है। ग्रामवासियोंके वर्षाऋतुमें अस्वच्छ जल पीने तथा कीटाणु और ऋतुप्रकोप आदिसे उत्पन्न हुए ज्वरको यह सरलतापूर्वक दूर कर देता है। प्रसूताको ज्वर आता हो, तो उसे भी दूर करनेके लिये इस रसायनका प्रयोग किया जाता है।

२. दुग्धकल्प—कालज्वरपीड़ित रोगियोंके लिए दुग्धकल्प आशी-र्वादके समान हितावह है। गोदुग्धपर रोगी २ मास रह जाय, तो कीटाणु

नष्ट हो जाते हैं; विष जल जाता है; रक्त शुद्ध हो जाता है। दूषित अवयव पुनः बलवान् बन जाते हैं; त्वचाका रङ्ग पूर्ववत् उज्वल बन जाता है तथा शरीरबल और मस्तिष्कशक्ति भी बढ़ जाती है।

इस कल्पकालमें दूधके अतिरिक्त कुछ भी भोजन नहीं लेना चाहिये। जलकी आवश्यकता हो, तो उबालकर शीतल किया हुआ जल पीवें। जिनको गोदुग्ध अनुकूल न रहता हो, गोदुग्धसे पतले दस्त हो जाते हों, उनको अजादुग्ध देते रहना चाहिये। इस कल्पकालमें निम्न प्रयोगका सेवन करते रहना चाहिये।

३. किरातादिफाण्ट—चिरायता ३ माशे, कुटकी १ माशा, कालीमिर्च ४ रत्ती, इन सबको १ रत्ती कपूर, २ रत्ती शिलाजीत और ६ माशे शहद मिलाकर पिला देवें। यह फाण्ट सुबह और शाम, दिनमें २ बार देते रहें। इस फाण्टके सेवनसे आम, कीटाणु और विष नष्ट होते हैं। फिर ज्वर शनैः शनैः कम होता जाता है। हृदयको बल मिलता है और थोड़े समयमें शरीर स्वस्थ और सबल बन जाता है।

वक्तव्य—कपूर पचनसंस्था, त्वचा, वातसंस्था और रक्तपर लाभ पहुँचाता है। शिलाजीत दोषोंको सुखानेमें सहायक है। अतः नियमपूर्वक पिलाते रहना चाहिये।

एक माशा कुटकीसे पतले दस्त अधिक होने लगें, तो कुटकीकी मात्रा कम करें। यदि अन्त्रक्षत होकर अतिसार हो रहा हो, तो कुटकी नहीं मिलानी चाहिये। कुड़े की छाल ३ माशे मिलाते रहें।

१०-१५ दिन बाद मलमेंसे दुर्गन्ध दूर होने और ज्वरवेग कम होनेपर चिरायतेके साथ त्रिफला ३ माशे मिलाते रहें।

यदि कफप्रकोप भी हो तो किरातादि फाण्टकी अपेक्षा निम्न नागरादिक्वाथका सेवन विशेष हितावह माना गया है।

४. नागरादि क्वाथ—सोंठ ६ माशे, छोटी कटेलीकी जड़, नागरमोथा और आँवले १—१ तोला मिला जौकुट कर आध सेर जलमें

मिलाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर छानकर २ हिस्से करें। फिर पिलानेके समय १ रत्ती कपूर, २ रत्ती शिलाजीत और ६ माशे शहद मिलाकर पिलाते रहें।

इस क्वाथके सेवनसे सब प्रकारके दृढ़, जीर्ण विषमज्वर निःसन्देह दूर होते हैं और पचनक्रिया सुधर जाती है। अनेक रोगियोंपर प्रयोजित किया गया है। वात, कफ प्रकृतिवालोंके लिए यह प्रयोग अति-हितावह है।

जीर्णावस्थामें, जब कि प्लीहा अत्यधिक बढ़ जाती है, पुनर्नवामण्डूर, ताम्रभस्म, प्लीहान्तकवटी लोहयुक्त अच्छा लाभ करती हैं। यदि रोगीको कोष्ठबद्धता रहती हो, तो ज्वरकेसरी या त्रिफलारिष्ट उपयोगमें लेवें।

डाक्टरी मतानुसार इस रोगकी एकमात्र औषधि सुरमाघटित लवण (Sodium Antimony Tartrate) है। इसका एक शक्ति-शाली मिश्रण बनाया गया है, जिसको Pentavalent Salts कहते हैं। इसके उपयोगसे प्राप्त परिणाम अत्यन्त संतोषजनक है।

सुरमासे चिकित्सा करनेसे काला-आजारके रोगीपर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतीत किया जा सकता है। रोगीके शरीरका भार बढ़ने लग जाता है, प्लीहा और यकृत् संकुचित हो जाते हैं, श्वेताणुकी संख्यामें वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत सुरमाके उपयोगसे जो रोगी स्वास्थ्यलाभ करते हैं, उनमें भी कभी कभी देखा गया है कि १ ग्राम (८ रत्ती) या इससे भी अधिक सुरमा प्रयोग करा देनेपर भी प्लीहा में इस ज्वरके कीटाणु विद्यमान रह जाते हैं।

सुरमा (Pentavalent Salt or Stibamidine) के उपयोगसे विषलक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। मुँहमें और गलेमें धात्वीय स्वादकी उत्पत्तिको विषलक्षण नहीं समझना चाहिये। अतः इनकी उत्पत्ति के पश्चात् इसका अन्तःक्षेपण एकदम बन्द कर देना चाहिए। तीव्र नाड़ी, शीत व गीली त्वचा और बलक्षय वास्तव में भयङ्कर लक्षण हैं।

इतना होनेपर भी सुरमाका उपयोग इस ज्वरमें अत्यधिक लाभदायक है, अतः इसके मिश्रणके अन्तःक्षेपण या इसके उग्र स्वभाववाले यौगिकके स्थानपर निम्न आयुर्वैदिक विधिसे कराया जाय तो अत्यधिक सुविधा रहती है।

शुद्ध सुरमा २ रत्ती, अपामार्गक्षार २ रत्ती दोनोंको मिला शहद के साथ देवें। इस प्रकार दिनमें २ बार ६ मासतक सेवन करानेपर रोगमुक्ति होकर कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

१४. आन्त्रिक ज्वर

(मन्थरज्वर–मधुरा–मोतीझरा—Typhoid or Enteric Fever)

यह एक प्रकारका मुद्दती सान्निपातिक ज्वर है, क्योंकि इसमें तीनों दोष कुपित होते हैं, अतः इसकी गणना सन्निपातमें ही की जा सकती है। इस वर्गमें आन्त्रिक और विषम आन्त्रिक (Paratyphoid Fever) यह दो प्रकारके मुख्य ज्वर सम्मिलित किये जाते हैं। विषम आन्त्रिक ज्वरके पुनः ३ भेद हो जाते हैं।

इतिहास—इस ज्वरका वर्णन प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। इससे मालुम पड़ता है कि उस समय इस प्रकारका कोई ज्वर नहीं होता था। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक आधे भागमें आन्त्रिक और प्रलापक (Typhus Fever) एक ही वर्ग 'सततज्वर' के अन्तर्गत माने जाते थे, परन्तु सन् १८५५-६२ में इनका विभेद किया जा सका था और १८८१ में तो इनके कारण कीटाणुओंकी शोध ही कर ली गयी थी।

यह ज्वर अधिकतर भारत, जापान, चीन, फिलीपाइन्स, मलाया, पश्चिमी और दक्षिणी अफ्रीका आदि देशोंमें पाया जाता है।

पश्चिमसे पूर्वीय देशोंमें आनेवाले मनुष्योंको यह रोग अधिक पीड़ित करता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु यह सौभाग्य की बात है कि

कुछ समय इन देशोंमें रहनेवालेपर उनको भी यहाँ के मुख्य निवासियोंके समान स्वाभाविक क्षमता प्राप्त हो जाती है। इस ज्वरके एक समय आक्रमण हो जानेपर या निरन्तर इसके संक्रमणके सम्पर्कमें रहनेसे एक प्रकारकी स्वाभाविक प्रतिरोधक शक्ति (क्षमता) उत्पन्न हो जाती है। भारतमें यह ज्वर आजकल अत्यधिक पाया जाता है।

संक्रमण—इस रोगके संक्रमणका मुख्य साधन संक्रमित आदमी ही है, जिससे कि मल या मूत्र अथवा दोनोंमेंसे इसके कीटाणु निकलते रहते हैं। इनका वर्णन ३ प्रकार से किया जाता है। १. **तीव्रवाहक**—आन्त्रिक ज्वरके रोगी आक्रमणके पश्चात् कुछ समयके लिए कीटाणु निकालते हैं। २. **चिरकारी वाहक**—जो अनेक वर्षोंतक, यहाँतक कि सम्पूर्ण जीवनतक कीटाणुओंका त्याग करते रहते हैं। इस प्रकारमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियाँ ज्यादा देखी गयी हैं। इसमें कीटाणु पित्ताशयमें अपना घर बनाकर रहते हैं और जिसके परिणामस्वरूप यह वाहक पित्ताशयकी पथरी या पित्तावरोधसे पीड़ित हो जाता है। ३. **निष्क्रियवाहक**—जो इस रोगसे पीड़ित हुए बिना ही इसके कीटाणुओंका वहन करते हैं।

संक्रमण ३ प्रकारसे होता है। १. इस पीड़ित रोगीके प्रत्यक्ष सम्पर्कसे। २. इन कीटाणुओंसे दूषित पानीद्वारा अप्रत्यक्षरूपसे। ३. उन मक्खियोंके द्वारा, जो दूषित पदार्थोंसे कीटाणु लेकर मनुष्य या भोज्य, पेय आदि पदार्थोंतक पहुँचा देती हैं।

कारण—इस ज्वरको उत्पत्तिका कारण एक कीटाणुविशेष "बेसिलस टाइफोसस' (Bacellus Typhosus) है। अधिक परिश्रम, उपवाससे उत्पन्न कृशता, सूर्यके तापमें भ्रमण, दुर्गन्धयुक्त स्थानमें निवास, मल-मूत्रके संसर्गसे दूषित जलपानका सेवन, मक्षिकासे दूषित पदार्थोंका सेवन आदि कारणोंसे इसके कीटाणुओंका मनुष्यके अन्त्रमें प्रवेश हो जाता है और अन्त्रस्थ ग्राह्याङ्कुर (Peyer's Patches) और क्षुद्रान्त्रके अन्तिम भागको अपना आश्रय बना लेते हैं, जहाँपर यह

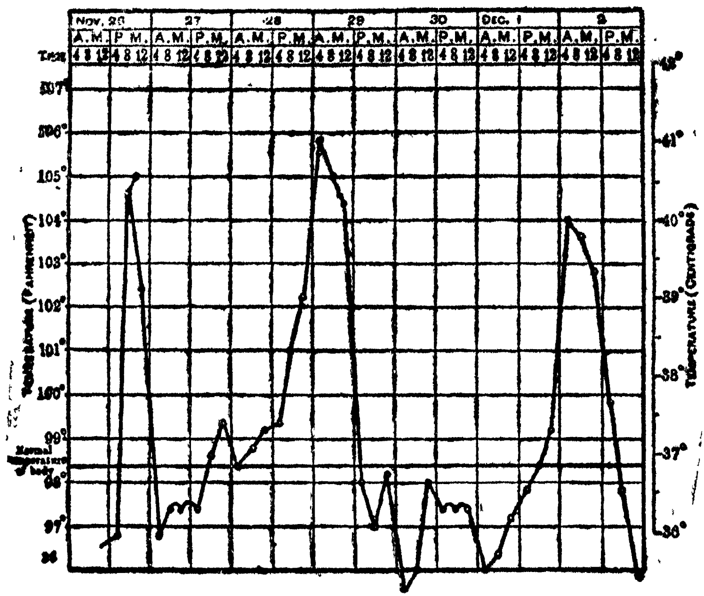
जीर्णावस्थामें कोथ और व्रण आदि उत्पन्न करनेमें सफल हो जाते हैं। इसके पश्चात् उदरकी लसिकाग्रन्थियोंमें प्रवेश करते हैं और अन्तमें रक्तप्रवाहमें प्रवेश कर जाते हैं।

सम्प्राप्ति—जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, इसका संक्रमण प्रायः अन्त्रमेंसे रक्तमें होता है। फिर कीटाणु अन्त्र और वृक्कोंद्वारा मल-मूत्रके साथ निकलते रहते हैं। ये कीटाणु पित्ताशय, अन्त्रस्थ लसिकातन्तुओं और क्षुद्रान्त्रके अन्तिम भाग 'शेषान्त्रक' (Ileum) को अपना मुख्य स्थान अन्त्र बनाते हैं। ये अन्त्रगत लसिका ग्रन्थियोंमें शोथ और क्षत उत्पन्न करके पूयोत्पत्ति कर देते हैं। अन्त्रबन्धनीकी लसिकाग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। प्लीहा मृदु होकर बढ़ जाती है। रोगीकी अवस्था यथाक्रम ३ सप्ताह पश्चात् सुधर जाती है, तो व्रणस्थानोंमें व्रणरोपक अङ्कुरमय तन्तु (Granulation tissue) उत्पन्न हो जाते हैं।

चयकाल—प्रत्येक प्रकारके आन्त्रिकज्वरका लगभग १४ दिन है, परन्तु यह ७ दिनसे भी कम और २१ दिनसे भी ज्यादा हो सकता है।

लक्षण—क्षीणता, आगेकी ओर शिरदर्द, पीठमें पीड़ा, मलावरोध, अरुचि, नासिकासे रक्तस्राव, बेचैनी, निद्रानाश, उत्ताप क्रमशः बढ़ते जाना ये लक्षण भासते हैं। कितनेक रोगियोंमें अकस्मात् ज्वराक्रमण, वमन, वेपन और प्रलाप प्रतीत होते हैं। इस रोगकी गतिकी दृष्टिसे पूर्ण समय ४ सप्ताह है। इसके प्रत्येक सप्ताहके प्रथम लक्षण निम्नानुसार हैं।

प्रथम सप्ताह (आक्रमणावस्था या उन्नतावस्था (Invasion stage or Advance) मुखमण्डल और नेत्र तेजस्वी, जिह्वा सफेद मलयुक्त किन्तु किनारा और अग्रभाग स्वच्छ, कनीनिका (Pupils) प्रसारित, उदरमें पीड़ा, सोपानक्रमसे शारीरिक उत्ताप बढ़ना अर्थात् आज सुबह ९८° है तो कल सुबह ९९°, परसों १००° एवं आज शामको १००° डिग्री है तो कल १०१°, परसों १०२°, प्रतिदिन आधा १ डिग्री बढ़ना, शामको ज्वर अधिक रहना, सप्ताहके अन्तमें १०२° से १०३°



मोतीझरामें ताप और नाड़ी गति दर्शक रेखा चित्र

फारनहाइट होना, नाड़ीस्पन्दन ९० से १००, बारबार तृतीय तरंगकी प्रधानतावाली डाइक्रोटिक नाड़ी (Dicrotic pulse) होना, उदर कुछ शोथमय, उदरमें वायु भर जाना, अँगुलियोंसे परीक्षा करनेपर उण्डुक-प्रदेशपर गुड़-गुड़ ध्वनि होना, उदरकी प्रतिक्रियाका सामान्यतः अभाव, प्लीहावृद्धि स्पष्ट प्रतीत होने योग्य (Palpable), गुलाबी पिटिकाएँ ७ वें दिन गलेमें और उदर पर देखनेमें आना, उन पिटिकाओं का २-४ दिनमें अदृश्य होना और नयी भासना, क्वचित् किञ्चित् कास, रक्तमें श्वेताणु-ह्रास (Leukopenia) अर्थात् ४००० से ५००० प्रति सेण्टीमीटर होना, मूत्र शुभ्र ग्रथिनमय (एल्ब्युमिनयुक्त), सप्ताहके अन्तमें कभी आन्त्रिक ज्वरके कीटाणु प्रतीत होना (विशेषतः द्वितीय

सप्ताहतक नहीं), दस्त पतला, पीताभ दूषित रचनायुक्त, मलमें कीटाणु मिलना (दूसरे और तीसरे सप्ताहमें विशेषतः मिलना) आदि लक्षण होते हैं। इस समयके भीतर पेयरकी ग्रन्थियाँ शोथमय बन आती हैं।

दूसरा सप्ताह (पूर्णावस्था Fastigium)—रोगी विशेष दुर्बल, शिरदर्दमें न्यूनता, नेत्र तेजोहीन, बधिरताकी वृद्धि, जिह्वा पिशेष शुष्क बीचमें मललिप्त, अग्रभाग और किनारे शुद्ध, अब भी दुःखदायी निद्रानाश, क्वचित् प्रलाप, उत्ताप १०१-१०३° डिग्री, नाड़ीस्पन्दन १०० से कुछ अधिक, कीटाणु सामान्यत: उपस्थित और अतिसारकी विशेषतर प्रवृत्ति रहना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस सप्ताहमें पेयर ग्रन्थियोंके तन्तु मृत होते हैं।

तृतीय सप्ताह (अवनतावस्था Defervescence)—रोगी अब भी अधिक क्लान्त रहता है, प्रलापसह बेहोशी (Typhoid state) आ जाना, मांशपेशियोंमें संकोच, तन्द्रा और निद्रानाश, जिह्वा शुष्क और तेजस्वी, ओष्ठ मलिन आदि लक्षण होते हैं। यह सप्ताह भयप्रद है। इस सप्ताहमें रक्तस्राव अथवा क्षत होनेका भय है। इस सप्ताहके भीतर अन्त्रके मृत तन्तु अलग होते हैं। सामान्यतः सप्ताहके अन्तमें सुधार भासता है तथा उत्तापका पतन क्रमशः होता है। क्वचित् उत्ताप सत्वर शान्त होता है। उदरगुहा वायु (गैस) से स्फीत रहती है, जिससे रोगी पुनः-पुनः पीड़ित होता है। क्वचित् रोग भयंकररूप धारण कर लेता है। फिर रक्तमें विषवृद्धि होकर ४-६ सप्ताहतक कष्ट पहुँचता है; कभी रक्तस्राव और उदर्य्याकलापर शोथ आकर मृत्यु हो जाती है।*

---

* उदर्याकला (पेरीटोनियम Peritoneum) यह अत्यन्त पतली, कोमल और सफेद रंगकी थैली है। इस थैलीके २ विभाग हैं, ऊपरके भागको महाकोष और भीतरके भागको लघुकोष कहते हैं। महा-कोषकी बाह्यकला लगभग समस्त उदरगुहाकी दीवारोंको ढकती है। और

चतुर्थ सप्ताह (मुक्तावस्था Convalscence)—उत्ताप क्रमशः कम होकर प्रातःकालमें स्वाभाविक होना और शामको किञ्चित् बढ़ना, उदरगुहाकी प्रतिक्रिया पुनः भासना, प्लीहा स्पष्ट बढ़ी हुई न भासना, सामान्यतः अवस्थामें सुधार होना आदि लक्षण भासते हैं। अन्त्रमेंसे मृत तन्तु निकलते हैं, उसका सुधार इस सप्ताहमें हो जाता है। पुनः प्रकोप क्वचित् भासता है और उत्ताप अनियमित बढ़ता है; किन्तु प्लीहावृद्धि नहीं होती तथा ताजे चिन्ह (दाग–Spots) प्रतीत नहीं होते।

स्वाभाविक उत्ताप लगभग १ सप्ताह रहनेके बाद पुनराक्रमण हो, तो वह पुनः जीनेके सोपानके समान बढ़ता है, नये चिन्ह उत्पन्न होते हैं, प्लीहाकी वृद्धि होती है तथा अन्त्रके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस पुनराक्रमणका हेतु विशेषतः आवश्यकतासे अधिक आहार या अपथ्य अथवा चिकित्सामें भूल माना जाता है। इस आक्रमणका क्रम पहले की अपेक्षा लघु होता है।

विविध प्रकार:—

१. **सौम्य** (सशक्त फिरनेवालोंमें Mild form);

२. **अपूर्ण** (Abortive form) उतापकी न्यूनाधिकता;

३. **गम्भीर** (Grave form) अ—रक्तस्रावयुक्त। आ—

भीतरकी कला यकृत्, प्लीहा, आमाशय, ग्रहणी, बड़ी आँत, छोटी आँत, मूत्राशयका शिखरभाग, स्त्रीशरीरमें गर्भाशय और उसके समीपके छोटे छोटे अवयवोंको ढकती है। लघुकोष यकृत् और आमाशयके बीच, पीछे और नीचेकी ओर रहता है। इस थैलीमें नीचे लम्बा भाग है; उस कलाको वपा (ग्रेटर ओमेण्टम् Greater omentum) संज्ञा दी है। यह छोटी आँत और बड़ी आँतके अनुप्रस्थ (यकृतसे प्लीहातक जानेवाले) भागको ढकती हैं। इस वपाद्वारा शोथ आगे बढ़कर सर्वत्र फैल जाता है।

फुफ्फुस-दृढीकरणसे आरम्भ होनेवाले—फुफ्फुसप्रदाहयय; इ—वृक्कप्रदाहके तीव्र लक्षणयुक्त; ई—मस्तिष्कावरण प्रदाहके आक्रमणयुक्त।

४. अनिश्चित या गुप्त (Ambulatory or latent form)—इस प्रकारमें ज्वर कभी आता है कभी नहीं या गुप्त रहता है।

५. उत्तापरहित (Afebril form)—इस प्रकारमें ज्वर नहीं रहता।

यदि चिकित्सा शास्त्रानुरूप हुई तो ज्वर शनैः शनैः कम होने लगता है और अतिसारादि उपद्रव भी घटने लगते हैं।

दूसरे सप्ताहमें दाने छाती और पेटपर उतर आते हैं। जैसे-जैसे नीचेकी ओर उतरते हैं, वैसे-वैसे ज्वरका वेग घटता जाता है और उपद्रवका बल भी कम हो जाता है। यदि इन दोनोंका छातीके ऊपर निकलना लोप हो जाय; तो वह स्थिति भयप्रद मानी जाती है। ऐसी परिस्थितिमें दाने (विष) को बाहर निकालनेके लिये उचित चिकित्सा जल्दी करनी चाहिये।

ज्वर तीन सप्ताह पूरे होनेपर चला जाता है। फिर भी अन्त्रव्रण और दुर्बलता शेष रह जाती है। अन्त्रव्रण १–२ सप्ताहतक रह जाते हैं और कीटाणु इससे भी अधिक दिनोंतक निकलते रहते हैं अतः ताप जानेपर भी दो सप्ताहके भीतर अपथ्य आहार-विहारका सेवन किया जाय तो पुनः ज्वर आ जाता है।

रोगके प्रबलतादर्शक लक्षण और उपद्रव:—

१. रक्त अशुद्ध, मैले रंगका और अधिक पतला हो जाता है। रक्तमें रहे हुए श्वेत जीवाणु और रंगके पित्त (हिमोग्लोबिन Haemoglobin) दोनोंकी न्यूनता होती है। कृमिविष बलवान् होनेसे श्वेत जीवाणुओंको नष्ट कर देते हैं।

२. मांसमें नित्यप्रति ५ से १५ तोलेका क्षय, कालापन और थोड़ी सूजन हो जाती है। कभी हृदयपेशीकी अपक्रान्ति, कभी हृदयावरण का प्रदाह, कभी हृदयावरणकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह, कभी फुफ्फुसावरणमें जल भर जाना और कभी वातनाड़ी-प्रदाह आदि हो जाते हैं।

३. नाड़ी क्षीण और ठोके शनैः शनैः बढ़ते जाते हैं। थोड़े दिन बाद १२०-१३० तक हो जाते हैं।

४. क्षत और उदर्य्याकलाप्रदाह हो जाता है, तब उदरको दाहिनी ओर नीचेके भागमें स्पर्श सहन नहीं होता। मल पतला दुर्गन्ध-युक्त और उदरमें गुड़गुड़ाहट की आवाज होती रहती है। उदर न्यूनाधिक स्फीत, कोमल और आकुंचित हो जाता है। रोगी सामान्यतः पैरोंको मोड़कर सोता है।

५. तृतीय सप्ताहमें फुफ्फुसदाह शोथ (न्युमोनिया Pneumonia), क्वचित् प्रारम्भसे ही फुफ्फुसप्रदाहसह आन्त्रिक ज्वरका आक्रमण, श्वासनलिकामें शोथ, श्वासोच्छ्वास वेगपूर्वक चलना तथा शुष्क-कास (Bronchitis) हो जाते हैं। स्वरयन्त्रका प्रदाह अथवा स्वरयन्त्रके कोमलास्थिका पूयपाक भी हो जाता है।

६. क्षुधानाश, तृषा अधिक, सफेद-पीली मैली जिह्वा, मैले दाँत, प्लीहायकृत्-वृद्धि (क्वचित् उनमें विद्रधि) और आफरा।

७. मूत्र लाल-पीले रंगका दुर्गन्धयुक्त थोड़ा-थोड़ा बार-बार होता है।

८. दूसरे या तीसरे सप्ताहमें अन्त्र, नाक या अन्य श्लेष्मलत्वचामेंसे रक्त जाने लगता है।

९. शरीरमें विशेष प्रकारकी वास, नाड़ीमें विलक्षणता और सारी देहपर गुलाबी स्फोट आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

१०. मुखमण्डल उतरा हुआ और चिन्तातुर, चक्कर आना, विचार-शक्ति कम होना, निद्रानाश, शिरदर्द, बलक्षय, क्वचित् कानोंसे

कम सुनना, क्वचित् उदर्य्याकलामें शोथ, क्वचित् अन्त्रभेद (अन्त्रभेद होनेपर रक्तस्राव निश्चित ही होता है), मस्तिष्क और पृष्ठभागकी वातवहा नाड़ियोंमें प्रदाह (न्यूराइटिस Neuritis), वृक्कप्रदाह (नेफ्राइटिस Nephritis) और हृदयावरोध (Cardiac Failure) हो जाता है।

११. रात्रिको अधिक प्रलाप होता है।

१२. इस ज्वरके प्रारम्भमें प्रायः शामको उत्ताप क्रमशः थोड़ा-थोड़ा बढ़ता है। १०१ डिग्री उत्ताप हो जानेपर ४ दिन पश्चात् या दूसरे सप्ताहमें उत्तापका क्रम स्थिर हो जाता है; अर्थात् सुबह १०१ डिग्री और शामको १०४ डिग्री लगभग रहता है। (रोग प्रबल होनेपर उत्तापका ह्रास नहीं होता) साथ-साथ शुष्क कास आती रहती है। किसी रोगीको तीसरे सप्ताहमें शय्याव्रण (Bed Sores) हो जाते हैं। इस ज्वरकी चिकित्सा यथाविधि न हो, तो २-३ मास पर्यन्त रोग बना रहता है।

इनके अतिरिक्त उपद्रव भी कभी कभी उपस्थित हो जाते हैं।

बालकोंके आन्त्रिक ज्वरमें विशेष अन्तर—

१. अन्त्रक्षत विशेष प्रबल नहीं होते। पाक नहीं होता।

२. मृत्यु वयःस्थोंकी अपेक्षा कम; ५ से १० प्रतिशत।

३. आक्रमण पुनः पुनः अकस्मात्, वमन, यह साधारण लक्षण। बालकोंके आमाशय अन्त्रकी वेदनाके सदृश स्थिति भासती है।

४. उत्ताप—बारबार अतिशीघ्रवृद्धि, आदर्श के समान कम उतरना, स्थिरता कम। सामान्यतः बड़े मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक उत्ताप बढ़ना।

५. नाड़ीस्पन्दन—अतिद्रुत, किन्तु बालकोंके ज्वरात्मक रोगोंकी अपेक्षा कम। कभी युग्मस्पन्दन (Dicrotic Pulse)।

६. पिटिकाएँ—बारम्बार क्षुद्र और अल्प।

७. प्लीहावृद्धि—सर्वदा लगभग स्पष्ट।

८. सामान्य लक्षण—सौम्य, स्थिति सामान्यतः शुभ। कभी बेहोशी आना, प्रलाप होना, वातनाडी-विकृतिके लक्षण भासना, ये सब आन्त्रिकावस्था (Typhoid State) के सदृश। मस्तिष्का-वरण-प्रदाह गुप्तरूपसे उत्पन्न होता है।

९. मिश्रित लक्षण और शेष उपद्रव—कभी और मृदु, कभी रक्त-स्राव और कभी भेदन, इस तरह कभी मध्यकर्णप्रदाह, बालकम्प, यान्त्रिक कारणोंके रहित बोलने या लिखनेकी शक्तिका अस्थायी नाश, यह विशेष उपद्रव हैं। कुछ सप्ताहोंमें गतिशक्ति आ जाती है।

युवावस्थाके पश्चात् आन्त्रिक ज्वर—क्वचित् आक्रमण, उत्ताप अधिक नहीं होता, क्रम अनियमित। न्युमोनिया और हृदयावरोध सामान्य। मृत्युसंख्या अधिक।

सगर्भाको आन्त्रिक ज्वर—रोगनिरोधक शक्ति कार्य नहीं करती। ७० प्रतिशतोंको गर्भपात होजाता है।

असाध्य लक्षण—अन्त्रमें छिद्र (Perforation) हो जाना, डामर (कोलटार) के समान काले रंगका रक्त-मिश्रित मल उतरना, अन्त्रछिद्रमेंसे वायु उदर्याकलामें जाना (फिर उदरमें वायुका भारीपन-आफरा भासना), कम्प होना, समस्त देह और दोनों नेत्र काले होजाना, भयङ्कर शीत लगना, वृक्स्थान पर शोथ, अकस्मात् आध्मान, मानसशक्तिका नाश, दोनों फुफ्फुसोंकी सब श्वासप्रणालिकाओंमें शोथ, श्वासोच्छ्वासकी गति तेज होना, उत्ताप १०६ डिग्रीसे अधिक हो जाना, नाडीस्पन्दन १२० से अधिक होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

अतिस्थूल, अति निर्बल, शराबी,मधुमेही, सगर्भा, प्रसूता और दुग्धपान करनेवाले शिशुओंको मधुरा होना, यह भयप्रद माना गया है।

मृत्युपरिमाण—इङ्गलेण्डके अस्पतालोंमें १५ प्रतिशतको मृत्यु होती है। ५-१० वर्षकी आयुवालोंकी मृत्यु कम होती है। पुरुषोंमें अकस्मात् हृदयावरोध होकर मृत्यु ३ प्रतिशतकी होती है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी मृत्यु उष्ण ऋतुमें अधिक होती है। सौम्य प्रकारमें रक्तस्राव या क्षत होनेपर मृत्यु होती है।

पार्थक्यसूचक रोगविनिर्णय—आन्त्रिकज्वरका प्रारम्भ होनेपर इन्फ्लुएञ्जा, अन्त्रप्रदाहज्वर, न्युमोनिया, वृक्कप्रदाह या मस्तिष्कावरण-प्रदाह मान लेनेकी भूल होती है। इस हेतुसे चलते फिरते रोगियोंका उत्ताप सर्वदा लेना चाहिये और उत्ताप बढ़नेपर विचारपूर्वक निर्णय करना चाहिये। बना रहनेवाला बुखार अनियमित होनेपर पेराटाइफॉइड (आन्त्रिक भेद), राजयक्ष्मा उदर्याकलाप्रदाह, पिटिकामय क्षय, वृक्कालिंद-प्रदाह (Pyelitis), प्लीहावृद्धि और वातनाडीशूलसह ज्वर, (Undulant fever), संक्रामक हृदयावरणप्रदाह अथवा लसीका-वृद्धिसह घातक पाण्डु (Hodgkin's disease) होनेकी कल्पना होती है। प्रलापक ज्वर और गौण उपदंशज ज्वर भी रोगविनिर्णयमें भूल करा देते हैं। किन्तु विचार करनेपर सबमें आन्त्रिक ज्वरके मुख्य लक्षणोंका अभाव होता है। रक्त और मलका कर्षण तथा विडालकी परीक्षा (Widal test) विश्वसनीय है; परन्तु ज्वरका प्रारम्भ होते ही इनका नियमपूर्वक स्पष्ट चित्र उपस्थित नहीं होता।

डाक्टरीमें सामान्यतः १—लक्षण (Symtoms) और चिह्न (Signs); २. कीटाणुपरीक्षा; ३. रक्तजल परीक्षा (Serological examination), इन ३ साधनोंद्वारा निर्णय किया जाता है। गुलाबी पिटिकाके अतिरिक्त कोई भी लक्षण रोगनिर्णायक नहीं है। कुछ दिनके पश्चात् गुलाबी पिटिकाएँ, प्लीहावृद्धि, उत्तापकी

अपेक्षा नाड़ीकी मन्द गति, उत्तापकी नियमित वृद्धि, शुष्क कास, शिरदर्द आदि सहायक होते हैं। रक्तमें कीटाणु कुछ दिनोके पश्चात् उपस्थित होते हैं। मल-मूत्रमें भी कीटाणु प्रथम सप्ताहमें नही मिलते।

सिरम-निर्णय (विडाल-परीक्षा) भी ७-८ दिन पहले सिद्ध नहीं होती। प्रारम्भमें कल्पनाके आधारसे ही चिकित्सा की जाती है। जब पेशाबमें कीटाणु जाने लगते हैं, तब एरलिक्सकी डियाजो प्रतिक्रिया (Ehrlich's diaso reaction) द्वारा निर्णय किया जाता है।

२१ दिनका ज्वर	१४ दिनका ज्वर (टाइफस)
१. पिटिकाएँ दूसरे सप्ताहमें निकलना।	पिटिकाएँ ४-५ वें दिन निकलना।
२. नाड़ीकी गति मन्द।	नाड़ीकी गति तीव्र।
३. उदरमें पीड़ा, आफरा और दुर्गन्धयुक्त पीले पतले दस्त।	उदरमें व्यथा न होना, केवल कोष्ठबद्धता।
४. ताप क्रमशः धीरे धीरे बढ़ना।	प्रारम्भसे ही तीव्र रहना।
५. बहुधा प्रलाप और मस्तक-शूल नहीं होते।	अतिप्रलाप, तीव्र मस्तक शूल।
६. न्युमोनिया, रक्तातिसार या अन्त्रभेद हो जानेसे मृत्यु।	बेहोशीवृद्धि या रक्त जम जानेसे मृत्यु।

२१ दिनका ज्वर	सन्तत ज्वर—रिमीटेण्ट
१. नियमित समयपर ज्वर उतरना।	अनियमित समयपर ज्वर उतरना।
२. शीत नहीं लगती।	बहुधा शीत लगकर ज्वर चढ़ना।
३. दुर्गन्धयुक्तपीले पतले दस्त, आफरा और नाभिके पास दबानेपर पीड़ा।	मलावरोध, क्वचित् पतले दुर्गन्धरहित दस्त और कोखी स्थान-में दर्द।

२१ दिनका ज्वर	सन्तत ज्वर—रिमीटेण्ट
४. वमन या कामला नहीं होते।	पित्तकी खट्टी वमन और कामला।
५. नाड़ीका वेग उष्णतासे कम।	नाड़ी तेज चलती है।

मोतीझरा	इन्फ्लुएञ्जा
१. ज्वर धीरे-धीरे बढ़ता है।	ज्वर बहुत जल्दी बढ़ता है।
२. सन्धि-पीड़ा, शक्तिक्षय और ज़ुकाम नहीं होते।	सन्धिपीड़ा, भयंकर थकान और ज़ुकाम अवश्य रहते हैं।

मोतीझरा	पूयज या विषज ज्वर
१. शनैः शनैः आक्रमण। ज्वरकी नियमित गति। शीतकम्पका अभाव। मन्द प्रस्वेद।	अकस्मात् वेगपूर्वक आक्रमण। अनियमित समयपर ज्वरका आवागमन। शीतकम्प और प्रस्वेद बारम्बार आना।
२. शूलका अभाव, जिह्वा मललिप्त, किनारे लाल।	भयङ्कर शूल, जिह्वा चिकनी और मुलायम।
३. गुलाबी पिटिका, देहमेंसे विशेष प्रकारकी वास आना।	चिकनी और मुलायम पिटिका और वासमें पृथक्ता।
४. नाड़ीमन्द, ज्वरकी नियमित गति, शरीरबल शनैः शनैः कम होना।	नाड़ी तेज, ज्वरके अनियमित वृद्धिह्रास, देहबलका क्षय।

क्षयकीटाणुजन्य मस्तिष्कावरणप्रदाह होनेपर प्रारम्भसे वमन होने लगत है। उत्ताप अनियमित रहता है और दोनों कनीनिका असम हो जाती हैं। ये लक्षण आन्त्रिक ज्वरोंमें नहीं होते।

राजयक्ष्माके उत्तापकी वृद्धि मन्द गतिसे होती है। पिटिकाप्रधान आशुकारी राजयक्ष्मामें उत्तापके वृद्धि-ह्रास अनियमित होते हैं। एवं श्वासकृच्छ्रता तथा नीलाभ शिराएँ निकलना आदि लक्षण होते हैं।

उदरगुहाकी गहरी रसग्रन्थियोंके क्षयमें लक्षण आन्त्रिक ज्वरके सदृश भासते हैं। प्लीहाकी वृद्धि देरसे होती है। ज्वरके वृद्धि-ह्रास अनियमित रहते हैं।

आमाशय-प्रदाह और अन्त्रके आमातिसारमें उदरमें वेदना होती है और अपचनरूप लक्षण भी मिलता है।

इस तरह विविध रोगोंके लक्षणोंकी विभिन्नताका विचार करनेपर रोग निर्णित हो जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

इसका संक्रमण ९९ प्रतिशत रोगियोंमें दूषित जलसे होता है; अतः जलको गरम करें, फिर शीतलकर छानकर पिलाते रहें। अक्सर ऐसा भी देखा गया है कि दूधवाले दूधमें दूषित जल मिला देते हैं अथवा दूषित जलसे बर्त्तनको धोते हैं। इससे दूधमें इनका संक्रमण हो जाता है, जहाँ इनकी वृद्धि अतितीव्रगतिसे होती है। इस हेतुसे दूधको ३-४ ऊफान आवे, तबतक उबालना चाहिये। अगर इससे दूध गाढा हो जाय तो उबालनेसे पूर्व पानी मिलाया जा सकता है।

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है मल और मूत्रसे इसके कीटाणुओंका निःसरण होता हैं। अतः रोगीके मल-मूत्रको अत्यन्त सावधानीसे जमीनमें गड़वा देना चाहिये या जला डालना चाहिये। टट्टियोंको व मल-मूत्रके पात्रोंको कीटाणुनाशक द्रव्यसे समय समयपर धोकर साफ कर लेना चाहिये।

आवश्यकता के अनुसार गरम जलमें वस्त्रको भिगोकर रोगीके एक एक कर सब अवयवोंको पोछते रहें, ताकि त्वचागत स्वेदद्वार खुल जानेसे सरलतासे पसीना निकलता रहे।

रोगीको प्रकाशयुक्त, सीड़रहित शुद्ध वायुके स्वतन्त्र आवागमनवाले मकानमें रखना चाहिये। मकानमें मक्खियाँ प्रवेश न करें इसका पूर्ण ध्यान रखें।

जहाँ और जिस घरमें इसका अत्यधिक प्रकोप होता हो, उनको अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये कि जबतक वे अपने खाद्य पदार्थोंको मक्खियोंसे सुरक्षित रखनेका प्रबन्ध न कर लेंगे, तबतक यह रोग उनका पीछा नहीं छोड़ेगा।

रोगीके वस्त्र स्वच्छ रखें। पता नहीं किस कारणसे और कबसे ऐसा भ्रमात्मक विचार लोगोंमें प्रचलित है, कि इससे पीड़ित रोगीके शरीर तथा वस्त्रोंको स्वच्छ रखना तो दूर रहा बल्कि रोगीगृहमें स्नान किये व स्वच्छ वस्त्र पहने हुए किसी दूसरे व्यक्तिका प्रवेश भी हानिप्रद समझा जाता है। अब यह निर्भयतापूर्वक कहा जा सकता है कि यह रिवाज अत्यन्त हानिप्रद है और गलत भावनाओंपर खड़ा किया गया है, अतः स्वच्छताको तो ईश्वरीय नियम मानकर हर हालतमें पालन करना चाहिये।

रोगीका बिछौना नर्म रखें, ताकि लम्बे समयतक शय्यापर पड़े रहनेपर शय्याक्षत न होने पावे।

दाँत और जिह्वापर मल जम जाता है। अतः दन्तमंजनसे प्रतिदिन रोगीके दाँत और जिह्वा साफ करावें तथा बबूलकी छालको पानीमें उबाल उसमें सोहागेका फूला और किञ्चित सैंधानमक मिलाकर कुल्ले करावें।

पथ्यका जहाँतक सम्बन्ध है, परिचारिकाको इसका अत्यधिक महत्व देना चाहिये। अनेक रोगी ऐसे देखे गये हैं जिनमें पथ्यका पूरा पालन किया गया और औषधि कुछ भी न देने पर भी रोग बिना उपद्रवके दोषपच्चनके पश्चात् शमन हो गया।

इस रोगमें अन्त्रके अन्दर प्रदाह उत्पन्न होकर व्रण बन जाते हैं। अतः आमाशयमें ही आहारका पचन हो जाय ऐसा पथ्य देना चाहिये। ऐसा पथ्य तरल पदार्थ ही हो सकता है। इस ज्वरसे पीड़ित रोगीको भूलकर भी अन्न देकर पीड़ित अन्त्रको और अधिक कष्ट न पहुँचाना चाहिये। ऐसा करना मानो मृत्युको निमन्त्रण देना ही है।

रोगीको पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये, ताकि अन्त्रस्थ व्रण शीघ्र भर सकें। अगर रोगीको आरम्भमें कोष्ठबद्धता हो, तो मृदु विरेचन, गुलकन्द, एरण्डतैल, अंजीर, मुनक्का, या इसबगोलका चूर्ण देकर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। इससे उपद्रव-उत्पत्तिका भय निर्मूल हो जाता है।

अगर प्रथम २-३ दिन रोगीको पानी या मोसम्बीका रस और इसके पश्चात् केवल दूधपर रखा जायगा तो समयपर रोगी अच्छा हो जायगा। कठोर वस्तु भूलकर भी रोगीको न दें और न ही पूर्णतः लङ्घन करावें।

रोगमुक्तिके पश्चात् भी १५ दिनतक किसी प्रकारका कठोर भोजन न करावें। एवं अन्नका आरम्भ करनेपर अतिकम मात्रामें धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये।

कुछ चिकित्सक बाजरीका दलिया देनेका आग्रह करते हैं; परन्तु यह विचार भी उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इसको पचन करनेके लिए अन्त्रको अधिक श्रम करना पड़ता है, जिससे वह अधिक निर्बल, दूषित और रोगी होता जाता है।

प्रलाप, निद्रानाश, रक्तस्राव हो तो ऐसे आशुकारी उपद्रवोंका प्रतीकार शीघ्र करना चाहिये।

भूलकर भी क्विनाइन या इसके समान बलात्कारसे ज्वर उतार देनेवाली औषधिका सेवन न करावें। इससे ज्वर विशेष प्रकुपित होता है और त्रास बढ़ जाता है।

मधुराचिकित्सा।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है इसकी चिकित्सामें पथ्यपालनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सिर्फ दूध व मोसम्बी व अनारके रसके सेवनके साथ साथ निम्न घरेलू उपचार, जो कि सम्पूर्ण भारतमें अत्यधिक प्रचलित है, किया जाव तो किसी प्रकारका उपद्रव उत्पन्न हुए बिना रोग शमन हो जाता है।

सोंठ, जायफल, जावित्री और तुलसीके पत्तोंको जलके साथ पत्थरपर घिसकर चायका एक छोटासा चम्मच जितना पानी करके २ समय दिनमें पिलादें। इसमें सोंठ और तुलसीके द्वारा रोग-निरोधक शक्ति सबल बनती है व ज्वरविषका पचन होता है। जायफल, जावित्री अन्त्रस्थ व्रणको साफ करके रोपण कराती है; पचनक्रिया सुधरती है और ज्वरविषको अपने साथ बाहर निकाल लाती है। इस साधारण औषधिसे सैकड़ों रोगियोंको लाभ हुआ है।

१. **संजीवनीवटी**—वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, बच, गिलोय, भिलावा और शुद्ध बच्छनाग, इन १० औषधियोंको समभाग मिला, कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। इसे १२ घण्टेतक गोमूत्रमें खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ गोली सोंठ, जायफल, जावित्री और तुलसी-पत्रके घासेके साथ अथवा अदरखके रस अथवा जलके साथ।

उपयोग—यह वटी अपचनजनित ज्वर, मधुरा, अजीर्ण, कृमि, वमन, उदरशूल, कफयुक्त कास, गुल्म (उदरमें वायुका गोला उठना), विषूचिका (हैजा), सर्पदंश, कफप्रकोपज और वातप्रकोपज सन्निपात आदि रोगोंको दूर करती है।

यह औषधि मोतीझराकी प्रथमावस्थासे अन्तिमावस्था पर्यन्त दी जाती है। प्रातः-सायं संजीवनीके साथ प्रवालपिष्टी मिलाकर तथा दोपहरको प्रवालपिष्टी देते रहनेसे २१ दिनमें ज्वरविषका परिपाक होकर मोतीझरा निवृत्त हो जाता है।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय प्रयोगोंमें इसपर लक्ष्मीनारायण रस, कस्तूरी-भैरव रस, मधुरान्तकवटी, सूतशेखर रस आदि हितकारक औषधियां हैं।

मधुरान्तकवटी—तुलसीके पान ८ तोले, गिलोयसत्व, लौंग, वंशलोचन, धनिया, कासनीके बीज और इलायचीके दाने २-२ तोले

मिला तुलसीके रसमें ६ घण्टे खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार जलके साथ देवें।

यह वटी मधुराके विषको बाहर निकालनेमें अति उपयोगी है। लक्ष्मीनारायणके साथ इस वटीका सेवन करानेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

मधुरज्वरान्तक क्वाथ—रक्तचन्दन, नेत्रवाला, खस, धनिया, पित्तपापड़ा, नागरमोथा और सोंठ, इन सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें। इसमेंसे २ से ३ तोलेका क्वाथकर दिनमें २-३ बार पिलावें।

यह क्वाथ पाचन, कीटाणुनाशक, आमविषहर, अन्त्रशोधक और ज्वरशामक है। यह क्वाथ अकेला या लक्ष्मीनारायण या संजीवनीके साथ अनुपानरूपसे सेवन करानेसे मधुराके बिगड़े हुए रोगी भी सुधर जाते हैं। दबे या विलीन दाने जल्दी बाहर आ जाते हैं और बिना कष्ट मोतीझरा दूर हो जाता है।

ब्राह्मीवटी—ब्राह्मी ५ तोले, रससिन्दूर २ तोले। अभ्रक भस्म, वंगभस्म, शिलाजीत, कालीमिर्च, पीपल और वायविडंग १-१ तोला लेवें। सबको मिलाकर ब्राह्मीके क्वाथमें ३ दिन खरलकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार दूधके साथ देवें।

यह वटी जीर्णज्वर, ज्वरपीछेकी निर्बलता, मस्तिष्क और हृदयकी थकावट, स्मरणशक्तिका अभाव और शुक्रस्राव आदि विकारोंको दूर करती है। मोतीझरामें विशेष बेचैनी, प्रलाप, अतिसार, उदरशूल आदि लक्षण होनेपर इसका प्रयोग किया जाता है। वातप्रधान और कफप्रधान सन्निपातमें हृदय और मस्तिष्कका रक्षण करती है।

सितोपलादिचूर्ण—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायचीके दाने २ तोले और दालचीनी १ तोला

लेवें। इन सबका अलग अलग चूर्णकर मिलाकर घोट लेवें। इसमेंसे २ से ४ माशे घी और शहदके साथ दिनमें २ बार देवें।

यह चूर्ण क्षय, शुष्ककास, जीर्णज्वर, धातुज्वर, अग्निमान्द्य, अरुचि, छातीमें जलन, कफके साथ रक्त आना, आँखोंमें जलन होना, सगर्भाका ज्वर, रात्रिको ज्वर आना, पित्तविकार और बालकोंकी निर्बलताको दूर करता है। मधुरामें ८-१० दिन जानेपर प्रायः शुष्ककास हो जाती है। उसका दमन करनेके लिये दिनमें ३ बार २-२ माशे चूर्ण अनारशर्बतके साथ दिया जाता है। सगर्भाको मन्द मन्द ज्वर आना, हाथ-पैर टूटना और अतिनिर्बलता होनेपर २-२ रत्ती प्रवालपिष्टीके साथ २-२ माशे सितोपलादिचूर्ण दिनमें २ बार २-४ मासतक सेवन करानेसे गर्भिणी और गर्भ, दोनों बलवान् बनते हैं।

सर्वाङ्गसुन्दर रस--रसपर्पटी २ तोले, जायफल, जावित्री, लौंग, निम्बपत्र, निगुण्डीके पान और छोटी इलायचीके दाने १-१ तोला लेवें। सबको जलके साथ खरलकर मोतीकी २ सीपोंमें लेपकर, सम्पुटकर २-२ अंगुल मिट्टी लगा पुटपाकविधिसे आरण्य कण्डोंमें पका लेवें। स्वाँग शीतल होनेपर सीपमेंसे औषधिको निकालकर बोतल भर लेवें। इसमेंसे आधसे एक रत्ती बालकको माताके दूधके साथ या शहदसे तथा बड़ेको ४ से ६ रत्ती शहदके साथ दिनमें ३ बार देवें।

यह रसायन बालक और प्रसूताके लिये महौषध है। यह ज्वरघ्न, दीपन; बल्य और कान्तिप्रद है। बालकोंके भयंकर ग्रहणी, ज्वरातिसार, प्रवाहिका, सूतिकारोग, रक्तार्श और अन्य रक्तज व्याधियोंको नष्ट करता हैं। स्त्रियोंके प्रदररोगमें भी हितावह है।

बच्चेको मोतीझरामें अधिक दस्त होनेपर ज्वर, वमन, अफारा, अतिसार और निर्बलताका दमन करनेके लिये यह निर्भय और उत्तम औषधि है।

आनंदभैरव रस—हिंगुल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोहागाका फूला, शुद्ध बच्छनाग और गंधक, इन सबको समभाग मिला नीबूके रसमें १२ घण्टे खुरलकर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार जल, अनारशर्बत या मट्ठे के साथ देवें।

यह रसायन कफज्वर, कास, श्वास, जुकाम, अतिसार, अग्निमान्द्य, अपचन, उदरवात और ज्वरातिसारको दूर करता है।

यदि प्रथम सप्ताहमें ज्वर शीतपूर्वक न आया हो, तो हम लक्ष्मीनारायण रस १ रत्ती, मधुरान्तकवटी २ रत्ती, प्रवालपिष्टी २ रत्ती दिनमें २ समय देते हैं। इससे मधुरामें ज्वर होनेपर अत्यन्त लाभ होता है। इनमें लक्ष्मीनारायण रस शारीरिक क्षमता बढ़ाकर ज्वरविषका पाचन करता है। मधुरान्तकवटी ज्वरविषको बाहर निकालती है। प्रवालपिष्टी उत्कृष्ट चूनाकल्प होनेसे उक्त हृदयरक्षण और ज्वरविष-पाचनमें अच्छी सहायता पहुँचाती है।

अगर इस प्रयोगसे रोगीको स्वेद अधिक आता हो तो लक्ष्मीनारायणकी मात्रा कम की जा सकती है या दोपहरमें सिर्फ मधुरान्तक और प्रवालका उपयोग कराया जा सकता है।

कितनेही रोगी अत्यन्त दुर्बलता अनुभव करते हैं और संध्या तथा रात्रिको अधिक घबराहट अनुभव करते है। किसी किसी रोगीको पथ्यमें-भूल होनेपर शीतसहित ज्वरका आक्रमण हो जाता है; उनको कस्तूरी भैरव रस १ रत्तीकी मात्रामें संध्यासमय कुछ दिन दे देनेसे बहुत लाभ होता है।

ऐसे भी रोगी देखे गये हैं जिनमें एक समय आन्त्रिक ज्वर शमन हो गया है और फिर किसी अपथ्य के कारण रोगी को पुनः ज्वर आ जाता है। ग्रामीण भाषा में इसे "निकाला उलट गया" है, ऐसा कहते हैं। ऐसी अवस्थामें सूतशेखर (सुवर्णयुक्त)का बहुत ही अच्छा प्रभाव होता

है। ५-७ दिनतक सूतशेखरका उपयोग करानेके पश्चात् उपरोक्त विधिके अनुसार लक्ष्मीनारायणका प्रयोग चालू कर दें।

उपरोक्त प्रयागका सैकड़ों रोगियोंपर प्रयोग किया गया है। हम प्रारम्भमें इस ज्वरका सन्देह होते ही २-४ दिन रोगी को सिर्फ जल या इसके पश्चात् दूध या मोसम्बीके रसपर रखते हैं।

अगर रोगी सुकुमार या बालक हो और दाह, घबराहट आद अत्यधिक रहता हो तो, रोगीको मुक्तायुक्त मधुरान्तकवटीका सेवन करावें।

प्रलाप, स्वेदाधिक्य, शुष्क कास, अन्त्रप्रदाह और व्रण होनेपर मुक्ता या प्रवालपिष्टी और गिलोयसत्व अन्य रोगशामक औषधियोंके साथ दें।

वातवृद्धिसह तीव्र प्रलाप होनेपर महावातविध्वंसन रस, ब्राह्मीवटी या लक्ष्मीविलास रस (अभ्रक) भाँगरा व तुलसीके रसके साथ दें। इसमें मस्तिष्क पर शामक प्रभाव दर्शानेवाली औषधि जटामांसी, ब्राह्मी, शंखावली, नागरमोथा आदिका क्वाथ भी अत्यन्त लाभदायक है। निद्रानाशमें भी यह अत्यन्त अच्छा प्रभाव दर्शाता है।

शुष्ककास व फुफ्फुस दौर्बल्यपर—गिलोयसत्व, प्रवालपिष्टी, और सितोपलादिचूर्ण मिलाकर देवें एवं चन्द्रामृतरस, कर्पूरादिवटी लवंगादिचूर्ण, लक्ष्मीविलासरस उसका रस अवस्थानुसार उपयोग कराने से भी लाभ पहुँचता है। निम्नकर्पूरादि वटी १-१ गोली हम मुँहमें रखवाते हैं।

२. कर्पूरादिवटी—कपूर, अनारफलकी छाल और लौंग १-१ तोला, कालीमिर्च, पीपल, बहेड़े की छाल और कुलींजन २-२ तोले तथा सफेद कत्था ११ तोले लेवें, सबको मिला बबूलकी छालके क्वाथ के साथ ३-४ घण्टे खरलकर १-१ रत्ती की गोलियाँ बना लें।

मात्रा — १-१ गोली दिनमें १०-१५ बार मुँहमें रखकर रस चूसते रहें।

उपयोग—इस वटीके सेवनसे सब प्रकारका वात्तिक और पैतिक कास

दूर होता है। जिस खाँसीमें कफ नहीं आता, ५-१० मिनटतक कासवेग चलता रहता है, फिर थोड़ा-सा झाग निकलता है, रात्रिको सोनेके समय त्रास अधिक होता है, खांसीका वेग उठनेपर पसीना आ जाता है और रोगी व्याकुल हो जाता है, ऐसे कासपर यह औषधि प्रयोजित होती है।

३. कासहर वटी—अफीम १ तोला, कपूर २ तोला और लोहबान-पुष्प ४ तोले लेवें। सबको थोड़े शहदमें मिलाकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १-१ गोली दिनमें २ या ३ बार देते रहनेसे जो कास वेगपूर्वक चलता रहता है, उसका शमन हो जाता है।

रक्तस्राव—यह इस रोगमें भयंकर भयप्रद उपद्रव है। अतः यदि यह उत्पन्न हो जाय तो शीघ्र ही इसका उपचार करना चाहिए। रोगीको शय्यापर हिलाना डुलाना या उठाना एकदम बन्द कर दे और आरामसे एक करवटमें सोते रहनेको कहें। मल-मूत्रका त्याग भी शय्यापर करावें। गुदाद्वारा रक्तस्राव होनेपर रक्तातिसारके अनुसार चिकित्सा करके रक्तको सत्वर बन्द करनेका प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिये खूतशेखररस, सर्वाङ्गसुन्दररस और कनकसुन्दररस अधिक लाभप्रद योग है।

तृणकान्तमणिपिष्टी (कहेरवाका चूर्ण) अतिलाभदायक और निर्भय रक्तस्रावरोधक है। ४-४ रत्ती दिनमें ३ बार जलके साथ देवें।

शोधित रसांजनचूर्ण, दूबका रस या उदुम्बरसार पानीके साथ देनेसे भी रक्तस्रावमें अत्यन्त लाभ होता है। रक्तस्रावको बन्द करनेके लिये अफीमवाले योग भूलकर भी प्रयोगमें नहीं लेने चाहिये।

प्रारम्भमें मलावरोध हो तो जैसाकि पहले लिखा जा चुका है भूलकर भी तीव्र विरेचक द्रव्यका प्रयोग न करें। यदि रोगी बालक है तो सबसे अच्छा भयरहित उपाय यह है कि उसे ग्लिसरिन की बत्ती या बस्तिद्वारा उदरशुद्धि करा देवें। उदरपर एरण्डतेल लगाकर साधारण सेक करें। अधिक जरूरी हो तो १ सेर दूधमें ५-१० तोला ऐरण्डतैल मिलाकर बस्ति दे दें।

अतिसार—यह भी इस रोगका भयप्रद उपद्रव है। इसके लिए सूतशेखर, प्रवालपिष्टी और सुवर्णमाक्षिकभस्म १-१ रत्ती मिलाकर १ माशा लघुगङ्गाधरचूर्णके साथ देनेसे चमत्कारिक लाभ होता है। यदि उपद्रव अत्यन्त हठी हो गया हो और किसी उपचारका प्रभाव ही न हो, तो पर्पटीका उपयोग करावें। अगर मलमें अत्यन्त दुर्गन्ध हो तो १० लौंगको पत्थरपर पीसकर लगभग २ तोला पानी बना गुनगुना करके प्रातःकाल पिला दें। ऐसी अवस्था में अन्न देते हों, तो बन्द कर देवें। दूध देवें। दूध अनुकूल न हो तो रोगीको मोसम्बीके रसपर ही रखें।

सुखपूर्वक दाने निकालने के लिये—खूबकलां, लौंग और शृंगभस्म उत्कृष्ट हैं। शृंगभस्म २ रत्तीको २ मात्रा खूबकला व मुनक्काके क्वाथके साथ दे देनेसे दाने एकदम शीघ्र निकलकर रोगीको मानसिक प्रसन्नता और शान्ति प्रदान करते हैं।

तृषा अधिक हो तो छिलकासह इलायची व कमलगट्टाको जलाकर शहदसे चटावें और षडंग पानीय पिलावें।

आफरा होनेपर पेटपर गरम जलकी बोतलसे सेक करें। सेक करनेमें खयाल रखें कि बोतलको पूरी पानीसे भर रोगीके उदरपर न रख दें, अन्यथा व्रणयुक्त अन्त्रपर दबाव पड़कर कष्टमें वृद्धि हो जायगी।

अत्यन्त निर्बलता, प्लीहायकृतवृद्धि और धातुक्षयपर—अभ्रक भस्म, लोहभस्म और आँवलेका चूर्ण मिला शहदके साथ दें।

शिरदर्द और व्याकुलतापर—यदि ये तीव्र ज्वरके कारण हों, तो मस्तिष्क-संरक्षणार्थ रबड़ की थैलीमें बर्फ भरकर मस्तिष्कपर रखें। बर्फके अभावमें शीतलजलमें थोड़ा-सा कलमी शोरा या एसेटिक एसिड मिलाकर उससे कपड़ा तर करके कपालपर रखें।

हृदयरक्षणार्थ—कस्तूरीभैरवरस, मुक्तापिष्टी, पूर्णचन्द्रोदयरस, सूतशेखर रस, सुवर्णभूपतिरस या लक्ष्मीविलास (सुवर्णयुक्त), इनमेंसे किसी एकका उपयोग तुलसीके रसके साथ करें।

हेमगर्भ पोटलीरस अदरखके रसके साथ देनेसे हृदयक्षीणता, नाड़ी-मन्दता, प्रस्वेदाधिक्य, हाथ-पैर शीतल होना आदि लक्षण दूर होवे हैं।

अन्त्रमें छिद्र हो जानेपर भयप्रद अवस्था मानकर रोगीको शय्या-पर हिलनेतक न दें। मुँहद्वारा अनार, मोसम्बीके रसके अतिरिक्त किसी प्रकारके पथ्यका सेवन भूलकर भी न करावें। इस अवस्थामें सूतशेखर रस अतिहितावह औषधि है।

रोग जीर्ण हो जानेपर कदाच योग्य चिकित्साके अभावमें २१ दिनसे अधिक समय हो जाय तो सूतशेखर रस, जयमंगल रस और सुवर्णमालिनीवसंतमेंसे अवस्थाके अनुसार सेवन करावें। अगर मन्द ज्वर हो तो सुवर्णमालिनी; अन्त्रदोषशोधनार्थ सूतशेखर और हृदय-निर्बलता, अन्त्रविष, जीर्णज्वरकी विकृतिके लिये जयमंगल रस देवें।

ज्वर चले जानेपर शक्तिवृद्धिके लिये सुवर्णमालिनीवसन्त, गिलोयसत्व, पीपल, शहदके साथ दिनमें २ समय दें।

डाक्टरी मतानुसार दालचीनीका तैल ३ से ५ बूँद, एण्टी वी आई (Anti VI) और एण्टी ओ (Anti O) के सिरम का अन्तःक्षेपण करते हैं। अतिसार होनेपर अफीमके अर्ककी मिश्रित बस्ति व प्रलाप होनेपर मार्फियाका प्रयोग करते हैं।

पथ्यके रूपमें मांसरस देनेका रिवाज है परन्तु यह तो निश्चयपूवक ही कहा जाता है कि भारतवर्षमें वह हितकर नहीं एवं आरम्भिक अवस्थामें तो यह हानिप्रद ही सिद्ध होता है।

१५. विषम आन्त्रिक ज्वर

(Paratyphoid Fever)

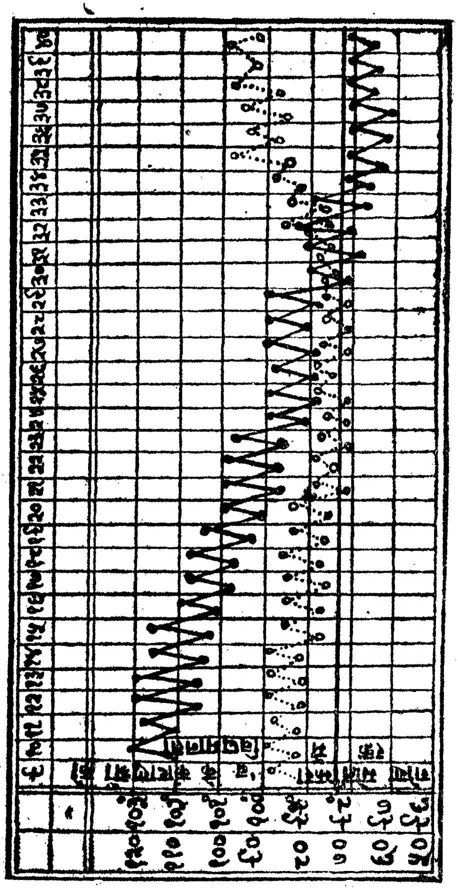
यह भी आन्त्रिकज्वरके वर्ग हीका एक ज्वर है। इस ज्वरका संक्रमण विशेषतः मांस और दूधसे निकाले हुए मक्खनद्वारा होता है। आन्त्रिक

ज्वरके समान इसका संक्रमण विशेषतः जलद्वारा नहीं होता। इस रोगके कीटाणुओंको बेक्टरियम पैराटाइफोसम (Bacterium paratyphosum) कहते हैं। इनमें A. B. C. ३ प्रकार हैं। कीटाणुओं के तीन प्रकारके अनुसार यह ज्वर भी ३ प्रकारका ही होता है। इनमेंसे प्रथम २ प्रकार A और B का संक्रमण व लक्षणादि आन्त्रिक ज्वरही के समान होते हैं परन्तु C का निदान ध्यानपूर्वक करनेसे इसमें स्पष्ट भेद मालुम हो जाता है। इसका संक्रमण और लक्षणादि "सेप्टीसीमिया (सेन्द्रिय विषज सन्निपात)" से मिलता-जुलता होता।

इस ज्वरका इतिहास, संक्रमणके प्रकार व वाहक लगभग आन्त्रिक ज्वरके ही समान होते हैं। जहाँतक निदान (कारण) का सम्बन्ध है इसके कटाणु अलग ही होते हैं। ये कीटाणु आन्त्रिक ज्वरके कीटाणुसे समानता रखते हैं, परन्तु जोवनरसायनशास्त्रकी दृष्टिसे (Biochemical) और क्षमताकी प्रतिक्रिया में भेद होता है। विषम आन्त्रिकज्वर A. के कीटाणु सन्धान्ध (Fermentation) उत्पन्न करनेमें B. से कम शक्तिशाली होते हैं और लिटमस दूध (Litmus milk) में स्थायी अम्लता उत्पन्न करते हैं, जब कि B. प्रकारके कीटाणु पहले तो अम्लोत्पत्ति करते हैं; परन्तु बादमे क्षारीय प्रतिक्रियामें परिवर्तित हो जाते हैं।

B. प्रकार तो बिल्कुल आन्त्रिक ज्वरके कीटाणुओंकी श्रेणीके समीप माना जायगा। परन्तु यह उष्ण कटिबन्धप्रदेश (भारत)में अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। जब कि A. प्रकार भारतमें यूरोप और अमेरिकाकी अपेक्षा अधिक सामान्य है। C. प्रकार तो विशेषतः उष्णकटिबन्धके देशोंमें ही प्रतीत होता है।

सम्प्राप्ति—लगभग आन्त्रिक ज्वरके समान ही है। परन्तु मृतदेहकी परीक्षा करनेपर स्पष्ट विभेद यह मालूम होता है कि विषम आन्त्रिक



विषम आंत्रिकज्वर B. में उत्ताप और नाड़ीगतिदर्शक रेखाचित्र

ज्वरमें अन्त्रके अन्दर कोई विशेष परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। हालां कि यह सम्भव है कि लसीकातन्तुओंको छोड़कर सम्पूर्ण अन्त्र तीव्रावस्थामें

प्रदाहयुक्त (Inflamed) हो सकती है। इसके अतिरिक्त विषम-आन्त्रिकज्वरमें बृहदन्त्रमें व्रणोत्पत्तिकी अधिक सम्भावना रहती है।

चयकाल—सब आन्त्रिक ज्वरोंमें लगभग १४ दिन परन्तु यह कमसे कम ७ दिन और अधिकसे अधिक २१ दिनका हो सकता है।

लक्षण—सब लक्षण लगभग आन्त्रिक ज्वरके ही समान होते हैं परन्तु विषम आन्त्रिक ज्वरका प्रारम्भ अकस्मात् कंप या शीतसहित होता है। इसमें नासिकासे रक्तस्राव (Epistaxis) की उत्पत्ति अधिक होती है। विषम आन्त्रिकज्वरके हल्के आक्रमणमें रोगी अक्सर उदरमें किसी प्रकारकी पीड़ा या अस्वाभाविकताकी शिकायत नहीं करता है; अथवा उदरवृद्धि अत्यधिक न्यून या होती ही नहीं है। विषम आन्त्रिकज्वर और मुख्यतः इसके A प्रकारमें पीटिकायें प्रचुर और स्पष्ट होती हैं। इससे पीड़ित रोगी अक्सर खांसी और किसी हदतक श्वासप्रणालीप्रदाहसे भी पीड़ित होता है। शारीरिक उत्ताप अनियमित रूपसे घटता बढ़ता है।

C प्रकारका आरम्भ प्रायः आन्त्रिकज्वरके ही समान होता है; परन्तु प्रवृत्ति विसदृश हो जाती है। इसे अतिसार, फुफ्फुसविकार और विविध पूयोत्पादक स्थितिमें पृथक् किया जाय तो शेष लक्षण आन्त्रिक-ज्वरसे मिल जाते हैं। इसमें बृहदान्त्र अपेक्षाकृत विशेष प्रभावित होता है। सच्ची पिटिकायें न होते हुये भी अन्त्रका प्रसेक (Catarrh) उपस्थित हो जाता है।

आन्त्रिकज्वरसे प्रभेद

लक्षण	आन्त्रिकज्वर	विषम आन्त्रिकज्वर
आक्रमण	धीरे धीरे नियमित	अकस्मात् त्वरित
उत्ताप	धीरे धीरे क्रमशः नियमित और प्रातः तथा सायं निश्चित् अन्तरसहवृद्धि।	अति जल्दी बढ़ता है कुछ दिनोंमें १०४° से १०५° तक कम अति

लक्षण	आन्त्रिकज्वर	विषम आन्त्रिकज्वर
	द्वितीय सप्ताहमें उच्चतम। शमन भी क्रमशः धीरे धीरे। स्थिति लगभग ४ सप्ताह।	अनियमित, तापशमन त्वरित, स्थिति लगभग २ सप्ताह।
अन्त्रक्षत	अपेक्षाकृत अधिक। अतिसार, रक्तस्राव, उदरवृद्धि व अन्त्रभेद सामान्य।	क्वचित ही। अतिसार, रक्तस्राव, उदरवृद्धि अन्त्रभेद बहुत कम।
पिटिकायें	न्यून, गुलाबी रङ्गकी छोटी छोटी और कुछ अधिक गहरे रंगकी।	कभी कभी अत्यधिक; गहरे रंगकी कभी कभी नीलाभ, बड़ी परन्तु थोड़े ही क्षेत्रमें; बाह्य सीमा अनियमित।
नाडीस्पन्दन	उत्तापके अनुपातकी दृष्टिसे अति मन्द।	बार बार अति मन्द।
अन्य लक्षण	१. शीत कम्पका अभाव व स्वेद अत्यधिक।	शीत, कम्प, प्रस्वेद अति सामान्य।
	२. मांसक्षय अत्यधिक।	मांसक्षय बहुत कम।
	३. रोगी अधिक विषाक्त प्रतीत होता है।	बहुत कम।

इतना सब कुछ होनेपर भी दोनों प्रकारके आन्त्रिकज्वरोंमें प्रभेद-कर सकना अनेक समय असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार ३ प्रकारके विषम आन्त्रिकज्वरमें प्रभेद करना भी कठिन ही है। हालांकि A. प्रकारका पुरावर्तन अन्य सबसे अधिक देखनेमें आता है; और B. का क्वचित् ही। A. प्रकारका B. की तुलनामें अधिक स्थायीत्व है। परन्तु B. प्रकारके पश्चात् अकसर कामला और पूयोत्पादक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—पूर्ववर्णित आन्त्रिकज्वरके समान ही।

१६. श्वसनक ज्वर

(रक्तष्ठीवी सन्निपात—कर्कटक सन्निपात—फुफ्फुसप्रदाह—न्यूमोनिया Pneumonia)

यह एक प्रकारका सान्निपातिक ज्वर है। इस नामका ज्वर प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें कोई प्रतीत नहीं होता। इसका नामकरण ही नया किया गया है। क्योंकि इसमें श्वशनयन्त्र पीड़ित होता है, अतः इसे "श्वसनकज्वर" संज्ञा दी है इस रोगमें फुफ्फुस दूषित होते हैं; अतः उसे फुफ्फुस सन्निपात भी कहते हैं। इस ज्वरमें श्वासप्रकोपसह लाखके रसके सदृश लाल काले रंगका रक्त थूकके साथ निकलता है इसलिये इसे रक्तष्ठीवी सन्निपात नाम दिया है। प्राचीन आचार्योंने कहे हुए सन्निपातोंमेंसे कर्कटक सन्निपातके लक्षणोंसे इसकी बहुत कुछ समानता है। अतः इस नामसे भी इसे पुकारते हैं। परन्तु हमें इसका नाम श्वसनकज्वर ही अधिक योग्य प्रतीत होता है।

श्वसनसंस्थाके साथ इस रोगका घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि इस रोगका उत्पत्ति स्थान ही यही है। अतः इसका संक्षिप्त विवेचन पाठकोंके लिये रोगको समझनेमें सहायक सिद्ध होगा।

श्वासोच्छ्वासक्रियाके मुख्य साधन दो फुफ्फुस-फेफड़े (Lungs) हैं। वक्ष गह्वरमें हृदय के दोनों तरफ १-१ रहता है; इसलिये इनको दाहिना और बाँया फेफड़ा कहते है। ये मृदु, कुछ तेजस्वी, दबानेपर स्पञ्जके समान दबनेवाले और वजनमें हलके होते हैं। इनमें ठीक स्पञ्ज ही के समान असंख्य छिद्र होते हैं। अगर इनको पानीपर रखा जाय, तो वह तैरते हैं। फुफ्फुस संकोचन और प्रसरणशील होनेसे मनुष्यकी इच्छा होनेपर मनुष्य उनको घटा बढ़ा सकता है।

फुफ्फुसोंका आकार शंकुके समान होता है; अर्थात् ऊपरके भागकी अपेक्षा नीचेका भाग अधिक मोटा होता है। ऊपरके पतले भागको

फुफ्फुसशिखर और नीचेके भागको फुफ्फुसतल कहते हैं। इनमें कितनेही खड्डे हैं, इनमें ३ मुख्य हैं। दो वृन्तखात और एक हृदयखात। इनमेंसे प्रत्येक वृन्तखात प्रत्येक फुफ्फुसके भीतरकी ओर रहा है। फुफ्फुसमूल इन खड्डे द्वारा ही भीतर प्रवेश करता है। हृदयखात बायें फुफ्फुसकी सीमापर दाहिनेकी अपेक्षा गहरा है।

सद्योजात बच्चेके फुफ्फुसोंका रंग कुछ गुलाबी होता है, परन्तु आयुके साथ ही रंग राख जैसा मैला होता जाता है और चारों ओर काले धब्बे (विशेषतः धूम्रपान करनेवालोंमें) हो जाते हैं। वृद्धावस्थामें तो ये बिल्कुल ही काले हो जाते हैं। सामान्यतः फुफ्फुसोंका वजन पुरुषशरीरके वजनका ३७ वां भाग अर्थात् १०५ तोले (दाहिनेका ५५ और बायेंका ५० तोला) होता है। स्त्रियोंमें वजन ५ तोले कम होता है।

फुफ्फुसवृन्त (मूल)—फुफ्फुसोंमें जानेवाली श्वासनलिकाओंकी प्रशाखाओं, रुधिर वाहिनियों, नाड़ियों आदिके समूहको कहते हैं। इन्हींके द्वारा फुफ्फुसका श्वासनलिकाओं और हृदयसे सम्बन्ध रहता है।

दाहिने ओरका फुफ्फुस दो गहरी परिखाओंद्वारा तीन खण्डों (Lobes) में और बायां फुफ्फुस परिखाद्वारा २ खण्डोंमें विभक्त रहता है। प्रत्येक खण्डके भीतर १-१ श्वासनलिका (Bronchia) जाती है। अन्दर प्रवेश करनेके पश्चात् अनेक छोटी-छोटी शाखाओंमें और फिर अतिसूक्ष्म उपशाखाओंमें विभक्त हो जाती है। इनको सूक्ष्म श्वासनलिकाएँ (Bronchioles) कहते हैं। इनके अन्तिम भाग अङ्गूरके गुच्छोंकी आकृतिके समान "वायुकोष" समूहमें प्रवेश करते हैं। प्रत्येक वायुकोष-समूहमें ५-६ वायुकोष (Aircells) रहते हैं। सम्पूर्ण फुफ्फुसके वायुकोषोंकी समाई ३४३ घन इञ्च है; अर्थात् ७×७×७ इंच लम्बाई, चौड़ाई और गहराई है। इतनी वायु गहरा श्वास लेनेपर फुफ्फुसोंमें प्रवेश कर जाती है और जब श्वास बाहर निकाल

दिया जाता है तब भी १०० घन इंच वायु भीतर शेष रह जाती है अर्थात् निःश्वासके पश्चात् फुफ्फुस पूर्णतः रिक्त नहीं हो जाता।

प्रत्येक वायुकोष अर्धगोलाकार होता है। फुफ्फुसाभिगा धमनीकी शाखायें हृदयके दाहिने भागमेंसे अशुद्ध रक्त लाती हैं। प्रत्येक वायुकोषके साथ इसकी एक सूक्ष्मतम शाखा रहती है। जब अशुद्ध रक्त इन सूक्ष्मतम रक्तवाहिनियोंद्वारा वायुकोषोंमें पहुंचता है, तब श्वासके साथ भीतर आयी हुई विशुद्ध वायुमें रही हुई प्राणवायु (Oxygen) का इसके साथ सम्मिश्रण होकर रक्तकी शुद्धि होती है एवं रक्तकी रही हुई दूषित-वायु (Carbon-di-oxide gas) निःश्वासद्वारा बाहर निकल जाती है। इसतरह फुफ्फुसद्वारा रक्तशुद्धि निरन्तर होता रहती है।

फुफ्फुसावरण (Pleura)—दोनों फुफ्फुस फुफ्फुसावरण नामक थैलीके भीतर रहते हैं। इस थैलीके दो स्तर हैं। एक स्तर फुफ्फुसोंपर चिपका रहता है और दूसरा समस्त वक्षके भीतरकी ओर लगा रहता है। दोनों स्तर मिलकर एक थैली बनती है। इस थैली के भीतर म्यानके अन्दर तलवारके समान फुफ्फुस रहते हैं। जब हम श्वास लेते हैं तब फुफ्फुसोंके फूलनेके कारण इसके दोनों स्तर नजदीक आ जाते हैं और निःश्वासके समय पुनः दूर हो जाते हैं। बाह्य आघात या फुफ्फुसोंमें विकृति होने या अन्य किसी कारणसे फुफ्फुसावरणके किसी भागमें शोथ उत्पन्न हो जाता है। उस रोगको उरस्तोय (Pleurisy) कहते हैं। न्यूमोनिया और क्षयमें बहुधा यह शोथ उत्पन्न हो जाता है। इसमें पार्श्वशूल, ज्वर, वक्षमें पीड़ा, श्वास लेनेमें कठिनाई आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

पाठकोंको उपरोक्त संक्षिप्त वर्णनसे यह स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि १—फुफ्फुस अत्यन्त सूक्ष्म वायुकोषोंके समूहसे निर्मीत (ठीक स्पञ्जके समान) शरीरका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। २. गहरी परिखाद्वारा यह खण्डोंमें विभक्त है। ३. श्वासप्रणालियाँ एवं उनकी

शाखा और उपशाखाओंसे विशुद्ध वायु फुफ्फुसमें प्रवेश करती है। ४. रक्तशुद्धिका महत्वपूर्ण कार्य इसी अङ्गद्वारा सम्पन्न होता है। न्यूमोनियाके कारण, सम्प्राप्ति, लक्षण, भेद और चिकित्सा समझनेमें उपरोक्त महत्वपूर्ण परिणाम अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं।

इन फुफ्फुस, वायुकोष या श्वासप्रणालियोंमें दाहशोथ (प्रदाह) की उत्पत्ति ही को न्यूमोनिया या श्वसनकज्वर कहते हैं। यह प्रदाह जब एक पार्श्वके खण्डोंमें ही हो, तो एक फुफ्फुसखण्ड-प्रदाह (Lobar Pneumonia) और दोनों पार्श्वोंमें होनेपर डबल न्यूमोनिया (Double Pneumonia) एवं यह प्रदाह श्वासप्रणालियों और वायुकोषोंमें हो, तो फुफ्फुस-प्रणालिकाप्रदाह (Broncho Pneumonia) कहलाता है। यही प्रणालीप्रदाह बच्चोंको हो जानेपर साधारण बोलचालकी भाषामें "डब्बारोग" कहलाता है।

फुफ्फुसखण्ड-प्रदाह
(Lobar Pneumonia—Croupous Pnemonia)

आशुकारी विशेष प्रकारका रोग, जिसमें विषप्रकोप होकर एक या अधिक फुफ्फुसखण्डकी प्रदाहात्मक घनता और ज्वर प्रतीत होते हैं तथा ज्वरान्त आकस्मिक उपशयद्वारा होता है, वह फुफ्फुसखण्डप्रदाह कहलाता है।

निदान—वायुमें शीतलता होनेपर भी तेज वायुमें घूमना, धूपमें घूमनेके पश्चात् तुरन्त शीतल स्थानमें जाकर जलपान करने, दोपहर या रात्रिमें स्नान करने, अति मद्यपान अथवा क्वचित् हृदयपर आघात होने एवं अतिदुर्गन्ध या धूलिमय वातावरणमें रहने तथा विषम ज्वर, प्रतिश्याय, वृक्कशोथ आदि जीर्ण रोगोंसे दुर्बल होनेपर वायुका थोड़ा-सा आघात लग जानेसे इस रोगके कीटाणुओंको आक्रमण करनेका अवसर मिल जाता है। इस रोगकी सम्प्राप्ति बल्लमाकारके इधर-उधर युग्मरूपसे प्रतीत होनेवाले कीटाणु—डीप्लोकोकस न्यूमोनिया (Diploco-

ccus Pneumonia—Pneumococcus) द्वारा होता है। उस कीटाणुकी ३२ जातिका शोध हो चुका है। इनको ४ विभागोंमें विभक्त किया गया है।

इस रोगसे मृत्युसंख्या ५ से १० प्रतिशत होती है। यह छोटे-बड़े सबको होता है, तथापि १० वर्षके भीतर और २० से ५० वर्षतककी आयुवाले विशेष पीड़ित होते हैं। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको ज्यादा होता है। इसका उत्पत्तिकाल शरदऋतु और शीतकाल तथा किसी किसी स्थानमें वसन्तऋतु है। शीतकटिबन्धमें उष्णकटिबन्धकी उपेक्षा आक्रमण कुछ अधिक होता है। इसके साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि एक समय खण्डीय फुफ्फुसप्रदाह होनेपर सर्वदा इसके पुनः आक्रमण हो जानेका भय रहता है। शराबका व्यसन और अपनी शक्तिसे अधिक परिश्रम भी इस रोगकी उत्पत्ति व पुनराक्रमणके सहायक कारण हैं। वक्षपर आघातसे भी रोगोत्पत्तिमें सहायता मिलती है।

पूर्वरूप—रोगकी उत्पतिके पूर्व फुफ्फुस जकड़ना, श्वास, कास, क्वचित् कम्प, क्वचित् फुफ्फुसावरणमें जलसंचय, क्षुधानाश, निर्बलता, बेचैनी, नाड़ीमें तीव्रता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

सम्प्राप्ति—सम्भवतः इस कीटाणुका प्रवेश नासिका और मुँहद्वारा होता है। सर्वप्रथम संक्रमणसे विषप्रकोप होता है और फिर फुफ्फुसोंमें स्थान ग्रहण करता है; जिसके परिणामस्वरूप फुफ्फुसोंमें परिवर्तन होकर आशुकारी प्रदाहकी उत्पत्ति होती है। विषप्रकोपके कारण रक्त दुष्ट होकर जम जाता है और लसिका भी गाढ़ी हो जाती है। इसके पश्चात् १. रक्तसंग्रहावस्था; २. रक्तघनीभवन; ३. असित घनीभवन, इन तीनों अवस्थाओंके पश्चात् प्रकृतिभावकी प्राप्ति होकर रोगी अच्छा हो जाता है।

१. संग्रहावस्था (Stage of Engorgement)—यह रोगकी प्रथमावस्था है। इसका आरम्भ बेचैनी, कम्प या शीतसह काससे

होता है। सामान्यतः प्रबल शीतबोध, बालकको प्रायः तीव्र आक्षेप तथा युवा मनुष्यको वमन, शारीरिक उत्ताप १०३°–१०४° तक बढ़ जाना, क्षुधामान्द्य, प्यास, मलयुक्त जिह्वा, शिरशूल, हाथ-पैर टूटना, नाड़ी कठिन, नाड़ीगति १२०-१३० या उससे भी अधिक, श्वासोच्छ्वास ५०-६० बार या इससे भी अधिक नाड़ी और श्वाससंख्यामें स्वस्था-वस्थाके समान मेल न रहना। रोगी बोलनेमें कष्ट व छातीपर एक प्रकारके दबावका अनुभव करता है। वक्षमें मन्द-मन्द वेदना व खांसनेपर वेदनामें वृद्धि होना, बार-बार दुःखदायी कर्कश शुष्क कासका चलना; कुछ समय पश्चात् खांसीके साथ चिपचिपा, झागदार, अर्धमलिन कफ निकलना, दूसरे दिन कफ लोहेके मैल (धूसर) के रंग जैसा बन जाना। रोगीका मुख-मण्डल विशेषतः पीड़ित। कपोलपर लाली और तेजी। नीचेका ओष्ठ नीलाभ, नासापुट श्वासोच्छ्वासके साथ आकुंचित और प्रसारित होता हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। निद्रानाश, क्वचित् प्रलाप। पेशाब बहुत कम परिमाणमें गहरे लाल रंगका और प्रायः उसमें ग्रथिन (एलब्यूमिन) जाना और क्लोराइडका परिमाण कम या बिल्कुल ही लोप हो जाना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

रोगग्रस्त पार्श्वके उपरकी दीवालमें संचालन कम हो जाता है। यदि फुफ्फुसावरण प्रभावित हो गया हो, तो वेदना अधिक होती है। रोगी सामान्यतः चित्त लेटता है एवं प्रभावित पार्श्वकी ओर करवट लेकर सो सकता है। यदि फुफ्फुसका दूसरा खण्ड भी आक्रान्त हो जाय, तो शारीरिक उत्ताप बढ़ जाता है।

प्रथमावस्थामें वक्ष प्रतिघात करनेपर रोगके कोई लक्षण नहीं भासते। फिर फुफ्फुस दृढ़ होनेपर आवाज मन्द (Dull) हो जाती है। अंगुलीको प्रतिरोधका अनुभव होता है। इस अवस्थामें ध्वनियन्त्रसे सुननेपर आवाज केशमर्दनवत् या आगन्तुक उपस्थित होती है। प्रत्येक

श्वासके अन्तमें बुदबुदा फटनेके समान आवाज आती है तथा नालीयनाद (Bronchial respiration) सुनने में आता है।

जब अति रक्तसंग्रह होता है, तब रक्तरस निकलने लगता है, फिर घनता आ जाती है। फुफ्फुसके परिमाण और वजन बढ़ जाते हैं। फुफ्फुसपर दबानेपर गड्ढा पड़ जाता है। उसमें वायु न रहनेसे द्रव पूर्ण रहता है। फुफ्फुसको काटनेपर लाल भासता है। थोड़ा दबनेपर उसमेंसे झागयुक्त रस निकलता है।

२. रक्तघनीभवनावस्था (Stage of red Hepatization Consolidation)—फुफ्फुस बड़ा और भारी भासता है; सामान्यतः फुफ्फुस स्पञ्जवत् होता है। वह स्थिति नष्ट होकर निश्चल और वायुरहित होना, सतहपर फुफ्फुसावरण प्रभावित होना, पीड़ित भागकी सतह लाल पिंगल (Red—brown), शुष्क और दानेदार हो जाना तथा वह सहज चूर्ण हो जाय वैसा बन जाना, केशमर्दनवत् आवाजका अभाव, जलमें डालनेपर डूब जाना और पीड़ित भागकी सतहके ललाई-वाले मलमें कितनेही डिप्लोकोकाई कीटाणु रहना, ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

इस अवस्थामें वायुकोषोंके रिक्त स्थान जमी हुई ग्रथिन, रक्ताणु, श्वेताणु और उसके बीचमें उपस्थित त्वचाकोषसे बने हुए जालसे भर जाते हैं। फुफ्फुसपर प्रतिघात करनेपर पत्थरपर ठेपन करने सदृश भासता है। स्टेथिस्कोपसे सुननेपर वंशीनाद (Tubular) सुननेमें आता है। श्वासकृच्छ्रता, रात्रिमें ज्वरवृद्धि, प्रातःकालमें कुछ कम होना, कफ लोहके जंग जैसा निकलना आदि चिन्ह विदित होते हैं।

श्वासोच्छ्वासक्रियामें फुफ्फुसोंका संकोच-विकास निरन्तर होता रहता है, जो नेत्रोंसे प्रतीत होता है; किन्तु वह संकोच-विकासक्रिया रुग्ण स्थानमें प्रतीत नहीं होती। वह स्थान निश्चल-सा रहता है।

३. असितघनीभवनावस्था (Stage of gray Hepati-

zation)—इसमें फुफ्फुसका रंग धूसर (Gray) हो जाता है। खण्डकी सतह आर्द्र और स्पष्ट दानेदार होती है। वह अत्यन्त सरलतासे चूर्ण होने योग्य बन जाता है। जलमें डालनेपर डूब जाता है। केश-मर्दनवत् आवाज नहीं आती।

वायुकोष लसीकाणुओंसे भर जाते हैं तथा इनके विनाशक प्रभाव (Phagocytic action) द्वारा प्रथिन और रक्ताणुओंको अप्रसारित किया जाता है। इस अवस्थामें फुफ्फुस द्वितीयावस्थाकी अपेक्षा कोमल होता है। बालकोंकी अपेक्षा वृद्धोंके रक्तमें रक्तरंजक कण अधिक होनेसे उनका फुफ्फुस काला होता है। इस अवस्थामें मेदापक्रान्ति होती है। स्टेथस्कोपसे सुननेपर वंशीनाद और वाक्ध्वनिवृद्धि (Broncho-phony) आदि चिन्ह भी विदित होते हैं।

अवस्थाकाल—प्रारम्भिक रक्तसंग्रहावस्था १ से ३ दिन तक, उत्सुजनावस्था (दूसरी और तीसरी) ३ से ७ दिन तक, मुक्तावस्था १ से ३ सप्ताहतक। रोग अतिप्रबल होनेपर द्वितीयावस्था लगभग ४८ घण्टे (२ दिन) में ही पूर्ण हो जाती है

तीनों अवस्थाओंके मुख्य लक्षण :—

१. प्रथमावस्था—केशमर्दनवत् आवाज, ठेपनमें सामान्य मन्द आवाज, कास, श्वासकृच्छ्रता और ज्वरकी वृद्धि आदि।

२. द्वितीयावस्था— ठेपनमें घन आवाज, श्वासोच्छ्वासमें वंशीनाद, कफ लोहेके जंगके समान, श्वासकृच्छ्रता, कास, ज्वर अत्यधिक, रात्रिको वृद्धि तथा प्रातःकालमें कुछ विराम।

३. तृतीयावस्था—यदि पूयसंग्रह न हो, तो भौतिक लक्षण द्वितीयावस्थाके समान, शीतबोध, क्षीणता आदि। पूय होनेपर अत्यन्त ज्वर।

४. प्रकृतिभावावस्था (Resolution)—प्रथिन आदि जो मलरूपमें बनकर वायुकोषोंमें भर जाती है, उस का परिपाक होता है।

विशेषांश कफ बनकर थूकके साथ निकल जाता है तथा कुछ रक्तमें शोषित हो जाता है। वह वृक्कद्वारा बाहर निकाल दिया जाता है जिससे प्रकृति भावकी प्राप्ति होती है। यथार्थमें प्रकृतिभावकी प्राप्तिसे २४ घण्टे पहलेसे शरीरक्रिया-परिवर्तन (Physical Change) के लक्षण उपस्थित हो जाते हैं।

नोट—क्ष-किरण-परीक्षासे विदित हुआ है कि इस रोगमें प्रदाह-जनित विकृतिको सतहपर जानेमें ३ दिन लगते हैं। महाप्राचीरा पेशी इसके पहले ही बढ़ना प्रारम्भ कर देती है।

फुफ्फुसाघात—विशेषतः दो-फुफ्फुसोंकी अपेक्षा एक फुफ्फुसपर, इनमें भी बांयेकी अपेक्षा दाहिनेपर विशेष आक्रमण होता है एवं फुफ्फुसपीठ-शिखरकी अपेक्षा अधिक प्रभावित होती है। सामान्यतःफुफ्फुसपीठ ७५ प्रतिशतमें व्यथित होती है। यदि दोनों फुफ्फुसोंपर आक्रमण हो, तो दोनों फुफ्फुसपीठ आक्रमित होते हैं। दोनोंके प्रत्येक भाग अति क्वचित् पीड़ित होते हैं। केवल बीचका खण्ड भी क्वचित् ही आक्रमित होता है।

कभी अनेक खण्ड समकालीन प्रभावित होते हैं; अथवा थोड़े-थोड़े अन्तरपर अधिक बार आक्रमण होनेपर अनेक अवस्थाएँ एक ही समयमें विद्यमान हो सकती हैं। बड़ी आयुवालोंकी अपेक्षा बालकोंमें शिखरस्थान विशेष प्रभावित होता है। ५ वर्षके भीतरकी आयुवालोंपर आक्रमण मात्र ३० प्रतिशत प्रत्येक खण्डोंमें होता है। दाहिना फुफ्फुस ५५%, बाँया २५%, दोनों २०%, १ खण्ड ४०%, दो खण्ड ४०%, दो से अधिक २०% आक्रमित होते हैं।

फुफ्फुस घनीभूत होनेपर वजन ५० औंसके लगभग हो जाता है, जब सामान्यावस्थामें २० औंस होता है। श्वासनलिकामें झाग भरा रहता है। कभी फुफ्फुसप्रदाहसे गाढ़ा कफ बन जाता है। श्वासनलिकाकी ग्रन्थियाँ शोथमय हो जाती हैं। कभी अन्त समयमें पूयमय बनता है।

आक्रमण—इस रोगका चयकाल संभवतः कुछ घण्टोंसे कुछ दिनों तकका माना गया है। आक्रमण शीतकम्पसह होता है। शीतकालके भीतर शारीरिक उत्ताप बढ़नेका प्रारम्भ हो जाता है और गम्भीर आक्रमण होता है। आक्रमणकालमें पार्श्वमें पीड़ा, बारम्बार अति गम्भीर कुछ शुष्क कास और शीघ्र श्वसनक्रिया, ये लक्षण विद्यमान होते हैं। २४ से ४८ घण्टेके भीतर प्रभेदात्मक लक्षण प्रतीत होते हैं। उस समय प्रकाशमय मुखमण्डल और तेजस्वी नेत्र, शीघ्र लघु श्वसनक्रिया, नासापुट प्रसारित होना, बारबार कास आकर पार्श्वपीड़ामें वृद्धि होना, त्वचा शुष्क और तीक्ष्ण बन जाना, उत्ताप १०४° तक सामान्यरूपसे बढ़ जाना आदि प्रतीत होते हैं।

रोगशमन—रोगकी नियमित गति होनेपर ५ से १० दिनके भीतर आकस्मिक उपशमद्वारा शमन होता है। फिर जल्दी आरोग्यकी सम्प्राप्ति होती है।

अधिक आघात हो तो १०-१५ दिनके भीतर आरोग्यता प्राप्त हो जाती है। यदि पूयोत्पत्ति हो जाती है, तो मृत्यु हो जाती है या अनेक सप्ताहतक कष्ट भोगना पड़ता है।

शारीरिक उत्ताप—प्रारम्भमें ज्वर तेजीसे बढ़ता है। विशेषतः १०२° से १०४° तक थोड़े ही घण्टोंमें पहुँच जाता है। गम्भीर हेतु के बिना १०४° से अधिक नहीं बढ़ता। बालकोंमें शीतके अभावमें बार बार आक्षेप आते हैं। शराबी, वृद्ध और निर्बलोंमें उत्ताप अधिक नहीं बढ़ता एवं जल्दी भी नहीं बढ़ता, तथापि उनके लिए यह रोग विशेष भयप्रद है।

कितनेक घातक प्रकारोंमें उत्ताप १०४° से अधिक बढ़ जाता है या मृत्युके पहले अकस्मात् गिर जाता है। इस रोगका उपशम विशेषतः आकस्मिक उपशम कुछ घण्टोंमें होता है। शनैः-शनैः उपशम ३६ घण्टे से अधिक समयमें हो, तो अनुक्रमोपशम कहलाता है। सामान्यतः

५ वें से १० वें दिन के भीतर, विशेषतः ७ वें दिन अकस्मात् उपशम होता है। क्वचित् १२ वें दिनके बाद होता है। तीसरे दिनसे पहले कभी नहीं होता। नवें दिनसे पहले ९० प्रतिशत उपशम होता है। आकस्मिक शमनमें ६ से १२ घण्टे लगते हैं; किन्तु २४ घण्टे तक पूर्ण सम्हाल रखना चाहिये। अत्यधिक प्रस्वेद आकर उत्तापका पतन होता है; फिर रोगीको निद्रा आ जाती है। जाग्रत होनेपर उत्ताप, श्वासकृच्छ्रता, व्यापक लक्षण और वेदनाका ह्रास हो जाता है।

कभी कृत्रिम शमन (Pseude—Crisis) होता है। ऐसा होनेपर उत्ताप पुनः बढ़ जाता है। फिर २४ से ४८ घण्टेपर पुनः आकस्मिक उपशम हो जाता है।

बालकोंमें ३० प्रतिशत रोगियोंमें अनुक्रमोपशम प्रतीत होता है। अनेकोंमें प्रायः १२ वें दिनके बाद निश्चित प्रकार धारण कर लेता है और कुछ सप्ताहतक बना रहता है।

श्वासोच्छ्वास — सामान्यतः आक्रमणावस्थामें ३०, घनीभूतावस्था बढ़नेपर ४० से ५०; बालकोंमें पहले ५५ से ६० फिर अरिष्टावस्थामें ७० से अधिक। आकस्मिक उपशम होनेपर इसका भी पतन होता है, तथापि नाड़ी और उत्तापकी अपेक्षा धीरे धीरे। स्वाभाविक श्वसन होनेमें प्रायः कुछ दिन लग जाते हैं।

नाड़ी —नाड़ी पूर्ण और सीमाबद्ध, गति १०० से १२०। गति डाइक्रोटिक (धमनीके दबाव ह्रासयुक्त नाड़ी) नहीं होती। बालकोंमें स्पन्दन १२० से १६० तक। सबल युवा व्यक्तिमें १०० के भीतर। निर्बल और वृद्धोंमें आक्रमणकालमें अधिक, विशेष घनीभवनके साथ नाड़ी लघु और दौड़ती हुई भासती है।

मूत्र—पेशाबमें क्लोराइडका अभाव हो जाता है। गम्भीरावस्थामें शुभ्र प्रथिन उपस्थित होता है। आकस्मिक उपशम हो जानेपर पुनः क्लोराइड उपस्थित हो जाता है। तन्तुओंमेंसे रक्तका या लसीकाका-

ओंका शोषण होनेके हेतु आकस्मिक उपशमकालमें यूरिक एसिड बढ़ जाता है। कभी तीक्ष्ण वृक्कप्रदाह हो जाता है।

वातसंस्थाविकृति-लक्षण—५० प्रतिशतमें शिरदर्द, किसीमें कभी गंभीर, अनेकोंमें निद्रानाश, किसीमें दुःखप्रद व्याकुलता, कुछ अंशमें बुद्धिमान्द्य, गम्भीरावस्था होनेपर प्रलाप और बेचैनी उपस्थित होते हैं।

विशेषतः विषप्रकोप होनेपर या शराबका व्यसन होनेपर प्रलाप हो जाता है। कभी उन्माद उपस्थित होता है। कभी बालकोंमें आक्रमणके पश्चात् मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis) का अनुगमन हो जाता है। बालकोंमें शीतकम्पके स्थानपर आक्षेप आते हैं।

उपद्रव—१. उरस्तोय (Pleurisy); और पूयभृत् उरस्तोय (Empyema), २. हृदयावरणप्रदाह (Pericarditis); ३. हृदयकलाप्रदाह (Endocarditis); ४. मस्तिष्कावरणप्रदाह (Meningitis); ५. किसीको कुछ अंशमें कास (श्वासनलिकाप्रदाह—Bronchitis); इनके अतिरिक्त फुफ्फुसविद्रधि और कोथ होते हैं।

भावी परिणाम—इस रोगका परिणाम प्रदाहके विस्तारपर निर्भर है। इस रोगमें अनेक बार हृदयकी क्रियाके लोपसे परिणाम अशुभ आता है। यदि उभय फुफ्फुस आक्रान्त हों और अत्यधिक पतला कफ या लोहिताभ कफ वर्तमान हो, तो कितनेही समय विषम स्थितिको संप्राप्ति हो जाती है एवं उदर्य्याकलाप्रदाह, मस्तिष्कावरणप्रदाह या वृक्कविकृति-रूप उपद्रव उपस्थित होनेपर वह भी घातक माना जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

इस रोगमें फुफ्फुस पीड़ित होते हैं इसलिये फुफ्फुसोंका कार्यभार बढ़ जाता है। ऐसी अवस्थामें हृदयोत्तेजक औषधि देकर हृदयस्पन्दन बढ़ाया जायगा, तो नियमानुसार फुफ्फुसोंमें अधिक रक्त पहुँचेगा और इस प्रकार पीड़ित फुफ्फुसपर अनावश्यक कार्यभार बढ़ जायगा। इसलिये हृदय

सबल हो, तो शराब आदि हृदयोत्तेजक औषध कभी नहीं देनी चाहिये।

रोगीको अन्धकारवाले या अधिक शीतल एवं गरम स्थानमें न रखें। जहाँ तेज वायु न हो, ऐसे समशीतोष्ण प्रकाशयुक्त स्वच्छ स्थानमें रोगीको रखना चाहिये।

अक्सर ग्रामीण अशिक्षित लोग रोगीको ठण्ड न लगने पावे इसके लिये बिल्कुल अन्धकारमय और घरके अन्दर रहा हुआ एकमात्र दर्वाजा भी बन्द करके रखते हैं तथा अनेक वस्त्रोंसे उसे ढक देते हैं। परन्तु यह अच्छा प्रकार समझ लेना चाहिये कि पहलेसे ही पीड़ित फुफ्फुसको प्राणवायु (Oxygen) उचित परिमाणमें ग्रहण करनेके लिये अत्यधिक श्रम करना पड़ रहा है और उनके इस व्यवहारसे रोगी मृत्युके पास पहुँच रहा है। अनेक समय अनुभव किया गया है, कि रोगी पहले स्वतन्त्रतापूर्वक वायुके आवागमनसे रहित मकानमें रहनेपर चिकित्सासे कोई लाभ नहीं हो रहा था, उसे विशुद्ध हवायुक्त मकानमें लेते ही उसकी अवस्थामें चमत्कारिक परिवर्तन हो जाता है।

रोगीके कमरेकी वायुमें किसी प्रकारकी अस्वच्छता न उत्पन्न होवे। धुआं या मिट्टी तेलका लेम्प उस कमरेमें जहांतक हो सके न जलावें।

रोगीगृहमें अधिक मनुष्य एकत्रित न होने दें, अधिक मनुष्योंके एकत्रित हो जानेसे दो हानियाँ होती हैं। प्रथम तो यह कि रोगीगृहकी हवा अशुद्ध बनती है और द्वितीय यह कि प्रत्येक मनुष्य अलग-अलग प्रकारकी बात करके रोगीको तंग करते हैं। यह अच्छी प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि ऐसे गम्भीर रोगोंमें रोगी चुप-चाप शांतिसे पड़ा रहे और अपनी पूर्ण शक्ति रोगका मुकाबला करनेमें लगावे यह ज्यादा उचित हैं, अतः उससे अनावश्यक बातें करके उसे तंग या अशान्त न करें। इसके अतिरिक्त अनेक समय किसी मनुष्यद्वारा उत्साहहीन, भयसूचक बात करनेपर रोगीकी अवस्थापर बहुत खराब असर हो जाता।

रोगीको वस्त्र मुख्यतः वक्षपर गरमवस्त्र पहनावें। फुफ्फुसोंपर मन्द-मन्द सेक दिनमें २ समय एक-एक घण्टेतक किया जा सकता है। परन्तु हृदयपर भूलकर भी सेक न करें।

रोगीके पैरोंको गरम पानीकी बोतलसे गरम रखें।

प्रतिदिन रोगीको निवाये जलसे स्पञ्ज करके शरीरको साफ कर लें और प्रातःकाल दन्तधावन या कुल्ले करवाकर मुँहको स्वच्छ करा लें।

इसका संक्रमण रोगीके कफद्वारा बहुत होता है। अतः कफ थूकनेके बर्तनमें कोई कीटाणुनाशक औषध डालकर बर्तनको ढककर रखें। प्रतिदिन कफको गड्ढेमें गाड़ देवें और बर्तनको अच्छी प्रकार साफ करें।

रोगीको इस रोगमें श्वास होनेमें कठिनाई होती है। अतः रोगीको पीड़ा अत्यधिक न्यून हो और श्वास लेनेमें सुविधा मिले ऐसी स्थितिमें रखें।

रोगीको पूर्ण विश्रान्ति दें। शौच और लघुशंकाके लिये भी शय्या-पर ही प्रबन्ध करें। अनेक समय रोगी बैठाने-उठाने मात्रसे चक्कर आकर बेहोश हो जाता है। ऐसी हालतमें हृदयावसाद हो जानेका भय रहता है।

वक्षमें अतिवेदना होनेपर गरम पुल्टिस बाँधे या एण्टिफ्लोजिस्टीन आदिका प्लास्टर लगावें।

इस रोगमें लङ्घन कराना अतिहितकर है। रोगका बल कम होनेपर प्रातः-सायं दूध (गायका या बकरीका) और अगर रोगीकी इच्छा हो तो अङ्गूर या मोसम्बीका रस भी दिया जा सकता है। परन्तु भूलकर भी अन्न या मांसका उपयोग न करावें।

जल रोगीको इच्छानुसार गर्म करके शीतल किया हुआ दिया जा सकता है।

फुफ्फुसखण्डप्रदाहकी चिकित्सा

शास्त्रीय औषधियाँ—रोहिषादिकषाय, मल्लभस्म, समीरपन्नग (अडूसा, मुलहठी, बहेड़ा, भारंगी और मिश्री; क्वाथके साथ), लक्ष्मीनारायण रस, सूतराज रस (अदरखके रसके साथ), चन्द्रामृत रस, समीरपन्नग, शृंगभस्म और अभ्रकभस्म, तीनोंका मिश्रण (दालचीनी और शहदके साथ), अचिन्त्यशक्ति रस, वातेभकेसरी, इन औषधियोंमेंसे प्रकृति और रोगबलका विचारकर योजना करनी चाहिये। उक्त प्रयोगोंमेंसे सूतराजरसमें अफीम अधिक है, वातेभकेसरीमें भी अफीम है। अतः इनका उपयोग सम्हालपूर्वक करना चाहिये एवं मल्लप्रधान औषधका उपयोग वृक्कप्रदाह या अन्य वृक्कविकार न हो तो करना चाहिये। अन्यथा मूत्रावरोध होकर विकार बढ़ जाता है।

हम प्रारम्भमें कोष्ठशुद्धि, आमपचन और ज्वर कम करानेके लिये अश्वकंचुकी रस देते हैं। फिर सौम्यप्रकारमें मल्लभस्मको बार बार उपयोगमें लेते हैं। यह प्रस्वेद लाकर ज्वरके वेगको घटाती है, विषको बाहर फेंकती है और फुफ्फुसोंकी जकड़ाहटको कम करती है। जिनको खांसी अधिक हो, उनको चन्द्रामृत रस दिनमें २ या ३ समय देते रहते हैं। जिनका हृदय सबल है, मलावरोध नहीं है, कफप्रकोप और श्वासका वेग अधिक है, उनको वातेभकेसरी रस मिश्रीके साथ देते हैं। इस रससे कफशुद्धि बहुत जल्द होती है।

रोगी निर्बल हो, ज्वरका वेग कम रहता हो, कफ गाढ़ा हो, सरलतासे बाहर न आता हो, तो उसे दिनमें २ बार अचिन्त्यशक्ति रस देते हैं या समीरपन्नग वासाप्रधान अनुपानके साथ देते रहनेसे श्वास, कास और कफ दूर होकर शक्ति बढ़ती है। आवश्यकतापर समीरपन्नगके साथ शृंगभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर देते हैं; जिससे रोगीकी घटती हुई शक्तिका रक्षण होता है। फिर हृदय शिथिल नहीं होता और फुफ्फुसमें कफकी विकृति होना रुक जाती है तथा कीटाणुओं-

का नाश होनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है। मूत्रद्वारा विष बाहर निकालनेके लिये आवश्यकता अनुसार गोखरू और तृणपंचमूलका क्वाथ अनुपानरूपसे देते रहना चाहिये।

यदि आन्त्रिकज्वरसह फुफ्फुसप्रदाह हो तो लक्ष्मीनारायण रस देते रहनेसे दोषपचन होकर ज्वर शान्त हो जाता है। साथमें रस-सिन्दूर, अभ्रकभस्म और शृंगभस्म देते रहें। लक्ष्मीनारायण अति निर्भय औषध है। अपना कार्य धीरे धीरे परन्तु स्थिर करता है।

सरसोंका तैल और लहसुनका रस, दोनोंको मिलाकर नस्य देनेसे कफप्रकोप शमन होनेमें सहायता मिलती है और मोह दूर होता है। यदि कफकी अधिकता हो तो श्वासकुठार रसका नस्य देना विशेष हितकर है। साथ ही साथ सन्निपातमें लिखा हुआ निष्ठीवन देनेसे मुहसे कफ निकलकर जल्दी लाभ होता है।

फुफ्फुसपर किसी वातहर तैलकी मालिशकर, वस्त्रसे ढक, ऊपर बालुका, नमक या गरम जलसे सेक करें, परन्तु यह ध्यान रहे कि फुफ्फुसकी त्वचा जल न जाय। अफारा, कोष्ठशूल और मल-मूत्राव-रोधकी दशामें उदरपर भी सेक करना चाहिये। ८-१० दिनके बाद जब प्रस्वेद आकर ज्वर उतरने लगे, तब हृदयपौष्टिक पूर्णचन्द्रोदय रस, रससिन्दूर या अन्य औषध अवश्य देनी चाहिये।

मलावरोध दूर करनेके लिये—ज्वरकेसरीवटी या अश्वकंचुकी रस, इनमेंसे जो अनुकूल हो, वह देवें; अथवा एरण्डतैलकी बस्ति या ग्लिस-राइनकी बत्ती चढ़ाकर मलशुद्धि करावें। बस्तिद्वारा उदरशोधन कर लेना, यह विशेष अनुकूल रहता है।

निद्रा लानेके लिये—आवश्यकता हो, तो निद्रोदयरस या कस्तू-र्यादिवटी इनमेंसे एक औषध देते रहना चाहिये।

यदि प्रलाप हो, तो शिरपर बर्फकी थैली रखकर सेक करें अथवा शिरपरके बाल निकलवाकर वहाँ शतधौत घृतका लौंदा रख दें। घृतके

पिघलनेपर हटाकर पुनः दूसरा घृत रखें। इस प्रकार कई बार करनेसे प्रलाप शान्त हो जाता है।

कफ निकलनेमें कष्ट प्रतीत होता हो, तो अलसीफाण्ट और कफ-स्रावी लेपका प्रयोग करें।

१. अलसीफाण्ट—अलसीका आटा १। तोला, मुलहठी ६ माशा, आधा नींबू और २ तोले मिश्रीको उबलते हुए १० औंस जलमें डालकर ४ घण्टे ढक देवें। फिर छानकर ३ हिस्से करके दिनमें ३ बार पिलावें। इस चायसे कफ सरलतासे बाहर आता है और मूत्रशुद्धि होती है।

२. कफस्रावी लेप—कफ सरलतासे बाहर नहीं आता हो तो रोगीको अति कष्ट होता है। ऐसी अवस्थामें फुफ्फुसकोषोंको उत्तेजितकर कफ बाहर निकालनेके लिये बिनौलेकी आधसेर मींगीको चटनीके समान पीसकर २० तोले सरसोंके गर्म तैलमें मिला लेवें। फिर कन्धेसे लेकर फुफ्फुसोंके दोनों ओर लेपकर रुई चिपका करके कपड़ा बाँध देवें। ऊपर थोड़ा सेक (वालुकास्वेद) देवें, तो २४ घण्टेमें ही फुफ्फुसकोष और नलिकाओंमें रहा हुआ कफ पिघलकर बाहर निकलने लगता है।

हृदयकी गति शिथिल हो जानेपर—संचेतनीवटी अथवा कस्तूरी, पीपल और शहदके साथ पूर्णचन्द्रोदय रस या त्रैलोक्यचिन्तामणि रस इनमेंसे अनुकूल औषधकी योजना करें।

बेहोशी होनेपर—संचेतनीवटी देवें या हेमगर्भपोटली रसका सेवन करावें तथा सिरके सामनेके बाल निकलवाकर अदरखके रसकी पट्टी लगावें। पट्टी बार बार १-१ घण्टेपर बदलते रहें। रोगीको चेतना आकर उस के नेत्र लाल प्रतीत हों, तब पट्टी लगाना बन्द कर देना चाहिये।

फुफ्फुसदाह और कफमें आते हुये रक्तके शमनार्थ—वासावलेह या वासा स्वरसके साथ साथ मुक्ता, प्रवाल, अभ्रक और शृंगभस्मका

मिश्रण देते रहें। ये औषधियाँ निरापद एवं हितकर हैं। इन्हें श्वसनक ज्वरकी सब अवस्थाओंमें दे सकते हैं। इन औषधियोंका इस रोगकी अन्य औषधियोंके साथ विरोध नहीं है। ये रोगशमनमें अच्छी सहायता पहुँचाती हैं।

वमन और हिक्का हो, तो खीरेके बीजको दूधमें पीसकर देवें या हिक्कान्तकरस शहदके साथ दें।

फुफ्फुसकी शक्तिको बढ़ानेके लिये—फेफड़ोंको शक्ति देनेके लिये अभ्रकभस्म, शृंगभस्म, सोहागेका फूला और रससिन्दूर (मुलहठी, वासा, बहेड़ा और मिश्रीके क्वाथके साथ) दिनमें २ बार १५-२० दिनतक देते रहना चाहिये।

पार्श्वशूल अधिक हो, तो—

(१) अफीम और कपूर मिले तार्पिन तैलकी मालिश करें।

(२) कुचिला, बारहसिंगा, एलुआ, सोंठ, बच्छनाग और रूमीमस्तगी, इन सबका चूर्णकर, गोघृतमें मिला, निवायाकर पार्श्वपर लेप करनेसे तुरन्त शूल शमन होता है।

(३) गर्म जल, नमक या बालुकासे सेक करें। ४-६ जलौका लगवाकर रक्त खिंचवा लेनेपर तुरन्त लाभ हो जाता है।

फेफड़ेपर मालिशके लिये—वातहर तैल, नीलगिरी तैल (युकेलिप्टीस ऑइल या तारपीनके तैलमें कपूर मिलाकर मालिश करें अथवा शिरःशूलान्तक मलहममें अफीम मिलाकर मालिश करें। फिर नमककी पोटलीसे दिनमें २ समय १-१ घण्टे तक मन्द मन्द सेंक करें।

एण्टीफ्लोजिस्टीन—डाक्टरीमें फुफ्फुसपर एण्टीफ्लोजिस्टिन (Antiphlogistine) या एण्टीफ्लेमीन (Antiflamin) की पट्टी लगवाते रहें; इन को गरम तथा पतली करनेके लिये डिब्बेको किसी तपेलीमें रख चारों ओर पानी भरकर उबालें; जिससे डिब्बेके भीतरकी औषध जलकी उष्णतासे कुछ मिनटोंमें ही पतली हो जाती

है। फिर फलालेन या किसी ऊनी वस्त्रपर लेप लगाकर दोषवाले स्थानपर एक या दोनों पार्श्वोंपर चिपका दें। लेप शीतल हो गया हो, तो उसे निवाया करके चिपकावें। १४-२४ घण्टे बाद इस लेपको पुनः पुनः बदलते रहें या गरम जलकी बोतल रखकर पुनः गरम कर लें।

इस लेपको छातीकी बीचकी हड्डीतक न लगावें, किन्तु उससे कुछ दूर रखें।

एक प्रकारकी ऊन थर्मोजेनिक वूल (Thermogenic wool) आती है, उसपर स्पिरिट छिड़ककर फुफ्फुसपर रखनेसे भी उष्णता उत्पन्न हो जाती है।

बाष्प देनेके लिये—(१)लोहबानपुष्पकी वाष्प अर्थात् वेपर बेन्जोइनी (Vapour Benzoini) दें; अर्थात् Tinct. Benzoin Co. १ ड्रामको २० औंस उबलते हुए जलमें मिला लें। फिर १ मिनटमें ६ से ८ बार नाक और मुँहसे वाष्प लेवें। यह क्रिया १० मिनट करें। इस प्रकार वाष्प लेनेके लिये जलको एक देगची (Kettle) में भर लें। फिर उसके मुँहपर रबरकी नली लगालें। इससे वाष्प लेनेमें सरलता होती है। यदि देगची अग्निपर ही रहे, तो बाष्प अच्छी मिलती है।

ऊपर कहे हुए शास्त्रीय प्रयोग:—

१. रोहिषादि कषाय—रोहिषघास, धमासा, अडूसा, पित्तपापड़ा, प्रियंगु और कुटकी, इन ६ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करें, फिर ६ तोलेका क्वाथ कर ३ हिस्सा कर दिनमें ३ बार पिलावें। इस कषायके सेवनसे पित्तप्रकोपज उष्णता और न्युमोनियामें होनेवाला रक्तमय कफस्राव दूर होता है।

२. मल्लभस्म—सफेद सोमल, शोरा, चूना, सीपभस्म, सोहागेका फूला, ये ५ औषधियाँ २-२ तोले और नौसादर १६ तोले लेवें। सबको मिला ८ तोले आकके दूधमें खरलकर २-२ तोलेकी टिकिया

बना लेवें। उन टिकिआओंको सुखा, सरावसंपुट कर २॥ सेर कण्डोंकी अग्नि देवें। यह भस्म वजनमें हल्की और काली होती है। इसमेंसे सोमल और नौसादरका विशेषांश उड़ जाता है; परन्तु लाभ अच्छा करती है।

मात्रा—आधसे एक रत्तीतक अदरखके रस या दूध-मिश्री या रोगानुसार अनुपानके साथ देनेसे वातव्याधि, जीर्णज्वर, निमोनिया, कफज्वर और सन्निपात आदिको दूर करती है। निमोनियाके अनेक रोगियोंपर हमने प्रयोग किया है।

३. सूतराज रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, शुद्ध बच्छनाग और सौहागेका फूला १-१ तोला और धतूराके शुद्ध बीज और बच्छनागके क्वाथकी ३-३ भावना तथा त्रिकटुके क्वाथकी ५ भावना देकर आध-आध रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। १ से २ गोली दिनमें २ बार अदरखके रस और मिश्री, तुलसीके रस या गरम जलके साथ या रोगानुसार अनुपानसे देवें।

यह रसायन शीतांग सन्निपात, कफज्वर, वातज्वर, इन्फ्लुएञ्जा, निमोनिया जुकाम, ज्वरातिसार, वातरोग और कफप्रकोपसे उत्पन्न रोगों को दूर करती है। इस रसायनको आचार्योंने मृतप्राणदायी सूतराज संज्ञा दी है

४. चन्द्रामृत रस—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवलाँ, चव्य, धनिया, जीरा और सेंधानमक, ये सब ओषधियाँ १-१ तोला ले, चूर्णकर बकरीके दूधमें ६ घण्टे खरल करें। फिर शुद्ध पारद और शुद्ध गंधककी कज्जली और सोहागा का फूला ४-४ तोले, लोह-भस्म और कालीमिर्चका चूर्ण २-२ तोले मिला बकरीके दूधमें ३ घण्टे खरलकर ३-३ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें ३ बार बकरीके दूध, वासास्वरस, कुलथीके क्वाथ, कमलकेसर, अदरखके रस या शहद, पीपलके साथ देवें। यह रसायन सब प्रकारके

कास पर प्रयुक्त होती है। विशेषतः शुष्ककास, वातपित्तप्रधान, वात-कफप्रधान, पित्तकफप्रधान, पित्तप्रधान और रक्तयुक्त कास तथा ज्वरावस्थाके कासको दूर करती है। यदि फुफ्फुसोंमें कफ संगृहीत हो गया हो और ज्वर भी रहता हो, तो मुलहठी, अडूसा, गिलोय, भारंगी और छोटी कटेलीको समभाग मिला, चूर्णकर १॥-१॥ माशा शहदके साथ भोजनके बाद या दूध पीनेके बाद देते रहें। यह अतिप्रभाव-शाली औषधि है। खांसीकी दुःखदायी अवस्थाका १-२ दिनमें ही दमन हो जाता है।

५. अचिन्त्यशक्तिरस—सोमल, हरताल और हिंगुल १-१ तोले-को मिला करेलेके १॥ सेर रसमें खरलकर सरसोंके समान गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार शक्कर, निवाये जल या वासावलेहके साथ देवें। निमोनियामें विशेषत: शक्करके साथ। यह रसायन निमोनियामें कफको सत्वर बाहर निकालता है एवं आम और विषको जलाती है तथा कीटाणुओंको नष्ट करके चमत्कारिक लाभ दिखाती है। विषमज्वरमें भी सत्वर प्रभाव दर्शाती है।

६. वातेभकेसरी—सोमल, कालीमिर्च, लौंग, शुद्ध बच्छनाग, छुहारेकी गुठली, जायफल और कैरकी कोंपल १-१ तोला, अफीम और मिश्री २-२ तोले लेवें। इन सबको मिला बड़के दूधमें मर्दनकर सरसोंके समान गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें १ से ३ बार देवें।

यह रसायन निमोनियामें मिश्रीके साथ देनेसे तत्काल गुण दर्शाता है। श्वास, कास और कफप्रधान सन्निपातमें शहदके साथ तथा मरणासन्न अवस्थामें सफेद कत्था और अकरकरा १-१ रत्तीके साथ देनेसे कफप्रकोप सत्वर शमन होकर बेहोशी और त्रिदोष निश्चयपूर्वक दूर हो जाता है और रोगीकी रुकी हुई जबान खुल जाती है।

इनके अतिरिक्त यह रसायन हिक्का, अतिसार, रक्तप्रदर, शिरदर्द, अफारा और विषमज्वरपर रोगानुरूप अनुपानके साथ दी जाती है।

उपद्रवोंके लिये सूचना।

१. अकस्मात् ज्वरकी अतिवृद्धि हो और नाड़ी द्रुत हो जाय, कास, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट, बेचैनी, प्रलाप आदि बढ़ जाय, तो फुफ्फुसके भीतर घनीभवनावस्थामें स्थान विस्तृत हो रहा हो। हृदयावरणप्रदाह, फुफ्फुसावरणप्रदाह या अन्य सबल उपद्रव उपस्थित हो रहे हों, ऐसा होनेपर देहको गीले वस्त्रसे पोंछें, उत्तेजक औषध (अचिन्त्यशक्ति रस या समीरपन्नग) देवें और उपद्रवको शमन करनेकी चिकित्सा करें।

२. श्वासकृच्छ्रता अत्यधिक बढ़ जाना, देहका वर्ण नीला हो जाना, कास, वेदनावृद्धि हो जाना (ज्वरवृद्धि न हो), ये लक्षण भी घनीभवनकी व्यापकता दर्शाते हैं। इस अवस्थामें कस्तूरी-अफीम मिश्रित औषध (कस्तूर्यादि वटी) देवें। प्राणवायुको वाष्प देनेसे सत्वर लाभ पहुँचता है। अतः इस अवस्था में उपद्रवशामक चिकित्सा करें।

३. नाड़ीगति अतितेज हो जाय (किन्तु हृदय क्षीण हो), नाड़ी दो स्पन्दनयुक्त (डाइक्रोटिक) चलती हो, श्वासकष्ट, शारीरिक उत्तापवृद्धि और शक्तिह्रास हो, तो ये भी घनीभवनके विस्तारकी सूचना देते हैं। इस अवस्थामें तत्काल हेमगर्भपोटली रस, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस या संचेतनी वटी की योजना करनी चाहिये एवं प्राणवायुकी वाष्प देनी चाहिये।

४. अकस्मात् त्वचाका रंग मलिन हो जाय और शरीरकी शक्तिका ह्रास हो, तो तत्काल उत्तेजक औषध देनी चाहिये, अन्यथा हृदयावरोध हो जायगा। इसपर हेमगर्भपोटली रस और त्रैलोक्यचिन्तामणि रस अति उपयोगी औषध हैं। श्वास द्वारा प्राणवायु भी देना चाहिये और उष्ण सेक करना चाहिये।

५. प्रलाप होनेपर पहिले शारीरिक उत्तापवृद्धि, नाडीकी द्रुत गति, किन्तु क्षीण तथा अचेतनावस्थाकी क्रमशः वृद्धि होना, ये लक्षण होते हैं। फिर उत्तापका ह्रास, हाथ-पैरोंमें शीतलता और शक्तिपात होकर हृदय बन्द हो जाता है। अतः उत्तापह्रास हो, तो उत्तेजक औषध त्रैलोक्यचिन्तामणिरस, हेमगर्भपोटली रस या शराब (ब्राण्डी) देना चाहिये। सेक करना चाहिये और प्राणवायुकी बाष्प देनी चाहिये।

६. कभी वक्षप्रदेशमें वेदना बढ़ती है। साथ साथ शारीरिक उत्ताप और नाडीस्पन्दन भी बढ़ जाते हैं। ये लक्षण हृदयावरण या फुफ्फुसके प्रदाहकी सूचना देते हैं। उसपर स्थानिक चिकित्सा कपिङ्ग-ग्लास (Cupping Glass) लगाना या बर्फकी थैलीसे सेक करना आदि क्रिया करें। साथ साथ हृदयोत्तेजक औषध भी देनी चाहिये।

१७ फुफ्फुसप्रणालिका-प्रदाह

Broncho Pneumonia—Catarrhal Pneumonia Lobular Pneumonia Capillary Bronchitis.

व्याख्या—वनस्पति-कीटाणुओंके प्रकोपसे श्वासप्रणालिका (Bronchioles) में प्रदाह होकर वायुकोष (Alveoli) तक फैल जानेको फुफ्फुसप्रणालिका-प्रदाह कहते हैं। (इस रोगमें बच्चोंके उदरमें निःश्वासकालमें गड्ढा पड़ता है।) इस विकारमें वायुकोष-समूहोंकी दीवारोंमेंसे त्वचाके टुकड़े टूट टूटकर वायुकोषसमूह भर जाते हैं।

कितनेक आचार्योंकी मान्यता अनुसार कास या क्षयरोगमें तीक्ष्ण वायु श्वासोच्छ्वासमें चली जानेपर या शीतल वायुमें घूमनेपर इस रोगकी सम्प्राप्ति हो जाती है। इस तरह माताके अपथ्य-सेवनसे भी बालकको इस रोगकी प्राप्ति हो जाती है।

इस रोगमें २ प्रकार हैं—१. मूलभूत; २. गौण वा उपद्रवात्मक।

१. मूलभूत (Primary)—यह रोग विशेषतः स्तनपान करनेवाले या २ से ४ वर्षतकके बच्चेको होता है। इसमें लक्षण न्युमोनिआके समान प्रकाशित होते हैं। इसे संस्कृतमें उत्फुल्लिका और भाषामें पसली चलना, डब्बा, मसान, भूतबाधा, ससणी, पलरिया आदि अनेक नाम दिये हैं।

२. गौण (Secondary)—किसी रोगविशेषके साथ लक्षण-रूपसे या उपद्रवरूपसे उपस्थित होता है। निम्न रोगोंमें विशेषतः इसकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

A. श्वासनलिकाप्रदाह (Bronchitis)—कासरोगमें श्वासन-लिकासे प्रदाह बढ़कर फिर श्वासप्रणालिकाओंतक पहुँच जाता है।

B. आशुकारी विशेष प्रकारके ज्वर (Acute Specific Fevers)—विशेषतः रोमान्तिका, काली खांसी, इन्फ्लुएन्जा, उससे कम कण्ठरोहिणी (Diphtheria) और आन्त्रिकज्वरमें।

C. बालकोंके अस्थिमार्दव और अतिसारमें।

इन ३ प्रकारोंसे गौण व्याधिकी सम्प्राप्ति होती है। शिशु और बालकोंकी इस गौण प्रकारमें मृत्युसंख्या मूलभूत रोगकी अपेक्षा अधिक होती है।

D. निर्बलता अथवा वृद्धावस्थासे चिरकारी प्रकार—विशेषतः वृक्कप्रदाह, हृदयपर आघात और धमनी-दीवारकी कठोरताके हेतुसे इसकी उत्पत्ति होती है।

E. राजयक्ष्माके कीटाणुकी प्राप्ति हो जानेसे।

उक्त दो प्रकारोंके अतिरिक्त कभी निम्न तीसरा प्रकार भी उपस्थित हो जाता है।

आकर्षण या निगरणजनित (Aspiration or Deglutition Pneumonia)—किसी प्रकारके उष्ण, उग्र अथवा दूषित प्रवाहीके श्वासनलिकामें चले जानेपर अत्यधिक श्वास-प्रणालिकाप्रदाह उपस्थित होता है। यदि वह गम्भीर रूप धारण करता है तो पूयपाक या कोथ हो जाता है।

श्वासप्रणालिकाएँ प्रदाहपीड़ित होनेपर सम्प्राप्तिशास्त्रकी दृष्टिसे विकृतावस्थाको प्राप्त हो जाती हैं। फिर प्रदाह वायुकोषोंमें फैल जाता है। उनकी दीवालोंके छिल्के निकलकर उनमें गिरते हैं और पुनः नये उत्पन्न होते हैं, जिससे वायुकोष भर जाता है एवं श्वासप्रणालिकाएँ और वायुकोष सब लसीकास्रावसे भर जाते हैं। फिर वे वायुकोष फूल जाते हैं और अन्य समीपके कोष आकुंचित हो जाते हैं।

शारीरिक विकृति—इस रोगमें आशुकारी श्वासप्रणालिका-प्रदाह (Acute Bronchiolitis), विक्षिप्त श्वासप्रणालिका-प्रदाह (Disseminateb Broncho Pneumonia), कृत्रिम फुफ्फुस-खण्डीय प्रदाह (Pseuodo—Pneumonia), यह ३ प्रकारकी विकृति उपस्थित होती है।

कीटाणु—इस रोगके कोई विशेष कीटाणु नहीं हैं। मलभूत रोगकी सम्प्राप्ति सम्भवतः खण्डीय फुफ्फुसप्रदाहके उत्पादक मुख्य न्युमोकोकससे होती है। गौण रोगमें अन्य कृमियोंके साथ न्युमोकोकस मिल जाते हैं।

मूलभूत रोगके लक्षण—शीत लगकर शारीरिक उत्ताप बढ़ जाना, फुफ्फुसमें शूल, कास, श्वासोच्छ्वासमें कष्ट होना और अन्य खण्डीय फुफ्फुसप्रदाहके समान लक्षण होते हैं। फिर शनैः शनैः ज्वर १०२-१०३ डिग्रीतक बढ़ जाता है। श्वास लेनेमें नासापुट प्रसारित होना, श्वास गम्भीर, कष्टकर और द्रुत होना, उदरप्रदेशमें निःश्वासके साथ गड्ढा होना, निःश्वास ध्वनिसह और दीर्घ होना, नाड़ी द्रुत, स्पन्दन-संख्या १००-११० या अधिक हो जाना, पहले शुष्क कास, फिर

कोष्ठबद्धता, पेशाब थोड़ा-थोड़ा और लाल रंगका और प्रस्वेद आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस रोगमें मृत्युसंख्या कम होती है।

गौण रोगके लक्षण—इसकी कोई स्वतन्त्र स्थूल निश्चित लक्षण या भावना नहीं है, जिससे इसे खण्डीय फुफ्फुसप्रदाहसे पृथक् कर सकें। इसके आक्रमणकालमें आक्षेप, शुष्क कास और मुख्य रोगके कारण अनुरूप लक्षण उपस्थित होते हैं। पूर्वरूपमें कुछ आलस्य, उदासीनता होती है। फिर आक्रमण होनेपर उत्तापवृद्धि, कास, शीघ्रश्वसन, द्रुतनाड़ी और हृदयकी अस्वाभाविक ध्वनि आदि लक्षण होते हैं। शारीरिक उत्ताप १०२° से १०४° तक। रोज सुबह और रात्रिके बीच उष्णता ३ डिग्री घटती-बढ़ती है। कभी आकस्मिक उपशम नहीं होता। उत्तापवृद्धि यह अशुभ लक्षण है। कितनेक गम्भीर रोगियोंमें शारीरिक उत्ताप कम होता है। बार बार मन्द मन्द कास आती है। कासवृद्धि होना यह शुभ चिन्ह है।

इस रोगमें श्वासोच्छ्वास तेज होता है। बहुधा ६० से अधिक, झटका लगता हुआ (Jerky) होता है। निःश्वासके पश्चात् सामान्य विश्रान्ति प्रतीत होती है। उदरमें गड्ढा पड़ना, यह इसका मुख्य लक्षण है।

नाड़ी द्रुत, सामान्यतः छोटी, किन्तु आक्रमणकालमें पूर्ण। कितनेक रोगियोंमें देहका रंग नीला हो जाता है। यह गम्भीर लक्षण है, प्रारम्भमें यह होठपर होता है। गम्भीरावस्थामें विवर्णता (Pallor) आ जाती है। इनके अतिरिक्त शुष्क या आर्द्र त्वचा, बालकोंका कफ निगल जाना, वृद्धोंको कुछ पतला कफ, तृषावृद्धि क्षुधानाश, व्याकुलता आदि चिह्न होते हैं। परन्तु वे रोगनिर्णायक नहीं माने जाते।

इस रोगसे बच्चोंके कण्ठमें घर-घर आवाज निकलती है; श्वास जल्दी जल्दी चलता रहता है। अनेक बालकोंका पेट कब्ज होकर फूल जाता है। नाक सूखता है या नाकसे पानी झरता है। मल-मूत्रावरोध हो जाता

है तथा उदरमें कफका जाला-सा बँध जाता है। इस रोगका आक्रमण अकस्मात् होता है। बालक खेलते खेलते मुँहका रंग बदल देता है, नेत्र फटने लगते हैं और बेहोश हो जाता है। तीव्र ज्वर हो, तो बेहोशी, मुँह लाल हो जाना, चौंक उठना, इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

यह रोग उपद्रवात्मक हो, तो प्रारम्भमें खांसी होती है। किन्तु इस रोगका प्रारम्भ होनेपर ज्वर एकदम १०२-१०३ डिग्रीतक बढ़ जाता है और कुछ दिनों (१०-१५ दिन) तक संततके समान रहता है। श्वास जल्दी चलने लगता है। नाड़ी अशक्त और कर्कश, त्रासदायक कास और कफ अति चिपचिपा (रक्तरहित) होता है। श्वास लेनेके समय पर्शुकान्तर (Intercostal Space) अन्दरकी ओर घुसता हुआ भासता है; जिससे उदरमें गड्ढा पड़ता है।

रोगवृद्धिलक्षण—श्वासावरोध और विषप्रकोपकी वृद्धि, व्याकुलता गात्रनीलिमा फिर रोगपरिवर्तन, विषवृद्धि होनेपर कास दूर हो जाना, अस्वाभाविक ध्वनि (Rales) व्यापक होना, रोगीको चैन न पड़ना, निद्रानाश, हृदयका दक्षिण खण्ड प्रसारित होना आदि लक्षण होते हैं। फिर मृत्यु उपस्थित होती है।

परिणाम—मूलभूत और गौण, दोनों प्रकारके परिणाम विशेषतः समान हैं। रोगशमन या मृत्यु। इनके अतिरिक्त क्वचित् तन्तुओंकी अपक्रान्ति (Fibrosis). जीर्ण चिरकारी रोग बन जाना। (क्षयकीटाणुजनित रोगमें ऐसा होता है), पूयपाक या कोथ या आकर्षित फुफ्फुसखण्डप्रदाह (Aspiration Pneumonia) और क्वचित् अन्य रोगसे प्राप्ति आदि परिणाम होते हैं। मृत्युका परिणाम अत्यधिक होता है।

इस रोगमें श्वासावरोध और विषप्रकोप, हृदयावरोध या शक्तिक्षयद्वारा मृत्यु होती है।

रोग-विनिर्णय।

श्वासप्रणालिका प्रदाह	फुफ्फुसखण्ड-प्रदाह
१. सामान्यतः कास उपस्थित होनेके पश्चात् क्रमशः रोगाक्रमण।	अकस्मात् रोगाक्रमण।
२. अनिर्दिष्ट गति और अनियमितता। कभी जल्दी शमन, कभी गम्भीररूप धारणकर कई दिनोंतक स्थिति, क्वचित् कितनेक सप्ताहतक दुर्बलता आकर मुक्ति।	निर्दिष्ट क्रम अवलम्बन। सामान्यतः ५ से ८ दिनमें आकस्मिक उपशमद्वारा रोगशमन।
३. सूक्ष्म श्वासप्रणालिकाओंसे रोगारम्भ। फिर वायुकोषोंका प्रभावित होना, समीपके वायुकोषोंका संकोच, श्वसनसे त्वचाके कोषाणु, कुछ रक्ताणु और ग्रथिन मिश्रणका ऊपर-नीचे होना।	रोगारम्भक विशेषतः एक फुफ्फुसखण्डमें सब रक्तप्रणालिकाएँ प्रसारित और रक्तपूर्ण, वायुकोष सब रक्तपूर्ण, फिर वायुकोषोंमेंसे रसके शोषणजनित परिवर्तन।
४. अतिकष्टदायक कास, कभी-कभी प्रबल वेग। कफ रक्त-रहित।	कास विशेष कष्टकर न होना, बालक आदिको कभी प्रारम्भमें कफ नहीं निकलता। कफ रक्तसह लोहके जंग सदृश रंगका।
५. ज्वर अनियमित, क्रमशः वृद्धि-ह्रास।	ज्वर अनियमित।

उक्त दोनों रोगोंका आक्रमण होनेपर तत्काल रोगनिर्णय नहीं हो सकता। फिर लक्षण स्पष्ट प्रकाशित होनेपर विदित होता है।

साध्यासाध्यता .गौण रोगमें ५ वर्षके भीतर बालकोंकी मृत्यु ३० से ५० प्रतिशत। विशेष व्यवस्था हो, वहाँ १० से २० प्रतिशत मृत्यु। एक वर्षके भीतरकी आयुवालोंकी मृत्यु सबसे अधिक। उत्ताप १०५ से अधिक और अनियमित रहना या कम हो जाना। ये अशुभ चिन्ह हैं। १०२° ५ से १०४° तक रहना, यह शुभ लक्षण है।

इस व्याधिमें ज्वर धीरे धीरे उतरता है, किन्तु बीच बीचमें कुछ बढ़ भी जाता है। रोगी बहुत अशक्त हो जाता है और शनैः शनैः स्वस्थ होता है। यदि बलक्षय होता है, तो कास-श्वास बढ़ता है और आकर्षित फुफ्फुसप्रदाह (Aspiration pneumonia) होकर रोगीके प्राण मुक्त हो जाते हैं, या क्वचित् संज्ञाहीन होकर मृत्यु होती है। प्रकृतिभाव विलम्बसे होता हो, तो रोगीकी कफधातुका क्षय होनेकी सम्भावना है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

रोगीको लेटाये रखें। बार बार पार्श्व बदल देवें। आवश्यकता अनुसार बार-बार दूध देवें। हृदयकी शिथिलता प्रतीत हो तो शराब देनी चाहिये।

फुफ्फुस और हृदयको शीत न लगनेके लिये गरम कपड़ा पहनाना चाहिये। गर्म बोतलसे सेंक करना चाहिये। स्वच्छ वायुमें रोगीको रखना चाहिये, परन्तु वायुका तेज वहन नहीं होना चाहिये।

आवश्यकतापर उदरशोधनार्थ एरण्डतैल का उपयोग भी हितावह है। इसकी चिकित्सामें मुख्य ३ कार्य करने चाहियें—

१. श्वासमार्गसे अवरोधकारक पदार्थको बाहर निकाल देनेका उपचार करना (ऐसा करनेसे फुफ्फुस प्रसारित होगा, अन्यथा संकोच-स्थानकी वृद्धि होगी)।

२. कोष्ठबद्धता, कफ, कास, श्वास, ज्वर आदिका दमन।

३. रोगीके बलका संरक्षण।

श्वासमार्गसे अवरोधक पदार्थ बाहर निकालनेके लिये वान्तिकर औषध और उदरशुद्धिके लिये विरेचन। ये दोनों गुण डब्बानाशक-गुटिकामें (उसारेवन्दके हेतुसे) हैं; जिससे वह एक वमन और एक दस्त करा विष और मलको शीघ्र बाहर फेंक देती है। किन्तु ध्यान रहे कि वान्तिकर औषधि बारबार नहीं दी जाती। अन्यथा आमाशयमें उग्रता उपस्थित होती है।

फिर कफ गाढ़ा हो, तो शिथिल करनेके लिये लहसनसत्व या मुलहठीवाला योग या क्षारघटित औषध देनी चहिये।

रोगी वृद्ध मनुष्य हो, कफ अधिक सताता हो और रोग अधिक दिनका हो गया हो, तो कफकुठार रस, अन्य क्षारप्रधान औषध या वनपलाण्डुका चूर्ण देना चाहिये। वृद्ध मनुष्यको उत्तेजक औषध देनी चाहिये।

आवश्यकता अनुसार फुफ्फुसपर पुल्टिस, उत्तेजक मर्दन या सेक करें। श्वासमार्गसे तार्पिन या नीलगिरीकी बाष्प देवें। नीलगिरी, तार्पिन, कर्पूरतैल आदिका मर्दन भी हितकारक है।

वमन और विरेचनप्रधान औषध देनेके पश्चात् ज्वराधिक्य हो तो हरतालरसायन या बच्छनागप्रधान औषध (मृत्युञ्जय रस, आनन्दभैरव रस, त्रिभुवनकीर्ति रस) देना चाहिये।

डाक्टरीमें इस रोगकी चिकित्सा सल्फोनेमाइड्स द्वारा फुफ्फुस-खण्डप्रदाहके समान करते हैं।

१०५ डिग्रीके ऊपर ज्वर हो जानेपर डाक्टरीमें गीले वस्त्रसे देहको पोंछवाते हैं। गात्रनीलिमा हो या कष्ट अधिक प्रतीत हो, तो प्राणवायु श्वसनमें देनी चाहिये। यह निर्भय और उत्तम उपचार है।

बच्चेको आक्षेप उपस्थित होनेपर शुद्ध वायु, पौष्टिक औषध और आवश्यक दूध देना चाहिये। शीत लगता हो, तो उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

श्वासप्रणालिकाप्रदाह-चिकित्सा।

शास्त्रीय औषधियाँ—कफकुठार, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म और शृंगभस्म, इन तीनोंका मिश्रण (वासावलेहके साथ), सितोपलादि चूर्ण, लउकसपिस्तां, इनमेंसे अनुकूल औषधकी योजना करें।

इनमेंसे हम कफको बाहर निकालनेके लिये कफकुठारका प्रयोग अधिकतर करते हैं। कफोत्पत्तिको रोकने और फुफ्फुसों को सबल बनानेके लिये रससिन्दूर, अभ्रक और शृंगभस्मको विशेष उपयोगमें लेते हैं। कफ गाढ़ा हो, सरलतासे न निकलता हो, तब लऊकसपिस्तांका उपयोग करते हैं। जीर्णरोग होनेपर उत्तेजना अधिक हो, तो प्रवालपिष्टी और बृहत्सितोपलादिको घी-शहदके साथ दिनमें ३-४ बार चटाते हैं।

१. कफकुठार रस—शुद्धपारद, शुद्ध गंधक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, ताम्रभस्म और लोहभस्म, इन ७ औषधियोंको समभाग लेवें। पहिले कज्जली कर फिर और औषधियाँ मिला छोटी कटेलीके फलोंके रसमें ६ घण्टे खरल करें। फिर कुटकीके क्वाथ और धतूरेके पानके रसकी १-१ भावना देकर १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली नागरवेलके पानके साथ दिनमें ३-४ बार देवें।

यह रस अत्यन्त तीक्ष्ण है। छातीमें कफ संग्रह हो, कफ गाढ़ा हो गया हो, बार बार खांसी आकर थोड़ा थोड़ा कफ गिरता हो और ज्वर हो, तब सरलतासे कफको बाहर निकालने, खाँसीका वेग कम कराने और श्वासवाहिनीपर शामक असर पहुँचानेके लिये प्रयुक्त होता है।

२. रससिन्दूर—शुद्ध पारद १६ तोले और शुद्ध गंधक १६ तोले मिला कज्जली कर घीकुंवारके रसमें १२ घण्टे खरल कर आतशी शीशी में भर वालुकायन्त्र में रख कर ४ अहोरात्र अग्नि देकर रससिन्दूर सिद्ध कर लेवें। यह षड्गुण बलिजारित रससिन्दूर कहलाता है। मात्रा १ से २ रत्ती दिनमें २ बार अभ्रक भस्म, पीपल और शहदके या रोगानुसार अनुपानके साथ।

यह रसायन कफप्रधान विकृतिपर तथा वातरोग पर विशेष व्यवहृत होती है। इसके सेवनसे दूषित कफ सरलतासे निकल जाता है, कफधातु निर्दोष बनकर नयी उत्पत्ति रुक जाती है तथा फुफ्फुसप्रदाह नष्ट होकर फुफ्फुस सबल बन जाते हैं। निमोनिया, इन्फ्लुएञ्जा, श्वासरोग, जीर्ण कफ-कास, जीर्ण जुकाम, उरस्तोय (फुफ्फुसावरणमें जल भरना), हृदयकी निर्बलता, बार बार जुकाम हो जाना, शारीरिक निर्बलता, राजयक्ष्मा, जीर्णज्वरमें अशक्ति, संग्रहणी, मन्दाग्नि, अनेक प्रकारके वातरोग और कफप्रधान प्रमेह आदि रोगोंपर यह लाभ पहुंचाती है।

सूचना—शुष्क कासमें इसे न देवें। पित्तप्रकृतिवालोंके लिये इसका उपयोग न करें एवं वृक्क पीड़ित हो तो पारदप्रधान औषधि सम्हालपूर्वक उपयोगमें ली जाती है।

३. बृहत् सितोपलादि चूर्ण—सितोपलादि चूर्ण ३१ तोले (मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, छोटी पीपल ४ तोले, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी १ तोला), बनफशाके फूल, मुलहठी गावजवां और तालीसपत्र ४-४ तोले मिलाकर चूर्ण तैयार कर लेवें। इसमेंसे २ से ४ माशे चूर्ण दिनमें ३ बार घीके साथ देवें।

यह चूर्ण श्वासवाहिनियोंकी श्लैष्मिक कलाके क्षोभसे उत्पन्न शुष्क काससह ज्वरपर विशेष हितावह है। ज्वर मन्द मन्द रहता हो, अग्नि मन्द हो; बार बार कास चलती रहती हो और निद्रा शान्त न आती हो, ऐसी अवस्थामें यह सत्वर लाभ पहुँचाता है।

४. लऊकसपिस्तां—लिहसोड़े ५०, उन्नाव २०, मुलहठी १ तोला तुख्मखतमी १ तोला, पोस्तके छिल्के २ तोले और बिहीदाना ६ माशे लेवें। सबको २ सेर जलमें मिलाकर चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर मल-छानकर ४० तोले शक्कर मिलाकर चाशनी बना लेवें। उसमें बादाम-गिरी ६ तोले, पोस्तदाना १ तोला, जवाखार १ तोला, कतीरा ६ माशे,

गोंद ६ माशे और मुलहठी ६ माशे मिलाकर चाटने योग्य बना लेवें। इसमेंसे ४-६ माशे दिनमें ३-४ बार चटावें।

इस चाटणके उपयोगसे श्वासनलिकामें चिपका हुआ कफ बिना तकलीफ बाहर निकल आता है। फुफ्फुसोंकी उष्णताका ह्रास होकर शुष्क कास शमन होती है और फुफ्फुस निर्दोष बनते हैं।

बालकोंके डब्बा रोगकी चिकित्सा

शृंग्यादि चूर्ण, माणिक्यरसादि वटी, डब्बानाशक गुटिका और बालजीवनवटी, इनमेंसे योजना करनी चाहिये।

उत्फुल्लिका (बालकोंकी पसली चलना) पर डब्बानाशक गुटिका और बालजीवन वटीका हमने उपयोग हजारों बार किया है। इन औषधियोंसे एक दस्त और एक वमन होकर रोग दूर हो जाता है। हम निर्बल शिशुओंके लिये बालजीवन वटी और सबल बच्चोंके लिये डब्बानाशक गुटिका देते हैं। इस रोगमें विशेषतः बद्धकोष्ट रहती है।

यदि माताके कुपथ्यसेवनसे या माताके रोगसे बालकको रोग हुआ हो, तो माताको भी साथ ही साथ औषध देना चाहिये और भोजनमें माताको मसूरकी दालका यूष निवाया पिलावें।

डब्बानाशक गुटिका और बालजीवन वटी, दोनों प्रारम्भिक अवस्थामें उपकारक हैं। इनका प्रयोग करनेके पश्चात् दोष शेष रह जानेपर माणिक्यरसादिवटीका प्रयोग करना चाहिये एवं ज्वरकी अधिकता हो, तो बच्छनागप्रधान औषध देवें। इस प्रकार चिकित्सा करनेसे विशेषतः बच्चे अच्छे हो जाते हैं।

४. **डब्बानाशक गुटिका**—सत्यानाशीके बीज और उसारेरेवन्द समभाग मिलाकर सत्यानाशीके रसमें १२ घण्टे खरल कर चौड़े मुँहकी बोतलमें भर लेवें। आवश्यकतापर आध आध रत्ती १ या २ बार जल या माताके दूधके साथ देवें। इस वटीका सेवन करानेपर एक दस्त

और एक वमन होकर डब्बारोग शान्त हो जाता है। २ घण्टेमें वमन-दस्त न हो तो दूसरी मात्रा देवें।

५. बालजीवनवटी—गोरोचन ३ माशे, एलवा ६ माशे, उसारे रेवन्द, केशर, कटेलीका जीरा, जवाखार और सत्यानाशीके बीज १-१ तोला लें। इन सबको मिला अदरखके रसमें ३ घण्टे खरलकर चौथाई चौथाई रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। मात्रा १ से २ गोली माताके दूध या शहदसे देवें।

इस वटीका सेवन करानेसे बच्चोंके पसली (डब्बा) रोग, कब्जियत, मूत्रावरोध, अफारा, श्वास, कास, कफसंग्रह आदि दूर होकर बच्चे नीरोग बन जाते हैं। इसका उपयोग विशेषतः डब्बानाशक गुटिका देनेके पश्चात् किया जाता है। यदि बालक अति कमजोर है, तो पहिलेसे ही इसका प्रयोग करना पड़ता है।

६. माणिक्यरसादिवटी—हरतालमेंसे बना हुआ माणिक्यरस, सिंगरफ, एलुवा, पीपल, सैंधानमक, कालानमक, इन्द्रजौ और कोयल (गोकर्णी) के बीज २-२ तोले, शुद्ध मैनसिल, सोहागाका फूला, जवाखार, लाल बोल, सोंठ, कालीमिर्च, अजवायन, अकरकरा और वायविडंग १-१ तोला, केशर, जायफल, जावित्री, इलायची, तेजपात और उसारेरेवन्द ६-६ माशे लें। इन सबको मिला नागरवेलके पानके रसमें तीन दिन खरल कर चौथाई चौथाई रत्ती की गोलियां बना लेवें। इनमें से १-१ गोली दिनमें २-३ बार पानके रसके साथ देवें।

इस वटी के प्रयोग से बालकों के श्वास, हृदयावरोध, अफारा, कास, अतिसार, ज्वर, शूल आदि रोग दूर होजाते हैं। संगृहीत मल, आम, विष बाहर निकल जाता है। इस वटी ने फुफ्फुसप्रणालियों से कफ बाहर निकालकर डब्बापीड़ित सैकड़ों बच्चों के जीवन की रक्षा की है।

७. हिङ्गुकाम्पिल वटी—कपीला १ तोला और भुनी हींग १॥ माशा, दोनों को मिला, दही के जलमें ६ घण्टे खरलकर, मिर्च समान

छोटी छोटी गोलियाँ बना लें। इनमें से १-१ गोली माता के दूध या निवाये जलसे दें। बच्चे की आयु १ वर्ष से अधिक हो, तो २ गोली दें। आवश्यकतापर ४ घण्टे बाद पुनः दें। इस रीति से तीसरे समय भी दे सकते हैं। इस औषध से डब्बारोग की शीघ्र निवृत्ति हो जाती है।

गोमूत्र निवायाकर पिलावें या घोड़ेकी ताजा लादमें थोड़ा जल मिला छान, निवाया (Warm) करके पिलावें; अथवा हृदय की शिथिलता होनेपर कस्तूरी १ चावल भर निवाये नागरवेलके पानके रसमें मिलाकर पिलावें। इनमें से अनुकूल उपचार करने से पसली रोग दूर हो जाता है

फुफ्फुसपर लेप—बारहसिंगे के सींगको गोमूत्रमें घिस, हींग मिला, निवाया कर लेप करने से फुफ्फुसावरण का दोष जल्दी दूर हो जाता है।

फुफ्फुसपर मालिश—(१) नारायण तैल, विषगर्भ तैल, वातहर तैल या तार्पिन के तैलमें कपूर मिलाकर मलें।

(२) कुकरोंधे या प्याजके रसमें हींग को पीस निवाया कर दोनों कनपटियों और हाथ-पैरोंके सब नाखूनोंपर लगाने से विष शमन हो जाता है। विशेष शिथिलता आनेपर यह उपचार किया जाता है।

उदरपर लेप—यदि बद्धकोष्ठ और उदरव्यथा हो, तो एलुआ, रेवन्दचीनी और स्नान करने का साबुन, तीनों को जल में मिला, निवाया कर लेप करें। फिर ऊपर नागरबेलका पान रख कपड़ा लपेट दें। इससे कोष्ठशुद्धि होकर रोग शमन हो जाता है।

१८. वातश्लैष्मिक ज्वर।

(Iufluenza-Lagrippe)

यह ज्वर तीव्र, आशुकारी, संक्रामक, जनपदव्यापी रूपसे फैलनेवाली महामारी है, जिसमें अतिस्वेद, प्रतिश्याय और स्थानिक प्रदाहकी वृद्धिके अनुरूप परिस्थितियाँ होती हैं। इस रोगको यूरोपवासी इन्फ्लूएञ्जाके नामसे काफी लम्बे समय (लगभग ५ शताब्दी) से जानते हैं। इसके आक्रमण अनेक समय काफी समयके अवकाशके पश्चात् हो चुके हैं। सबसे अन्तिम आक्रमण भारत में या समग्र संसारमें सन् १९१८ ई० में महामारीके रूपमें हुआ था, जब कि करोड़ों मनुष्य इससे मर गये थे। इस रोगमें मुख्यतः श्लेष्मा और उसके साथ ही वात भी विकृत हो जाता है। इस हेतुसे इसे वातश्लैष्मिक ज्वर नाम दिया गया है।

निदान—एक विशेष प्रकारका कीटाणु, जिसे हीमोफायलस बॅक्टीरिया या बॅसिलस इन्फ्लुएञ्जा कहा जाता है, उसे स्रावमेंसे पृथक् किया गया है। यह मुख्यतः श्वासमार्गके स्रावमें पाया जाता है। अब इनको गौण कारण माना जाता है। इनका प्रवेश श्वासमार्ग, मुँह एवं दूषित वस्त्रोंके संसर्गसे होता है।

सम्प्राप्ति—विशेषतः इन कीटाणुओंका प्रवेश श्वासमार्गसे होनेसे श्वासनलिका और दोनों फुफ्फुस विकृत हो जाते हैं। फुफ्फुस कुछ स्लेट जैसा नीला (Slate-Blue) हो जाता है; रक्तस्राव होता है और पीड़ित भागको काटकर जलमें डालनेपर प्रायः डूब जाता है। दाह-शोथ होकर श्वासनलिकाएँ कफसे भर जाती हैं; तब न्युमोनियाके सदृश रक्तष्ठीवन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। कभी अन्नमार्गसे प्रवेश होनेपर आमाशय और पक्वाशयमें विकृति होती है और इससे

वमन या अतिसार और कभी इन दोनों की प्रवृत्ति हो जाती है। यदि कीटाणुओंका प्रवेश मस्तिष्कमें हो जाता है, तो वहाँपर भी दाह, शोथ आदि विकृति हो जाती है। इस रोगमें प्लीहा-वृद्धि नहीं होती। कभी-कभी उदरदण्डिका और अन्य मांसपेशियों के आवरणमेंसे रक्तस्राव होने लगता है। कभी श्वासनलिकामें पूयमय कफ भर जाता है। श्वासनलिकाकी ग्रन्थियां बढ़ जाती हैं। आमाशय, शेषान्त्रक, उण्डुक आदि बृहदन्त्रकी श्लैष्मिक त्वचामेंसे रस चूने लगता है। वृक्क कुछ बड़े और रससंग्रहयुक्त भासते हैं। ये सब चिह्न शवको चीरनेपर विदित होते हैं।

इस रोगमें विकृति विशेषतः कफवातोल्वण सन्निपातके समान ही होती है। कभी शनैः शनैः तो कभी तीव्र बलसे ये कीटाणु धातुओंको दूषित बना देते हैं। रक्तमें श्वेत जीवाणुओंकी संख्या कम हो जाती है। लसीकाणुओंका निपात बढ़ जाता है। हृदयके दाहिने खण्ड विस्तृत हो जाते हैं और हृत्स्नायुमें दाह होता है। जब अधिवृक्कों (वृक्कोंके ऊपरके सिरेपर रहनेवाली त्रिकोणाकार ग्रन्थियों (Supra-renal Glands) पर काला शोथ आ जाता है; तब अत्यन्त शक्ति-पात होता है।

चयकाल—इस रोगका चयकाल १ दिन या अधिकसे अधिक ५ दिन है। रोगी ठीक हो जानेके पश्चात् भी शक्ति न आवे उस समयतक थोड़ी-सी भूल होनेसे भी यह रोग पुनः आक्रमण कर देता है। अतः पथ्यकी सम्हाल रखना चाहिये।

लक्षण—चयकालके पश्चात् अकस्मात् इस रोगका आरम्भ हो जाता है।

(१) **ज्वर**—अच्छी प्रकार कार्य करते हुए मनुष्यको थोड़े ही समयमें सारे शरीरमें नानाप्रकारकी वेदना होकर ज्वर आ जाता है। कुछ ही घण्टोंमें यह १०२° से १०४° तक पहुँच जाता है। इसका

आकस्मिक आरम्भ शिरःशूल और कभी कभी कम्प (शीत) सह होता है। साधारणतः ज्वर १ से ५ दिनके अन्दर अत्यधिक पसीना आकर उतर जाता है। परन्तु शाखाओं, कमर और पीठमें अत्यधिक पीड़ा होती है, जो कि इस रोगका मुख्य लक्षण है। (२) प्रतिश्याय—नाकमेंसे जलके समान श्लैष्म-स्राव, नेत्र लाल और तरल स्रावयुक्त हो जाते हैं। कण्ठ प्रदाहयुक्त और जकड़ जाता है। वक्ष जकड़ी हुई प्रतीत होती है। (३) बेचैनी और स्वेद—ज्वरके अनुपातसे अधिक होता है। जिह्वा श्वेत, मैली और फूली हुई और उसके किनारे लाल हो जाते हैं। ४-५ दिनमें ही शरीर निर्बल हो जाता है और सम्पूर्ण शरीरकी मांसपेशियोंकी शक्ति नष्टप्राय हो जाती है। कभी कभी हृदयकी पेशी शक्तिहीन हो जानेके कारण हृदयकी क्रिया बन्द होकर मृत्यु हो जाती है।

कुछ रोगियों में ऊपर वर्णित सिर्फ तीन ही लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु इस रोगमें स्थानिक उपद्रव उत्पन्न करनेकी अधिक अनुरूपता होती है। इसलिये प्रभावित संस्थाके अनुरूप अनेक लक्षण प्रकट होते हैं। इस दृष्टिसे इसके ५ प्रकार हो जाते हैं। १. तीव्रज्वरप्रधान; २. घातक लक्षणयुक्त; ३. श्वाससंस्थाकी विकृतिप्रधान; ४. पचनेन्द्रिय-संस्थाकी विकृतिप्रधान; ५. वातसंस्थाकी विकृतिप्रधान।

१. **तीव्रा ज्वरप्रधान** (General febrile type)—यह प्रकार ही अधिक प्रतीत होता है। इसका आक्रमण अकस्मात् होता है। अतिगम्भीर चक्कर आना, मुखमण्डल तेजरहित, नेत्रकी श्लैष्मिक त्वचाका प्रदाह (अभिष्यन्द), गम्भीर शिरदर्द, नेत्रगोलकके पीछे विशेष बार पीड़ा हो जाना, पीठ और अस्थियोंमें वेदना, जिह्वा कांटेदार, श्वासक्रियाकी विकृति, स्वरयन्त्र और श्वासनलिका शुष्क, वेदनायुक्त और प्रसेकसह, बार बार कफप्रकोप, शीघ्र शक्तिपात, पहले त्वचापर ठण्डीके कांटे आना (Goose flesh), फिर त्वचा प्रस्वेदपूर्ण

हो जाना, ज्वर ३ से ५ दिनतक रहना, ज्वर परिवर्तनशील होने से कभी-कभी ही रहना, नाड़ी मन्द होना; मलावरोध, क्वचित् प्लीहावृद्धि और श्रवणयन्त्रसे परीक्षा करनेपर फुफ्फुसपीठपर आगन्तुक ध्वनि (Rales) सुनना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। पुनराक्रमण कभी कभी हो जाता है। तीक्ष्ण आक्रमण होनेपर १ सप्ताह तक रह जाता है।

२. घातक लक्षणप्रधान (Malignant type)—यह विशेषतः जनपदव्यापी प्रकारमें होता है। आक्रमणके प्रारम्भसे ही सेन्द्रिय विषप्रकोप (Toxaemia) जनित सान्निपातिक लक्षण, अति और गम्भीर गात्रनीलता, ज्वरका रूपान्तर होते रहना, हृदयावरोध शीघ्र होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस प्रकारमें थोड़े ही दिनोंमें मृत्यु हो जाती है।

३. श्वासयन्त्रविकृति लक्षणप्रधान—(Respiratory type)—इस प्रकारमें आक्रमण स्वरयन्त्रसे प्रारम्भ होकर बृहद् श्वासनलिका, श्वासप्रणालिकाएँ और फुफ्फुसावरण तक पहुँच जाता है। इस प्रकारमें श्वासप्रणालिकाप्रदाह (Broncho-pneumonia) के लक्षण प्रकाशित होते हैं। थूक झागदार, गुलाबी रंगका अति-विशेष परिमाणमें अथवा गाढ़ा और गोंदसदृश लेसदार होता है। अनेक बार कुछ समयमें फुफ्फुसावरण पूयमय हो जाता है। गम्भीर न्युमोनियाके आक्रमणके हेतुसे मृत्युसंख्या बढ़ जाती है।

४. पचनेन्द्रियसंस्था-विकृति लक्षण-प्रधान (Gastro-intestinal Type)—यह प्रकार सामान्य है। यह प्रकार विशेष नहीं फैलता। इसका आक्रमण अरुचि (Anorexia) उदरपीड़ा, दुराग्रही मलावरोध (अतिसार अति कम समय), प्रतिश्याय और बलात्कारसे भोजन करनेपर वान्ति आदि लक्षणोंसह होता है। बहुधा श्वाससंस्थाके लक्षणोंका अभाव होता है। कभी कभी कामला हो जाता है। कामलाके अभावमें मलका रंग मिट्टीके समान हो जाता है।

५. वातसंस्थाविकृति लक्षणप्रधान (Nervous type) इस प्रकारमें वेदनाके विविध प्रकार प्रतीत होते हैं। विशेषतः गम्भीर सिरदर्द, निद्रानाश, प्रलाप और सामान्य शक्तिह्रास लक्षण विदित होते हैं।

स्वल्प विकृति होनेपर रोग शीघ्र शमन हो जाता है; परन्तु निर्बलता दीर्घकाल तक रह जाती है। आक्रमण प्रबल होनेपर रोग अति दुःखदायी माना जाता है।

उपद्रव—इस रोगमें अत्यधिक पीड़ितों की कुछ समय तक भौतिक शक्तिका ह्रास और कभी मस्तिष्कशक्तिका पतन हो जाता है।

रोगोपशमन हो जाने पर कितनेक लक्षण (Symptoms)—वेदना, थकावट, शक्तिह्रास आदिका योग्य उपचार न किया हो, उपेक्षा की हो, तो विषदोष कुछ सप्ताहोंके भीतर वृद्धिगत होता है। फिर केन्द्रीकरणशक्तिका ह्रास, उत्तेजनावृद्धि, बात-बातमें क्रोध आ जाना, निद्रानाश या निद्रा टूट जाना, श्वासावरोध होना और वातसंस्थामें विकृति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

वातनाड़ी संस्थामें विकृति होनेपर बहुधा निद्रानाश हो जाता है। किसी-किसीकी सुगन्ध और स्वादशक्तिका ह्रास होता है। क्रोध क्षण-क्षणमें उपस्थित होता है। वातनाड़ीशूल या वातनाड़ीप्रदाह, ओजक्षय (Neurasthenia) या शोकोन्माद (Melancholia), ये लक्षण स्थायी हो जाते हैं। कभी-कभी अनेकों नाड़ियोंका प्रदाह (Polyneuritis) और किसी प्रकारके पक्षवधकी प्राप्ति भी हो जाती है।

रक्ताभिसरण-संस्थामें विकृति हो जानेपर चक्कर आना, हृत्स्पन्द विवर्द्धन, हृदयकी गतिमें वृद्धि (Tachycardia) और हृदयकी क्षीणता दृढ़ हो जाते हैं। कभी-कभी आशुकारी हृदय-प्रसारण और अकस्मात् मृत्यु आ जाती है। क्वचित् हृदयका श्लैष्मिक त्वचाका प्रदाह या हृदयावरण-प्रदाह भी हो जाता है।

कभी स्थानिक विद्रधि हो जाती है। कभी मध्यक या नासिकामें विद्रधि या व्रणकी प्राप्ति हो जाती है। क्वचित् शल्य बनना (Thrombosis) या वृक्कप्रदाहकी उत्पत्ति हो जाती है।

वातश्लैष्मिक ज्वर और प्रतिश्यायभेद।

वातश्लैष्मिक ज्वर	प्रतिश्याय
१. पूर्ववर्ती लक्षण—नासिकास्राव, कंठप्रदाह या कास न होकर अकस्मात् आक्रमण।	आक्रमण धीरे-धीरे शीत और ज्वरसह।
२. प्राथमिक लक्षण, विविध यन्त्रोंमें विकृति।	प्राथमिक लक्षण श्वसन-यन्त्रविकृति।
३. खांसी शुष्क और थोड़े समयतक चलनेवाली।	खांसी आक्षेपयुक्त और पीडा-मय।
४. कण्ठप्रदाह गौणलक्षण।	निरन्तर कण्ठप्रदाह।
५. स्वरयन्त्रप्रदाह क्वचित ही।	ज्वरयुक्त प्रतिश्यायमें अक्सर रोगीकी आवाज मोटी और गुंजित।
६. विशिष्ट उपद्रव सूक्ष्म श्वासप्रणालीप्रदाह और श्वसनक ज्वर।	रोगवृद्धि होनेपर श्वासप्रणाली-प्रदाहज ज्वर।

साध्यासाध्य—मृत्यु संख्या १ प्र० श० से अधिक नहीं है। मध्य आयुवालोंके लिये श्वासयंत्र-विकृतिसह वातश्लैष्मिक ज्वर भयप्रद हो सकता है। मुख्यत: श्वसनक ज्वरकी उत्पत्तिसे रोग स्वमेव तो सुखसाध्य; परन्तु उपद्रवोंके कारण कष्टप्रद हो सकता है। जीर्णरोग पुन: तीव्र रूप धारण कर सकता है।

वातश्लैष्मिकज्वर चिकित्सोपयोगी सूचना।

इस महामारीके प्रकोपके दिनोंमें तुलसीके पत्तोंका क्वाथ पीते रहना, नीलगिरी तैल सूँघते रहना और नमक मिले हुए निवाये जलसे कुल्ले करते रहना चाहिये।

रोगीको समशीतोष्ण स्वच्छ प्रकाशवाले कमरेमें रखना चाहिये। शरीरको कपड़ेसे ढकें और केवल मुँह खुला रखें। शिरपर भी कपड़ा बाँध दें।

कमरेमें प्रातः-सायं कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये लोहबान आदि जलाते रहें। स्थान और वस्त्र बिल्कुल साफ रखें। जबतक रोगोपशमन होकर फुफ्फुससंस्थामें आगन्तुक ध्वनिका दमन न हो जाय, तबतक रोगीको विश्रान्ति लेनी चाहिये।

रोगीको लंघन कराकर फिर दूधपर रखें। अन्न नहीं देना चाहिये। रोगीको स्नान न करावें। पीनेके लिये गरम किया हुआ जल दें।

बद्धकोष्ठ हो, तो प्रारम्भमें ही एरण्डतैलकी बस्ति देकर कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये।

ज्वर उतारनेके लिए तीव्र औषधि न दें। कदाच देना हो, तो अति कम मात्रा दें। दोषपचन हो जानेपर ज्वर स्वमेव शान्त हो जाता है। यदि रोगके आरम्भसे ही त्रिभुवनकीर्ति रस, शृंगभस्म, अभ्रक भस्म और गुडूच्यादि क्वाथका उपयोग किया जाय, तो रोग बढ़ नहीं सकता। यदि रोग बढ़ गया है, तो सूतराज रस, कालकूट रस या संचेतनी वटीमेंसे लक्षणानुसार दें।

ज्वर उतरनेपर भोजन हल्का दें। मूँगकी दाल, रोटी; बथुवे, पालक आदिका शाक, लहसुन मिली हुई पोदीनेकी चटनी देवें या निम्न सप्त-मुष्टिक यूष दें।

सप्तमुष्टिक यूष—जौका सत्तू, बेर, कुलथी; मूँग, मूलीके टुकड़े धनिया और सोंठ, इन ७ औषधियोंको एक-एक मुट्ठी (४-४ तोले) मिलाकर आठगुने जलमें पकावें। चतुर्थांश जल शेष रहनेपर उतार-मसलकर छान लेवें। यह यूष वात, पित्त, कफ, तीनों दोषोंको हरनेवाला है। श्वास, कास, धातुक्षय, ज्वर, आमदोष, हृदयविकार और कण्ठसे मुँहतकके दोषोंको नष्ट करता है।

वातश्लैष्मिकज्वर-चिकित्सा।

ज्वरशमनके लिये—शृंगभस्म और अभ्रकभस्म १-१ रत्ती तथा त्रिभुवनकीर्तिरस आध रत्ती, तीनोंको मिला गुडूच्यादि क्वाथके साथ या तुलसीके रस और शहदके साथ दें। मलावरोध रहता हो, तो प्रारम्भमें एक या दो दिन त्रिभुवनकीर्तिरसके स्थानपर ज्वरकेशरीवटी मिलावें।

गुडूच्यादि क्वाथ—गिलोय, तुलसीपत्र, बेलपत्र, लौंग, कालीमिर्च, पीपल और सोंठ, इन ७ औषधियोंको मिला २-२ तोलेका क्वाथ कर उसके साथ उपर्युक्त औषधि दें।

आमाशय और अन्त्रमें विकृति होनेपर—मृत्युञ्जय रस या लक्ष्मीनारायण रस गुडूच्यादि क्वाथसे दें।

अतिसार हो, तो—सूतराज रस या कनकसुन्दररस दें। मात्रा बहुत थोड़ी दिनमें ४ समय दें।

शुष्क कास अधिक हो, तो—कर्पूरादिवटी या कासमर्दन वटी १-१ गोली करके दिनमें ० गोलीतक चूसनेको दें और प्रवालपिष्टी १ रत्ती मुलहठी और बहेड़ा २-२ रत्ती तथा सुहागा का फूला १ रत्ती मिलाकर शहदके साथ दें। इस तरह दिनमें ३ समय दें।

शिरःशूल अधिक हो तो—सोंठको जलमें घिसकर या लौंगको पीस निवायाकर कपालपर लेप करें।

नाककी श्लैष्मिक कलाका शोथ हो तो—षड्बिन्दुतैलका नस्य दें।

निद्रानाश, प्रलाप आदि उपद्रव हों तो—वातकुलान्तक रस या कस्तूर्यादि वटी (मलावरोध न हो, तो) शामको दें या ब्राह्मीका क्वाथ कर दिनमें ३ समय देवें।

वक्तव्य--अन्य उपद्रव हो जाय तो सन्निपातमें लिखे अनुसार चिकित्सा करें।

डाक्टरी में इस रोगपर किसी भी सिद्ध औषधिका आविष्कार अबतक नहीं हुआ। यदि फुफ्फुसविकृतिके प्रधान लक्षण हों तो उसपर

सल्फोनेमाइडवर्गकी योजना होती है। शेष चिकित्सा लक्षणा-अनुरोधसे करते हैं। जुकाममें क्विनाइनका अर्क, सिरदर्दपर फिनासिटीन, तीव्र दर्दपर एस्पिरिन और निद्रानाशपर पेरलडीहाइड आदिकी योजना करते हैं तथा कफ शुष्क होनेपर लोहबानअर्कको उबलते हुए जलमें मिलाकर उसकी बाष्प १० मिनटतक सुँघाते हैं।

सूचना—परिचारक और परिचारिकाओंको बार बार नीलगिरी तैल सूँघते रहना चाहिये और रोगीके मल, मूत्र और थूकको तुरन्त राखसे दबाते रहना चाहिये।

१६. आमवातिक ज्वर

(संधिक ज्वर Rheumatri Fever)

परिचय—यह एक तीव्र ज्वर है, जिसमें संधियोंके अन्दर अत्यधिक पीड़ा होती है एवं जो हृदय से अत्यधिक सम्बन्धित होता है। उपयुक्त चिकित्साके अभाव में यह काफी समय तक रोगीको कष्ट पहुँचाता है और पुनः पुनः आक्रमणकी प्रवृत्तिवाला होता है। मुख्यतः बाल्यावस्थाकी व्याधि, जिसमें सन्धियोंके साथ ही साथ सम्पूर्ण सौत्रिक तन्तु स्निग्ध रस धारण करनेवाली श्लेष्मधरा (Synovial Membrane) और मांसतन्तु भी पीड़ित होते हैं। इस रोगमें सन्धियों, हृदयान्तरकला और हृदयावरण ये विकृतिके मुख्य स्थान हैं। इसमें शरीरकी अनेक सन्धियां और मुख्यतः बड़ी सन्धियां एक ही साथ पीड़ित होती हैं।

निदान और सम्प्राप्ति—विरुद्ध आहार (जैसे दूध मछलीका सेवन) और विरुद्ध विहार (जैसे अजीर्ण होनेपर भी व्यायाम या मैथुन करना, मन्दाग्निसे पीड़ित, परिश्रम न करनेवाले, अधिक व्यायाम, भोजन करनेवाले आदि मनुष्योंमें वायुसे प्रेरित हुआ आम (अपक्व आहाररस) श्लेष्मास्थान (आमाशय, उरःस्थान, शिर और कण्ठ-

सन्धि) में प्राप्त होता है। यह आम पित्तस्थानमें न जानेके कारण वायु से अधिक दूषित होकर धमनियोंके मार्गसे गति करता है। पुनः तीनों दोषोंसे दूषित होकर रस वाहिनियोंके मार्गका अवरोध कर देता है; तब इस नानावर्णवाले अतिपिच्छिल आमरससे अग्निमन्दता और हृदय-गौरवता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

इस व्याधिमें सन्धिस्थानोंके चारों ओर भयंकर शोथ तथा सन्धियों-के भीतर शोथके हेतुसे श्लेष्माकी वृद्धि होकर भयङ्कर दाह होता। कफ परिमाणमें अधिक होनेसे इनका पचन नहीं हो सकता है।

पाश्चात्य विद्वान् इसे कीटाणुजन्य व्याधि मानते हैं। परन्तु इसके कीटाणु इतने सूक्ष्म हैं कि उनको आज दिनतक देखा नहीं जा सका। सघन सहवासमें, गन्दी नालियोंके पास, शीलदार मकानमें रहना तथा कण्ठ और नासिकाकी ग्रन्थिका वृद्धि आदि इसके सहायक कारण माने जाते हैं।

पूर्वरूप—नियमित रूपसे प्रतीत नहीं होते; किन्तु असामान्य नहीं है। कण्ठक्षत या गलग्रंथियोंका प्रदाह, ये बारम्बार उत्पन्न होकर कुछ दिनोंमें दूर होते हैं; स्वस्थावस्थाकी प्राप्तिमें २ सप्ताह लग जाते हैं। कुछ दिनोंतक मन्द मन्द बेचैनीके साथ अनियमितरूपसे सन्धिओंमें पीड़ा होना, ये रोगसूचक लक्षण उपस्थित होते हैं।

लक्षण—इस ज्वरकी उत्पत्तिके २ या ३ सप्ताह पूर्व गलग्रन्थिप्रदाह उत्पन्न हो सकता है। २४ घण्टेके अन्दर सन्धिशोथके साथ या इससे कुछ पूर्व शीतसह अकस्मात् ज्वरोत्पत्ति हो जाती है। ज्वरोत्पत्ति के समय वेपन (कम्प) नहीं होता। यह ज्वर सतत प्रकारका होता है और १०२° या १०३° कुछ दिनोंतक बना रहता है। ज्वरका पतन भी नियमित रूपसे होता है। हृदयावरण या अन्य स्थानपर प्रदाहकी प्रतीति, अतिस्वेद, अरुचि, शिरदर्द, वेदनाके हेतुसे निद्रानाश, हृदयमें पीड़ा और क्वचित् प्रलाप ये लक्षण होते हैं। उपद्रवहीन आमवातमें मस्तिष्क अक्सर सही अवस्थामें ही रहता है। इसके साथ

ही अन्य लक्षण-जैसे मूत्र गहरे रंगका और कम मात्रामें होना, जिह्वा मलयुक्त होना, नाड़ी मृदु और द्रुत १०० से १२० स्पन्दनयुक्त। कभी कभी रोग जब भयङ्कर रूप धारण कर लेता है, तब शारीरिक उत्ताप १०८° तक चला जाता है।

स्वेद युवा रोगीमें खट्टी दुर्गन्धमय अम्लीय प्रतिक्रियायुक्त, प्रस्वेदका अतिनिर्गमन: परन्तु बाल्यावस्थामें असामान्य।

सम्पूर्ण शरीरकी विशेषतः बड़ी सन्धियाँ शोथमय हो जाती हैं। इसकी दो विशेषता होती हैं। प्रथम तो प्रदाह एक सन्धिसे निकलकर दूसरी सन्धिमें चली जाती है और द्वितीय विशेषता—पीड़ित सन्धियोंमें पूयोत्पत्ति नहीं होती। प्रदाहके कारण सन्धियोंमें सञ्चित तरलकी मात्रा अधिक नहीं होती है। सर्वप्रथम एक सन्धि पीड़ित होती है, परन्तु एक दिनके अन्दर दूसरी सन्धि भी प्रभावित होकर प्रथम सन्धियाँ पूर्णतः ठीक हो जाती है। अन्तमें शरीरकी सम्पूर्ण सन्धियाँ एक ही साथ पीड़ित हो जाती हैं। सन्धि पर हाथ लगानेसे गर्म और शोथमय प्रतीत होती हैं। स्पर्श करनेसे तो उसमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती, परन्तु जरासा हिलनेपर असह्य वेदना होती है। सन्धियोंपरकी त्वचाका रंग अक्सर अपरिवर्तित रहता है; कभी कभी उसपर ललाई उत्पन्न हो जाती है।

हृदयान्तरकला और हृदयावरणकला, ये इस व्याधिसे प्रभावित होनेवाले मुख्य अङ्ग हैं। हृदयावरणकला सर्वप्रथम पीड़ित होनेवाली श्लैष्मिक कला हो सकती है। इसमें कुछ हृदयविकृति भी हो सकती है। बालकोंमें हृदयपर ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

ज्वरावस्थामें पाण्डुता तीव्रतासे बढ़ती है। स्मरण रखनेकी बात है कि कण्ठरोहिणीके अतिरिक्त किसी भी तीव्र व्याधिमें इतनी शीघ्रतासे और इतने अल्प समय में इस परिमाणमें रक्तह्रास नहीं होता।

उपरोक्त लक्षणोंके वर्गके दो भेद पाये जाते हैं। प्रथम तो गौण

तीव्र आमवातमें सब लक्षण हल्के रूपमें उत्पन्न होते हैं और कई मासतक स्थायी रह सकते हैं। इस भेदमें बालक रोगी सिर्फ बढ़ते हुए दर्दकी शिकायत करते हैं और हृदयके संक्रमणका पता वर्षोंके पश्चात् भी नहीं लगता। द्वितीय—दूषित आमवातिक ज्वर, बहुत ही भयकर रूप है, जिसमें मुख्यत: हृदय पीड़ित होता है और सन्धियाँ अगर पीड़ित होती हैं, तो बहुत ही कम। प्रलापक ज्वरके समान शरीरपर पीड़िकायें उत्पन्न हो सकती हैं। इसमें कुछ दिनोंके पश्चात् ताप तीव्र गतिसे बढ़ता है और रोगी मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

उपद्रव—१. हृदयविकृति; २. अत्यधिक ज्वर; ३. फुफ्फुसविकार; ४. वातनाड़ीविकार; ५. त्वचाविकार; ६. सन्धिक ग्रन्थियाँ, ये मुख्य हैं।

रोगविनिर्णय—सामान्यतः सरल है। यदि हृदयावरणप्रदाह या हृदान्तर त्वक्प्रदाह न होनेपर तथा शारीरिक उत्ताप सेलसिलेट की चिकित्सा फलदायी होनेपर ५ दिनके भीतर शमन होता है। कभी आशुकारी संधिप्रदाह (Osteoarthritis) से भेद करनेकी आवश्यकता रहती है। वह सन्धिप्रदाह छोटी सन्धियोंमें होता तथा चिरकारी प्रकारमें रूपान्तरित होता है।

पूयज्वर, विषमज्वर आदिमें गौण सन्धिप्रदाह होता हैं। किन्तु वह पाकोत्पादक (Septic) होता है। इसी तरह सुजाकमें होता है। कभी शोणितज्वर और पेचिशमें भी होता है। किन्तु मुख्य रोगके लक्षणके हेतुसे सहज प्रभेद हो जाता है।

वातरक्तमें भी संधिप्रदाहके लक्षण मिलते हैं; किन्तु रोगीकी आयु, पूर्वरूप, छोटी संधियोंपर आक्रमण, विशेषतः पैरकी अँगुली और अँगुष्ठ प्रभावित होना, आदि लक्षणोंसे पृथक् हो जाता है।

अस्थिमज्जाप्रदाह, सुषुम्णाकाण्डमें मज्जाप्रदाह, बालरक्तपित्त, वंशागत फिरंग और स्टिलके रोगोंमें भी ये सन्धिक ज्वरके लक्षण मिलते हैं; किन्तु इनके प्रभेदक लक्षण निम्नानुसार हैं:—

१. तीक्ष्ण अस्थिमज्जाप्रदाह (Acute Ostedmyelitis) में रचनात्मक लक्षण अतिगम्भीर होते हैं और सन्धियोंमें दर्द नहीं होता।

२. तीक्ष्ण सुषुम्णाकाण्ड-मज्जाप्रदाह (Acute Poliomyelitis) में अत्यधिक चेतना (Hyperaesthesia) लक्षण भी होता है।

३. बाल-रक्तपित्त (Infantile Scurvy) केवल २ वर्षके बालकोंको होता है।

४. वंशागत फिरंग (Congenital Syphilis) दो वर्षकी आयुवालेको होनेपर तरुणास्थिप्रदाह (Syphilitic epiphysitis) होता है; किन्तु सन्धियोंमें विकृति नहीं होती। युवावस्थामें अँगुली, बाह्य कर्ण आदि उपाङ्गोंकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह (Symmetrical Synovitis) होता है; किन्तु उनमें वेदना नहीं होती।

५. स्टिलका रोग (Stills disease) चिरकारी है। इसमें कितनीक सन्धियोंमें प्रदाहके साथ प्लीहा और लसीकाग्रन्थियों-की वृद्धि होती है; किन्तु हृदय प्रभावित नहीं होता।

मृत्यु—तीक्ष्णाक्रमणमें मृत्युसंख्या २-३ प्रतिशतसे अधिक नहीं, वह भी हृदयविकारसे। उत्तापाधिक्यसेभी मृत्यु; किन्तु अति क्वचित्।

पुनरावर्तन—उचित चिकित्सा न करानेवाले रोगियोंमें ज्वर और स्थानिक प्रदाह क्रमशः धीरे धीरे ४ या ६ सप्ताहमें स्वयंमेव शान्त हो जाता है और कुछ दिन या अधिकसे अधिक १५ दिन पश्चात् इसका पुनः आक्रमण हो जाता है यहाँतक कि उचित चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य-प्राप्तिके पश्चात् भी हमेशा इस रोगके आक्रमणका भय रहता है। अतः हमेशा सावधान रहनेकी जरूरत रहती है। १५ प्रतिशत रोगियोंमे इसका पुनरावर्तन होता है।

साध्यासाध्यता—रोगका आक्रमण सिर्फ संधियोंतक ही सीमित होनेपर किसी प्रकारका भय नहीं माना जाता, परन्तु हृदयपर प्रभाव हो जानेपर रोग भयपूर्ण बन जाता है। एक आक्रमणके पश्चात् पुनरावर्तन-का सर्वदा ही भय बना रहता है। तीव्र उत्ताप और मस्तिष्कसम्बन्धी लक्षण चिन्ताप्रद है। रोगी जितनी अधिक कम आयुका है, उतनी ही पुनरावर्तनकी अधिक सम्भावना रहती है। रोगका आक्रमण, उत्तापकी तीव्रता, हृदयविकृतिकी सीमा और मस्तिष्कसम्बन्धी लक्षणोंकी उपस्थितिके अनुसार भयंकर माना जाता है। हृदयकी पीड़ितावस्थापर रोगीका भविष्य बहुत कुछ निर्भर है, अतः सर्वदा हृदयकी रक्षा करते रहना चाहिये। आमवातज ग्रन्थिकी उत्पत्तिको हमेशा ही भयप्रद लक्षण मानें।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

रोगका सन्देह होते ही रोगीको शय्या पर एकदम बिल्कुल आराम करनेकी सलाह दें। यह भली भाँति प्रगट कर दें, कि लेशमात्र परिश्रम भी उसके लिये अत्यन्त हानिप्रद और भयंकर सिद्ध हो सकता है; क्योंकि इस रोग में हृदय मुख्यत: पीड़ित होता है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है इस रोगसे रोगी उस समयतक नहीं मरता, जब तक हृदयमें प्रदाह उत्पन्न होकर हृदयावसादकी स्थिति उत्पन्न न हो जाय। अतः हृदयरक्षणार्थ सब सम्भव उपाय करना चाहिये। अगर हृदयमें अत्यन्त कष्ट प्रतीति हो रहा हो, तो हृदयावरणपर फाला उत्पन्न (Liq Iodi Fort से) करा दिया जाता है।

रोगी को पसीनेका शोषण करानेके लिये उसके नीचे कम्बल बिछा दें। जलपान इच्छानुसार अधिक करावें। जलपानमें संकोचन न करें जल गरम करके शीतल कर लेना चाहिये।

रोगी को किसी भी स्थितिमें, जिसमें कि उसे आराम और राहत मिले, सुला देना चाहिये। हृदय पीड़ित हो जानेपर इस बातका अत्यन्त

महत्व है कि, भूलकर भी रोगीको बारबार इधर उधर या उठक-बैठक न करावें। इससे हृदयपर बहुत बुरा असर पड़ता है।

रोग निवृत्तिके पश्चात् भी रोगीको सब कार्य करनेकी आज्ञा देनेसे पूर्व चिकित्सकको अच्छी प्रकार परीक्षा कर लेनी चाहिये कि हृदयमें किसी प्रकार कमी शेष तो नहीं रही है। उत्ताप या हृत्स्पन्दन संख्याधिक्य (Tachycardia) की अनुपस्थिति इस विषयमें विश्वास प्रदान करती है। रोगीके हृदयका आकार और मर्मध्वनि स्वस्थवत् प्रतीत होने लग जाती है, एवं रोगी प्रति सप्ताह आधसे एक पौण्ड वजनमें बढ़ने लग जाता है, तब जाकर रोगीको शय्या त्याग कर कार्य करनेकी आज्ञा दी जा सकती है। कभी कभी हृदय विकृतिवाले रोगीको २-३ मासतक पूर्ण आराम कराना पड़ता है।

रोग एक समय हो जानेके पश्चात् सर्वदा ही पुनरावर्तनका भय रहता है अतः रोगीको सूचना कर देनी चाहिये कि वह हमेशा गर्म कपड़ा पहिने रहे और शीतल वायुसे बचता रहे। उसे अपने आहारके सम्बन्धमें भी सर्वदा सावधान रहना चाहिये। निदानमें उल्लिखित अपथ्य आहार-विहारका त्याग करें। बासी भोजन, अधिक शक्कर, बिगड़े हुये फल, संयोग विरुद्ध भोजन, शीतल आर्द्र वायुका सेवन, ये सब रोगका पुनरावर्तन करानेवाले हैं। मूलीका यूष, शुष्क भोजन, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, जीरा, पोदीना आदि हितावह हैं।

उत्तापकी तीव्रताके कारण मस्तिष्क विकृति उत्पन्न हो सकती है। अब सावधानीपूर्वक ऐसी अवस्थामें रोगीको क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होनेवाला उष्ण स्नान (Hot Bath) या मस्तिष्कपर, थैलीमें बर्फ भरकर रखनेका प्रबन्ध करें।

आमवातिक ज्वर चिकित्सा।

आमवातिक ज्वरमें लंघन, स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, बस्ति तथा कड़वी, दीपन और चरपरी, औषधियां लाभदायक सिद्ध होती है। इस

रोगमें हृदयपौष्टिक, वातघ्न, बद्धकोष्टनाशक और मूत्रल गुणयुक्त औषधियां अधिक हितावह हैं।

इसमें सर्वप्रथम रोगीको एरण्ड तैलकी वस्ति देना चमत्कारिक लाभ दर्शाता है। इससे कोष्ठबद्धताके नाशके साथ ही वातका शमन भी होता है। वस्ति देनेके लिये एरण्ड तैलसे भी ज्यादा लाभदायक बृहत् सैंधवादि तैल या नाराच घृत माना जाता है।

आमपाचनार्थ—एरण्ड तैल सोंठके क्वाथके साथ देवें। इस रोगमें एरण्ड तैल एक महती औषधि सिद्ध हुई है।

शुंठ्यादि कषाय—कचूर, सोंठ, हरड़, वच, देवदारु, अतीस और गिलोयका क्वाथ पिलानेसे आमका पचन होता है।

ज्वर शमनार्थ—रोगकी तीव्रावस्थामें ज्वरके तीव्र वेगको शमन करनेके लिये शीघ्र उपाय करना चाहिये। इसके लिये मृत्युञ्जय रस (बेलपत्रके स्वरस और शहदसे), या समीरपन्नग अथवा मल्लभस्मका नागरबेलके पानके रससे सेवन कराना चाहिये। उनमें मृत्युञ्जय रस अत्यन्त सौम्य है अतः निर्भयपूर्वक उपयोगमें लिया जा सकता है। हृदयके शिथिल हो जानेपर समीरपन्नग ही दें। मल्ल भस्म अधिक स्वदेल है। वृक्क प्रदाह हो, तो समीरपन्नग या मल्ल भस्म नहीं दी जाती।

महारास्नादि क्वाथके साथ एरण्ड तैलका उपयोग भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

शुद्ध भिलावा, तिल और हरड़का चूर्ण गुड़ मिलाकर दिनमें २ बार सेवन करानेसे आमवातमें शीघ्र लाभ हो जाता है। कटिशूल और अन्य स्थानोंमें चलनेवाले शूलको तुरन्त दूर करता है।

संधियोंमें अत्यन्त वेदना होनेपर केलेका क्षार, अपामार्ग क्षार या दवाक्षार ६-६ रत्ती थोड़े घी के साथ मिलाकर दिनमें ३ बार देते रहनेसे रक्त क्षारीय बनता है। फिर प्रदाह कम होकर वेदनाका ह्रास हो जाता है।

वेदना असह्य हो, तो हृदयके संरक्षणार्थ पूर्णमात्रामें अफीम या अफीमप्रधान औषधि महावातराज रस तुरन्त दे देना चाहिये। अन्यथा प्राणघात या हृदयविकृति होनेकी भीति रहती है।

१. आमवातप्रमथिनीवटी—शोरा, आकके जड़की छाल, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म और अभ्रकभस्म, इन ५ औषधियोंको समभाग मिला, ३ दिन अमलतासके गूदाके क्वाथमें खरल करके २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे २-२ गोली दिनमें २ बार सुबह ६ माशे निशोथके क्वाथके साथ तथा रात्रिको अदरखके रस और शहदके साथ देते रहें।

यह वटी आमवात, आमवातज उपद्रव; कफवृद्धि और कफप्रकोपज व्याधिको दूर करती है। तीव्र आमवातमें जब तीक्ष्ण वेदना होती हो, उस समय तथा जीर्णावस्थामें भी यह हितावह है।

२. बृहद् योगराज गूगल—सोंठ, चव्य, पीपल, पीपलामूल, चित्रकमूल, भनो हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कलौंजी, रेणुकाबीज, इन्द्र जौ, पाठा, बायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, बच और मूर्वा, ये २० औषधियाँ १-१ तोला, त्रिफला ४० तोले, शुद्ध गूगल ६० तोले तथा वंगभस्म, रौप्यभस्म, नागभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म और रससिन्दूर, ये ७ औषधियाँ ४-४ तोले लेवें। गूगलके अतिरिक्त सब औषधियोंको यथाविधि मिला लेवें। गूगलको जलमें मिला अवलेह जैसा करके मिलावें। पश्चात् थोड़ा-थोड़ा घी मिला मिलाकर कूटें। मुलायम हो जानेपर १-१ रत्तीकी गोलियां बना लेवें। वातव्याधिमें रास्नादि क्वाथ, आमवातमें निसोतके क्वाथसे या सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल और चित्रकमूलके क्वाथके साथ। कफविकारमें आरग्वधादि क्वाथके साथ।

यह रसायन सम्पूर्ण वातव्याधि, आमवात, वातरक्त, अर्श, कुष्ठ, भगंदर, विषविकार, श्वास कासादि रोगोंको दूर करती है। यह रसायन

आमप्रधान संपूर्ण जीर्ण व्याधियोंमें दी जाती है। यह आमदोषघ्न ओषधियोंमें श्रेष्ठ ओषधि है। जीर्ण वामवातमें ४-६ मासतक इसका सेवन करानेपर पुनःपुनः आक्रमणका भय टल जाता है और हृदय सबल बन जाता है। आमवात और वातरक्तसे उत्पन्न हृदयविकृति, शीर्षशूल सन्धिशूल और अस्थिशूल आदि सबपर लाभदायक है।

३. सुवर्णभूपति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सुवर्णभस्म, रजतभस्म और शुद्ध बच्छनाग, ये ६ औषधियां १-१ तोला, ताम्रभस्म और लोहभस्म २-२ तोले लेवें। सबको यथाविधि मिला हंसराजके रसमें १२ घण्टे खरलकर सुखा लेवें। फिर आतशी शीशीमें भर कर वालुकायन्त्रमें रखकर २ प्रहर मंदाग्नि देकर बोतलके तलेमें ही औषधिपाक करा लेवें। इसमेंसे १ से २ रत्ती अदरखके रस और शहद या शहद-पीपल या रोगानुसार अनुपानके साथ योजना करें।

यह रसायन विषहर, आमपाचन, मस्तिष्क और हृदयके लिए बल्य तथा वात और कफप्रकोपसे उत्पन्न विकारोंको नष्ट करनेवाला है। आमवातमें अन्य औषधिके साथ सेवन करानेपर शक्तिका संरक्षण होता है। हृदयविकृति, शूल और कम्पका दमन होता है। पाण्डुता दूर होती है तथा रोगनिवारणमें सहायता मिल जाती है।

४. अजमोदादि चूर्ण—अजमोद, वायविडंग, सैंधानमक, देवदारु चित्रकमूल, पीपलामूल, सौंफ, पीपल और कालीमिर्च, ये ९ औषधियाँ १-१ तोला, छोटी हरड़ ५ तोले, बिधारा और सोंठ १०-१० तोले लेवें। सबको मिला कूटकर कपड़छान चूर्ण करें। इसमेंसे ४ से ६ माशे चूर्ण दिनमें ३ बार निवाये जलके साथ सेवन करें।

यह चूर्ण आमवात, संधिवात, गृध्रसीवात, कमर, गुदा, पीठ और पेटके शूल, उदरवात, वातविकार, शोथ और कफप्रकोप विकारको दूर करता है।

५. रसोन पिण्ड—छिलका निकाला हुआ शुद्ध लहसुन ४०० तोले, तिल १६ तोले, भूनी हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, पाँचों नमक, सोंफ, हल्दी, कूठ, पीपलामूल, चित्रकमूल, अजमोद, अजवायन, धनियाँ, इन १९ औषधियोंको ४-४ तोला लें, सबका कपड़छान चूर्ण करके लहसुनके साथ मिला उसमें काँजी और तिल तैल ३२-३२ तोले मिला, एक अमृतबानमें भरकर १६ दिनतक रहने से इनमें से ६ माशेसे १ तोला तक दिनमें २ समय शराब या निवाये जलके साथ दें।

लहसुन एक उत्कृष्ट औषधि है। उपरोक्त प्रयोग के सेवनसे आमके पचनसह धातुओंमें लीन आमवात के विषको नष्ट करनेका उत्कृष्ट कार्य इससे होता है। इसका कुछ समय उपयोग करलेनेपर आमवातके पुन: आक्रमण का भय नहीं रहता।

मूत्रशुद्धिके लिये—यवक्षार, केलेका क्षार या शिलाजीतका प्रयोग गोखरू और तृणपंचमूलके कषायके साथ करावें। इससे रक्तमें लीन विष दूर होता है और मूत्र क्षारीय बन जाता है।

स्थानिक उपचार—आमवातको चिकित्सामें इनका महत्वपूर्ण स्थान है। संधियोंमें अत्यन्त पीड़ा होनेपर उनपर रूई बाँध दें और बालुका, चूल्हेकी मिट्टी या नमकको पोटली बनाकर संधिस्थानोंपर रूक्ष सेक करें।

अगर पीड़ा अत्यधिक हो तो विण्टरग्रीनके तैलकी मालिश करानेपर तुरन्त लाभ पहुँचता है। हमने अनेक रोगियोंपर इस तैलकी मालिश करायी है।

६ लक्ष्मीविलासरस—अभ्रकभस्म ४ तोले, शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक २-२ तोले, कपूर, जायफल, जावित्री, विधाराके बीज, धतूरेके शुद्ध बीज, गाँजाके बीज, विदारीकंद, शतावरी, नागबला (गुलशकरी), अतिबला (कंघी), गोखरू, जलबेंतके बीज, इन १२ औषधियोंको १-१ तोला लेवें। कज्जली कर, भस्म मिला फिर

काष्ठादिचूर्ण मिलावें। पश्चात् नागरबेलके पानके रसमें १२ घण्टे खरल करके १-१ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे १ से २ गोली दिनमें २ बार दूध, दही, शराब या रोगानुसार अनुपानके साथ सेवन करावें।

यह रसायन सब प्रकारके सन्निपात, वातप्रकोप, पित्तप्रकोप और कफप्रकोपमें दी जाती है। यह उत्तम हृदयोत्तेजक रसायन है। आमवात, सब प्रकारके वातरोग, कास, श्वास, संग्रहणी, भगंदर, उदर-शूल, मक्कलशूल, शिरःशूल, कुक्षिशूल, मधुरा, इन्फ्लुएञ्जा, निमोनिया, जीर्ण हृदयविकार आदि रोगोंमें शक्तिके संरक्षणार्थ व्यवहृत होती है।

७. सिंहनादगूगल—शुद्ध गूगल, हरड़, बहेड़ा, और आँवला २४-२४ तोले, शुद्ध गन्धक ८ तोले तथा एरण्डतैल मिले त्रिफलेका चूर्ण और गन्धक मिलाकर कूट कूटकर मुलायम एक जीव बना लें। फिर २-२ रत्तीकी गोलियाँ बना लेवें। इनमेंसे २ से ४ गोली सोंठके क्वाथ या निवाये जलसे दिनमें २ बार प्रातः-सायं देते रहें। यह गूगल दीपन, पाचन, सारक और कीटाणुनाशक है। वात, पित्त, कफाधिक रोग, खञ्जरोग, पाण्डु, श्वास, कास, वातरक्त, असाध्य आमवात और उदर-रोगका नाश होता है।

वक्तव्य—जीर्णावस्थामें हृदय पीड़ित रहता है। अतः लक्ष्यपूर्वक इसका संरक्षण करना चाहिये। इसके लिये मुख्य औषधिके साथ लक्ष्मी-विलास रस या रससिन्दुर, अभ्रकभस्म और लोहभस्म मिश्रण देना हितावह है।

पथ्यापथ्य।

पथ्य लङ्घन, स्वेदन, चरपरे और कड़ुवे पदार्थ, दीपन, विरेचन, स्नेहन, निरूहवस्ति, रुक्षस्वेद, लेप, सैंधवाद्य तैल या विण्टरग्रीन तैलकी मालिश, पञ्चकोल मिलाकर उबाला हुआ जल, सूखी मूलीका यूष, सोंठ,

कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, हल्दी, हींग, कालाजीरा, कलौंजी, हरड़, सैंधानमक, काँजी, बैंगन, बथुआ, परवल, गोखरूकी पत्तीका शाक, वरनाके पत्ते, करेले, कड़ुवे फलोंका शाक, टमाटर, सोयाकी पत्ती, नीमकी पत्ती, पुनर्नवाकी पत्ती, आमलतासकी पत्ती, सुहिंजनेकी फली, घी-गुवारकी गोंदल, इनमेंसे अनुकूल शाक, अदरख मट्ठेमें सिद्ध किया लहसुन, जौ पुराने शालि और सांठी चावल, मट्ठा मिलाकर बनाया हुआ लावाका मांस, जंगलके पशु-पक्षीका मांसरस, कुलथीकायूष, मटर या चनेका यूष, बाजरा, जुवार, सांवां, कोदों, पुरानीशराब, ऐरण्डतैल, गरम जल, गोमूत्र; कफघ्न, वातहर; और अग्निवर्द्धक पदार्थ, ये सब पथ्य हैं।

अपथ्य—दही, मछली, गुड़ पोईका शाक, उड़द, पिट्ठीके पदार्थ अनूप देशोंके जीवोंका मांस; अभिष्यन्दी, गुरु और पिच्छिल भोजनका त्याग कर देवें, दुष्ट जल, शीतल जल, पूर्व दिशाकी वायु, मल-मूत्र और अधोवायुको रोकना, जागरण, असमय परभोजन, इन सबको छोड़ दें।

तीव्र आमवातिक ज्वरमें स्नान करना हानिकर है। अन्न० न दें; दूधकी चाय या रक्तशोधक और मूत्रल गुणवाले फलोंपर रखना हितकर है। रक्तको अम्ल बनाने वाले पदार्थ कमसे कम लेने चाहिये। रक्तको क्षारीय बनानेपर सत्वर रोगदमन होता है।

डाक्टरीमें इसकी मुख्य औषधि सोडियम सैलिसिलेट (Sodiem Salicylate) है, इसे समान परिमाणमें सोडियम बाइ कार्बोनेटके साथ मिलाकर देनेसे ७२ घन्टोंमें निश्चय ही, अगर अच्छी बड़ी मात्रामें उपयोग किया गया है, तो रक्तकी प्रतिक्रिया क्षारीय बन जाती है। फिर जोड़ोंका दर्द दूर हो जाता है, और ताप स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। इसकी मात्रा प्रथम २ दिनतक प्रत्येक २ घन्टे पश्चात् २० ग्रेनकी है। इसके पश्चात् ४ या ५ घन्टेके अन्तरपर उस समय तक औषधि सेवन कराते जांय, जबतक कि ताप स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त

न हो जाय, या औषधिसे विष लक्षण (शिरःशूल, बधिरता, कानोंका गूंजना, मूत्रमें एलब्यूमिन जाना या प्रलाप) शान्त न हो जाय। यदि सैलीसिलेटका सुप्रभाव इसपर न हो तो समझना चाहिये, कि रोगविनिर्णयमें भूल है या हृदयप्रदाह उपस्थित है। अगर रोगी पीडासे अत्यन्त कष्ट पा रहा है और पीडाको शीघ्र शमन करता है, तो रोगीकी आयुके अनुसार सोडियम सेलीसिलेट एक वर्षपर १ ग्रेन के हिसाबसे उतने ही शीशी पानीमें विलयन तैयारकर शिरा या मांसमें अन्तःक्षेपण करें। इसकी अधिकतम मात्रा १५ सी० सी० है।

जीर्णावस्था—रोगजीर्ण हो जानेपर बृहद्योगराज गूगल, उत्तम हितकर औषधि मानी गई है। एवं सुवर्णभूपतिरस लक्ष्मी विलासरस और सिंहनाद गूगुल लाभदायक हैं इनमेंसे सुवर्ण भूपति रसको पंचकोल या दशमूलके क्वाथके साथ उपयोगमें लेनेपर चमत्कारिक लाभ होता है।

२० मसूरिका (शतला) ज्वर।

(बड़ी माता-चेचक-Small Pax—Variola)

यह एक आशुकारी संक्रामक पीटिका युक्त रोग है, जिसमें शारीरिक उत्तापवृद्धि और विशेष प्रकारकी रोगनिर्णायक पीटिकायें उत्पन्न होती हैं जो पहिले साधारण रक्ताभ वर्णकी होती हैं और फिर तरलमय होकर पक जाती हैं तथा अन्त में उनपर खुरण्ड बनकर शनैः शनैः झड़ जाती हैं। ये पीटिकायें मसूरकी दालके समान होती हैं। इसलिये इनका नाम मसूरिका रखा गया है।

इतिहास—प्राचीन ग्रन्थोंमें इस रोगका वर्णन मिलता है। इसके सब लक्षण 'बिस्फोटक'के समान होते हैं; अतः यह इसीका कोई भेद मालूम होता है। इससे यह स्पष्ट है, कि इस रोगका अस्तित्व तो बहुत पुराना है, परन्तु आजके समान उस समय इसका रूप इतना भयंकर नहीं था।

कारण—चरपरे, खट्टे, नमकीन या क्षारवाले पदार्थोंका अधिक सेवन, विरुद्ध पदार्थ (दही-दूध, दूध-खटाई, दूध-मछली आदि) का सेवन, भोजनपर भोजन, दोषोंको प्रकुपित करनेवाला भोजन—सेम, मटर, आलू आदिका अधिक उपयोग नूतन अनुसन्धान अनुसार दुष्ट जल या वायुका सेवन या अन्य रोगियोंकी पीटिका आदिके स्पर्शसे इस रोगका विष नासिका या मुँहकी श्लैष्मिक कलाके द्वारा भीतर प्रवेश करके वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषोंको प्रकुपित करता है। फिर यह रक्तके साथ मिलकर इस रोगको उत्पन्न कर देता है।

जो मनुष्य इस रोगसे पीड़ित हुये हैं, वे निःसन्देह इस रोगको फैलानेके साधन हैं। पीटिकाओंकी उत्पत्तिके प्रारम्भसे लेकर त्वचा जबतक पूर्णरूपसे स्वच्छ न होजाय, तबतक विष बाहर निकलता रहता है। सबसे अधिक विषोत्पत्ति पीटिका द्रवपूर्ण बननेपर होती है, एवं शुष्कक्षत संरक्षक त्वचाकी संक्रामकताका मुख्य साधन है। इस रोगद्वारा मृतदेहसे एवं टीका लगानेसे उत्पन्न मसूरिकासे भी यह संक्रामण फैल सकता है।

सम्प्राप्ति—रोगीके स्पर्श, पीटिकायें आदिके मलसे दूषित वस्त्रादि तथा परिचारिकों एवं पीटिकाओंके खुरण्ड द्वारा इस रोगका संक्रमण होनेपर विष (कीटाणु) रक्तसंचारके साथ भ्रमण करता हुआ उपचर्ममें आकर बैठ जाता है। जहाँपर यह स्थान ग्रहण करता है वहाँ वहाँ उपचर्मकी सैलें रक्तमय तथा शोथयुक्त हो जाती हैं, इस अवस्थामें त्वचाके नीचे छोटी मसूरके दानोंकी तरह ग्रन्थियाँ-सी दिखाई देती हैं। फिर इनमें स्राव भर जाता है, जिससे ग्रन्थियाँ छोटे छालोंके समान प्रतीत होने लगती हैं। ये पीटिकायें क्रमशः उत्सेधावस्था (Papule), द्रवोत्पन्नावस्था (Vesicle), पूयावस्था (Pustule), कठिनावरणा-वस्था (Crust), इन चार अवस्थाओंको प्राप्त होती है फिर ऊपरसे त्वचा निकलकर क्षतचिह्न बनकर त्वचा स्वाभाविक हो जाती है या जन्मभरके लिए व्रणके चिह्न त्वचापर रह जाते हैं। इसके साथ ही

इसमें आमाशय प्रसारित होना, श्वासनलिका का प्रसारित न होना। परन्तु स्फोटक उत्पन्न होना एवं प्लीहावृद्धि और लसिका ग्रन्थियोंकी वृद्धि आदि दोषोंकी सम्प्राप्ति होती है।

कभी कभी पीटिकायें तृतीय अवस्थाकी प्राप्तिके पश्चात् फट भी जाती हैं। परन्तु प्रायः पीव जमकर खुरण्डके रूपमें कई दिनोंतक जमी रहती हैं।

रक्तस्रावात्मक प्रकारमें सब तन्तुओं और इन्द्रियोंमें रक्तस्रावकी प्राप्ति होती है।

प्राय: सम्पूर्ण जीवनकालमें यह रोग एक बार होता है। मनुष्य एक बार इससे पीडित होनेपर उसमें स्वाभाविक क्षमता उत्पन्न हो जाती है। इसलिये पुनः आक्रमण बहुधा नहीं हो सकता। इसी बातको ध्यानमें रखकर इसके टीके (Vaccination) लगाये जाते हैं। जिससे सौम्य प्रकारकी मसूरिका उत्पन्न करके मनुष्यमें इसके प्रति क्षमता उत्पन्न करदी जाती है। इस रोगसे आबाल वृद्ध, स्त्री पुरुष सब पीडित होते हैं। परन्तु अपेक्षाकृत बालकोंमें यह रोग अत्यधिक होता है। छोटे छोटे छोटे दूध पान करनेवाले बच्चे भी इसके आक्रमणसे नहीं बच पाते। वैसे तो ऋतुओंका इसके प्रसारपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु ग्रीष्म ऋतुकी तुलनामें वसन्त और शीतकालमें यह रोग अधिक उपस्थित होता है।

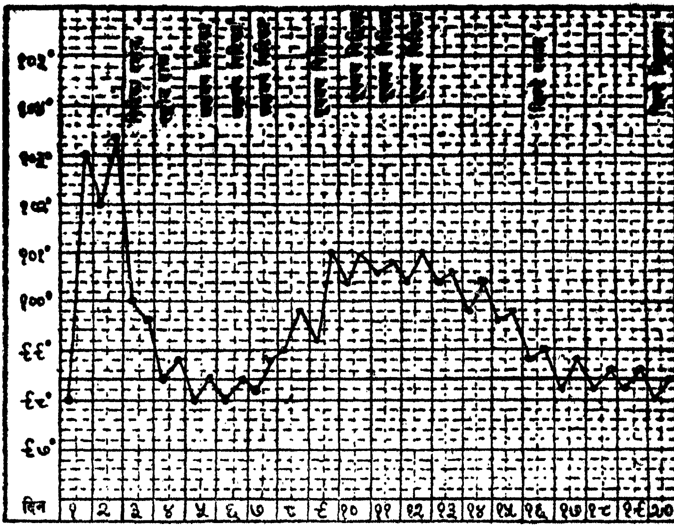
मसूरिका प्रकार—१. सामान्य अपरिवर्तनशीलप्रकार; २. रक्तस्रावात्मकप्रकार; ३. टीकाहतसौम्यप्रकार, ये मुख्य ३ भेद हैं।

१. सामान्य अपरिवर्तनशील शीतला।

(Variola Vera)

चयकाल—९ से १५ दिन। सामान्यत: १२ दिन। सम्भवतः अन्तिम सीमा ५ से २१ या अधिक दिन इस रोगमें। पूर्वरूपकी प्रतीति कुछ भी नहीं होती।

इसकी चार अवस्थायें होती हैं। १. आक्रमणावस्था; २. प्रारम्भिक पिटिकावस्था; ३. स्पष्ट पीटिकावस्था; ४. शुष्कावस्था।



मसूरिकामें उत्तापदर्शक रेखाचित्र

आक्रमणावस्था—यह यथार्थमें मसूरिकाका पूर्वरूप है। सामान्यतः उत्तापका अकस्मात् आक्रमण, परिपक्व आयुवालोंको वेपन और शीत तथा बच्चोंमें आक्षेपसह आक्रमण प्रारम्भ होता है। आगेकी ओर शिरदर्द (कभी शिरदर्दका अभाव) वमन, कौडी प्रदेशमें वेदना, पीठमें तीव्र दर्द (अत्यन्त सौम्य प्रकारमें भी), इन तीन लक्षणोंकी एक साथ प्राथमिक तीव्र ज्वरके साथ उपस्थिति इस रोगका एकदम सन्देह उत्पन्न कर देती है। बार बार अत्यन्त वेदना होना आदि ये प्रारम्भिक अवस्थाके लक्षण ध्यान देने योग्य हैं।

ज्वर पहिले दिन १०३° तक, नाड़ी द्रुत, मालावरोध, जिह्वा मलसे लिप्त, श्वासक्रियामें पीड़ा, कण्ठ बहुधा क्षतयुक्त, व्याकुलता, उन्माद और बारम्बार प्रलाप, शक्तिका गम्भीर क्षय, त्वचा शुष्क परन्तु स्वेद निकलना और श्वासोच्छ्वासकी गति द्रुत होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

रोगके सौम्य आक्रमणमें भी प्रारम्भिक लक्षण गम्भीर रूपसे उपस्थित हो सकते हैं परन्तु तीव्र गम्भीर आक्रमणके प्रारम्भमें सौम्य लक्षण कभी नहीं होते।

२. प्रारम्भिक पीटिकावस्था—पीटिकायें सामान्यतः प्राथमिक ज्वरावस्थामें किसी प्रकारकी नहीं निकलती। दूसरे दिन प्राथमिक पिटिकायें निकलती हैं। जिनकी प्रतीति स्पर्श द्वारा ही की जा सकती है और देखनेसे मालूम नहीं पड़तीं। जनपद व्यापी प्रकारमें लगभग १५ प्रतिशत रोगियोंमें पीटिका बारम्बार पृथक् पृथक् प्रकारकी हो जाती हैं। ये १. रक्ताभ (सामान्यतः रान व अन्य परतमय, अङ्गमें और कभी कभी सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाती हैं); २. रोमान्तिकाके सदृश; ३. लघु द्रवमय पिटिका (ये विशेषतः मुख आदि स्थानोंमें); ४. अति-क्वचित् शीतपित्तके धब्बे (ददौरे) के समान और त्रिदोषज रक्तपित्त-युक्त (अक्सर उदरके पूर्व पृष्ठ और रानपर उत्पन्न होती हैं) ज्वर तीसरे दिनतक भी रहता है जबकि वास्तविक पीटिकायें उत्पन्न होती हैं। पीटिकाओंकी उत्पत्तिके पश्चात् ज्वर कम हो जाता है और रोगीको कुछ सन्तोष मालूम पड़ता है।

३. रोगनिर्णायक पीटिकावस्था—सर्वप्रथम पीटिकायें मुख और मणिबन्ध (कलई) पर होती है और फिर नीचेकी तरफ सम्पूर्ण शरीरपर फैल जाती हैं। यह मुँह, ग्रसनिका और स्वरयन्त्रमें भी उत्पन्न हो सकती हैं। उत्पत्तिके दो दिन पश्चात् अर्थात् ज्वरोत्पत्तिके पाँचवें या छठे दिन और संक्रमणके १७ वें या १८ वें दिन पीटिकाओंमें

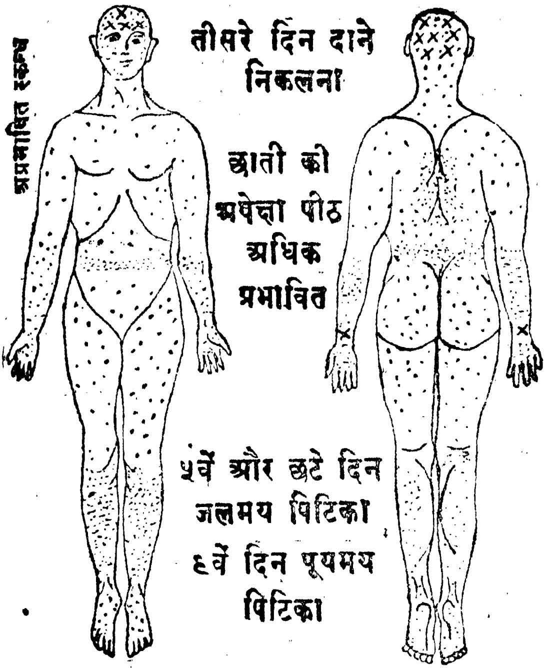
द्रवोत्पत्ति हो जाती है। कुछ पीटिकायें ऐसी भी होती हैं जिनमें द्रवोत्पत्ति होनेसे पूर्व ही अच्छी हो जाती हैं। ७ वें दिन पीटिकायें पूर्ण द्रवावस्था को प्राप्त हो जाती हैं। इस समय इनमें पूयोत्पत्तिके कारण रोगीको गौण ज्वर चढ़ता है, जो कंपकपीके साथ आरम्भ हो सकता है। यह ज्वर ६ या ७ दिन रहता है। इनके रूप, आकार प्रकारके अनुसार इसके २ उपविभाग पृथक् पीटिकाप्रकार (Discrete form); आ० सम्मिलित पिटिकाप्रकार (Confluent form) आगे दर्शाये हैं।

४. शुष्कावस्था—इस अवस्थाकी प्राप्तिपर पीटिकायें फूटती हैं पूय निकल आता है; या पूय पिटिकाके बिना फूटे ही शुष्क हो जाता है। शुष्क छिलके, जो पिटिकाके ऊपर चिपके रहते हैं। छिलका अत्यन्त सलग्नशील (चिपकनेवाला) होता है, अत: उसे उपचारकी आवश्यकता रहती है। १४ दिनके पश्चात् यह आवरण मुखमण्डलसे पृथक् होना आरम्भ हो जाता है। चतुर्थ सप्ताहके पश्चात् भी हथेली, पैरोंके तलवे और नाखुनोंमें जो पिटिकायें विना फूटी शेष रह जाती है उनको काटकर दूर करना पड़ता है।

सूचना—जिस स्थानपर रगड़ लगती रहती है, उस स्थानपर पिड़िकायें विस्तृत और दुःखदायी रूप धारण कर लेती हैं। पैरके तलवोंकी पिड़िकायें सबसे बादमें अच्छी होती हैं। अत: चिकित्सकको यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि रोगीको छुट्टी देनेसे पूर्व उसके तलवोंको अच्छी प्रकार देख लें, ताकि रोगीको संक्रमणका साधन बन जानेका भय निर्मूल हो जाय।

अ० पृथक् पीटिकाप्रकार (Discrete form)—होनेपर पीटिकाएँ अलग अलग रहती हैं जिसकी उत्पत्ति तीसरे दिन तक हो जाती है. पहिले कपाल और हाथके मणिबन्धके सामने उसी समय मुँहके भीतर और कण्ठके भागमें भी प्रतीत होती हैं। पीटिकायें मुख, ग्रीवा और नीचेकी तरफ फैलती हैं और अन्तमें पैरके तलवोंपर तक फैल जाती हैं।

मस्तिष्क, मुख, पीठके ऊर्ध्व प्रदेश और अन्त भागके सीमा प्रदेशमें पीटिकोत्पत्ति अत्यधिक संख्यामें होती है।



मसूरिकामें पीटिकायें

लक्षण—पीटिकाकी उत्पत्तिके समय उत्ताप व लक्षणों का शमन होकर रोगी कुछ सन्तोष महसूस करता है। परन्तु ८ वें दिन परिपक्वावस्थाकी प्राप्तिपर व्यापक लक्षण पुनः उपस्थित हो जाते हैं एवं कुछ उत्ताप बढ़ जाता है। अतिकण्डू और सूजी हुई त्वचामें अति पीड़ा होती है। रोगीको आकृति गम्भीर पोड़ाकी परिचायक भासती है। नेत्रच्छद शोथमय और बन्द, मुख शुष्क, पीडिकाएँ कण्ठमें निकलने पर वेदना,

तृषावृद्धि, क्वचित् मन्द प्रलाप (पर गम्भीर अवस्थामें तीव्र प्रलाप)।

शुष्कावस्था—लगभग १० वें दिन पीटिकायें फूटने और पूयस्राव होने लग जाता है, फिर वे अतिशीघ्र शुष्क हो जाती है। उत्ताप क्रमशः कम होकर मुक्तावस्थाकी प्राप्ति हो जाती है और इस प्रकार १४ दिनके पश्चात् पिटिकाओंपर उत्पन्न कठिन आवरण सब से प्रथम मुखमण्डलपरसे अलग होना आरम्भ होता है।

साध्यासाध्यता—रोगकी गम्भीर अवस्था हो जाय तो ८ वें दिनके बाद मधुराकी अवस्था बढ़ती है। असह्य वेदना होती और बलक्षय होने लगता है, अन्तमें हृदयगति बन्द होकर १२ से १४ दिनके भीतर मृत्यु हो जाती है।

आ० सम्मिलितपीटिकाप्रकार (Conflut form)—इस प्रकारमें पीटिकायें एक दूसरेसे मिल जाती हैं। प्रारम्भिक लक्षण सामान्यतः अति गम्भीर होते हैं। पिटिक क्रमण सामान्यतः चौथे दिन होता है। पहिले आरम्भ होनेपर पिटकायें बहुधा अति मिलनशील होती हैं। इन पीटिकाओंकी अवस्था पृथक् पीडिका प्रकारके समान ही होती है। अधिक सौम्यप्रकारमें द्रवोत्पन्न होनेवाली पीटिकायें जल्दी पृथक् हो जाती हैं, फिर पूर्ण द्रवावस्थाकी प्राप्ति होनेपर परस्पर मिल जाती हैं। इसके विपरीत गम्भीर प्रकारमें द्रवपूर्ण पीटिकायें अत्यन्त निकट होती हैं। त्वचाविशेषतः शोथमय और रक्तसंग्रहयुक्त होती हैं। पीटिकाके आक्रमणके साथ उत्ताप और लक्षणोंका दमन होता है, परन्तु पृथक पिटिकावाले प्रकारके समान पूर्णतः नहीं होता।

आठवें दिन पिटिकायें द्रवपूर्ण बनकर परस्पर मिल जाती हैं। यहाँ तक कि वृहद् उत्तान पीटिकायें पूयमय स्फोटकका रूप धारण कर लेती हैं। इसमें पिटिकायें मुँह, ग्रसनिका और स्वरयन्त्रमें भी हो सकती हैं। गलेकी रसग्रन्थियाँ बहुत सूज जाती हैं जिनमें अतिदुर्गन्ध आती है।

रोगीकी स्थिति करुणाजनक भासती है। शारीरिक उत्ताप अत्यधिक, नाड़ी द्रुत, अधिक तृषा, बार बार प्रलाप आदि लक्षण प्रकट होते हैं। नेत्र बन्द होते हैं। त्वचा स्पष्ट शोथमय होती है। मुखपर अधिक संख्यामें पीटिका होनेपर जीवनके लिये भय उत्पन्न हो जाता है। पिटिकाओंके ऊपर शुष्क छिलका तीसरे या चौथे सप्ताहमें बनता है।

साध्यासाध्यता—लक्षण सौम्य होनेपर १२ से १४ दिनके भीतर शुष्कावस्थाकी प्राप्ति होकर स्वास्थ्यलाभ होने लग जाता है और क्रमशः लक्षणोंका शमन हो जाता है। रोग गम्भीर होनेपर प्रलाप, बलह्रास और हृदयावरोध होकर १० वें से १४ वें दिनके भीतर मृत्यु हो जाती है। रक्तस्रावसे भी मृत्यु हो जाती है। मुक्तावस्थामें भी अगर फुफ्फुस-प्रदाह हो जाय तो भी मृत्यु हो सकती है।

२. रक्तस्रावात्मक मसूरिका।
(Haemorrhagic Small Pox)

इसमें २ प्रकार हैं। अ० काली मसूरिका या त्रिदोषज रक्तस्रावी शीतला। आ. रक्तपूयस्रावी मसूरिका।

अ. काली मसूरिका (Black Small Pox or Purpura Variolosa)—यह प्रकार जनपदव्यापी होनेपर बारबार विविधता दर्शाता है। बड़ी आयुवाले स्वस्थ मनुष्यपर इसका आक्रमण अत्यन्त सामान्य है। क्वचित् बच्चे और टीका निकाले हुए मनुष्य भी आक्रमित होते हैं। प्रारम्भिक लक्षण अन्य प्रकारोंके समान किन्तु सर्वदा गम्भीर। पिटिकाएं दूसरे, तीसरे या चौथे दिन दीखती हैं। आक्रमण के साथ रक्तसंग्रहमय पिटिकाएँ उपस्थित होती हैं। बारबार उदरकी दीवारके पिछले निम्न भागसे प्रारम्भ होती और जल्दी फैलती हैं। बाह्य त्वचा और अन्तस्त्वचाके विस्तृत भागमेंसे रक्तस्राव होता है। फिर सर्वत्र फैल जाता है। सामान्यतः श्लैष्मिक कलामेंसे रक्तस्राव, मूत्रमें रक्तस्राव (Haematuria) वमनमें रक्त (Haemate-

mesis) और थूकमें रक्त (Haemoptysis) ये सब उपस्थित होते हैं।

स्थिति भयजनक होती है। चेहरा सूज जाता है, अभिष्यन्द होकर नेत्रके रंगका परिवर्त्तन, समग्र त्वचा बैंजनी रंगकी होना, रक्तमय थूंक बनना और निःश्वास दुर्गन्धमय निकलना इत्यादि लक्षण भासते हैं। अत्यन्त बलह्रास होकर शक्तिपात हो जाती है। बुद्धि अन्ततक समभाव वाली और साफ रहती है।

मृत्यु—३ से ५ वें दिनके भीतर या कभी छठवें दिन। इस प्रकारमें कभी आरोग्य नहीं मिलता। इसके आगे लिखे हुये दो समूह चिह्नित होते हैं।

१. प्रारम्भिक पिडिकाएँ सामान्यतः सूक्ष्म द्रवमय, पश्चात् त्रिदोषज रक्तपित्त समान धब्बे; २. आक्रमणावस्थामें ही त्रिदोषज रक्तपित्त सदृश धब्बे। गुणधर्म दृष्टिसे पूर्ण द्रवयुक्त पिटिकाएँ उपस्थित नहीं होती और विक्षिप्त भावसे प्राप्त विकारमें रोग निर्णय अति कठिन होता है।

आ. रक्तपूयस्रावी प्रकार (Haemorrhagic Pustular Small-Pox)—इसका प्रारम्भ गम्भीर अपरिवर्त्तनशील मसूरिकाके समान है। रक्तस्रावका प्रारम्भ द्रवोत्पन्नावस्था या द्रवकी पूर्णावस्थामें होता है। रक्तस्राव पहिले दागके चारों ओर उपस्थित चक्रमेंसे होता है। फिर वह जल्दी फैल जाता है। रक्तस्राव सामान्यतः श्लैष्मिक कलामेंसे होता है। पृथक पृथक पिडिकावाले प्रकारमें, यदि रोगी अति जल्दी शय्यामेंसे खड़ा हो जाय, तो पैरोंपर दागोंके भीतर रक्तस्राव होता है।

उपद्रव—१. फुफ्फुसप्रदाह; २. प्रलाप और मूर्च्छा; ३. स्वरयन्त्र-प्रदाह; ४. लसीकामेह (Albuminuria); ५. नेत्राभिष्यन्द (आँख आना); ६. शुक्लमण्डल (Cornea) का प्रदाह; ७. सन्निपात (Septicaemia); ८. मस्तिष्क मज्जाप्रदाह।

भाविक्तति—१. संमिलित प्रकार होनेपर चेहरेपर दाग रह जाना; २. स्फोटक और विद्रधि तथा ३. अस्थिमज्जाप्रदाह।

इनके अतिरिक्त रोग शमनान्त ज्वर, मानसविकृति सीमान्त नाड़ियोंका प्रदाह आदि होते हैं। कभी कभी दूसरी बार पिड़िकायें उपस्थित होती हैं। यह किसी स्थानमेंसे त्वचाका पर्त निकल जानेपर होती है।

सौम्य मसूरिका और लघु मसूरिकामें प्रभेद।

मसूरिका	मोतिया
१. बलह्रास।	बलह्रास नहीं होता।
२. पिड़िकायें मुख और ग्रीवापर प्रथमावस्थामें।	पिड़िकायें मुखकी ओर बढ़नेवाली।
३. पिड़िकायें गहरी, किन्तु अण्डाकार नहीं।	पिड़िकायें उत्तान और अण्डकार।
४. पिड़िकामें शनैः शनैः द्रवोत्पत्ति तथा पूय वटीमें परिवर्त्तन।	क्षुद्र रक्ताभ दाग होकर कुछ घण्टोंमें पतले रसपूर्ण अण्डकार पिड़िका।
५. विशेषतः ज्वराक्रमणके तीसरे दिन गुटिका निकलना। फिर ज्वरका ह्रास।	पहिले ज्वर नहीं आता। गुटिका निकलनेपर भी ज्वरका ह्रास नहीं होता।
६. पिड़िकाओंकी उत्पत्ति और स्थितिमें दीर्घ समय लगता है।	कितनी ही पिड़िकाओंका अति जल्दी रस भरना और सूखना।

३. टीकाहत सौम्यप्रकार (Varioloid)

यह प्रकार इस रोगके रक्तरस (Vaccine) का कृत्रिम रोग-निरोधक क्षमता उत्पन्न करनेके प्रयोजनसे लगाये गये टीकेके फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इसका आक्रमण हल्का और शीघ्र परिवर्तनशील होता है। अतः इसे निष्फल (Abortive) माना है।

लक्षण—आक्रमण अकस्मात्। प्रारम्भिक लक्षण अन्य प्रकारोंके समान गम्भीर हो सकते हैं (शारीरिक उत्ताप, अति शिरदर्द, पीठमें तीव्र वेदना) त्वचापर अस्थायी लाली घन उत्सेधके समान तीसरे या चौथे दिन उपस्थित होती हैं। धब्बे (पिड़िकाओंके अवशेष) निकलनेपर लक्षण शमन हो जाते हैं पूयोत्पत्ति नहीं होती। अतः गौण ज्वर भी नहीं आता।

शीतलाके दाग क्वचित् ही रह जाते हैं। टीका लगानेके ५ वर्षके भीतर मसूरिकाकी प्राप्ति होनेपर गम्भीर स्वभाववाली शीतला क्वचित् ही होती है। अगर होती है तो गम्भीर परिणामकी भी सम्भावना की जा सकती है।

अनेक टीका लगाये हुए मनुष्योंमें सिर्फ आरम्भिक ज्वर ही उत्पन्न होता है। अन्य लक्षण, धब्बे, पिड़िका आदि कुछ भी उत्पन्न नहीं होते।

सूचना—चिकित्सक सर्वदा स्मरण रखें, कि ये रोगी भी रोग फैलानेकी शक्ति और संक्रमण वहन करनेकी क्षमतावाले होते हैं। अतः इनसे भी सर्वदा सचेत रहना चाहिये।

अपरिवर्तनशील शीलतामें प्रभेद—इसमें निम्न छः बातोंमें मुख्य अन्तर होता है।

१. गौण ज्वर क्वचित् ही उत्पन्न होता है अगर हुआ भी हो तो अत्यन्त हलका।
२. कुछ पीड़िकायें क्रमशः सम्पूर्ण अवस्थामें गुजरनेसे पूर्व ही शुष्क हो जाती है।
३. त्वचाके एक ही अंशमें अनेक अवस्थाओंको प्राप्त पिड़िकायें एक साथ ही देखी जा सकती हैं।
४. पिड़िकायें अत्यन्त सूक्ष्म या उत्तान स्तरमें अवस्थित होती हैं।
५. पिड़िकायें अत्यन्त न्यून संख्यामें यहां तक कि सम्पूर्ण शरीरमें

सिर्फ १२ ही हो सकती हैं और ये भी द्रवावस्थाकी प्राप्तसे पर्व आराम हो सकती हैं।

६. शारीरिक लक्षण अत्यन्त सामान्य।

शीतला प्रतिबन्धक उपाय।

यह रोग अत्यन्त उग्र प्रकारका संक्रामक रोग है। अतः प्रतिबन्धक चिकित्साका अत्यन्त महत्व है। सर्वसाधारणको इससे भलीभांति परिचित होना चाहिये। ताकि प्रकोपकालमें जबकि यह स्थानिक या देशव्यापी रूपसे फैलता है, ऐसे समयमें अपने आपको संक्रमणसे बचा सकें।

रोगीगृह स्वच्छ, विशुद्ध वायु और प्रकाशमय होना चाहिये। इसमें सिवाय रोगीकी आवश्यकताके लेशमात्र भी अन्य सामान नहीं होना चाहिये। यह अच्छी प्रकार स्मरण रखना चाहिए कि रोगीगृहमें रखे हुए वस्त्र आदिसे भी इस रोगका संक्रमण फैल सकता है।

रोगीगृहमें मक्खियां प्रवेश न कर पायें, इसका पूर्ण ख्याल रखें। मक्खियों द्वारा संक्रमण प्रसारित होता है व मक्खियां रोगीकी पीडिकाओंपर बैठकर उसे भी तङ्ग कर सकती हैं। अतः इनको रोकनेके लिए दर्वाजों और खिड़कियोंपर बांसकी चिकें या पर्दे लगादें।

ऐसा रोगीगृह, जिसमें नित्यप्रति सूर्यका प्रकाश कुछ समयके लिए आता हो, अच्छा माना जायगा। परन्तु सूर्यका प्रकाश सीधा रोगीपर न गिरे इसका खयाल रखें।

शीतलाके रोगीकी परिचर्या अत्यन्त सावधानीसे करनी पड़ती है, क्योंकि अक्सर नासमझ बालक इस रोगसे पीड़ित होते हैं। इसलिए परिचारकका उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है।

इससे पीड़ित रोगीकी परिचर्या करनेके लिए उनको नियुक्त करना चाहिए, जिनको एक समय शीतला निकल चुकी हो या टीका

लगाकर संक्रमणके भयको निर्मूल कर दिया गया हो। इतना होनेपर भी परिचारकको विशुद्धताका मूल मन्त्र एक क्षणके लिए भी नहीं बिसारना चाहिए।

गांवोंमें और शहरोंमें इस प्रकारके सक्रामक रोगोंके लिये बस्तीसे दूर आतुरालय होने चाहियें। जिनमें इन रोगोंसे पीड़ित रोगीको रखा जा सके। इससे सम्पूर्ण गांव या शहरमें इसके प्रकोपका भय नहीं रहता है। परन्तु ऐसा प्रबन्ध गरीब भारतके लिए मौजूदा परिस्थितियोंमें तो असम्भव मालूम होता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपना यह कर्तव्य समझना चाहिये कि उसके घरमें इस रोगसे किसीके पीड़ित हो जानेपर शीघ्र गांवसे दूर झोपड़ी या मकानका प्रबन्ध करके रोगीको वहांपर ले जायें। ऐसा करना उसके व उसके गांव, दोनोंके लिये लाभदायक है।

रोगीको स्पर्श करके वहन करनेवाली वायुसे संक्रमण होता है। अतः रोगीके गृहमें रखे हुये सम्पूर्ण वस्त्रोंसे संक्रमण हो सकता है। इसलिए वहांपर उपस्थित सम्पूर्ण वस्त्रोंको निःसंक्रमणक औषधियां डालकर उबालनेके बाद दूसरोंके काममें लेना चाहिये।

रोगीके अच्छा हो जानेपर भी उस कमरेकी वस्तुओं आदिमें विष वर्षोंतक सक्रमणके योग्य शक्तिशाली अवस्थामें रह सकता है। अतः रोगीके पूर्णांशमें अच्छा हो जानेपर कमरेको व उसमेंकी प्रत्येक वस्तुको बहुत अच्छी तरह विषमुक्त कर लेना चाहिये।

जबतक रोगी बिल्कुल स्वस्थ न हो जाय, यानि पीड़िकाओंके छिल्के बिल्कुल न निकल जायँ, तबतक रोगीको बाहर न निकलने दें। छिलके निकल गये हैं या नहीं यह जाननेके लिए रोगीकी हथेली (Palm) और पैरके तलवे देखनें चाहियें। क्योंकि सबके पश्चात् इन्हीं स्थानोंकी पीड़िकाओंके छिल्के निकलते हैं।

जहांतक हो सके, रोगीके कमरेमें उससे मिलनेके लिये या अन्य कार्यवश किसीको न आने दें। उपदंश, कुष्ठ, रक्तविकार आदि संक्रामक रोगोंसे पीड़ित एवं रजस्वला स्त्री और मलिन वस्त्रवाले मनुष्यको तो भूलकर भी रोगीगृहमें प्रवेश न होने दें।

रोगीके मल-मूत्र, मुँख और नासिकासे निकलनेवाले श्लेष्म आदिके पात्रोंको अलग रखें। इन बर्तनोंमें कृमिघ्न विलयन डाले रखें। एवं इन्हें वैसे ही न फेंककर जमीनमें दबा दें। और फिर पुनः बर्तन साफ करके रखें।

रोगीके वस्त्र प्रतिदिन बदलते रहें। एवं उसकी शारीरिक स्वच्छताका पूर्ण खयाल रखें।

इस रोगसे रोगीकी मृत्यु हो जाय, तो शवको उग्र जन्तुघ्न द्रवसे धोकर जन्तुघ्न द्रवपूर्ण वस्त्र लपेट देना चाहिये। फिर अन्त्येष्टि क्रियाके लिये ले जाना चाहिये।

ऐसा माना जाता है, प्रसवके पश्चात् नाल छेदनके समय बच्चेकी नालमें १-२ चावल कस्तूरी रख दी जाय तो उसे बहुधा शीतला नहीं निकलती।

चेचकके प्रकोपकालमें बड़े रुद्राक्षको जलमें घिसकर एक सप्ताह पर्यन्त रोज सुबह पिलाते रहनेसे चेचकका भय दूर हो जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

रोगीको ज्वरावस्थामें दूध और फलोंके रसपर रखना हितकर है। अन्न नहीं देना चाहिये। ज्वर कम हो जानेपर दूध-भात या दूध-दलिया देवें। नमक खिलानेसे कण्डूकी वृद्धि होती है। एवं मिर्च भी कण्डू वृद्धिमें सहायता पहुँचाती है।

रोग शमन होनेपर भी १ मासतक पथ्य-पालन करना चाहिए तैल, मिर्च, खटाई, तमाखू, धूम्रपान, बासी पदार्थ और रक्तको दूषित करनेवाले पदार्थोंका त्याग करना चाहिये।

मसूरिकाके दाने करवट बदलनेपर या खुजानेपर टूट न जायँ, इस बातका ध्यान रखना चाहिये। अन्यथा विष प्रकुपित होता है। वहांपर बड़ा दाना बनता है। और फिर रोगके शमन हो जानेपर भी दाग रह जाता है। छोटे बालक खुजाकर दानें न तोड़ दें, इस बातका लक्ष्य परिचारिकाको रखना चाहिये।

रोगीको दूध आदि देनेके पहिले कुल्ले करा लेवें और फिर भी जन्तुघ्न धावन (गैरिक धावन या त्रिफलाक्वाथ या पञ्चवल्कल क्वाथ) से अच्छी तरह कुल्ले कराना चाहिये।

इस रोगके आक्रमणका प्रतिबन्धकर सकें, ऐसी एक भी औषधि नहीं है। मसूरिका निकलने के पहिले सौम्य पाचन औषध देकर ज्वरका पाचन कराया जाय, तो मसूरिकाका विष विशेष प्रकुपित नहीं होता। मलावरोध हो तो उदरशुद्धिकर स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण आदि औषध देना हितकर है। बालकोंके लिये ग्लिसरीनकी वर्ति चढ़ानेसे उदर शुद्धि हो जाती है।

कितनेक डाक्टर या वैद्य रोग निर्णय होनेके पहिले विषमज्वर मानकर क्विनाइन या अन्य तीव्र ज्वरशामक औषधि दे देते हैं। वे भूल करते हैं। ऐसी औषधिसे विष अधिक प्रकुपित होता है।

डाक्टरी मतानुसार ज्वर अधिक हो और सिरदर्द हो, तो मस्तिष्कपर बर्फ या शीतल जलकी थैली रखवाते हैं।

यदि वान्ति होती हो, तो वान्तिको दूर करनेवाली औषध गुडूच्यादि क्वाथ, दुरालभादिक्वाथ या पटोलादिक्वाथ या अन्य उपयुक्त औषधि देते रहना चाहिये।

बालकोंको प्रलाप और आक्षेप उपस्थित हो, तो कस्तूरीप्रधान औषध या लक्ष्मीनरायण रस देना चाहिए। डाक्टरीमें ऐसी अवस्थामें रोगीको उष्ण जलसे स्नान कराते हैं।

तृषा अधिक हो, तो सन्तरा या मौसम्बीका रस देवें। या नीबूका रस जलमें मिलाकर देवें।

डाक्टरीमें पीडिकाओंके ऊपर जिंक ऑक्साइड (जसद पुष्प) या बोरिक एसिड लगाते हैं। जब पूयोत्पत्ति हो जाय तब वस्त्रोंपर पूय लग जानेपर बारबार बदलनेकी योजना करनी चाहिये, एवं व्रणोंको जन्तुघ्न द्रव्यके धावनसे धोते रहना चाहिए।

पिडिकाओंमें खुजली चलनेपर चर्मरोगनाशक तैल लगाना चाहिए या जेतूनका तेल और चूनेका जल मिला मलहम बनाकर लगाना चाहिए।

पूयोत्पत्ति होनेपर विशेषतः ज्वर उपस्थित होता है। रोगीको निगलनेमें भी कष्ट पहुँचता है। ऐसे समयपर हृदयपौष्टिक और विषघ्न औषध लक्ष्मीनारायण रस प्रवाल पिष्टि + मधुरान्त वटी देना अति हितकारक है। अनुपानरूपसे वातज, पित्तज, या कफज मधुरिकामें लिखे क्वाथमेंसे योजना करनी चाहिए।

कभी कभी मुख, नासिका, पश्चात्नासारन्ध्र और कण्ठनलीके भीतर विषप्रकोपजनित दाह-शोथ उपस्थित होता है फिर श्वसन क्रिया और जलपान आदिमें कष्ट पहुँचता है। ऐसे समयमें संक्रामक औषध, त्रिफला कषाय या निम्बपत्र कषाय या बोरिक एसिडके धावनके कुल्ले कराने चाहिए। एवं नासिकामें चर्मरोगनाशक तैलकी नस्य करानी चाहिए।

गम्भीर आक्रमण होनेपर अक्षिपुट अतिशय शोथमय बन जाते हैं। नेत्र नहीं खुल सकते। निमीलित पलकके कोनेमेंसे पूयस्राव होता है, कुछ पूय नासामार्गमें जाता है। उस अवस्थामें नेत्रको शुद्ध रखनेका प्रयत्न करना चाहिए। निवाये बोरिकधावन द्वारा बार बार नेत्रों-को धोते रहना चाहिए। एवं उसी धावनसे सेक करना चाहिए या उसके फाहे ऊपर रखने चाहिए।

नेत्रको सम्हालपूर्वक खोलें। यदि गोलकमें पाक हुआ होगा और किञ्चित भी उसपर दबाव आवेगा, तो तत्काल गोलक फूट जायगा। यदि अधिक शोथ आनेके पहिलेसे रोज नेत्रोंको खोलकर साफ करते रहें और थोड़े थोड़े समयतक मन्द प्रकाशमें खुले रहने दें, तो नेत्रमें व्रण या पूय होनेका भय कम रहता है।

रोगीको मन्द प्रकाशमें रखना चाहिए। तेज प्रकाश नेत्रोंको हानि पहुँचाता है। एवं परिपक्वावस्थामें कष्ट पहुँचाता है। इस रोगमें हृदयावरोध होकर अनेक बालक चले जाते हैं। अतः नाड़ी शिथिल होनेके कुछ लक्षण उपस्थित हों, तो हृदयपौष्टिक उत्तेजक औषध देते रहना चाहिए।

कुष्ठरोगपर कही हुई लेपनादि क्रिया और कफ-पित्तप्रधान विसर्प पर जो चिकित्सा कही है; वह इस रोगमें भी लाभदायक है कुष्ठ रोगमें कहे हुये पञ्चतिक्त घृतका उपयोग खाने पीने और मालिशके लिए किया जाता है।

इस व्याधिमें गरम करके शीतल किया हुआ जलका और औषधियोंका शीतल क्वाथ या हिम देना चाहिए। जल गरम करनेके समय खैर और विजयसारकी छाल मिला लेना विशेष हितकर है।

(डाक्टरी मतानुसार सूचना)

वेदना अधिक हो या प्रलाप अथवा निद्रानाश हो तो अफीमका उपयोग करें। वमन होती हो, तो १-१ तोला वर्फका जल पिलाते रहें या बर्फ का टुकड़ा मुँहमें रखकर चुसाते रहें।

सिरके बालोंके भीतर पीड़िका हो वें तो बालोंको कटवा देवें।

पिडिकाओंकी प्रथमावस्थामें नउ को कार्बोलिक घावन (२%) से लगातार तर रखें (कण्डु उपस्थित हो तब भी यह उपचार हितकर है)।

खुरण्ड निकलने लगें तब उन्हें सूखने नहीं देना चाहिए। मुँहपर वेसलीन और अलसीकी पुल्टिसकी पतली तह लगाया हुआ कपड़ा

रखें और उसे बारबार बदलते रहें। देहपर रहे हुये खुरण्डोंपर लगानेके लिये वेसलीन या ग्लिसरीनका उपयोग करते रहें। न फूटी हुई पिडिकाएँ विशेषत: नाखून आदिके खुरण्डोंको काटकर फिर कीटाणुओंसे सुरक्षित रखें; उसपर तैल और लिनिमेण्ट (मर्दन) आदिसे उपचार करना व्यर्थ है। सम्भवत: खुरण्डका पूयपाक होवे तो विलम्ब होता है।

शीतलापर सल्फोने माइड्सका उपयोग हितकारक है। इसे पूयोद्गम, सम्मिलित पीडिका और विषप्रकोपज सन्निपात होनेपर और खुरण्डको शीघ्र पृथक् करानेके लिये प्रयोजित करना चाहिये। किञ्चित् पोटास परमेगनेट मिलाना हितकर है। इसका मृदु (१ – १००००) धावन भी विषको नष्ट कर देता है।

नेत्रकी सम्हाल आग्रहपूर्वक रखना चाहिए।

रक्तस्रावी प्रकारका उपचार नहीं हो सकता।

हृदयकी क्षीणता होनेपर उत्तेजक औषधका मद्यार्क देना चाहिए जिह्वा के ऊपर अति शोथ होने पर शस्त्र चिकित्सा करनी चाहिए। स्वरयन्त्रप्रदाह होनेपर श्वासनलिकामें छिद्र करानेकी आवश्यकता रहती है।

परिपक्वावस्थामें तीव्र प्रकाश हानि पहुँचाता है; अत: प्रकाशको मन्द कर देना चाहिए।

स्फोटक होनेपर ऊपरसे खोलकर उसे कुछ समयतक गरम जलमें सतत डुबाये रखें तथा स्वरयन्त्रप्रदाह होनेपर लोहबान अर्कको जलमें मिला, उबालकर उसकी वाष्प कण्ठके भीतर देवें।

मसूरिका चिकित्सा

विषको बाहर निकालने और ज्वरविषका पचन करानेके लिए—नागरादि पाचन या अन्य पाचन औषध प्रारम्भ में देनी चाहिये, अथवा लक्ष्मीनारायणरस + प्रवाल पिष्टि और मधुरान्तक वटी देते रहें।

शीतलाका पाक शीघ्र होनेके लिये—(१) पिडिकाओंके पाककालमें गिलोय मुलहठी, मुनक्का, ईखकी जड़ और अनारदानेकी पीस, गुड़ (३ माशे) मिलाकर दें अथवा सबका क्वाथकर, फिर गुड़ मिलाकर देनेसे वातप्रकोप नहीं होता और सरलतासे दाने पक जाते हैं।

(२) बेरका चूर्ण घी मिलाकर देनेसे भी वातज, पित्तज और कफज शीतला का शीघ्र पाक हो जाता है।

(३) सब प्रकारकी मसूरिकामें परवल, नीम और अडूसा, तीनोंके पत्तोंको मिला क्वाथकर उसमें बच, कुड़ेकी छाल, मुलहठी और मैनफलका कल्क मिलाकर वमन करानेके लिये पिलाना हितकर है। कफप्रकोप पीड़ित रोगियोंके लिये यह उपचार हितावह है।

(४) करेलेके पत्तोंके ४ तोले रसमें ३ माशे हल्दी मिलाकर पिलानेसे वमन-विरेचन होकर देह शुद्ध होती है। रोमान्तिक, विस्फोटक और मसूरिकाका विष दूर होता है।

(५) वनकेलेके ७ बीजोंका चूर्णकर शहद या दूधके साथ देनेसे शीतला नहीं निकलती। यदि माता निकलनेपर उक्त औषधियोंको भी खिलाया जाय, तो भी अधिक त्रास नहीं होता।

(६) छोटे बालकको शीतला निकलनेपर गधीका दूध पिलाना हितकर माना गया है।

(७) रुद्राक्ष और कालीमिर्चका चूर्ण जलके साथ देनेसे मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है।

मसूरिका शामक धूप—(१) बच, घी, बाँस, नील. जौ, अडूसा बनकपासके बिनौले, ब्राह्मी, तुलसी, अपामार्गके पान और लाख, इन ११ औषधियोंको मिला लें, फिर निर्धूम गोबरीकी अग्निपर डाल, धुआँ देनेसे रोमान्तिका और मसूरिका आदि रोगशमन हो जाते हैं।

(२) राल, हींग और लहसुनकी धूप देते रहनेसे पिटिकाके कृमि मर जाते हैं।

(३) सरल, देवदारु, अगर और गूगलकी धूप देते रहनेसे मसूरिका शान्त हो जाती है।

यदि शीतला मुँहपर अधिक निकले, तो मुँहपर बकरी या गौके कच्चे दूधमें भिगोया कपड़ा रखनेसे नेत्रको हानि नहीं पहुँचती और मसूरिकाके दाग नहीं रहते। मुखको तत्पश्चात् धोते रहनेका भी लक्ष्य रखना चाहिए।

मसूरिका निकलनेके पहिले दोष पचनार्थ—रत्नगिरि रस, धनिया और मिश्रीके हिमके साथ दो दिनतक दिनमें दो समय देते रहने से विष शीघ्र बाहर निकलता है और त्रास कम होता है। साथ साथ प्रवालपिष्टी, २-२ रत्ती दिनमें ३ समय शहदके साथ दें फिर शेष दिनोंमें लक्ष्मीनारायणरस देते रहना चाहिये। मधुरान्तक वटी और प्रवालपिष्टी मिलाकर देते रहना भी हितकर है।

वातजमसूरिका चिकित्सा—

(१) दशमूलादि क्वाथ—दशमूल, (१०), रास्ना, दारुहल्दी, खस, धमासा, गिलोय धनियां और नागरमोथा, इन १७ औषधियोंका क्वाथकर, दिनमें दो समय पिलाते रहनेसे वातज मसूरिका शीघ्र पक और ढलकर शमन हो जाती है।

(२) गुडूच्यादि क्वाथ—गिलोय, मुलहठी, रास्ना, लघुपंचमूल, रक्तचन्दन, गम्भारीके फल, खरैंटीकी जड़ और कत्था, इन बारह औषधियोंको मिला, क्वाथकर पाक-कालमें पिलानेसे दाने बिना कष्टके शीघ्र पक जाते हैं।

(३) दानोंका पाक हो जानेके पश्चात् बहुधा वातप्रकोप हो जाता है अतः पाक होनेपर पटोलादि क्वाथ देते रहना चाहिये।

(४) यदि वातप्रकोप हो जाय, तो सूतशेखररस (वात-पित्त प्रकोप हो, तो) या महावातविध्वंसनरस (केवल वातात्मक हो, तो) पटोलादि क्वाथके साथ देते रहें।

पित्तज मसूरिका चिकित्सा—

(५) द्राक्षादि क्वाथ—मुनक्का, गम्भारी, खजूर, परवलके पत्ते, नीमके पत्ते, अडूसेके पत्ते, खील, आँवला, धमासा, इन ६ औषधियोंका क्वाथकर मिश्री मिलाकर दिनमें ३ समय पिलाते रहनेसे पित्तज मसूरिकाकी वेदना शमन हो जाती है।

(६) निम्बादि क्वाथ—नीमकी अन्तरछाल, पित्तपापड़ा, पाठा, परवलके पत्ते, कुटकी, अडूसा, धमासा, आँवले, खस, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, इन ११ औषधियोंका क्वाथकर मिश्री मिलाकर पिलानेसे पित्तप्रधान मसूरिका, त्रिदोषज मसूरिका, ज्वर, विसर्प और मसूरिका-जन्य उपद्रव, ये सब दूर होते हैं।

कफज मसूरिका चिकित्सा—

दुरालभादि क्वाथ—धमासा, पित्तपापड़ा, चिरायता और कुटकीका क्वाथकर पिलानेसे कफज और पित्तज मसूरिका शमन होती है।

(८) वासादि क्वाथ—धमासा, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, इन्द्रजौ, कड़वे परवलके पत्ते और नीमकी अन्तरछाल, इन १० औषधियोंका क्वाथकर दिनमें २ समय पिलाते रहनेसे कफज मसूरिका नष्ट होती है।

विशिष्ट लाक्षणिक चिकित्सा—

दाह शमनार्थ—(१) बासी जलमें शहद मिलाकर पिलानेसे जलन और मसूरिकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

(२) प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती दिनमें ३ समय गुलकन्द या गिलोयसत्व और शहदके साथ देनेसे, दाह, विष और तीव्र ज्वरमें शान्ति रहती है।

(३) सिरस, गूलर, पीपल, लिहसौड़ा, बड़ और कुड़ा, इन वृक्षोंकी छालको कूट, कपड़छान चूर्णकर कल्क करें। फिर घी मिलाकर लेप करनेसे व्रण, फफोले और दाह शीघ्र नष्ट होती हैं।

(४) निशादि लेप—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरसकी छाल, नागरमोथा, लोध, सफेद चन्दन, नागकेशर, इन ८ औषधियोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्ध, स्वेद और रोमान्तिका, ये सब दूर होते हैं।

बिजौराकी केशरको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे मसूरिकाका पचन शीघ्र होकर; और दाह कम हो जाता है।

अरुचि हो, तो—अदरखका कवल धारण करें या अनारदानोंका रस मिला हुआ यूष पिलावें या छोटी पीपल और हरड़का चूर्ण १-१ माशा दिनमें २-३ बार शहदके साथ चटानेसे कण्ठशुद्ध हो जाता है।

मुख या कण्ठमें फाले हो जायँ, तो—जातीपत्रादि क्वाथसे कुल्ले करावें।

जातीपत्रादि क्वाथ—चमेलीके पान, मजीठ और दारुहल्दी, चिकनी सुपारी, शमी (खेजड़े) की छाल या जड़, आँवला और मुलहठी, इन ७ औषधियोंका क्वाथकर शहद मिलालें। फिर उससे कुल्ले करानेसे फाले शमन हो जाते हैं।

नेत्ररक्षाके लिये लेप और आश्चयोतनार्थ—(१) एरण्ड तैल १-१ बूँद नेत्रमें डालते रहें।

नेत्रमें शुक्र हो जानेपर—गधेकी दाढ शहदमें घिस, कपूर मिला, प्रातः सायं अञ्जन करते रहनेसे थोड़े ही दिनोंमें फूला कट जाता है।

फूटी हुई मसूरिकापर—(१) बड़, पीपल, गूलर, पिलखन और पारस पीपल, इन ५ वृक्षोंकी छालका चूर्ण बुरकावें।

(२) उपलोंकी राखको कपड़-छानकर बुरकाते रहें।

फूटे हुये दानोंको धोनेके लिये—(१) पंचवल्कल क्वाथ या नीमके पत्तोंके क्वाथका उपयोग करें।

(२) त्रिफला और गूगलके क्वाथसे धोनेपर फूटी हुई मसूरिकाकी जलन शान्त हो जाती है। साथमें खदिराष्टक क्वाथ पिलानेसे शीघ्र लाभ होता है।

कुहनी, पहुँचे या कन्धेपर व्रण-शोथ होनेपर—दशांग लेप या अन्य व्रणशोथनाशक लेप करें; अथवा जोंकें लगवाकर दोषको निकाल डालें और फिर लेप, सेक आदि उपचार करें।

मसूरिका भीतर समा जाय, तो—(मसूरिकाके दाने बाहर आकर फिर भीतर बैठ जाय तो), उनको निकालनेके लिये सुवर्णमाक्षिक भस्म ४-४ रत्ती दिनमें ३ समय शहदके साथ दें, ऊपर कचनारकी छालका क्वाथ पिलावें; या कस्तूरी आध-आध रत्ती और जावित्री २-२ रत्ती दिनमें २ बार नगरबेलके पानमें देवें।

हृदयकी निर्बलता आ जानेपर—हेमगर्भ पोटलीरस देवें या रससिन्दूर १ रत्ती और प्रवालपिष्टी २ रत्ती शहद-पीपलके साथ दिनमें २ समय दें। या द्राक्षासव २॥ से ५ तोले दिनमें २ समय पिलाते रहें।

अतिसार हो जाय, तो—रसपर्पटी या सर्वाङ्ग सुन्दर रस या बाल अतिसारहर चूर्ण थोड़ी थोड़ी मात्रामें दिनमें ३ बार देते रहें। या जायफल जलमें घिसकर दें।

कासप्रकोप हो, तो—खदिरादि वटी या कर्पूरादि वटी दिनमें १०-१५ गोलीतक चूसनेको देते रहें।

उदरशूल हो, तो—पेटपर एरण्ड तैल लगा, गरम जलसे सेंक करें।

अफारा हो, तो—दारुषट्क (देवदारू, बच, पुष्करमूल, सोया, हींग और सेंधानमक) के लेपको काँजीमें पीस, गरमकर उदरपर

लेप करें। अफारा रहे तबतक बार बार लेप करते रहें।

वृक्कशोथ हो, तो—शिलाजीत ४-४ रत्ती अथवा रालका चूर्ण ४ रत्ती और मिश्री १ माशा मिलाकर सौंफके अर्कके साथ दिनमें २ समय देते रहें तथा रोगशमनके पश्चात् चन्द्रप्रभावटी या देवदार्वाद्यरिष्ट कुछ दिनोंतक देते रहें।

पैरोंमें दाह होता हो, तो—चावलोंके धोवनसे शीतल सेक करना चाहिये।

दाने सखने लगते हैं, तब कण्डू शमनार्थ—एरण्ड तैल या निम्बकी निम्बौलीका तैल लगाते रहनेसे खुजली नहीं आती या, चर्मरोगनाशक तैल या बालरक्षक तैल लगाते रहें।

इस रोगका प्रारम्भ होनेके पहिले अथवा ज्वर आ जानेके पश्चात् प्रवालपिष्टी और रत्नगिरी रसका सेवन कराना लाभदायक है। रत्नगिरी रस सब प्रकारके ज्वरोंपर निर्भयतापूर्वक विष बाहर निकलनेके लिये दिया जाता है। मसूरिका निकलकर रोगनिर्णय हो जानेपर लक्ष्मीनारायणरस + मधुरान्तकवटी और प्रवालपिष्टि निम्बादि क्वाथके साथ देते रहें मसूरिकाके पाक हो जानेके पश्चात् भी वही औषध शहदके साथ दें; तथा पटोलादि क्वाथ पिलाते रहें इससे मसूरिका रोग बिना उपद्रव अच्छा हो जाता है।

यदि किसी रोगीके लिये चिकित्सा योग्य रीतिसे न हुई हो, या विषकी अधिकतासे कोई उपद्रव हो जाय, तो उपद्रवको दूर करनेकी चिकित्सा शीघ्र करनी चाहिये। उपद्रवोंकी भिन्न भिन्न चिकित्सा ऊपर दी गई हैं।

निबल शरीरवालेको मसूरिका खूब अधिक परिणाममें निकली हों, रक्तकी न्यूनता, विषप्रकोपकी अधिकता, हृदयकी निर्बलता या वृक्कप्रदाह आदि दोष हो जायँ, तो निम्न इन्दुकला वटी देते रहना चाहियेः—

इन्दुकला वटी—शुद्ध शिलाजीत, लोहभस्म और सुवर्णभस्म तीनोंको समभाग मिला, वनतुलसीके स्वरसमें ३ दिन खरलकर, १-१ रत्तीकी गोलियां बना छायामें सुखा लेवें। इनमेंसे १-१ गोली दिनमें २ समय निम्बादि क्वाथ या पटोलादि क्वाथके साथ देते रहनेसे मसूरिका, विस्फोटक, ज्वर, रक्तविकार और सब प्रकारके व्रणरोग दूर हो जाते हैं।

कार्बोलिक मलहमः—

एसिड कार्बोलिक	Acid Carbolic	२ ड्राम
ऑइल युकेलिप्टस	Oil Eucalyptus	४ ड्राम
टिंचर ओपियाई	Tinct Opii	१ औंस
तिलकातैल	Sweet oil	२ औंस
वेसलीन	Vaseline	१ औंस

इन सबको मिला, कपड़े या मुलायम कूंची (Swab) द्वारा सुबह-शाम सारे शरीरपर लगाते रहनेसे पीड़ा शमन होती है और खाज भी नहीं आती।

नीलगिरी मलहम चूनेका जल * और तिलीका तेल ४-४ ड्राम, नीलगिरी तैल १५ बूंद मिला खरलकर मलहम बनाकर मसूरिकाके फोड़ेपर लगावें।

पथ्यापथ्य।

पथ्य—प्रारम्भमें लंघन, वमन और विरेचन (ज्वर आनेके पहिले) करावें। आवश्यकता हो, तो शिरावेध करावें। तेज ज्वर हो तबतक दूधपर ही रखें।

* चूनेका जल तैयार करनेके लिये १ ग्रेन कली चूनाको २ औंस जलमें मिलावें।

ज्वर मन्द होनेपर या छोटे दुग्धपान करनेवाले बच्चोंको शीतला निकलनेपर उसकी माताके लिये पुराने शालि और साँठी चावल, चना, मूंग, मसूर, जौ, पक्षियोंका मांस, परवल, करेला, ककोड़ा, कच्चे केले, सुहिंजनेकी फली, बिजोरे नींबू अंगूर, मीठे अनार, ईख, घी, मिश्री, गुड़, गरम करके शीतल किया हुआ जल, पवित्र पौष्टिक और लघु भोजन आदि देने चाहिये।

मसूरिका पक जानेपर—मूंगका यूष, जंगली पशुओंका मांसरस, घी, सम्हालूके पत्ते और राल, इनकी धूप देते रहें। उपलोंकी राख और गूगलको पीस-मिला बुरकाते रहें।

मसूरिकाकी फुन्सियाँ सूख जानेपर—नीमके सूखे पत्ते और कच्ची हल्दीको पीसकर लेप करें। पश्चात् व्रणरोगोंमें कहे अनुसार चिकित्सा करें।

वातप्रकोपवालोंको खीलका चूर्ण शक्करका जल मिला, संतर्पण* बनाकर पिलावें। या लघुपंचमूलके क्वाथमें यूष तैयार करके पिलावें; अथवा पक्षियोंके मांसरसके साथ भोजन करावें।

अपथ्य—मिर्च आदि गरम पदार्थ, उष्ण भोजन, खटाई परिश्रम, तैल, नमक, भारी भोजन, तेज वायु, सूर्यके तापका सेवन, स्नान, मैथुन, स्वेदन, क्रोध, दुष्ट जल, दुष्ट वायुका सेवन, विरुद्ध भोजन, सेम, आलू, मल-मूत्र आदि वेगोंका धारण, ये सब अपथ्य हैं।

---

* मुनक्का, अनारदाने, खजूर और शक्कर, इन सबको जलमें घोल लें और खीलोंके सत्तूमें शहद मिलावें फिर इन दोनोंको मिला लेनेसे संतर्पण तैयार हो जाता है।

२१ लघुमसूरिका (मोतिया)

Chicken Pox-Varicella

परिचय—यह मसूरिका ही के समान विषजनित रसमय पीडिका युक्त आशुकारी संक्रामक ज्वर है। इसमें पीडिकाये दूर दूर और बहुत थोडी निकलती हैं। एवं ज्वर भी अधिक नहीं बढ़ता है। यह विकीर्ण, ग्रामव्यापी और देशव्यापी रूप धारण कर सकता है। यह रोग बहुधा १० वर्ष की आयु वाले बालकों को ही होता है। परन्तु कभी कभी शिशु और बाल्यावस्थामें न होनेपर, परिकावस्थासे वाले भी इससे पीडित होते हुये देख गये हैं।

चयकाल—११ से १९ दिन (सामान्यतः १४ से १६ दिन); सीमा २४ दिन। इसके लिये निषेधकाल (क्वॉरनटाइन) ३ सप्ताहका माना गया है।

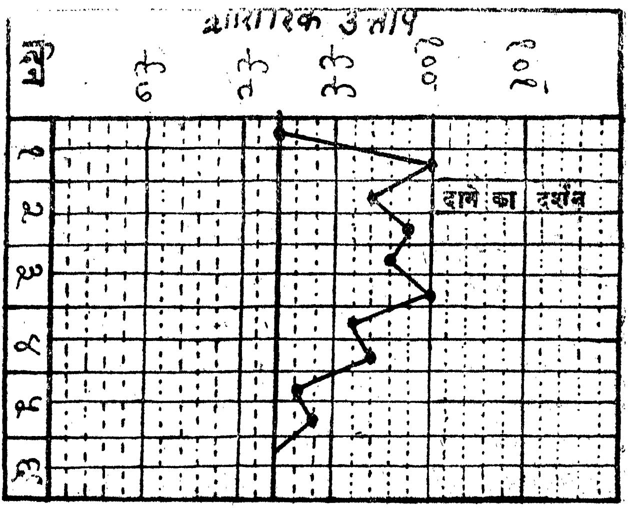
निदान—इस रोगकी प्राप्ति विशेषतः संस्पर्शजनित होती है। इससे पीडित रोगीके प्रत्यक्ष स्पर्शमें आनेवाले पदार्थ, रोगीके समीपकी वायुद्वारा, तथा इस रोगोंसे गुप्त रोगी, जिसमें पीडिकाये बाहर न निकली हो, उसके संस्पर्शसे इसका संक्रमण होता है। इसकी पीडिकाओंमें मसूरिकाके भीतर पाया जानेवाला पसकेन विष (Paschen's elementary bodies) मिलता है। इसकी पीडिकायें सिर्फ बाह्य त्वचामें ही होती हैं, एवं स्वल्प दोष वाली जलके बुदबुदेके समान होती हैं और शुष्कावस्थाकी प्राप्ति भी जल्दी होकर रोगका निवारण हो जाता है।

अक्सर एक आक्रमणसे रोगके प्रति क्षमता उत्पन्न हो जाती है परन्तु कुछ मनुष्योंमें दूसरी और तीसरी बार भी आक्रमण होते देखा गया है। अन्य संक्रामक ज्वर इससे पहिले रोगीको पीडितकर देता है।

सम्प्राप्ति—त्वचाके संयोजक कोषाणुओंके मध्यपर्तमें पीडिकाओं

रचना आरम्भ होती है। केन्द्र स्थान (Nuclei) विभाजित होते हैं; फिर उनका जीवनरस (Cytoplasm) शोथमय बनता है, रिक्त स्थान बढ़ता है; अपकान्तिकी प्राप्ति होती है तथा तरलोत्पत्ति होती है।

संक्रामक काल—जैसा कि मसूरिकामें लिखा जा चुका है कि, जबतक पीड़िकाओंपरसे खुरण्ड अलग न हो जाय, तबतक रोगी दूसरेको प्रभावित करनेकी शक्तियुक्त होता है। परन्तु प्रथमावस्थामें तो तीव्र संक्रमणका वाहक समझा जाता है।



लघुमसूरिकामें उत्तापदर्शक रेखा चित्र।

लक्षण—इस रोगकी गति सामान्यतः मृदु है। बालकोंको आक्रमणावस्थामें सामान्यतः किञ्चित् दुराग्रह और अरुचि. बड़ोंमें उत्तापवृद्धि, कुछ शीत लगना, वमन, पीठमें सामान्यतः मन्द दर्द किन्तु क्वचित् गम्भीर

शीतलाके समान। कभी-कभी प्रारम्भिक धब्बेके स्थानपर व्यापक त्वचाकी लाली भी प्राप्त हो जाती है। प्रारम्भमें जबतक पीडिकायें उपस्थित नहीं होती, तब तक रोगका निर्णय नहीं होता।

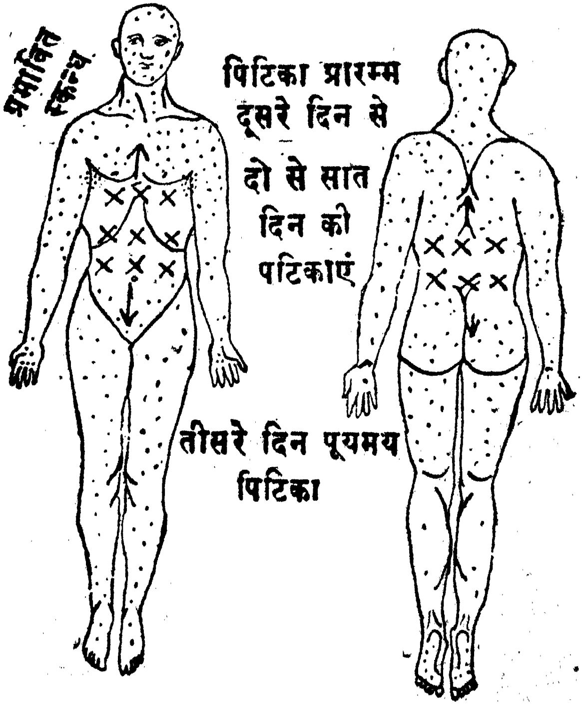
पीड़िकायें—पहिले या दूसरे दिन निकलती हैं। उसके साथ ज्वर बिल्कुल प्रतीत नहीं होता; किन्तु लक्षण सर्वांशमें मन्द हो जाते हैं। पहिले पीडिकायें वक्ष, पीठ या छातीपर निकलती हैं। क्वचित् कपाल और हाथ-पैरपर भी। कुछ पीडिकाएँ उस समय मुखमें होती हैं। उत्तर-कालका क्रम अपरिवर्तनीय नहीं होता।

पिडिका विभाजन सामान्यतः स्वभावके अनुसार होता है। वक्ष और मस्तिष्कके बाल नीचेकी त्वचा, ये विशेष प्रभावित होते हैं। कुछ स्फोटक हथेली और पैरोंके तलवेपर होते हैं, कभी नहीं भी होते, कभी तालुपर भी हो जाते हैं, कभी कभी ओष्ठ और मूत्रप्रसेक नलिकापर भी होते हैं। मस्तिष्ककी त्वचा, हाथ और पैरोंपर पीडिकाएँ छोटी और गोलीके समान होती हैं।

पहिले पीडिकाएँ गुलाबी रङ्गकी, फिर कुछ घण्टोंमें जलपूरित और दियासलाईके सिर जितनी बड़ी हो जाती हैं। उसमें स्वच्छ रक्तरस रहता है। ये पीड़िकाएँ मसूरिकाकी अपेक्षा उत्तान और सर्वदा पृथक् पृथक् होती हैं। पूर्ण द्रवावस्थाकी प्राप्ति ४८ घण्टेमें हो जाती हैं। फिर सलवट पड़ने लगती हैं और खुरण्ड होने लगते हैं। इस रोगमें पीडिकाएँ बहुतसी सूखती हैं कितनीक भरती हैं और कई उत्पन्न होती रहती हैं।

रसपूर्ण पीडिकाएँ जो शेष बिना फूटी हुई हों, वे ५ दिनसे लेकर १४ दिन या कभी २१ दिनके भीतर शमन हो जाती हैं। जो फूट जाती हैं वे जल्दी सूख जाती हैं और १ से २ सप्ताहके भीतर खुरण्ड गिर जाता है। जो रसपूर्ण पीडिकाएँ फूटती हैं और प्रदाह करती हैं, उनका

पूयपाक होता है। फिर वे भी १-२ सप्ताहमें दूर हो जाती हैं, किन्तु त्वचा दागमय रह जाती है। बच्चोंके मुखपर ऐसा विरले ही हो जाता है।



मसूरिकामें पिटिकाएँ।

शारीरिक लक्षण—पीडिका स्थानमें परिपाक कालमें और पूयोत्पत्ति होनेपर सर्वत्र वेदना, कण्डू अत्यधिक होनेसे निद्रानाश तथा उत्ताप ९९° से १०१°, कभी-कभी १०२°; किन्तु कचित् ही ३-४ दिनसे अधिक समयतक रहता है। उत्ताप पाककालमें बढ़ता है और शीघ्र गिर जाता

है। दूसरे सप्ताह खुरण्डोंके नीचे पूयोत्पत्ति होनेपर ज्वर बढ़ जाता है। शारीरिक लक्षण कभी गम्भीर होते हैं और ज्वर भी अधिक होता है। बड़ी आयुवाले रोगियोंमें पीड़िका और शारीरिक लक्षण, दोनों गम्भीर हो जाते हैं।

विभेदक निदान—सामान्य अपरिवर्तनशील शीतला और इसके लक्षणोंमें बहुत ही समानता है अतः इससे इसका विभेद करना चाहिये। परन्तु निम्न पाँच लक्षणोंसे सरलता पूर्वक विभेद किया जा सकता है। १. शीतलामें पीड़िकाएँ निश्चित रूपसे तीसरे दिन निकल आती हैं। २. शीतलामें पीड़िकाएँ एकके पश्चात् एक उत्पन्न न होकर एक साथ ही होती है। ३. शीतलामें पीड़िकाओंकी उत्पत्तिका मुख्य स्थान अग्रबाहु है। ४. पीड़िकाओंका उद्‌भेद विलम्बसे धीरे-धीरे होता है। ५. एवं शीतलामें शारीरिक चिह्न निश्चित और विशिष्ट प्रकारके होते हैं।

साध्यासाध्य—इसके आक्रमणका शमन साधारणतः एक सप्ताह या दस दिनमें हो जाता है। परन्तु मुख्यतः परिपक्वावस्थाके रोगियोंमें इससे इतनी दुर्बलता उत्पन्न हो सकती है, कि वह मुख्य रोगसे भी अधिक कष्टप्रद सिद्ध होती है। इसमें आन्तरिक लक्षण जैसे कि कोथ, पीड़िकाओंमें और इनके मध्यमें रक्तस्राव और श्लेष्मावरणमें रक्तस्राव कचित् ही उत्पन्न होता है। संमश्रित आक्रमण (Confluent Attack) से रोगीकी मृत्यु हो जानेकी सम्भावना रहती है।

उपद्रव—इसमें उपद्रव बहुत ही कम उत्पन्न होते हैं। कचित् मस्तिष्क और सुषुम्णामें प्रदाह उत्पन्न हो सकता है। कभी स्फोटक और कोथ उत्पन्न हो जाता है। और फिर लक्षण गम्भीर बन जाते हैं।

कभी बड़े विस्तरवाला फाला हो जाता है। इसमें कण्डू बहुत होती है और व्यापक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसे फोड़ देनेपर त्वचामें स्थायी दाग रह जाते हैं।

कभी वृक्क प्रदाह, स्वरयन्त्रप्रदाह फुक्फुसप्रदाह और विविध वातनाड़ी विकृति भी उपद्रवस्वरूप प्रकट हो सकती है। तथा क्वचित् रक्तस्रावी पीडिकाएँ भी हो जाती है।

लघुमसूरिका चिकित्सा

सामान्यतः इसका आक्रमण इतना सौम्य होता है कि किसी प्रकारकी चिकित्साकी जरूरत ही नहीं होती है। अनेक समय देखा गया है, कि बालकोंमें यह खेलते खेलते ही निकल जाती है और उसे मालूम ही नहीं पड़ता।

एक मुख्य लक्षण जो इसमें अधिक कष्ट पहुँचाता है, वह खुजली है। इससे बालक बहुत कष्ट पाते हैं। इसलिये रोगीको १ : २० शक्तिवाले कर्बोलिक विलयनसे पोंछ देना चाहिये। आजकल "बेंजोइक लोशन" का प्रयोग इसके लिये बहुत सफल हुआ है।

इस बातका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि रोगी पीड़िकाओंको खुरचने न पावें, यदि ऐसा किया जायगा तो, उसमें पूयोत्पत्तिका भय उत्पन्न हो जायगा। इससे बचनेके लिये बालकके हाथोंपर कपड़ा बाँध देवें और बोरिक धावनसे धोकर 'डस्टिंग पाउडर' छिड़क दें अगर पीडिकाएँ फूट जाय तो जसदका मलहम लगावें।

रोगीमें अत्यन्त निर्बलता आ जाय या अपथ्य सेवनके कारण श्वास बढ़ जाय तो शीतलाके समान चिकित्सा करें।

रोगनिवृत्तिके पश्चात् रोगीमें अत्यन्त भय व दुर्बलता उत्पन्न होनेपर शक्तिप्रदान करने वाली औषध देनी चाहिये। डाक्टरीमें किनाइन और संखियेका योग सेवन कराया जाता है।

वक्तव्य—नमक, मिर्चका सेवन न कराने और उदरको शुद्ध रखनेपर खुजली कम चलती है।

२२ रोमान्तिका

(खसरा-बोदरी-Measles)

परिचय-रोमान्तिक एक आशुकारी संक्रामक ज्वर है। जिसमें नेत्र, नासा और श्वाससंस्था की श्लैष्मिककला में प्रदाह और त्वचापर धब्बे हो जाते हैं। इस रोगमें रोमोके मूलमें से ताम्रके रङ्गके सदृश रङ्गवाली सूक्ष्म पिडिकायें निकलती हैं। पिडिकायें रोमान्तमेंसे निकलती है, अतः इसे रोमान्तिका कहते हैं।

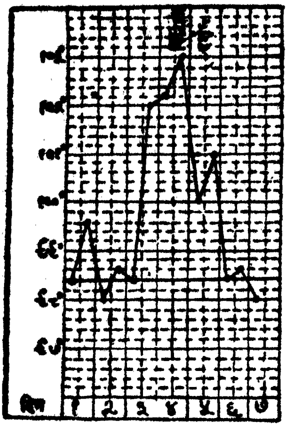
इस रोगकी उत्पत्तिके लिये समय और स्थानका कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यद्यपि इसका प्रकोप समशीतोष्ण कटिबन्धमें अधिक होता है। यह अक्सर बालकको होता है परन्तु किसी भी आयुवालेपर हमला कर सकता है और विशेषतः दिसम्बरसे जूनतक उत्पन्न होता है। सामान्यतः एक समय रोग उत्पन्न हो जानेपर इसके प्रति क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

निदान—मुख्यतः यह बच्चोंका रोग है। बच्चा इससे बिरला ही बचता है। अक्सर बसन्त और शीतऋतुके आरम्भमें देशव्यापी रूपसे फैलता है। सम्भवतः इसका मुख्य कारण कोई जीवित कीटाणु है, परन्तु इसे अभीतक पहचाना नहीं जा सका है। इसका संक्रमण मुख्यतः श्वास और नासाकी श्लैष्मिककलासे होता है। क्योंकि नासा, मुख और श्वसनमार्गके स्रावसे उत्पन्न विष, रक्त और त्वचामें अनुभव किया जा सकता है। इसका संक्रमण प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आनेसे ही होता है।

चयकाल-९ से १७ दिन (पूर्वरूपके आक्रमणतक) अत्यन्त सामान्य १० दिन अथवा पीडिका निकलनेतक १४ दिन। सीमा १७से २१ दिन।

ज्वर-चयकालकी समाप्तिपर सामान्यतः ज्वर अकस्मात् आक्रमण करता है। और प्रथम दिवसकी संध्यातक १०२° से १०३° फे० डी० तक

पहुँच जाता है। दूसरे या तीसरे दिन ज्वर कम हो जाता है, परन्तु चौथे दिन जबकि पीड़िकायें निकलती हैं ज्वर एकदम बढ़ जाता है। और छठे दिनतक १०३ से १०५ फै०.डी०.तक बनारहता है। इसके पश्चात् आकस्मिक उपशम (Crisis) द्वारा वह एकदम उतर जाता है।



रोमान्तिकामें उत्तापदर्शक रेखा चित्र।

प्रतिश्यायके लक्षण-इसमें प्रतिश्यायके बहुतसे लक्षण मिलते हैं। अगर ताप अत्यधिक न हो, तो इसके निदानमें भी भूल हो सकती है। इसमें नेत्रोंकी श्लैष्मिककला और पलकोंपर लाली, अश्रुओंका स्राव, प्रकाश सहन न होना, नासास्राव और श्वासप्रणाली-प्रदाह, कास और मुख्यतः स्वरयन्त्र (larynx) और श्वासप्रणालिकायें पीड़ित हो जाती हैं।

कोपलिकके चिन्ह-(Koplik's Spots)-यह एक प्रकारके चिह्न हैं जो मुँहके भीतर गालकी श्लैष्मिककलामें त्वचापर पीड़िकायें उत्पन्न होनेके १-२ दिन पूर्व उत्पन्न होते हैं। यह चिह्न भी श्वेत किरणाकार होते हैं, जो प्रायः कालचक्रसे घिरे हुये ओष्ठके भीतरकी तरफ चर्वणक दाँत (Molar teeth) के सामने उत्पन्न होते हैं। इनको हमेशा पहचान सकना आसान नहीं है। और मालूम करनेके लिये तीव्र प्रकाशकी जरूरत होती है। जब इनकी संख्या अधिक होती है तो श्लैष्मिककला कुछ उठी हुई मालूम हो जाती है। यह चिन्ह लगभग ९०% रोमान्तिकाके रोगियोंमें उत्पन्न होता है। और रोगकी आरम्भिक अवस्थामें रोगनिदान करनेका मुख्य साधन माना जाता है।

पिटिकायें-रोगारम्भके चौथे दिन अन्य लक्षणोंकी वृद्धिके साथ पिटिकायें निकलती हैं। प्रारम्भमें कपालके दोनों पार्श्वों में, बालोंके किनारे कानोंके पीछे निकलती है। कुछ घण्टोंमें ही मुख, वक्ष और फिर हाथ-पैरपर फैल जाती हैं। इनमें अधिकसे अधिक ३ दिन लगते हैं। पिटिकायें आरम्भमें छोटी, पिंगलाभ होती हैं और दबानेपर अदृश्य हो जाती है। सच्ची पिटिकायें इसके कुछ घण्टे पश्चात् निकलती हैं। इस अवस्था में ये अनियमित, काली, अर्धचन्द्राकार, लाल या मैली लाल आदि रङ्गकी होती हैं और दबानेपर पूर्ण रूपसे अदृश्य नहीं होती हैं।

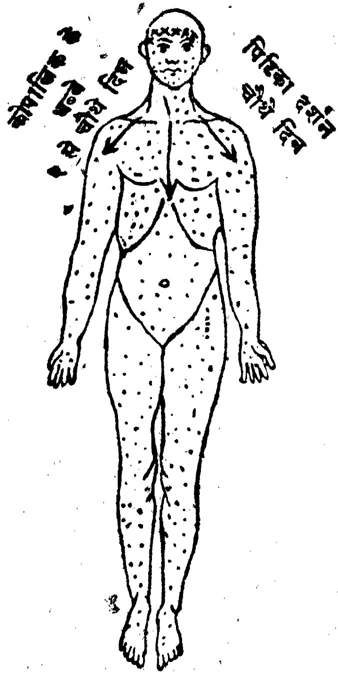
पिटिका निकलनेपर भी प्रसेकात्मक लक्षण दूर नहीं होते; किन्तु ५ वें या ६ वें दिनतक बने रहते हैं। स्वरयन्त्रप्रदाह सामान्य, कभी अतिसार, उबाक, वमन, शिरदर्द, तृषावृद्धि, व्याकुलता, निद्रानाश और प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

पिटिकोत्पत्तिके पश्चात् ४–६ दिनतक यह अवस्था बनी रहती है। इसके पश्चात् शमनावस्था आती है और २४ घण्टेमें शमन हो जाती है। सबसे पूर्व मुँहपर प्रभाव होता है और अन्तमें हाथ, मणिबन्ध और पैरोंके तलवोंपरसे पिटिकायें अदृश्य होती हैं। पिंगलाभ चिन्ह विलम्बसे दूर होते हैं। सूक्ष्म भूसी व खुरण्ड १० दिनतक निकलता रहता है।

सामान्यतः किसी प्रकारका उपद्रव न होनेपर रोगसे मुक्ति शीघ्र हो जाती है। अक्सर १० दिन पश्चा मुक्ति प्राप्त हो जाती है। कास अधिक समयतक रह सकता है।

विभेदक निदान-जैसाकि पहिले लिखा गया है, प्रारम्भमें जबतक कि पिटिकाओंकी उत्पत्ति न हो जाय इसका प्रतिश्यायसे भेद करना कठिन होता है। परन्तु इस अवस्थामें कोपलिकके चिन्हसे इसका निदान किया जा सकता है। शीतला (Variola) से भी इसका भेद करना कभी कभी कठिन हो जाता है; परन्तु प्रतिश्यायके लक्षणोंकी अनुपस्थिति होने

पर भी कटिमें दर्द और वमनकी उपस्थिति व पिटिकाओंकी उत्पत्तिके पश्चात् दोनोंमें भेद किया जा सकता है।



रोमान्तिकामें पिड़िकाएँ।

साध्यासाध्यता-रोमान्तिका बाल्यावस्थाके अतिरिक्त स्वयं तो भयप्रद रोग नहीं है। इसमें मृत्युसंख्या १·५ प्रति शत से कभी अधिक नहीं होती। इससे मुख्य भय उपद्रव और उससे उत्पन्न परिणामसे होता है। रोगकी अन्तिमावस्थामें आक्षेपकी उत्पत्ति भयप्रद मानी जाती है। गम्भीर अवस्थामें दूसरे या तीसरे दिन चेहरा स्फीत हो जाता है। प्रतिश्याय,

कास व अभिष्यन्दका कष्ट भी बढ़ जाता है फुफ्फुसप्रणालीप्रदाह होनेपर विशेषतः मृत्यु होती है। कभी कण्ठरोहिणी व अतिसार होकर भी मृत्यु हो जाती है।

रोमान्तिकाप्रकार—१. मृदुप्रकार-प्रसेकावस्थाके लक्षण नहीं होते। पाँचवें दिन मुक्तावस्था प्राप्त हो जाती है। २. रक्तस्रावी या कृष्ण (Haemorrhagicor black)—रोग जनपद व्यापी होनेपर यह प्रकार अन्तमें कभी कभी प्रतीत होता है। विस्तृत भागकी श्लैष्मिक कलामेंसे रक्तस्राव होता है, विषप्रकोप (Toxaemia) के लक्षण होते हैं। मृत्यु दूसरेसे छठवें दिनके भीतर होती है।

उपद्रव—१. श्वासप्रणालिकाप्रदाह और फुफ्फुसप्रणालिकाप्रदाह, २. आमाशय प्रदाह और कोथमय मुखपाक (Stomatitis and noma); ३. मध्यकर्णप्रदाह; ४. अतिसार; ५. मस्तिष्कप्रदाह।

इनके अतिरिक्त वृक्कप्रदाह हृदयकी श्लैष्मिककलाका प्रदाह आदि कभी कभी उत्पन्न हो जाते हैं।

भावीक्षति-कभी कभी राजयक्ष्मा (इस प्रकारमें मृत्युसंख्या अधिक) चिरकारीकास, बार बार उपस्थित होनेवाली कास, गलग्रन्थियोंकी वृद्धि, नासा ग्रन्थि की वृद्धि और कभी-कभी पूयात्मक पिडिकाएँ।

रोगनिवारक सीरम—इस रोगके विषकी सीरम (Serum) बालकोंको लाभ पहुँचाती है किन्तु फिर कामला हो जाता है।

इस तरह स्वाभाविक उत्ताप होनेवर ६ से ६ दिनके भीतर अन्य मनुष्यका रक्त चढ़ाया जाता है। वह भी रोगसे बालकोंकी रक्षा करता है।

उपर्युक्त रोमान्तिकाके अतिरिक्त एक अन्य प्रकारका रोग है, जिसे जर्मन रोमान्तिका (German Measles-Rubella Morbilli) कहते हैं। उसके लक्षण इससे मिलते जुलते हैं। वह रोग

रोमान्तिका और शोणित ज्वरके बीचका है। यह जर्मन रोमान्तिका और शोणित ज्वरके बीचका है। यह जर्मन रोमान्तिका और शोणित ज्वर अभी तक भारतमें नहीं होता। अतः इसका यहाँपर विवेचन नहीं किया गया।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

यह रोग अति संक्रामक है। अतः जिनको रोमान्तिका न निकली हो, उनको रोगीके पास न जाने दें। रोगीको लगभग एक सप्ताहतक शय्यागत रखना चाहिये। फिर और १-२ सप्ताहतक मकानसे बाहर न जाने देवें। जब तक संक्रमणता अशेष न हो, तब तक अन्योंके साथ मिलने नहीं देना चाहिये।

डाक्टरी मतानुसार उत्ताप ६३° डिग्री हो ऐसे कमरेमें रोगीको रखना चाहिये। अशुद्ध वायु निकल जानेके लिये हवादान की योजना करें।

रोगीको शीत न लग जाय इसलिये आग्रह पूर्वक रक्षण करें। छाती-पर गरम कपड़ा बाँधे। कास होनेपर लोहबानके अर्ककी बाष्प (उबलती हुई केटलीद्वारा) कमरेमें फैलावें। जबतक पिटिका शमन न हो, तबतक स्नान नहीं करना चाहिये।

वस्त्रोंको रोज बदल देवें और जन्तुघ्न धावनमें डुबोकर फिर धो लेवें।

ज्वर शमनार्थ लक्ष्मीनारायण रस अथवा त्रिभुवनकीर्ति रस देना चाहिये।

अतिसार होनेपर पहिले एरण्ड तैलसे उदरशुद्धि करें। भोजनमें बकरीका दूध देनेपर अतिसार जल्दी शमन हो जाता है। कर्पूर रस आवश्यकतापर देवें।

एरण्ड तैलकी बस्ति देवें या स्वादिष्टविरेचन चूर्ण देकर कोष्ठशुद्धि करें बालकोंको ग्लिसरिनकी वर्ति चढ़ाकर उदरको साफ करें।

कण्डू होनेपर गंधकका घी या चर्मरोग नाशक तैल अथवा कार्बोलिक तैल लगावें। भूसी जब निकलती हो तब तैलकी मालिश करा सकते हैं।

पिडिका परिपक्व न होती हो, तो गरम पेय देवें और गरम जलसे स्नान करावें। सामान्यतः १० दिन होनेपर रोगीको निवाये जलसे स्नान करानेसे पिडिकापरसे भूमी निकलकर संक्रामकता दूर होनेमें सहायता मिल जाती है।

इस रोगमें चिकित्सा लक्षण अनुरोधसे की जाती है।

प्रकाश असह्य होनेसे खिड़कियों आदिपर पर्दा रखें। मुखपाक न होनेके लिये कुल्ले कराकर मुँह साफ रखावें। मुखपाक होनेपर सोहागेको बीजाबोलके अर्कमें मिलाकर लगाते रहें।

शुष्क कास हो, तो मुँहमें कपूरादि वटी रखकर रस चूसाते रहें, तथा प्रवालपिष्टी, सितोपलादि चूर्ण, अमृतासत्व मिलाकर दिनमें ३ समय (ज्वर न हो तो घी और शहदके साथ) देते रहें।

नेत्रप्रदाह होनेपर त्रिफला फांट या निवाया दूध अथवा बोरिक वाशनसे नेत्रों को धोते रहें। नेत्रके पलक चिपक जाते हों तो पलक धारापर जसद भस्म या काजल घीमें मिलाकर लगावें।

फुफ्फुसप्रणालिकाप्रदाह होनेपर लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त या शृंग भस्म, अभ्रक भस्म अथवा अन्य उत्तेजक औषधि देना चाहिये। एवं बाहर पुल्टिस बांधना, उष्ण जलसे सेक करना आदि उपचार करने चाहियें। पुल्टिससे शीत न पहुँचे यह सम्हालें।

स्वरयन्त्रप्रदाह होनेपर रबरकी नलीद्वारा नासिकासे स्वरयन्त्रको बाष्प देवें। श्वासनलिकापर सेक करें। यदि अति प्रदाह हो गया हो, तो श्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र (trachotomy) करावें।

प्रलाप उपस्थित हो, तो शीतल जलवाले कपड़ेसे देह पोछें। हृदयकी शिथिलता हो, तो मद्यार्क या हेमगर्भ पोटली अथवा जवाहरमोहरा देवें।

रोग दूर होनेपर पौष्टिक औषध रूपसे लक्ष्मीविलास रस अभ्रकयुक्त, संशमनी वटी, लोहभस्म या अन्य औषध देनी चाहिये।

इस रोगके चले जानेपर आनेवाले शीतकालमें आग्रहपूर्वक सम्हाल रखनी चाहिये।

रोमान्तिका चिकित्सा।

विषबाहर निकालनेके लिये—त्रिभुवनकीर्ति रस मुनक्काके क्वाथ या खदिराष्टक क्वाथके साथ देना हितकर है। प्रवालपिष्टी भी विष शमनके लिये प्रारम्भसे अन्ततक साथ साथ देते रहें; तथा रोग शमनके बाद भी २-३ सप्ताह तक देते रहना उपकारक है। अथवा लक्ष्मीनारायण रस और मधुरान्तकवटी दिनमें ३-३ समय देते रहनेसे भी विष बाहर आ जाता है।

कानमेंसे पीप आने लगे तो—बहुत जल्दी लक्ष्य देकर उसे दूर करनेका उपाय करें। पहिले क्षार तैल डालते रहें। फिर भीतर लाल मांस प्रतीत होनेपर बिल्वादि तैल डालना प्रारम्भ करें।

प्यास अधिक लगती हो, तो—मुनक्का और धनियेको भिगोकर पानी निचोड़कर देते रहें।

फुफ्फुसप्रदाह आदि उपद्रव हों, तो—उनकी चिकित्सा शीघ्र करें। श्वसनक ज्वरमें इसकी विशेष चिकित्सा लिखी है।

पथ्यापथ्य—इसका पालन मसूरिकामें लिखे अनुसार करें।

२३ कर्णमूलक ज्वर।

कनपेड़े—पाषाणगर्दभ—Mumps or Parotitis

यह आशुकारी विशेष प्रकारका संक्रामक रोग है। इस रोगमें गलेमें रही हुई लाला *ग्रन्थियाँ विशेषतः एक या दोनों तरफकी कर्णमूलिका

* मुखके भीतर दोनों ओर ३-३ मिलकर ६ लाला ग्रन्थियाँ (Salivary Glands) रहती हैं। दो कर्णमूलिका, दो हनुधरिका, दो जिह्वाधरिका। इन सबमें कर्णमूलिका बड़ी हैं। इसका देखाव रूईके

ग्रन्थियाँ सूज जाती हैं। इस सोथके कारण रोगीको चबाने और निगलने में त्रास होता है।

निदान—उत्पादक—कारणका अभी पता नहीं चला। संभवतः वृषण-प्रदाह अग्न्याशयप्रदाह आदि विकृति होनेपर यह आक्रमण कितनीक ग्रन्थियोंपर हो जाता है। यह मुख्यतः बालकों और २५ से ३५ वर्ष की आयुवाले मनुष्योंको होनेवाला रोग है। अक्सर यह अधिक युवा और अधिक वृद्धोंमें क्वचित् ही उत्पन्न होता है। परन्तु स्कूलोंमें यह स्थानव्यापी रूप से फैल जाता है। इसका उत्पत्तिकाल शीत और वसन्त ऋतु है।

सम्प्राप्ति—मुख्यतः लाला ग्रन्थियोंके संयोजक तन्तुओंका प्रदाह होता है। किन्तु ग्रन्थि रचना या उनके कार्यकारी उपादानपर असर मृदु ही होता है। वृषणके स्नायु रज्जुकी अपक्रान्ति और अग्न्याशयमें रक्त-सग्रह हो जाता है। इन ग्रन्थियोंमें शोथ ही आता है, किन्तु पाक होकर पूय उत्पत्ति नहीं होती।

चयकाल—१२ से २५ दिन, क्वचित १ मास। सामान्यतः १८ से २२ दिन। संस्पर्शके लिये निषेधकाल २६ दिन हैं। अर्थात् रोगीकी ग्रन्थि वृद्धि होनेके लगभग ३ सप्ताहतक उसे अलग रखें। शोथ आ जानेके पश्चात् कमसे कम एक सप्ताहतक पृथक रखें। सामान्यतः इन सात दिनोंके पश्चात् संक्रमण नहीं होता है।

लक्षण - शारीरिक ताप मध्यम (१०२°) जो तीन या चार दिन या एक सप्ताहमें उतर जाता है। ग्रन्थियोंका शोथ मुलायम, सामान्यतः जबड़े-के कोने और कानके पीछे फिर यही शोभ ग्रीवापर से निम्न उरः कर्ण-मूलिका पेशीके नीचेतक फैलता है। त्वचाकी लाली और मुँह खोलनेमें वेदना होती है। कभी-कभी गले पर गम्भीर शोथ हो जाता है। और

गोले सदृश होता है। इनमेंसे एक प्रकारका तरल स्रवित होकर मुँहमें आता है, जिसे लाला कहते हैं। यह लाला भोजन भिगाने और चबाने में सहायता करती हैं।

लसिकाग्रन्थियाँ अधिक बढ़ जाती हैं। एक तरफ गालपर शोथ आ जानेपर १ से ५ दिनके भीतर दूसरी तरफ भी शोथ आ जाता है। हन्वधरिया ग्रन्थि (Submaxillary Glands) सामान्यतः बढ़ जाती हैं परन्तु जिह्वाधरिया ग्रन्थियाँ (Sublingual Glands) पर आक्रमण क्वचित् ही होता है।

प्रारम्भ में रक्तके भीतर श्वेताणुओंका ह्रास होता है परन्तु थोड़े ही दिनों में स्वाभाविक स्थितिकी प्राप्ति हो जाती है। बालकोंमें लसीकाणुकी संख्या बढ़ जाती है। लसीका ग्रन्थियाँ क्वचित् ही बढ़ती हैं।

ग्रन्थियोंकी वृद्धि ३-४ दिनमें होती है, और शमनमें ७ से १० दिन लग जाते हैं। पुनराक्रमण क्वचित् ही होता है।

रोगविनिर्णय—सरल है। कभी-कभी साधारण कर्णमूलिका ग्रन्थि शोथ, जो कि आंत्रिक ज्वर या अन्य किसी आंत्रिक व्याधिके फलस्वरूप उत्पन्न होता है, उनमें और इस रोगमें विभेद करना कठिन हो जाता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह रोग दोनों पार्श्वमें होता है और इसमें पाक क्वचित् ही होता है। विषमय कण्ठरोहिणीसे कभी-कभी भ्रम हो सकता है। परन्तु कण्ठक्षत आदिसे इसका विभेद हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि देशव्यापी रूप धारण करनेपर यह एक ही पार्श्वको भी विकृत कर सकता है, और सिर्फ हन्वधरिया ग्रन्थि ही प्रभावित होती है।

उपद्रव—क्वचित् वृषणप्रदाह, मस्तिष्कप्रदाह, अग्न्याशय प्रदाह, बधिरता, ग्रन्थियोंका पूयपाक और स्तनग्रन्थियों को प्रदाह हो जाते हैं। वृषण प्रदाह हो जाता है, तो वह कभी-कभी गम्भीर होता है। २० से ४० प्रतिशतको वृषणप्रदाह होता है। वह पूरी युवावस्था वालोंको विशेषतः आक्रमण के लगभग ८ वें दिन ज्वर और व्याकुलतासह होता है। शोथ एक या दोनों वृषणोंपर आता है। कभी-कभी त्रमप्रसेक नलिकाकी

क्रिया बन्द हो जाती है। विरलावस्था में अण्ड क्षीण हो जाते हैं। स्थिति काल ३ से ५ दिनतक फिर शुष्कता। जनपद व्यापी रोगियोंमें कर्णमूलिका ग्रन्थिप्रदाह हुये बिना वृषणप्रदाह हो जाती है। स्त्रियोंमें बीजाशयप्रदाह होता है। निम्न उदरगुहामें वेदना, दबानेपर पीड़ा होना, तथा ज्वर भी साथ में होता है। भगनाशा शोथ तथा स्तनशोथ भी स्त्रियोंमें कदाचित् होते हैं।

मस्तिष्कप्रदाह या मस्तिष्क मज्जाप्रदाह भी कभी-कभी हो जाता है। उसके साथ ज्वर, शिरदर्द, वान्ति और विविध नाड़ी विकृति लक्षण उपस्थिति होते हैं। मृत्यु परिमाण तो कम, पर क्वचित् स्थायी पक्षवध एवं क्वचित् अग्न्याशयप्रदाह भी देखनेमें आता है, और क्वचित् अर्दितके भी लक्षण देखे गये हैं। अग्न्याशय प्रदाह कभी कभी आशुकारी हो जाता है। ज्वर, हृदयाधरिक प्रदेश में वेदना, उदरमें दर्द आदि लक्षण होते हैं। कभी कभी यह गम्भीर होकर मधुमेह उपस्थित करता है।

बहुधा कर्णमूलिका ग्रंथियोंकी चिरकारी वृद्धि हो जाती है। कभी स्थायी बधिरता और कभी मध्य कर्णप्रदाह होता है। क्वचित् अन्त भागकी ग्रन्थियोंको पूय भावकी प्राप्ति होती है। इस तरह किसीको स्तनप्रदाह भी हो जाता है।

भावोत्पत्ति—कभी कभी सीमान्त नाड़ियोंका प्रदाह, पक्षबध, खास इन्द्रियों पर असर या वृक्कप्रदाह हो जाता है एवं कभी कभी शीर्षण्या नाड़ियोंमेंसे २, ७, ८ और ३ री का प्रदाह होता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

यह रोग स्वयमेव उपशमित होता है। यदि रोगी ज्वरावस्थामें १० दिन तक आराम से रहे, तो वृषणशोथका डर कम रहता है। इस रोगकी चिकित्सा लाक्षणिक की जाती है। साथमें निःसरण क्रियापर भी लक्ष्य देना चाहिये। कुल्ले कराकर मुँहको स्वच्छ रखना चाहिये।

शोथ और वेदनावाले भागपर स्वेदन दें और दोषघ्न या दशांग लेप लगावें। किसी किसीको बर्फ के सेकसे शान्ति आ जाती है। मलावरोध हो तो सौम्य विरेचन देकर उदरशुद्धि कर लेनी चाहिये। यदि ग्रन्थिपाक होने लगे तो पकानेके लिये पहिले पुल्टिस बाँधें। पुल्टिस ही पूयका आकर्षण कर लेती है। फिर जन्तुघ्न धावन से धोते रहें और मलहम भी लगाते रहें। ऐसी अवस्थामें डाक्टरीमें क्विनाइनका सेवन कराना हितकर माना गया है।

वृषणप्रदाह उपस्थित हो तो उसपर पारदप्रधान मलहम लगावें। एवं रक्तशोधक और उदरशुद्धिकर औषधि देते रहें।

ज्वरावस्थामें भोजन रूपसे केवल पेय पदार्थ देवें। दूध, मोसम्बीका रस, सन्तरेका रस, अंगूरका रस आदि। ज्वर न रहनेपर भोजन मृदु सरलतासे चबा सके वैसा थूली, खिचड़ी, दाल, भात, शाकभाजी आदि देवें।

तीव्र प्रकोप और अति तनाव होनेपर जलौका लगाकर दूषित रक्त निकाल देवें।

वृषणप्रदाह होनेपर पूर्ण आराम लेना चाहिये और उसे गरम वस्त्रसे लपेट लेवें। मस्तिष्कप्रदाहके चिह्न उपस्थित हों, तो शिरपर बर्फ की थैली रखनी चाहिये।

कर्णमूलिक ज्वर चिकित्सा

दोषशमनार्थ—पहले स्वादिष्ट विरेचनचूर्ण (ज्वर न हो तो दें) अथवा ज्वरकेसरीवटीसे कोष्ठशुद्धि करें। फिर संजीवनीवटी, करंजादिवटी या गोदन्ती भस्म दिनमें २ या ३ समय देते रहनेसे ज्वर निवृत्त होता है।

पहिले खसखसके डोडेको जलमें उबालकर शोथपर अच्छी तरह स्वेदन दें। सेक कालमें शीतल वायु न लगने देवें।

लगानेके लिये—दोषघ्न लेप, दशांगलेप या बीजपूर जटादि लेप

निवायाकर लगावें। या देवदारु, मैनसिल और कूठको जलमें घिस, निवायाकर लेप करें; या दूधमें नमक मिला, गरमकर मोटा लेप करें।

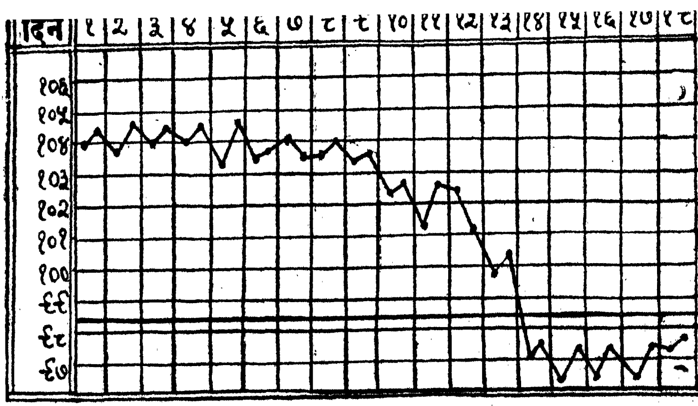
डाक्टरीमें दर्दवाले भागपर ग्लेसराउन बेलाडोना glycerine Belladonna) की पट्टी लगाते हैं।

२४ प्रलापक ज्वर।

प्रलापक ज्वर—कालामधुरा—टाइफस फीवर।

Typhus Fever—Jail Fever—War Fever.

यह ज्वर सर्दीवाले गन्दे स्थानोंमें, रहनेवाले निर्धन क्षुद्र मनुष्योंको होता है। इस प्रलापक ज्वर समूहमें अनेक उपविभाग हैं। इसकी सम्प्राप्ति कीटाणु विष-विरस रिकेट्सिया (Virus Rickettsia) से होती है।



प्रलापक ज्वर में उत्तापदर्शक रेखाचित्र

इन कीटाणुओंका व्यास अतिकम (१ इञ्चका ५०,०००वां हिस्सा) है। इसका वाहन पशुओं पर रहनेवाली चिंचड़ी, जुएँ और पिस्सु हैं। इनमें जनपद-

व्यापी, स्थान व्यापी और व्यक्तिगत, ऐसा भेद हो जाता है। यह रोग छोटे बड़े सबको होता है; किन्तु युवा और वृद्ध सरलतासे वशीभूत हो जाते हैं। इस रोगमें विशेषतः मलावरोध रहता है। अतिसार क्वचित् ही होता है। मुँह मलिन-सा दिखलाई देता है। होंठ और दाँतोंपर मल जम जाता है। इस रोगमें पिटिकाएं भी निकलती हैं।

प्रलापक प्रकार—इस रोगके मुख्य ३ प्रकार हैं। अ० तात्विक; आ० चिचड़ीजन्य और इ० पिस्सूजन्य। इनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

अ० तात्विक प्रलापक ज्वर।

(ट्रूटाइफस फीवर True Typhus Fever)

व्याख्या—यह आशुकारी महा संक्रामक रोग है, यह जुओंद्वारा फैलता है। इसका आक्रमण अकस्मात होता है। इसमें वातनाड़ी विकृति और विषप्रकोपजनित लक्षण, धब्बे, शारीरिक उत्ताप और लगभग १४ वें दिन आकस्मिकोपशम होना, ये मुख्य लक्षण होते हैं। मोतीझरा और प्रलापक ज्वर का भेद १९ वीं शताब्दीतक विदित नहीं हुआ था। यह विशाल विस्तारमें फैलनेवाला जनपद व्यापी रोग है। यह मुख्यतः शीतोष्ण कटिबन्धमें (भारतमें हिमालयके शीतल प्रदेशोंमें) फैलता है।

निदान लड़ाई, दुष्काल, दरिद्रता और मलिनताके हेतुसे इसकी उत्पत्ति होती है। यह रोग अन्य प्रबल जनपद व्यापी रोगोंकी अपेक्षा भी अत्यधिक शीघ्रतासे फैलता है। परिचारकोंमें भी मृत्युसंख्या अधिक हो जाती है जेलखाना, जहाज, सेना और सीलदार मकानोंमें यह रोग अधिक फैलता है।

विकृत शारीरिक चिह्न—आशुकारी ज्वरकी विद्यमानतामें सामान्य परिवर्त्तन मस्तिष्क और त्वचा आदिमें पिटिकाएँ (Typhusnodules) सूक्ष्मतर रक्तप्रणालियोंकी दीवारमें कोथ तथा धमनियोंकी बाह्य दीवारोंमें लसीकाणु और रक्तवारीकी प्राप्ति होती है। मृत्युके बाद भी त्वचापर धब्बे प्रतीत होते हैं।

रक्त गाढ़े रंगका होता है और नहीं जमता। यकृत् और वृक्क स्थान कुछ शोथमय-भासते हैं। बहुधा प्लीहाके समान वृद्धि होती है। श्वासनलिका प्रसेक और फुफ्फुसमें रक्तसंग्रह भी विशेषतः उपस्थित होता है। पेयरकी और अन्त्रबन्धनीकी ग्रन्थियाँ प्रभावित नहीं होती।

आक्रमण प्रकार—यह मनुष्योंके सिर या देहपर उत्पन्न जुओंद्वारा फैलता है। जल या वायुमें उत्पन्न कीटाणुओंद्वारा कभी नहीं।

कीटाणु विष लोम कूप और चर्मरन्ध्रमेंसे छनकर भीतर प्रवेशित हो सकता है। यह पहिले जुओंकी देहके भीतर रक्तवारिमें विशेषतः रक्तचक्रिकाओं (Blood Platelets) के भीतर ५--७ दिनतक वर्तमान रहता है। इसके पश्चात् भी संभवतः जुओंके शरीरमें ही इसका कुछ विकास चक्र होगा। वह रक्तवारि प्रलापक ज्वर रोगीका रक्त पीनेके पश्चात् ४ थे से ७ वें दिनके के भीतर संक्रामक बनता है। इन जुओंके थूक या अन्त्रसे निकले हुए मलको नख या तीक्ष्ण पदार्थसे त्वचापर खुजा देनेसे इस रोगकी सम्प्राप्ति होती केवल जुओंके काटनेसे नहीं। उन के अण्डे (लीखों) द्वारा भी रोग विषका संचार होता रहता है और द्वितीय जुओंका उत्पादन संक्रामक रोग को वहन करता है। इस जनपदव्यापी रोगका नियन्त्रण जुओंके विरुद्ध साक्षात् उपायकी योजनाद्वारा हो सकता है।

चयकाल—५ से २१ दिन। सामान्यतः १२ से १४ दिन। कभी ३ सप्ताह।

पूर्वरूप—१-२ दिन पहिलेसे कुछ बेचैनी, हडफूटन, शिरदर्द, उबाक, चक्कर आना आदि लक्षण भासते हैं।

रोगावस्था—इस रोगकी ४ अवस्थाए हैं। १. आक्रमणावस्था १ से ५ दिनतक; २. उत्तेजनावस्था और पिटिकावस्था ५ वें से १० वें दिनतक; ३. शक्तिपातावस्था १० वें से १४ वें दिनतक फिर ४. आकस्मिक उपशम।

१. आक्रमणावस्था—(Stage of Invasion) अकस्मात् आक्रमण, सामान्य बेपनसह, शीत २४ घण्टे तक बार बार लगना।

पीठ और पैरमें, विशेषतः साँथलोमें वेदना, शिरदर्द, उबाक, कभी वमन, निद्रानाश, प्रारम्भसे ही बलका ह्रास, प्रारम्भमें मुखमण्डलपर तेजी (Faciesly-Phosa), शारीरिक उत्ताप आक्रमणकालसे ही अधिक रहना, फिर धीरे धीरे बढ़ना। ५ वें दिन अत्यधिक हो जाना, नाड़ी द्रुत। जिह्वा काँटेदार, मलावरोध और श्वासनलिका प्रसेक आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

२. **उत्तेजनावस्था और पिटिकावस्था** (Stage of Nervous Excitemrent and Eruption) — इस अवस्थामें पिटिका निकल आती हैं। व्याकुलता बढ़ती है। और प्रलाप उपस्थित होता है। पिटिका सामान्यतः ४ थे या ५ वें दिन निकलती हैं। प्रारम्भमें काँख और मणिबन्धपर, फिर उदरपर, पश्चात् छाती के अन्त भागतक फैलती हैं। क्वचित् मुँह और कण्ठपर निकलती हैं। इसे डाक्टरीमें मलबेरी रेश (Mul berryrash) कहते हैं। इसका उपक्रम बहुधा २ प्रकारसे होता है।

पहिले प्रकारमें बाह्य त्वचा के नीचे चित्र विचित्र, प्रसारित अनियमित और मलिनरंगकी; दूसरी क्षुद्र पिटिकाएँ, जो कद और आकारमें अति अनियमित अनिश्चित बाह्य सीमायुक्त, किञ्चित् उन्नत गुलाबी या श्याम रंगकी होती हैं। वे प्रथमावस्थामें दबनेपर अदृश्य होती हैं और उत्तरावस्थामें पिस्सू काटनेके समान कितनीक रक्तमय भासतीं हैं। सामान्यतः संख्यामें अत्यधिक होती हैं। २-३ दिनतक प्रतीत होती हैं। बालकोंमें सामान्यतः रोमान्तिका के सदृश भासती हैं। पिटिकाओंका उन्नत होना, यह श्वासनलिकाप्रदाह और मस्तिष्ककी निश्चेष्टताका सूचक है। उस समयसे रोगी प्रलापकावस्थासे अभिभूत माना जाता है। फिर रोगीकी देहमें से एक प्रकारकी दुर्गन्ध आती है, जो चूहोंकी गन्धसे मिलती जुलती होती है।

इस अवस्थामें प्रथम सप्ताहके अन्तमें शिरदर्दके स्थान पर मन्द मन्द प्रलाप उपस्थित होता है। यह विशेषतः रात्रिको होता है। रोगी बारम्बार

व्याकुलता, चंचलता और अति उद्दण्डता दर्शाता है। अन्य रोगियोंमें तन्द्रा आती है। बलका ह्रास अधिक होता जाता है। जिह्वाशुष्का और फटी-सी भासती है। उत्ताप १०५° तक और नाड़ी द्रुत होती है। पेशाब-की उत्पत्ति बन्द हो जाती या अति कम हो जाती है।

. शक्तिपातावस्था-(Stage of Nervous Prostration) —शक्ति १० से १४ दिन तक वहुत कम हो जाती है। चित्त न लगना, तन्द्रा, बेहोशी और मूर्छा, मांसपेशियोंमें कम्प और निन्द्रानाशसह अचेतना, ये लक्षण भासते हैं। इस अन्तिमावस्थाका आक्रमण प्रारम्भमें हो जाय, तो वह अरिष्ट माना जाता है।

इस अवस्थामें पिटिकाएँ विशेष गहरे रंगकी होती हैं और पिस्सू काटनेके समान केन्द्रमें द्रवमय बनतीं हैं। पिटिकाका समय सामान्यतः ७ से १० दिन तक है। बारबार हृदयकी निर्बलता, नाड़ी तेज और मृदु, एवं जिह्वा शुष्क और आकुंचित होती है। ओष्ठ और दांतोंपर मैल संगृहीत होता है तथा बधिरता आता है।

कितनेक रोगियोंकी कनीनिकाका छिद्र अति छोटा सुईके छिद्र जितना तथा नेत्र अधखुले होते हैं। किसीमें कामुकता ऊत्पन्न होती है, किसीको गम्भीर हिक्का होती है।

गम्भीरावस्था—(१) निद्रानाशसह बेहोशी, नेत्र खुले रहना, कनीनिका प्रसारित और बुद्धिका बिल्कुल लोप हो जाना आदि प्रबल लक्षण भासते हैं। (२) फुफ्फुसोंमें रक्तसंग्रह। (३) सार्वाङ्गिक अत्यन्त क्लान्ति और हृदयावरोध।

उपद्रव और भावी क्षति—कपोल प्रदाह (Parotitis) कोथ-मय मुखपाक (**Noma**), ये बार बार उपस्थित हो जाते हैं। श्वासप्रणा-लिकाप्रदाह; गम्भीरावस्थामें फुफ्फुसकोथ, कभी वृक्कप्रदाह, विद्रधि, कोथ पक्षवध और क्वचित् कुछ कालके लिये उन्माद। यदि इस रोगकी प्राप्ति

सगर्भाको होती है, तो गर्भपात हो जाता है। इस रोगमें अनेकों को शय्याव्रण भी हो जाता हैं।

मृत्यु—बहुधा १२ से २० प्रतिशतको, किन्तु सेवा, चिकित्सा, आयु जनपदव्यापकता और चारों ओरके फैलावसे इसमें विभिन्नता हो जाती है। बालकोंमें मृत्यु २ से ४ प्रतिशत। ४० वर्ष की बड़ी आयुवालोंमें मृत्यु ५० प्रतिशत। मृत्यु विशेषतः दूसरे सप्ताहमें सेन्द्रिय विष प्रकोपज त्रिदोष (Toxaemia) से होती है। तीसरे सप्ताहमें मृत्यु फुफ्फुस विकृतिसे होती है।

रोगविनिर्णय – जनपद व्यापी प्रकारका निर्णय सामान्य है। पिटिका निकलनेके पहिले कुछ दिनों तक निश्चय करनेमें कठिनता रहती है। इस रोगके कितनेक लक्षण आन्त्रिकज्वर, रोमान्तिका और पुनरावर्तक ज्वरमें मिलते हैं। अतः इनका प्रभेद करनेकी आवश्यकता है।

१. **आन्त्रिक ज्वर**—प्रलापकमें अकस्मात् आक्रमण, शीतकम्प, निर्बलता और मस्तिष्क विकृतिके लक्षण होते हैं अतिसार उदरकी मृदुता और प्लीहावृद्धि नहीं होती, उदासीनता रहती है तथा पिटिकामें प्रभेद रहता है। फिर भी रोग विनिर्णय अनेक बार कठिन हो जाता है।

रोमान्तिका—इसमें प्रसेकज लक्षण होते हैं। कोपलिकके लक्षण भासते हैं। पिटिकाएँ तेजस्वी होती हैं; किनारा अधिक स्पष्ट होता है और मुखमण्डलपर चिह्न होते हैं। ये सब लक्षण-चिह्न इस ज्वरमें नहीं होते।

२. **आकस्मिक उपशमावस्था**—(Crisis) इस रोगमें अति विशेषतः १४वें दिन उपशम होता है। रोगी निद्राधीन हो जाता है। फिर जाग्रत होनेपर अत्यन्त निर्बलता, किन्तु मनमें प्रसन्नता भासती है। उत्ताप कुछ घण्टोंमें गिर जाता है। लक्षण साफ हो जाते हैं। आरोग्यावस्था शीघ्र बढ़ती है। पुनः आक्रमण कभी नहीं होता। क्वचित् उपशम क्रमशः होता है।

३. **पुनरावर्तक ज्वर** - रक्तपरीक्षासे निर्णीत हो जाता है।

सूचना—आकस्मिक उपशम होनेपर अति सम्हाल रखना चाहिये। अन्यथा हृदयावरोध होकर मृत्यु हो जाती है।

विशेष लक्षणः—

उत्ताप—१ से ५ वें दिनतक दृढ़तासह बढ़ता है। प्रातःकाल कुछ उपशम होता है। सबसे अधिक ५ वें दिन १०३° से १०६° तक। पिटिका निकलनेपर भी उपशम नहीं होता। १२ से १४ घण्टेमें अन्तिम दिनको पतन होता है अशुभ प्रकारमें १०८° से १०९° तक बढ़ जाता है।

फुफ्फुस—श्वासनलिकाप्रसेक प्रथमावस्थामें। फिर रक्तसंग्रह, फूफ्फुसप्रकोप में मृत्युसंख्या अधिक।

हृदय—नाड़ी बारम्बार द्रुत और निर्बल; कदाचित् डाईक्रोटिक, आकुंचन ध्वनि सामान्य, कभी कभी प्रसारण और पतन।

मूत्र—मूत्रमें शुभ्र प्रथिन जाती है। कभी कभी वृक्क-प्रदाह होता है।

रक्त—लसीकाणु सामान्य १२००° से १५००° तक।

प्लीहा—कभी कुछ समय के लिये वृद्धि।

रोग की पृथक्ता—मृदु प्रकार में रोग मुक्ति १० दिन में होती है, विशेषतः बालकोंमें। इस रोगमें रक्त संक्रामक होता है। घातक प्रकारोंमें २ या ३ दिन में अशुभ परिणाम आता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

यदि रोगीके मस्तिष्कपर या वस्त्रों में जुएँ हैं, तो सबके पहिले जुओंको नष्ट करना चाहिये। जुओंको नष्ट करनेके लिये शामको बालोंके चारों ओर वेसलीन या घी लगा लेवें। फिर मिट्टी के तेल या ससाफ्रास तेल (Sassafrass oil) में मलमल का कपड़ा या रूईके फोहेको भिगोकर बालोंपर घिसें। पश्चात् शिरपर लिण्ट रूई भरी हुई गद्दी बाँध देवें। सुबह सूक्ष्म कंघीसे बालोंको संवारे। सब मरी हुई जुएं निकाल जायगी। लीखे भी

नष्ट हो जायँगी। बादमें शिरको धो देवें। इस तरह सिरकी (Vineger) लगानेसे भी लीखें नरम होकर निकल जाती हैं।

रोगीको स्वच्छ वस्त्र पहनाना चाहिये। रोगीको प्रकाश और वायुवाले मकानमें रखें।

पूर्व रूप प्रतीत होने पर यदि वमनकारक औषध और विरेचन देकर आमाशय और अन्त्रको शुद्ध कर लिया जाय, तो रोग विशेष उग्रता नहीं दर्शा सकता।

इस रोग में प्रायः मलावरोध रहता है। अतः एरण्ड तैल या ग्लिसरीनकी पिचकारी द्वारा उदर शुद्धि कराते रहना चाहिये।

रोज सुबह दन्तमंजन लगाकर या कुल्ले कराकर दाँत और मुँहको साफ करते रहना चाहिये।

इस रोगमें उत्ताप वृद्धि होकर मस्तिष्कको हानि पहुँचाती है अतः मस्तिष्कपरसे बाल कटवाकर बर्फकी थैली या शीतल जलकी पट्टी रखवानेका प्रबन्ध करना चाहिए। डाक्टरीमें ज्वरकी वृद्धि होनेपर स्पञ्ज या गीले वस्त्रसे देहके अवयवोंको पोछते हैं। कितनेक चिकित्सक मस्तिष्कपर मक्खन रखते हैं और कोई नाभिपर काँसीके बर्त्तन से शीतल जलधारा डालते हैं यदि रोगी ज्वरवेग सहन कर सकता है, तो इस तरह बलात्कारसे दमन करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। सामन्यतः २--३ दिन पर देहके सब अवयवोंको गीले कपड़ेसे पोछकर विषको निकाल दिया जाय तो प्रस्वेद बाहर निकालनेमें सुविधा रहती है।

रोगीको सुबह शाम दूध देवें और दोपहरको मोसम्बीका रस पिलाते रहें; या केवल मोसम्बी के रस पर रखें। अन्न और मांस आदि पदार्थ नहीं देना चाहिये। (डॉक्टरी मतानुसार मांसरस देनेमें बाधा नहीं है।) आयुर्वेदके मतानुसार मांस रससे भी अन्त्र दूषित होती है। फिर रसका शोषण रक्तमें होनेपर रक्त विकृत बनता है। रोगीको जल गरम करके

शीतल किया हुआ देवें। जल जितना पीना चाहे उतना पिलावें, जल पिलानेमें संकोच न करें।

यदि मूत्रावरोध हो गया हो तो रबरके कैथीटरसे पेशाबको निकालते रहना चाहिये। अनिद्रा रूप उपद्रव हो, तो सूतशेखर और कामदूधा देना चाहिये। डाक्टरी मतानुसार अहिफेम प्रधान औषध विशेष उपयोगी है। अहिफेम का अर्क देनेपर बार बार बस्ति देकर उदरको शुद्ध करते रहना चाहिये।

इस रोगमें तीव्र ज्वरशामक औषध नहीं दी जाती। ज्वर-विषका पाचन कराने और शक्ति का संरक्षण करने वाली औषध मुख्यतः दी जाती है। इस रोगमें प्रयोजन अनुसार रोगीको उत्तेजक या अवसादक औषध देनी चाहिये। हृदयकी शिथिलता होनेपर उत्तेजक और नाड़ी सबल वेगपूर्वक हो और ज्वर अधिक हो, तब शामक औषध देवें।

सामान्यतः प्रथम सप्ताहमें उत्तेजक औषधि नहीं दी जाती। पहिले से उत्तेजक औषध का प्रयोग करनेपर अपकार होनेका डर अधिक रहता है। फिर भी हृदय शिथिल हो, हृदयकी पहिली ध्वनि क्षीण हो नाड़ी क्षीण और द्रुतगामिनी हो, तो उत्तेजक औषधि देनी चाहिये। किन्तु एक ही मात्रा देनेपर उत्ताप वृद्धि होकर अस्थिरता बढ़ जाय तो उत्तेजक औषध बन्द करदें। यदि प्रथम मात्रासे क्लान्ति और प्रलाप शमन हो, हृदय और नाड़ीकी गति सबल बने, जिह्वा आर्द्र हो और रोगीको निद्रा आने लगे तथा जागनेपर स्फूर्ति का बोध हो तो उत्तेजक औषधि अथवा शराब या मद्यार्क सम्हालपूर्वक कम मात्रा में दे सकते हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सा अनुसार आन्त्रिक ज्वरके समान लक्ष्मी नारायण प्रवाल पिष्टी, मधुरान्तक वटी देते रहनेपर बहुधा आपत्ति नहीं आती। रोगविष शनैः शनैः पचन होकर ज्वर शमन हो जाता है और अधिक निर्बलता भी नहीं आती।

शय्याक्षत हो जाय तो उसका उपचार तुरन्त करना चाहिये। उसपर घी या तैल स्पिरिटका मिश्रण लगावें। अथवा जातिपत्र्यादि घृत लगावें। डाक्टरीमें जिंक बोरिक पाउडर छिड़कते हैं।

यदि फुफ्फुसविकृतिरूप उपद्रव हो जाय, तो फुफ्फुसपर अलसीकी पुल्टिस बाँधे। इसका विशेष उपचार श्वास प्रणालिका प्रदाह (ब्रांको न्यूमोनिया) चिकित्सामें लिखें अनुसार करें।

रोग शमन होनेपर हृदयपौष्टिक औषध—लक्ष्मीविलास रस, नवजीवन रस, जवाहर मोहरा या अन्य हृदय पौष्टिक औषध देवें।

डाक्टरीमें इस रोगकी कोई विशेष औषध नहीं है। वे स्वच्छता, ज्वर विष पचनके लिये विविध औषधियाँ देनेकी और शरीर पोषणके लिये सम्भाल रखनेकी सूचना करते हैं।

प्रलापक ज्वर चिकित्सा।

लक्ष्मी नारायणरस, सूतशेखर, कस्तूरीभैरव और अश्वकंचुकी उपकारक हैं।

इनमें से लक्ष्मीनारायण रस १--१ रत्तीका उपयोग प्रवालपिष्टी २--२ रत्ती और मधुरान्तक वटी २--२ रत्तीके साथ दिनमें २ बार सुबह शाम किया जाय और दोपहरको प्रवाल-पिष्टि और मधुरान्तक वटी दी जाय तो विघ्न आये बिना ज्वरविष शनैः शनैः पचन होकर रोग शमन हो जाता है।

निद्रा न आती हो, शामक औषधकी आवश्यकता हो तो लक्ष्मीनारायणके स्थानपर सूतशेखर या कस्तूरीभैरव दिया जाता है। प्रलाप अधिक होनेपर तगरादि कषाय अनुपानरूपसे देना विशेष हितकारक है।

तगरादि कषाय—तगर, असगंध, पित्तपापड़ा, शंखपुष्पी, देवदारू, कुटकी, ब्राह्मी, जटामाँसी, नागरमोथा, अमलतास का गूदा, छोटी हरड़ और मुनक्का, इन १२ औषधियोंको समभाग मिलाकर जौ कूट चूर्ण करें। इसमेंसे ६ तोलेका क्वाथ ८ गुणे जलमें करें। आधा जल शेष रहनेपर उतारकर छान लेवें। इसके ३ हिस्से कर आवश्यकतानुसार २--२

घण्टेपर ३ बार पिला देवें। या सूतशेखर अथवा कस्तूरीभैरव रसके साथ अनुपानरूपसे देवें।

उपयोग—यह कषाय उत्तम शामक औषधि है। सन्निपातमें उत्पन्न वात-प्रधान, पित्तप्रधान और वात-पित्त प्रधान प्रलापको तत्काल शमन करता है; अन्त्रका शोधन करता है; मस्तिष्कको शान्त बनाता है तथा वात संस्थापर शामक असर पहुँचाकर निद्रा ला देता है।

उदरशुद्धि योग्य न होती हो तो अश्वकंचुकी या ज्वर केसरी इनमेंसे एक औषधि दी जाती है। अश्वकंचुकी कुछ दिनों तक निर्भयतापूर्वक दे सकते हैं; अतः उसका प्रयोग करना विशेष अनुकूल रहता है।

२ **निद्रा लाने के लिए**—सूतशेखर देनेपर भी निद्रा न आवे तो निम्न अफीम मिश्रित कस्तूर्यादिवटी देवें तथा घी या एरण्ड तैलको कांसीकी थालीमें कांसीकी कटोरीसे घोटकर अञ्जन करें।

कस्तूर्यादि वटी—कस्तूरी* १॥ माशा, कपूर, भूनी हींग और अफीम ३-३ माशे तथा खुरासानीअजवायन १ तोले लेवें। सबको शहदमें मिला खरलकर १--१ रत्तीकी गोलियाँ बना प्रवालपिष्टीमें डाल देवें। इनमेंसे १--१ गोली जलके साथ दिनमें १ या २ बार दी जाती है। सन्निपातमें आवश्यकतापर देवें। उन्माद और निद्रानाशमें रात्रिको सोनेके २ घण्टे पहिले देवें। इसके सेवनसे मस्तिष्कपर शामक असर पहुँचता है और रोगी शान्त बन जाता है।

मलावरोधको दूर करनेके लिए आवश्यकतापर ज्वरकेसरी, त्रिवृदृष्टक मोदक पंचसकार या त्रिफलाका क्वाथ (निशोथके प्रक्षेपसह) देवें अथवा ग्लिसरीन या एरण्ड तैलकी पिचकारीसे उदरशुद्धि करें। पिचकारी का प्रयोग करना, यह विरेचनकी अपेक्षा अधिक हितावह है।

३ **बेहोशी अधिक होनेपर**—श्वासकुठार रसका नस्य देवें।

---

* कस्तूरीमें सूक्ष्म बाल मिले रहते हैं, उनको अलग कर देना चाहिये।

(Tick bite fever—Fruptive fever)

आ. चिचड़ी जन्य प्रलापक ज्वर।

व्याख्या – इसकी उत्पत्ति कुत्ते के देहपर रहने वाली चिचड़ीकेसे काटने से होती है। इस रोगके दो प्रकार हैं। १. सौम्य या क्षुद्र (Mild or abortive) और २. पूर्ण लक्षणयुक्त। इनमेंसे भारतमें कुमायूं प्रान्त, सीमाप्रदेश आदिमें सौम्य प्रकार प्रतीत होता है।

लक्षण—चिचड़ीके काटनेपर प्राथमिक क्षत और रसप्रणालियोंका प्रदाह प्रतीत होता है। रोग पूर्णरूप धारण कर ले तो ८-१० दिनतक ज्वर शिरदर्द, पाँचवें दिन पिटिका निकलना, कण्ठ अकड़ जाना, नेत्रकी श्लैष्मिककला प्रदाह (आंख आना) आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। कभी मस्तिष्ककलाप्रदाह भी हो जाता है।

चिकित्सा—तात्त्विक प्रलापकके समान। यह रोग सरलतासे शमन हो जाता है।

इ. पिस्सूजन्य प्रलापक ज्वर।

(Flea Typhus-Endenic Typhus)

व्याख्या – यह संभवतः तात्त्विक प्रलापका सौम्य प्रकार है। किन्तु यह जुओंद्वारा उत्पन्न नहीं होता एवं न जनपद व्यापीरूप धारण करता है। यह विकीर्णरूपसे प्रतीत होता है। इसको शोध न्यूयार्कमें ब्रिल साहिबने की है। अतः इस रोगको ब्रिलका रोग कहते हैं। यह रोग पिस्सूसे प्राप्त होता है। अतः पिस्सूजन्य प्रलापक ज्वर कहलाता है। यह विश्वव्यापी है। इसका वाहन चूहे हैं। यह रोग एक मनुष्यसे दूसरेको कदापि नहीं होता।

यद्यपि चूहे प्लेगकी उत्पत्तिमें कीटाणुओंका संक्रमण करानेमें हेतु हैं, किन्तु उस रोगमें चूहे मर जाते हैं और इस रोगमे संक्रमण अस्थायी होता है और फिर पिस्सू भी छू नहीं जा सकते तात्विक प्रकार शीतकालमें फैलता है, किन्तु इसकी उत्पत्ति उष्ण ऋतु में होती है।

लक्षण—तात्त्विक प्रलापकके समान, किन्तु सौम्य। इसकी संप्राप्ति विशेषतः परिपक्वावस्था और युवावस्थामें होती है। आक्रमण अकस्मात् होता है। यह विकीर्ण भावसे प्रतीत होता है। शारीरिक उत्ताप कुछ बढ़ता है। आकस्मिक उपशम १४ दिनमें होता है। इस रोगमें पिटिकाएं पहिले धड़पर—हाथ-पैरकी संधि स्थानपर रही हुई पेशियोंपर होती हैं। कभी पिटिकाएं मुखमण्डल, हथेली और पैरके तलुओंमें भी निकलती हैं। इस रोगमें मृत्यु संख्या ५ प्रतिशत होती है।

चिकित्सा—तात्त्विक प्रलापक ज्वरमें लिखे अनुसार।

२५ ग्रन्थिकज्वर

(प्लेग Plague)

यह एक जनपदव्यापी तीव्र संक्रामक और विनाशकारी रोग है, जिसका आक्रमण मनुष्य और अनेक निम्न श्रेणीके जानवरोंमें होता है। इसमें ज्वर ग्रन्थिप्रदाह (Adenitis), अपनी तीव्रगति, अत्यधिक मृत्युसंख्या और एक विशिष्ट प्रकारके कीटाणु और (बेसिलस पेस्टिस (Bacillus pestis) की लसीकाग्रन्थियां, अन्त्र और रक्तमें उपस्थित होती हैं। इससे पीड़ित होनेवाले अधिकतर रोगियोंमें वंक्षण, कुक्षी या गर्दनपर ग्रन्थीशोथ हो जाता है। इसका संक्रमण चूहे और उन पर रहनेवाले पिस्सूओं द्वारा होता है।

निदान—सामान्यतः यह रोग मलिनता, परस्पर स्पर्शास्पर्श, एक साथमें भोजन करने तथा अनेक पुरुषोंके एक साथ रहनेसे होता है। विशेष निदानरूपसे यह रोग कीटाणुओंके रक्तमें प्रवेश होनेपर होता है। परीक्षा करने पर इस रोगके कीटाणु रक्तमें स्पष्टरूपसे देखनेमें आते हैं। ये

कीटाणु हाथ पैर आदिसे चर्म और श्वासके द्वारा किसी रोगीके वस्त्रादिका प्रयोग करनेसे दूसरेकी देहमें प्रवेश कर जाते हैं।

प्रारम्भमें यह रोग विशेषतः चूहोंद्वारा ही फैलता है। बीमार चूहोंके शरीर पर पिस्सू रहते हैं; वे चूहोंको काटते हैं, जिससे इस रोगकी उत्पत्ति हो जाती है। ये रोगजन्तु (पिस्सू) मनुष्योंके वस्त्रमें लगकर एकसे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इस तरह ग्रन्थिक सन्निपातके लिये पिस्सू (Flea) वाहन हैं।

यह रोग पहिले चूहेको होता है और फिर बीमर चूहोंके विषसे मनुष्यों और बिल्लियोंको लगता है। फिर वह विषप्रकोपज प्लेगका रूप धारण करता है।

कितनेक पिस्सू प्लेगसे मृत्युप्राप्त चूहेके शरीर पर रहते हैं, वे मनुष्योंको काटते हैं फिर मानव देहमें कीटाणुओंका प्रवेश होता है। एवं जो चूहे मनुष्यके माँस, मल और संक्रामक आहारके भक्षक हैं, उनकी देहपर रहनेवाले पिस्सू चूहेसे मनुष्योंमें कीटाणु ले जाते हैं। इससे उत्पन्न होने वाला रोग ग्रन्थिकज्वर—ब्युबोनिक प्लेग बनता है।

मनुष्योंसे विष मनुष्यको मिलना, ऐसा तो अति क्वचित् बनता है। कितनेक पिस्सू (Pulex Irritants) जो मनुष्य, कुत्ते और बिल्ली आदिके देहमें रहते हैं। बहुधा वेही एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यमें विष पहुँचाते हैं। पीनेका जल, इस जलकी स्पष्ट संप्राप्ति नहीं करा सकता।

जनपद व्यापी प्रकार सर्वदा अन्य पशुओ तथा वृक्ष और जमीनमें रहनेवाले टाली आदि जीवद्वारा चूहोंमें फैलता है और फिर वह मनुष्योंको प्राप्त होता है।

न्युमोनिक प्लेगका प्रसार मनुष्यों द्वारा ही होता। बीमार मनुष्योंके थूकमें उसके कीटाणु बड़ी संख्यामें प्रतीत होते हैं। यह रोग मनुष्योंके श्वासोच्छ्वास और थूकद्वारा स्वस्थ मनुष्यों में पहुँचता है, श्वास लेनेके साथ

कीटाणुओंका श्वासनलिकमें प्रवेश हो जाता है, फिर शनैः शनैः अपनी सत्ता जमाकर रोगोत्पत्ति करता है। अतः तब रोग अति जल्दी फैलने लगता है। इस रोगके कीटाणुओंका जीवन देहसे बाहर अति कम पाया जाता है। इनको रहनेके लिये मूषक-पिस्सू आदि कीटोंकी आवश्यकता नहीं है। यह रोग जब जनपदव्यापी रूप धारण करता है तब जल्दी ही विध्वंसक रूपधारण करलेता है।

देशव्यापी संक्रमणके न होने या गाँठ होनेसे पहिले इस रोगका निर्णय करना कठिन होता है। गाँठ और उपद्रव स्पष्ट हो जानेपर निदान सरलतासे हो जाता है। रोगके चारों ओर फैलनेसे और प्रारम्भिक चिह्नोंपरसे भी निदान कर लिया जाता है।

न्युमोनिक प्लेगमें अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा कीटाणुओंके प्रत्यक्ष होनेपर निर्णय हो सकता है। कीटाणुओंकी शोध बिना, केवल कल्पना मात्र हो सकती है। गाँठवाला प्लेग बहुधा गन्दे स्थानमें रहनेवालोंको ही अधिक होता है और स्वच्छ वायुमें रहनेवालोको कम होता है। किन्तु न्युमोनिक प्लेगका आक्रमण सबपर हो सकता है; वह निर्धन-धनिक, स्त्री-पुरुष और बाल-वृद्ध सबमें समान रूपसे फैलता है।

संप्राप्ति—ब्यूबोनिक प्लेग (गाँठवाली प्लेग) में लसीका ग्रन्थियोंकी वृद्धि हो जाती है। सामान्यतः काँखकी ग्रन्थि (Axillary), या वंक्षणीय (Inguinal) ग्रन्थि बढ़कर गाँठ बन जाती है, उसे मूलभूत ग्रन्थि (Primary Bubo) संज्ञा दी है। फिर विषप्रकोप होकर उत्तरकालमें और ग्रन्थि जो कम विस्तारवाली हो जावें उनको गौण ग्रन्थि (Secondary Buboes) कहते हैं। इन ग्रन्थियोंका प्रदाह होता है और इनके चारों ओर शोथ हो जाता है तथा किनारेपर रक्तस्राव होने लगता है। इस रोगमें यकृत्, हृदय, प्लीहा और वृक्कस्थान दूषित हो जाते हैं। विष प्रकोप अधिक होनेपर इनमें अपक्रान्ति जनित परिवर्त्तन भी हो जाता है।

गाँठमें पूयपाक भी अनेक बार हो जाता है; किन्तु वह दूसरे सप्ताहके

प्रारम्भतक नहीं होता और शीघ्र गम्भीररूप धारण नहीं करता। रक्तस्राव होजाने पर और केन्द्रिक ध्वंस अन्य अवयवोंमें होना, यह साधारण लक्षण है। एवं श्याम शोथ भी अवयवींपर हो जाता है न्युमोनिक प्रकारमें रचना परिवर्त्तनयुक्त फुफ्फुस प्रणालिका प्रदाह और रक्त घनीभवन तथा श्वासनलिकाकी ग्रन्थियोंकी वृद्धि, ये विकृति उपस्थित होती हैं।

विषप्रकोपज प्लेगमें विशेषतः विषप्रकोपज सन्निपातके लक्षण और रक्त स्राव प्रतीत होते हैं। प्लीहा सामान्य बढ जाती है। त्वचापर रक्तपिटिकाँ होकर उनमेंसे या विस्तृत भागमेंसे रक्तस्राव होता है। गाँठके चारों ओरकी त्वचाका रंगबदल जाता है।

इस विषप्रकोपज प्रकारमें लसीका ग्रन्थियाँ विषको नहीं रोक सकतीं। विष बलात्कारसे सर्वत्र फैल जाता है। इस हेतुसे लसीका ग्रन्थियोंका शोथ नहीं होता। यदि किसी ग्रन्थिका शोथ हो जाय तो वहाँ पूयोत्पत्ति हो जाती है।

इस व्याधिमें रक्त-प्रवेशित (आगन्तुक) विष या कीटाणु और भीतरके यन्त्रोंकी विकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेके लिये शारीरिक उष्णता (ज्वर) की वृद्धि हो जाती है।

चयकाल—२-५ या १० दिन में।

रोगकाल—पूर्ण स्वास्थ्यकी प्राप्ति होनेमें लगभग १ मास लग जाता है।

लक्षण—इस रोगसे पीड़ित होनेवाले अधिकतर रोगियोंमें किसी प्रकारके पूर्वरूप प्रगट नहीं होते। परन्तु कुछ रोगियोंमें निश्चित निम्न पूर्वरूप प्रगट होते हैं। शारीरिक और मानसिक अवसाद, क्षुधामान्द्य (Anorexia), शाखाओंमें दर्द, शीतकी अनुभूति, सिर चकराना, हृदयस्पन्दन और कभी कभी आगे उत्पन्न होनेवाली ग्रन्थिके स्थानपर मंदपीडा।

प्रकार—यह चार प्रकारका होता है। अ. ग्रन्थिक प्लेग—(Bubonic Plague) आ. विषप्रकोपज—(Septicaemia)

इ. फुफ्फुस प्रदाह सहित—(Pneumonic) ई. मस्तिष्कावरण प्रदाहज (Men- ingitis)

अ. ग्रन्थिक प्लेग।

आक्रमणावस्था—चारों प्रकारमें से यह सबसे अधिक होनेवाला प्रकार है। इसमें चयकाल अत्यधिक कम (२४ घण्टे) होता है। लगभग २४ घण्टे पश्चात विशिष्ट प्रकारकी ग्रन्थि या ग्रन्थियाँ निकल आती हैं। साधारणतः ७० प्रतिशत रोगियोंमें इन ग्रन्थियोंकी उत्पत्ति दक्षिण वंक्षणसन्धिके अन्दरकी तरफ सांथलमें होती है। २० प्रतिशतमें कुक्षी और शेष १० प्रतिशतमें (मुख्यतः बच्चोंमें) अधोहन्वी (Submaxillary) लसिकाग्रन्थि शोथयुक्तः हो जाती है और गलग्रन्थियां भी प्राथमिक संक्रमणका मुख्य स्थान हो सकती है। अक्सर एक ही ग्रन्थि शोथयुक्त होती है परन्तु लगभग $\frac{1}{7}$ रोगियोंमें ऐसा भी देखा गया है कि शरीरके दोनों पार्श्वमें यह समान रूपसे उत्पन्न होती है ग्रन्थियोंका आकार सर्वदा समान ही नहीं होता हैं पीड़ा अत्यधिक होती है, परन्तु कभी कभी बिल्कुल ही नहीं होती।

ज्वरावस्था—उपरोक्त आक्रमणावस्था बिना तीव्र ज्वरके एक या दो दिनतक रहती है। परन्तु प्रायः ऐसा देखा गया है कि, यह अत्यन्त कम समयतक रहती है या बिल्कुल ही उत्पन्न नहीं होती। विशेषतः इसका आक्रमण अकस्मात् बिना पूर्वरूप प्रगट हुये ही हो जाता है। ताप शीघ्रतासे १०३° या १०४° अथवा यहाँ तक कि १०७° फै० डी० तक पहुँच जाता है। तापवृद्धिके साथ ही नाड़ीकी गतिमें भी वृद्धि हो जाती है। ताप साधारणतः ३ या ४ दिन पश्चात् कम होकर पुनः वृद्धिको प्राप्त होता है। इस अवस्थामें त्वचा सूखी (Dry) और दाहयुक्त होती है; नेत्र लाल, भीतर घुसे हुये और गति विहीन होते हैं; श्रवणशक्तिका ह्रास। जिह्वा श्लेष्मय श्वेतमलसे आवृत्त, जो कि शीघ्रतासे सूखती है और भूरी या पूर्णतः काली हो जाती है।

दाँत, ओष्ठ और नासाग्रपर मल (Sordes) जम जाता है। तीव्र तृषा, अत्यधिक स्वेद ; अत्यधिक दुर्बलताके कारण रोगीका स्वर अत्यधिक मंद हो जाता है। कभी कभी रोगी जोर जोरसे या अत्यन्त मन्दस्वरसे प्रलाप करने लग जाता है।

संन्यास, आक्षेपकी उत्पत्ति ; मूत्रावरोध ; वमन (कुछ रोगियोंमें तो अत्यधिक), कुछ रोगियोंमें मलावरोध, जबकि कुछ अतिसारसे पीड़ित होते हैं। साधारणतः प्लीहा और यकृत् वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं। मूत्रावरोध, परन्तु इसमें एल्ब्यूमिनके सूक्ष्म अंशके अतिरिक्त कुछ नहीं होता। नाड़ी प्रथम तो परिपूर्ण होती है परन्तु शीघ्रतासे अपनी तनाव शक्ति खोकर क्षुद्र, तीव्रगतियुक्त और सविराम बन जाती है। उत्तरावस्थामें हृदय विस्फारित हो जाता है और हृदयका प्रथम शब्द अत्यन्त मंद या एकदम अनुपस्थित हो जाता है। गम्भीर अवस्थामें श्लैष्मिककलामें रक्तस्राव भी प्रतीत किया जा सकता है। रक्तमें अनेक केन्द्रयुक्त श्वेताणुओंकी वृद्धि होती है।

रोगशमनावस्था—साध्यावस्थाके रोगियोंमें जल्दी या देरसे ; ग्रन्थि उत्पत्तिके पश्चात् या बिना ग्रन्थि उत्पन्न हुये ही, स्वेदोत्पत्तिका आरम्भ हो जानेके साथ ही शारीरिक लक्षणोंका शमन होने लग जाता है। जिह्वा पुनः आर्द्र होने लग जाती है और ताप व नाड़ीगति न्यून व प्रलाप भी मिट जाता है। ग्रन्थि क्रमशः बढ़ती रहती है और कुछ समय पश्चात् इसमें चीरा न लगाया गया तो, पूयोत्पत्तिके कारण नरम होकर स्वयमेव फूट जाती है। फूट जानेपर कभी कभी अत्यन्त तीव्र दुर्गन्धयुक्त पीप निकलती है। कुछ रोगियोंमें सप्ताहों तक पूय निकलता रहता है। जबकि कुछमें वह बिना फूटे ही कुछ सप्ताहों या महीनोंमें वह स्वयमेव बैठ जाती है।

कुछ रोगियोंमें देखा गया है कि उनकी त्वचामें तरलमय कोषके चकत्ते उत्पन्न हो जाते हैं जो धीरे-धीरे काफी विस्तारको प्राप्त हो जाते हैं। इनकी उत्पत्ति या तो प्राथमिक या अन्तिमावस्थामें होती है।

उपद्रव—कभी-कभी प्राथमिक ज्वरके पश्चात् पूयोत्पादक अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसमें विद्रधि, कर्णमूलिक ग्रन्थि प्रदाह (Parotitis) या गौण दन्त प्रदाह (Secondary dentinitis) उत्पन्न हो जाता है। आक्षेपकालमें हृदयावसाद भी हो सकता है। गौण फुफ्फुसप्रदाहक प्लेगकी उत्पत्ति भी सम्भव है, परन्तु रोगी स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।

अनेक प्रकारका रक्तस्राव भी उत्पन्न हो सकता है। गर्भावस्थामें स्त्रीपर इसरोगका आक्रमण होनेसे गर्भस्राव हो जाता है और ऐसी अवस्थामें उत्पन्न गर्भमें भी प्लेगके लक्षण प्रतीत किये जा सकते हैं।

इससे पीड़ित रोगीकी मृत्यु किसी भी समय हो सकती है। परन्तु साधारणतः वह तीसरे और पाँचवें दिनके मध्यमें होती है। मृत्युके समय जीवनीय शक्तिका अधिक ह्रास, हृदयावसाद, आक्षेप, सन्यास, अन्तःरक्त स्राव या पश्चात्में दीर्घ कालतक ज्वर या पूयोत्पत्तिसे पीड़ित होनेके कारण या गौण रक्तस्राव आदि, मारक लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

विषप्रकोपज प्लेग—इस प्रकारमें रोगीकी जीवितावस्थामें लसिका ग्रन्थियां नहीं बढ़ती हैं; हालांकि मृत्युके पश्चात् सम्पूर्ण शरीरमें वह बढ़ जाती हैं। इस रोगमें विषाक्तताका परिमाण और रोगकी तीव्रता रक्तमें प्रवेश करने वाले रोगोत्पादक कीटाणुओंकी संख्यापर निर्भर करती है। रोगीकी जीवितावस्थामें इन कीटाणुओंकी प्रतीति उसके रक्तमें सरलतासे की जा सकती है। रोगारम्भसे ही रोगी क्लान्त, पीला और संज्ञाशून्य होता है। इस प्रकारमें ज्वर बहुत कम (१०० फै० डी०) होता है। अत्यन्त दौर्बल्य, प्रलाप यहाँ तक कि रोगी अपने बिछौनेको उठाकर फेंकता है, और संन्यास (Coma) द्वितीय या तृतीय दिन या इससे भी बादमें मृत्युमें समाप्त होता है। बहुधा इस प्रकारमें रक्तस्राव भी होता है।

इस बातकी अत्यधिक सम्भावना है कि ग्रन्थिक प्लेगके अनेक

रोगियोंमें कुछ अंशमें विष प्रकोप भी विद्यमान रहता है और इनमेंसे कुछ रोगियोंमें यह विषप्रकोपज प्लेग या फुफ्फुसप्रदाहज प्लेगमें परिवर्तित हो जाता है।

इ. फुफ्फुस प्रदाहज प्लेग—यह प्रकार अक्सर चीनमें और साधारणतः ग्रन्थिक प्लेगके उत्पत्ति स्थान पर सर्वत्र पाया जाता है। यह मुख्यतः रोगी परिचारक और निरीक्षक, तीनोंके लिये निम्न दो कारणोंसे भयप्रद होता है। १. क्योंकि इसके कीटाणु, जो रोगीके कफके साथ निकलते हैं, बहुत शीघ्रतासे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। २. एवं इसके लक्षण प्लेगके समान न होकर किसी फुफ्फुसव्याधिसे अधिक मिलते जुलते हैं। अतः निदानमें प्रायः भ्रम हो जाता है। फिर किटाणुओंसे बचने या कीटाणुओंका नाश करनेके लिये उचित ध्यान नहीं दिया जाता।

रुग्णावस्थाका आरम्भ कम्प (शीत), बेचैनी, तीव्र शिरदर्द, वमन, साधारण पीड़ा ज्वर और तीव्र स्वेद आदि लक्षणोंसे होता है। प्रारम्भिक अवस्थामें इसका निश्चित निदान कर सकना कठिन है। क्योंकि इस अवस्थामें इस रोगको प्रगट कर देने वाला कोई लक्षण प्रकट नहीं होता है। कास और श्वासकृच्छ्रताके साथ ही तरल रक्तमय कफ निकलने लग जाता है। साधारण न्यूमोनियाके समान इसमें कफ चिपचिपा और गंदला नहीं होता है। फुफ्फुसोंकी श्रवण परीक्षा करनेपर फुफ्फुसतलपर तरलमय ध्वनि सुनाई देने लग जाती है, श्वासकी गति अति तीव्र हो जाती है; अन्य लक्षण शीघ्रतासे वृद्धि को प्राप्त होते हैं और प्रलाप आरम्भ हो जाता है और साधारणतः रोगी चौथे या पाँचवें दिन मर जाता है। यह प्लेगका अत्यन्त भयंकर और प्रत्यक्ष संक्रमण हो जाने वाला प्रकार है।

ई. मस्तिष्कावरणप्रदाहज प्लेग—इसमें मस्तिष्क और मस्तिष्कावरणप्रदाहके लक्षण प्रगट होते हैं। प्लेग उत्पादक कीटाणु रक्त और मस्तिष्क सुषुम्णा तरलमें पाये जा सकते हैं।

पुनराक्रमण—ग्रन्थिक प्लेगका पुनराक्रमण देखा गया है और अत्यन्त भयानक होता है।

रोगविनिर्णय—ग्रन्थिक प्लेगका ऐसे रोगोंसे जिनमें ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं अक्सर भेद करना पड़ता है—जैसे कि, पूयोत्पादक कीटाणुओंका संक्रमण; श्लीपदोत्पादक कीटाणुओंका संक्रमण। परन्तु इन दोनोंमें वासिका ग्रन्थियोंमें प्रारम्भिक संक्रमणके लक्षण प्रकट हो जाते हैं जब कि ग्रन्थिक प्लेगमें किसी प्रकारके नहीं होते। फुफ्फुसप्रदाहज प्लेगका न्यूमोनियासे तीन बातोंमें भेद होता है। जिनके कारण इनमें विभेद किया जा सकता है:—फुफ्फुसप्रदाहज प्लेगमें १—अत्यधिक स्वेदकी उत्पत्ति। २—कफ तरल होता है और शीघ्र ही इसके साथ रक्त भी आने लग जाता है। ३—साधारणतः फुफ्फुसावरणमें तरल संचय हो जाता है।

साध्यासाध्यता—ग्रन्थिक प्लेगसे होने वाली मृत्यु संख्या मनुष्योंकी सामाजिक और शारीरिक अवस्था, भोजन और चिकित्सापर बहुत कुछ निर्भर करती है। क्योंकि यह देखा गया है कि चीनमें जबकि इससे पीड़ित ९३ प्रतिशत रोगी मर जाते हैं तो भारतमें ७७ प्रतिशत और यूरोपमें सिर्फ १८ प्रतिशत ही मरते हैं।

रोगीके बालक या वृद्ध होनेपर एवं गाठोंके बैठ जाने तथा जल्दी या देरसे पाक होकर फूट जानेपर रोग साध्य हो सकता है; अर्थात् सुयोग्य चिकित्सा द्वारा ऐसी अवस्थामें रोगी बचाया जा सकता है।

यदि ग्रन्थियाँ उत्पन्न होकर थोड़ेही समयमें बैठ जाती हैं या पक जाती है, तो ज्वर मन्द हो जाता है, भोजनमें रुचि उत्पन्न हो जाती है। पहिले मलावरोध होकर फिर बंधा हुआ दस्त आने लगता है, कान्ति बढ़ती है और रोगी दस दिन जीतित रह जाता है तो रोग साध्य समझ लें। इसके विपरीत निर्बलता बढ़ जाय, ज्वर तीव्र, ग्रन्थियाँ न बैठे, न पकें, बेहोशी, मूत्रावरोध, रक्तस्राव आदि लक्षण आरिष्टावस्था प्रकट करते हैं।

फुफ्फुसप्रदाहज और विषप्रकोपज प्लेगको तो अभीतक असाध्य ही माना है। इनसे तो बिरला ही बचता है।

बहुत जल्दी श्रवण आदि इन्द्रियोंकी शक्ति लोप हो जाय, संज्ञानाश हो जाय और अतिसार हो जाना, ये उपद्रव होनेपर रोगी मर ही जाता है।

फुफ्फुसप्रदाहज प्लेगमें रोगीको सिन्दूरके समान लाल या उज्वल रक्तयुक्त कफ आने लग जाय या श्वासकृच्छ्रता हो जाय, तो वह मर ही जाता है।

उपद्रव—मूत्रावरोध, फुफ्फुसोंपर हमला होने पर कास, अतिसार, वमन और रक्तस्राव आदि।

चिकित्सा—इस ग्रन्थिक ज्वरमें निश्चितरूपसे लाभ पहुँचा सके, ऐसी कोई सिद्ध औषधि नहीं हैं। गाँठपर लेप सेक (उष्ण या शीतल बर्फका सेक) और ज्वरघ्न विषशामक औषध देते रहनेसे अनेक रोगी बच जाते हैं। चिकित्साका आरम्भ जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी करना चाहिये।

रोगके प्रारम्भमें ही एरण्ड तैलकी एनिमासे कोष्ठशुद्धि कर लेनी चाहिये। स्थान, वस्त्र आदिकी सफाई पर लक्ष्य देना चाहिये। महामारीके दिनोंमें बाहरसे घर आने पर तैल मालिश करके स्नान करें; और वस्त्रोंको गरम जलसे धोवे तो बहुत अच्छा है।

जिस मकानमें चूहे मरते हों उस मकान या कमरेमें तुरन्त धूप जला कर सफाई करा लेनी चाहिये। चूहेपर कैरासीन तैल डाल, दूर ले जाकर उसे जलवा दें या जमीनमें गड़वा देवें। हो सके तब तक चूहे वाले मकानोंमें नहीं रहना चाहिये।

रोगीको केवल पंचकोल क्वाथके उबाले हुये जलपर रखें। दोष-पचन होने पर मोसम्बी, मीठानीबू या सन्तरेका रस या दूध थोड़े थोड़े परिमाणमें देते रहें।

गाँठपर लगाने के लिये—(१) मल्लादि लेप, ग्रन्थिभेदन लेप प्रतिसारणीय क्षार। इनमें मल्लादि लेपसे ग्रन्थिभेदन लेप उग्र है; और ग्रन्थिभेदनसे प्रतिसारणीय क्षार अधिक तीव्र हैं। प्रकृतिका विचार करके इन लेपोंका उपयोग करें।

(२) प्रारम्भिक अवस्थामें अफीमको शराबमें मिलाकर ३-३ घंटेपर लेप करते रहें या हल्दी; चूना और अण्डेकी सफेदीको जलमें मिलाकर लेप करें।

(३) सोमल, लहसुन और अफीम, तीनोंको समभाग मिला, लहसुनके रसमें या शराबमें पीसकर गाँठोंपर लेप करें। फिर ५ मिनट बाद १ घण्टे तक सेक करते रहें, फिर १–२ घण्टे बाद पुनः लेप और सेक करें। इस तरह १ दिनमें ५–६ समय सेक करनेसे गाँठ पककर फूट जायगी, या रक्तका शोषण होकर रक्त फैल जायगा।

(४) बर्फको पोटलीमें बाँधकर गाँठपर रखें। पिघलने पर बर्फ बदलते रहें। इस रीति से १२ घण्टे शीतलता पहुँचानेसे अनेकोंकी गाँठ बैठ गई हैं। गाँठ होनेपर तुरन्त यह प्रयोग करना चाहिये।

(५) प्याजको कूट हल्दी मिला, तैलमें पकाकर दो पोंटली करें। फिर एक पोटलीको गरम कर सेक करें। पोटली शीतल होनेपर बदल दें। इस रीतिसे १२ घण्टे तक सेक करनेसे गाँठ बैठ जाती है। २–३ घंटेपर प्याजको बदलते रहना चाहिये।

(६) गिल्टीपर जौंक लगाकर रक्त निकलवा डालें। फिर रेती या नमककी पोटलीसे सेक करें। अथवा तैलमें पकाई हुई प्याजकी लुगदीसे सेक करनेसे विषशमन हो जाता है।

(७) गन्धाबिरोजा और सिन्दूर ३–३ तोले, मोम १ तोला, दालचिकना ६ माशे और तिलीका तैल ६ तोले लें। यथाविधि मलहम बनाकर पट्टी लगानेसे गाँठ बैठ जाती है।

(८) ग्रन्थि (प्लेग) हरलेप—अजवनियाँ (पंजाबी-कड़ुकारी बूँटी)

के ताजे पत्तोंको बिना जल मिलाये पीस, १-१ तोलेकी २ टिकिया बना लेवें। फिर ग्रन्थि ज्वरके रोगीके हाथकी कलाईके बीचमें दोनों ओर १-१ टिकिया रख, कपड़ेसे पट्टी बाँध देवें। ३ घण्टे पश्चात् पट्टी खोल डालें। जिन स्थानों पर छाले हो गये हों, उन पर घी या मक्खन लगा देवे। छालोंको स्वयमेव फूटने दें। इस क्रियासे प्लेगका विषशमन हो जाता है; और रोगीको शर्तिया आराम हो जाता है। ऐसा रसायनसार ग्रन्थ-कारक अनुभव है।

(९) भल्लातक योग—गोबरीके निर्धूम अंगारेपर सुईसे टोंचकर एक वजनदार भिलावा रखें। टोंचनेकी जगह पर तुरन्त ही तैल दीखने लगेगा। सुईके अग्र भागसे उस तैलकी गाँठके चारों ओर बारीक रेखा-कार वर्तुल खींच दें। वर्तुलके भीतर गाँठपर सुईसे उस तैलकी दो आड़ी और दो खड़ी रेखायें खींचकर वर्तुलके बाहर भीगे हुये कैलोके चूनेकी रेखा कर दें। गाँठका पता लगते ही इस क्रियाके करनेसे दूसरे ही दिन ज्वर, पीड़ा आदि कम हो जाते हैं; गाँठ बैठ जाती है और रोगी निश्चय ही बच जाता है। गाँठके बैठते समय भिलावेके कारण उसपर खाज उत्पन्न हो जाती है। खाज उत्पन्न होने पर उसपर तिल्की या नारियलका तैल लगा देना चाहिये। एक ही बार इस क्रियाके करनेसे रोगी बच जाता है। यह हमारे श्रद्धेय मित्र पं० श्रीगोवर्धनजी शर्मा छाँगाणी प्रधा-चार्यका कई बार प्रयोग किया हुआ अनुभूत प्रयोग है।

(१०) जङ्गली असगन्धकी जड़को जलमें घिसकर लेप करनेसे प्लेग की गांठ फूट जाती है। उक्त ताजी जड़को घिसकर सूजन या लाल जगह हो, वहाँ तक इस लेपको लगाना चाहिये। लेप सूखनेपर त्वचा खिंचने लगती है और थोड़े ही समयमें शोथ (गाँठ) बिखर जाती है। या गाँठ ऊपर निकली रहती है और रोगी होशमें आने लगता है। इससे थोड़े ही समयमें गाँठ फूट जाती है। इस समय चारों ओर असगन्धकी मूलका लेप और मुख भागपर गेहूँके आटेकी पुल्टिस बाँधनेसे घावभर जाता है।

इस असगंधको लेटिनमें विथेनिया सोम्निफेरा (Withania Somnifera) कहते हैं, यह पौधा गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब आदि स्थानोंमें पाया जाता है। इस पौधेमें मादक, मूत्रल और शोथघ्न गुण अवस्थित हैं।

वातावरण शुद्धि के लिये—जन्तुघ्न धूप या अपराजित धूप अथवा प्रातः सायं गूगलकी धूप जलाते रहें।

रोगशामक औषधियाँ—कालकूट रस, द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ, अश्वकंचुकी रस (खाने और लगानेके लिये), महामृत्युञ्जय रस, संजीवनी वटी (सुदर्शन चूर्णके क्वाथके साथ) इनमेंसे रोगबल और प्रकृतिका विचार कर औषध दिनमें २ से ३ समय देते रहनेसे विषशमनमें सहायता मिल जाती है।

कालकूट रस, हृदय शिथिल हो और शारीरिक उष्णता १०२° से अधिक न हो तब देना चाहिये। अश्वकंचुकी और संजीवनी, सौम्य और उत्तम औषध हैं। सब अवस्थाओंमें ये निर्भयतापूर्वक दी जा सकती हैं। अनुपान रूपसे द्वात्रिंशदाख्यक्वाथ देनेसे शीघ्र लाभ पहुँचता है।

मल्लप्रधान औषध—महामृत्युंजयरस, मल्लभस्म, मल्लसिन्दूर आदि यदि वृक्क निर्दोष हों, मूत्रावरोध न होता हो, तो अति हितकारक हैं। एवं रक्तस्राव न हो तब दी जाती हैं।

अधिक रक्तस्राव होता हो, तो चन्द्रकलारस अश्वकंचुकीके साथ मिला देना चाहिये। अतिसार हो, तो अश्वकंचुकीके स्थानपर संजीवनीवटीका उपयोग करना विशेष हितकर माना जायगा। संजीवनीमें मिलाया आता है, वहकीटाणुओंको मारनेमें अच्छी सहायता पहुँचाता है।

बेहोशी आ जाय तो—हेमगर्भपोटली रस या संचेतनी गुटिका देवें।

उन्माद, निद्रानाश और प्रलाप शमनके लिये—वातकुलान्तक रस

और कस्तूर्यादि गुटिकाको अन्य औषध देते हुये भी दे सकते हैं। या २–तोले ब्राह्मी (जलनीम) का क्वाथ दिनमें ३ समय पिलावें।

डाक्टरीमें इस रोगको रोकनेके लिये महामारी कालमें हाफकिन्स सीरम (Haffkine's Serum) लगा देते हैं। इससे बहुधा रोग नहीं होता। यदि किसीको हुआ भी, तो सौम्यरूपमें होता है।

इसके अलावा रोगका प्रारम्भ होनेपर यदि तुरन्त येरसीन्स सीरम (Yersin's Serm) का प्रयोग किया जाय, तो रोगीके बच जानेकी सम्भावना रहती है। सल्फोनेमाइडका अनुसन्धान हो रहा है। अभी तक कोई निश्चित औषध डाक्टरीमें भी नहीं मिली।

---

२६ क्रकच सन्निपात ज्वर।

(मन्याज्वर—गरदनतोड़ बुखार; Cerebrospinal Fever)

यह भयंकर और संक्रामक रोग है। इसमें घोर ज्वर, बेहोशी और बारम्बार अंगोंमें आक्षेप होनेसे अनेक लेखकोंने इसे आक्षेपक ज्वर संज्ञा दी है। एवं नेत्रभुग्न और भौंहें टेढी देखकर कई इसे भुग्ननेत्र सन्निपात भी कह देते हैं; परन्तु, यह उनका भ्रम है। इस रोगमें मुख्यविकृति मस्तिष्कावरण और सुषुम्णाके आवरणमें पूयोत्पादक प्रदाह, अत्यन्त मलक्षय तथा पीड़ा सहित मांसपेशियोंका संकोच तथा मस्तिष्ककी श्लेष्मकलामें शोथ हो जाता है। इस रोगमें गरदन एकदम अकड़ जाती है और इसीसे रोगी मृत्युको प्राप्त होता देखा गया है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें इस रोगका वर्णन स्पष्ट क्रकच सन्निपातके नामसे मिलता है। महर्षियोंने इसे अधिक वात, हीनपित्त और मध्य कफके कारण होनेवाला माना है और स्पष्ट लिखा है कि, रोगीकी मृत्यु गरदन अकड़ जानेसे होती है।

व्याख्या—यह आशुकारी संक्रामक रोग है। यह विकीर्णरूपसे और जनपदव्यापी रूपसे उपस्थित होता है। इस रोगकी सम्प्राप्ति मेनिङ्गोकोकस (Meningococcus) कीटाणु जनित होती है। इस रोगमें सम्प्राप्ति दर्शक मस्तिष्कावरण और सुषुम्णाका पूयात्मक प्रदाह होता है। सामान्य संयोगोंमें इसका आक्रमण अधिकसे अधिक ५ वर्ष तक की आयुवालोंपर होता है। युवक और परिपक्व आयुवालोंपर आक्रमण बहुत कम होता है। यह विशेषतः जनवरी से जून तक (शीतकाल और वसन्त ऋतुमें) उपस्थित होता है जब शीत और कफकी प्रबल प्रबलता और दृढ़ताके हेतुसे अवरोध होता है, तब इस रोगका बल बढ़ता है।

इस रोगके कीटाणुओंका आक्रमण पहिले नासागुहाके पश्चिम भागपर होता है। इसकी दूसरी अवस्था मेनिङ्गोकोकसजनित सन्निपात (Meningococcal Septicaemia) है। इसके पश्चात मस्तिष्कावरणमें निवास स्थानरूप तृतीयावस्था है।

सम्प्राप्ति—विशेषतः मस्तिष्कगत अन्तरा और मध्यमावृत्ति (Pia-arachnoid) में, विशेषतः मस्तिष्क पीठके पास पूयात्मक प्रदाह होता है। अति तीक्ष्ण प्रकोपमें सन्निपातिक स्थितिमें उत्पन्न होनेवाला रक्तसंग्रह मात्र उपस्थित होता है।

मस्तिष्क अन्तरा और मध्यमावृत्ति पीड़ित होनेपर पूयात्मक द्रव्य उनके नीचेके स्थानमें, विशेषतः पीठमें संगृहीत होता है। मस्तिष्कवल्क (Cortex) प्रायः रसपूर्ण होता है। इससे अत्यधिक दबाव बढ़ता है। मस्तिष्क द्रव्य मृदु और गुलाबी बन जाता है। रक्तस्राव होता है। प्राणगुहा (Brain Ventricles) पूयमय रससे स्फीत होती हैं। प्रणालिया, प्रवाहमार्ग (Channels) और मस्तिष्क प्रदाह (Encephaltis) के रुग्णकेन्द्र, सबमें अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर अन्तर्मरण प्रतीत होता है।

सुषुम्णाकाण्ड सर्वदा पीड़ित होता है। इनसे भी विशेषतः पिछली

सतह, पीठ और कटिपार्श्विक प्रदेशमें व्यथा अधिक पहुँचती है। पूय-सर्वत्र चारों ओर तथा कभी कभी वातनाड़ी मूलमें भी भर जाता है।

जीर्णावस्थामें आवरण मोटा बन जाता है और उसमें हुये रसस्रावमें बहुत कुछ शेष रह जाता है। शीर्षण्या नाडी (Cranical Nerves) सामान्यतः पीड़ित हो जाती है। प्राणगुहा बहुधा स्वच्छ और गाढ़े द्रवसे स्फीत हो जाती है। फिर चतुर्थ प्राणगुहाका (Magendie's foramen) बन्द हो जाता है। अनेक बार मेनिङ्गोकोकसजनित मस्तिष्कप्रदाह भी विकीर्ण रूपसे हो जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अवयवोंमें भी सामान्तः कुछ परिवर्तन हो जाता है। प्लीहा कभी कभी बढ़ जाती है।

चयकाल—१ से ४ या ५ दिन।

लक्षण—सामान्य प्रकार होनेपर अकस्मात् आक्रमण २४ घण्टेमें ही होता है विकार बढ़नेपर स्थिति खराब होती है। स्थानिक आवरण प्रदाहके हेतुसे त्रिदोष प्रकोपके लक्षण प्रकाशित होते हैं।

गम्भीर प्रकार होनेपर अकस्मात् बलपूर्वक आक्रमण, उन्माद, वेगकी तुरन्त अति वृद्धि होना, कुछ ही घण्टोंमें बेहोशी आ जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। चिरकारी प्रकार होनेपर सान्निपातिक मंद लक्षण भासते हैं।

सामान्य प्रकार—शिरदर्द, वान्ति, उत्तापवृद्धि, शीतकम्प और बालकोंमें आक्षेपसह अकस्मात् आक्रमण होता है। कभी कभी आक्रमणके पश्चात् अचिरस्थायी वृद्धि हो जाती है। कण्ठ जकड़ता है। मस्तिष्कका प्रत्याकर्षण और सार्वाङ्गिक उग्रतावृद्धि होती है। मुखमण्डल म्लान, नीलाभ और वेदना व्यञ्जक भासता है। क्षुधामान्द्य और कोष्ठबद्धता उपस्थित होती हैं।

नाडीसंस्थामें सार्वाङ्गिक उग्रता उपस्थित होती है, तथा-शीर्षण्या नाडीके भीतर दबावकी वृद्धि होती है। लक्षण सामान्यतः १ से ५ दिनतक

बढ़ते जाते हैं। एवं सल्फोनेमाइड वा अन्य योग्य चिकित्साके अभावमें १ से ३ सप्ताहतक अत्यधिक बढ़े हुये भासते हैं। प्लीहा स्पष्ट भासने लगती है।

चेष्टा वह नाड़ी विकृति लक्षण—मस्तिष्कका पीछेकी ओर अत्यधिक खिंच जाना, शिशुओं में बहिरायाम (शिर और पैर पीछेकी ओर खिंच जाना—(Opisthotonos), हो जाता है। ब्रुडजिन्सकीके कण्ठ चिह्न और पाद चिह्न प्रतीत होते हैं; तथा जानुक्षेप उपस्थित नहीं होता।

रोगीको चित्त लिटाकर मस्तिष्कको हाथसे पकड़ ग्रीवासे आगेकी ओर मोड़नेपर टखने, घुटने और उरु भाग मुड़ने लगते हैं। इस चिह्नको ब्रुडजिंस्की ग्रीवा चिह्न (Brudzinski's necksign) कहते हैं। यह महत्वका चिह्न है।

रोगीको चित्त लिटाकर दोनों पैरोंको सीधा रखवावें। फिर एक पैरको मोड़नेपर दूसरा पैर भी मुड़ने लगता है। इस चिह्नको ब्रुडजिंस्कीका पाद चिह्न कहते हैं।

रोगीको पलंग के किनारे बैठा पैरोंको शिथिलता पूर्वक नीचे लटकावें। फिर जान्वस्थि (Patella) के स्नायु रज्जुपर हथेलीसे ताडन करनेसे सामान्यत: पैर बल पूर्वक आगे चला जाता है, उसे जानुक्षेपकी प्रतिफलित क्रिया (Knee Jerk reflex) कहते हैं। यह क्रिया प्रतीत नहीं होती।

इनके अतिरिक्त मुखमण्डलकी पेशियोंको पकड़ कर खींचनेपर कम्पसह आक्षेप वा तनावसह आक्षेप (Tonic spasm) वा पक्षवध प्रतीत होता है। इसमें सामान्यत: कम्पन भी होता है।

स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल (Sympathetic nerves) के पीड़ित होनेसे कनीनिका (Pupils) सामान्यत: प्रसारित होती है; किन्तु गंभीर आक्रमण होनेपर आकुंचित हो जाती है। सामान्यतः विषमता और

जड़ता उपस्थित होती है। तारामण्डलका कम्पन (Hippus) कभी कभी होता है। २० प्रतिशत रोगियोंमें एक या दोनों नेत्रोंकी च्युति (Strabis mus), १० प्रतिशत में चाक्षुषी नाड़ी प्रदाह, प्रकाशका सहन न होना, अभिष्यन्द, ऊपरकी पलकका कुछ पक्षवध (Ptosis) तथा कभी-कभी नेत्रगोलकका चारों ओर फिरना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

संज्ञावह नाड़ियोंकी विकृतिसे बारम्बार अति गम्भीर सिर दर्द होना, विशेषतः पिछली ओर, सुषुम्णा और हाथ-पैरमें दर्द फैलना, संवेदना वृद्धिसह कमरमें गम्भीर वेदना होना तथा व्यापक संवेदना वृद्धि होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

मानसिक लक्षण रूपसे बेचैनी, उन्माद, प्रलाप और उत्तरावस्थामें बेहोशी या मूर्च्छा उपस्थित होती हैं।

इनके अतिरिक्त मस्तिष्क विकृति होनेपर आक्रमण कालमें वमन होना, फिर वह चालू रहना, शारीरिक उत्ताप अनियमित बढ़ना-घटना, सामान्यतः १०२ डिग्री रहना, बढ़ने पर १०५ डिग्री या अधिक हो जाना, नाड़ी और उत्तापका सम्बन्ध कुछ कम रहना, अनियमित नाड़ी, फुफ्फुस का उपद्रव होनेपर छिन्न श्वास, आक्रमण कालमें रक्तमय पिटिकाएँ पहिले या दूसरे दिनतक रहना, फिर कभी कभी गम्भीरावस्थामें पूयमय हो जाना, मधुराके सदृश लाल पिटिकाएँ होना, २५ से ५० प्रतिशतमें ४-५ दिन बाद ओष्ठपर फुन्सियाँ होना, एकाधिक केन्द्रस्थानयुक्त श्वेताणु २५,००० से ५०,००० प्रति मिलीमीटर हो जाना तथा गम्भीरावस्थामें उनका अभाव होना एवं कृशता अति शीघ्र आना, ये लक्षण प्रकाशित होते हैं।

गम्भीरावस्थाके लक्षण—अकस्मात् बलपूर्वक आक्रमण, शिर दर्द, वमन, शक्तिपात, सामान्तः रक्तस्रावमय पिटिकाएँ, शारीरिक उत्ताप अधिक या कम तथा शीघ्र मूर्च्छा आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ब्रह्मवारि बिलकुल स्वच्छ रहता है, कीटाणु नहीं मिलते। अधिवृक्क

वृक्क विकृतिके हेतुसे सुषुम्णामें रक्तस्राव होता है। मस्तिष्कावरणके लक्षण मन्द होते हैं या नहीं होते। उदरगुहाके लक्षण विकीर्ण रूपसे मिलते हैं। एवं मस्तिष्कप्रदाह या गम्भीर मस्तिष्कावरण प्रदाह उपस्थित होता है।

चिरकारी मेनिङ्गोकोकाईजनित सन्निपात—(Septicaemia) सामान्यतः अकस्मात् आक्रमण, शिरदर्द, वेपन, मांसपेशियों और संधि-स्थानोंमें वेदना, कुछ दिनोंमें पिटिका निकलना, क्वचित् पिटिका न निकलना, ये पिटिकाएँ अनेक प्रकारकी होना तथा शारीरिक उत्ताप बारम्बार रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

इस प्रकारकी चिकित्सा न की जाय तो गम्भीर व्याकुलता हुये बिना सप्ताहों और महीनोंतक रोग दृढ़ बना रहता है। यह इन्फ्लुएन्जा, मधुरा, संधिकज्वर, त्वचाकी लाली, ग्रन्थियाँ निकलना या परिखाज्वर उत्पन्न करता है। एवं उसकी चिकित्सा सल्फापाइराइडिनसे न की जाय तो मस्तिष्कावरण प्रदाह बढ़ जाता है। सौम्य और क्षुद्र प्रकारमें लक्षण सौम्य होते हैं और थोड़े ही दिनोंमें शान्त हो जाते हैं। किन्तु चिरकारी प्रकार अनेक मासोंतक बना रहता है। इस चिरकारी प्रकारमें प्राणगुहाएँ पूय, गाढ़ा द्रव या स्वच्छ द्रवसे स्फीत हो जाती हैं। फिर प्राणगुहाओंका आवरण बन्द हो जाता है या शिरसंपुट द्रवपूर्ण हो जाते हैं। वातनाड़ी संस्थामें जटिलता, कृशता, नाड़ी और श्वसनमें कष्ट होना आदि प्रतीत होते हैं। ऐसा होनेपर स्वास्थ्यकी प्राप्ति असम्भव मानी जाती है।

मस्तिष्क पीठके पश्चिम आवरणका प्रदाह—शिशुओंमें मस्तिष्कावरणप्रदाह, १ वर्षके भीतरकी आयुवालोंके लिये अत्यन्त सामान्य प्रकार है। इसका आक्रमण अकस्मात् होता है या यह गुप्तभावसे वृद्धिंगत होता है। इसमें लक्षण—मस्तिष्कका प्रत्याकर्षण, बाह्यायाम, कभी पिटिका जैसे धब्बे, चाक्षुषी नाड़ीके प्रदाहके न होनेपर भी दृष्टिनाश, बारम्बार रोग चिरकारी। (जीर्ण) बन जाना, सौम्य या सामान्य प्रकारमें

भावी क्षति सामान्यतः बधिरता और फिर अति ऊँचे स्वरसे सुनना (Deaf Mutism), अन्धता, मस्तिष्कमें विकृति, मस्तिष्कके अन्त-भागकी व्यापक जकड़ाहट तथा जीर्णावस्थामें चतुर्थ प्राणगुहाके द्वारके बन्द हो जानेपर कटिवेध (Quincke's Puncture) करने पर भीतरसे द्रव न मिलना आदि चिह्न मिलते हैं।

इस रोगके विशेष निर्णयार्थ तीसरे और चौथे कटि कशेरुकाके बीचमें सूचिका डाल पूय निकालकर परीक्षा की जाती है। उसे लम्बर पंकचर और क्विङ्क्स पंकूचर कहते हैं।

जब आशुकारी प्रकारमें इस तरह प्राणगुहाद्वार बन्द हो जाता है, तब अनेक रोगियोंमें विविध प्रकारकी भावी क्षति उपस्थित होना सम्भावित है।

उपद्रव और भावी परिणाम—यदि सल्फोनेमाइडसे चिकित्सा न की जाय तो कभी कभी मस्तिष्कमें पक्षवध, अर्धाङ्गवध, पादपक्षवध आदिकी प्राप्ति हो जाती है। जीर्णप्रकारमें मस्तिष्कप्रदाह, शिरदर्द, वान्ति, मस्तिष्क जड़ता और कनीनिका प्रसारण आदि उपस्थित होते हैं।

कानोंमें कभी अचिरस्थायी तथा कभी चिरस्थायी बधिरता। सन्धि-प्रदाह अथवा संधिस्थानकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह, ये उपद्रव ५ से १० प्रतिशत रोगियोंमें हो जाते हैं। बहुधा पूर्ववर्ती रक्तस्रावात्मक धब्बे होते हैं। कभी पूयाक और परिणाम अच्छा होता है। अतिक्वचित हृदयावरणप्रदाह, फुफ्फुसप्रदाह या अधिवृषणिका प्रदाह होता है। इनका पुनराक्रमण सामान्य है किन्तु सच्चा आक्रमण क्वचित् ही होता है।

रोगीविनिर्णय—अकस्मात् आक्रमण, शिरदर्द, वान्ति, उत्तापवृद्धि, ग्रीवाका जकड़ना और प्रलाप तथा मस्तिष्कके प्रत्याकर्षणमें वृद्धि आदि लक्षणोंसे रोग स्पष्ट हो जाता है। विशेष निर्णय कटिवेध द्वारा होता है। किन्तु पहिले २४ घण्टे के भीतर कभी कभी रोग निर्णायक लक्षणका अभाव होता है।

क्रम और भावी परिणाम—सल्फोनेमाइड्सकी चिकित्सासे शीघ्रसे सुधार होने लगता है। उत्ताप कुछ दिनोंमें स्वाभाविक हो जाता है। अनुकूल स्थितिवालोंमें १० प्रतिशतसे अधिक मृत्यु नहीं होती।

मुख्यतः २ वर्षके भीतर आयुवाले और गम्भीर प्रकोपमें मृत्युसंख्या लगभग २० प्रतिशत होती है। मुक्तावस्थामें प्रायः शिरदर्द, चक्कर आना आदि वातनाड़ी विकृतिके लक्षण होते हैं। स्वास्थ्य प्राप्तिमें ३ मास लगते हैं। अन्तिम परिणाम अच्छा माना जाता है। जीर्णावस्था और गम्भीर उपद्रव क्वचित्। शैशवावस्था और गम्भीरावस्थामें शीघ्र मूर्च्छा आती है। रक्तस्रावात्मक धब्बे हों तो रोगकी गम्भीरावस्था मानी जाती है। सल्फोनेमाइडके अतिरिक्त उपचार करनेपर मृत्युसंख्या ३० प्रतिशत होती है।

पार्थक्यसूचक रोगविनिर्णय—टाइफॉइड, टाइफस, क्षयकीटाणुजन्य मस्तिष्क आवरणप्रदाह तथा बालकोंके आक्षेप (अस्थिवक्रता, पचनेन्द्रिय संस्थामें विकृति आदि जनित) से इसे अलग करना चाहिये।

मधुरामें ज्वर धीरे धीरे और निश्चित क्रमसे बढ़ता है। शिरदर्द मन्द होता है, मांसपेशियोंकी दृढ़ता, वमन, शीघ्रप्रलाप और मूर्च्छा आदि लक्षण नहीं होते।

प्रलापक ज्वरमें शारीरिक उत्ताप इससे अधिक एवं रोग स्थायीत्व भी इससे अधिक होता है। मांसपेशियोंकी दृढ़ता, संकोच, स्पर्शसे वेदना, मन और विविध इन्द्रियोंकी विकृति आदि नहीं होती।

क्षयकीटाणुजन्य मस्तिष्कावरण प्रदाहमें पिटिका नहीं निकलती। रोग अति मंद गतिसे बढ़ता है; तथा पूर्ववर्ती लक्षणोंमें भेद रहता है।

बालकोंके आक्षेपयुक्त रोगोंमें मस्तिष्क, कण्ठ आदिकी विकृति और बेचैनी इस रोगके जितनी नहीं होती। अकस्मात् आक्रमण और उस समयके लक्षण भेदसे भी रोगका भेद हो जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

रोगीको खुली वायुमें रखें। इस रोगमें वस्त्र, स्थान आदिकी स्वच्छ-

तापर पूर्णसद्य देना चाहिये। राईका प्लास्टर दर्दवाले भागपर लगावें। या निर्गुण्डीके पत्तोंका स्वेद दें। गरदन और सिरपर सिंगी लगवाकर लसीका या पूय जल्दी निकालें।

रोगीको लंघन, करावें। केवल गरमकर शीतल किये हुये जलपर रखें। उदर शुद्धिके लिये थोड़ी मुनक्का दें। मलावरोध को, प्रारम्भमें ही दूर करनेका प्रयत्न करें। यदि मूत्रावरोध हो तो रबरकी नलीसे मूत्र निकालते रहें।

इस रोगमें लहसुनके सत्वका अन्तःक्षेपण लाभदायक है, ऐसा आयुर्वेदके विशेषज्ञोंका अनुभव है।

क्रकच सन्निपात चिकित्सा।

पूर्वरूपमें गर्दन अकड़ जानेपर—बृहद् योगराज गूगल १ माशा खिलाकर ४ तोले एरण्ड तैल, थोड़ा दूध मिलाकर पिला दें। फिर ऊपर ४० तोलेतक निवाया दूध पिलावें। उदर शुद्धि होनेपर दिनमें ३ बार महायोगराज गूगल २-२ रत्ती निवाये जलसे देते रहें अथवा सूतराज रस या मृत्युञ्जय रस दशमूलक्वाथके साथ देवें।

ज्वरमें कोष्ठ शुद्धिके लिये—अश्वकंचुकी रस दें; या एरण्ड तैलकी वस्ति दें।

तीव्र आक्षेप हो तो—महावातविध्वसन रस दिनमें ३ समय बृहद् योगराज गुग्गुल के साथ मिलाकर देते रहें।

कमर, गरदन और सिर दर्द पर—दूषित लसीका, रक्त या पूय निकाल लेनेके बाद गुनगुने विषगर्भ तैल या तार्पिन तैलकी मालिश करें और फिर मस्तिष्कके अन्य भागपर निवाये जलसे सेक करें।

डाक्टरी चिकित्सा।

इस रोगकी चिकित्सा डाक्टरीमें कुछ वर्षों से रासायनिक औषध सल्फोनेमाइड वर्गकी औषधसे की जाती है। इससे परिणाम सन्तोषप्रद होता है। विशेषतः सल्फाथियाजोल (Sulphathiazole) दिया

जाता है। उसे M & B 760 भी कहते हैं। आक्रमणावस्थामें पहिले अधिक मात्रामें देते हैं। फिर कम मात्रा करते हैं। बालकोंको मात्रा कम देते हैं। अर्थात् २ वर्षकी आयुवालेको १ दिनमें २ ग्राम और ५ वर्ष तक ४–५ ग्राम। २–३ दिन बाद मात्रा घटाते जाते हैं।

इस चिकित्सामें रोग-लक्षण नहीं बढ़ते। फिर भी किसी रोगीको अति निद्रानाश और प्रलाप हो तो पेरलडीहाइड रात्रिको देते अथवा मार्फियाका अन्तःक्षेपण करते हैं।

२७ कण्ठरोहिणीजन्य ज्वर।

(Diphtheria)

यह एक विशेष प्रकारका संक्रामक रोग है। इसकी संप्राप्ति क्लेब्स लोफलर कीटाणु (Klebs Loeffler Bacilli) द्वारा होती है। इसके स्थानिक लक्षण सामान्यतः गलतोरणीका (Fauces) या स्वरयन्त्रकी श्लैष्मिक कलापर रक्ततन्तुके क्षरणके हेतुसे तथा सार्वाङ्गिक लक्षण कीटाणुओंके प्रसारणकी दिशामें विष प्रकोपसे उत्पन्न होते हैं। इसका आक्रमण भारतमें विशेषतः शरद् ऋतुमें होता है। संप्राप्ति १ से ५ वर्षतक और उनमें भी अधिकतम (लगभग ८० प्रतिशत) मृत्यु होती है। १० वर्षसे अधिक आयुवालोंपर आक्रमण कम और मृत्युसंख्या भी कम होती है। १५ वर्ष की आयुके बाद आक्रमण अति कम पर ६ माससे कम आयुवालेपर बारबार आक्रमण नहीं होता। (वंशागत रोग निरोधक शक्ति के हेतु से)।

संक्रमणकी रीति—अति संसर्गज। सामान्यतः बारंबार एक व्यक्तिसे दूसरेका मिल जाना तथा चुंबन करना एवं पीड़ित व्यक्तिकी पेंसिलको मुँहमें डालना अथवा पाठशालामें विद्यार्थियोंका अति सम्बन्ध या पीड़ित

व्यक्तिका झूठे अन्न जलका सेवन आदि कारणोंसे इसका संक्रमण होता है। परिचर्या करनेवाली नर्स अनेक बार पीड़ित हो जाती है। इनके अतिरिक्त कण्ठकी परीक्षा करनेके समय रोगीको कास चलनेपर कभी डाक्टरको थूकके परमाणुओं द्वारा कीटाणु लग जाते हैं। इसकी प्राप्ति—१. व्यक्तिके प्रत्यक्ष सम्बंधसे, २. प्रभावित पदार्थसे, (रोगकीटाणु महीनोंतक जीवित रहते), ३. रोगवाहक कृमि आदिसे, ४. अनादर्श कण्ठरोहिणी विकार—सौम्य उपजिह्विका प्रदाह या गंभीर आक्रमण प्रभावित व्यक्तियोंसे।

रोगनिरोधक अन्तःक्षेपण—वर्त्तमानमें बड़े मनुष्यको ४ सप्ताहके भीतर मांसपेशियोंमें प्रतिविषके ३ अन्तःक्षेपण होते हैं। तथा बच्चोंको २ अन्तःक्षेपण होते हैं। इससे ६ सप्ताहके भीतर रोगनिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस हेतुसे आज-कल यूरोपमें इस रोगसे पीड़ितोंकी मृत्युसंख्या केवल ५ प्रतिशत होती है।

वाहक—सामान्यतः कण्ठरोहिणीके कीटाणुओंकी उपस्थिति नासिका और गलतोरणिका प्रदेशमें होती है, कुछ भी रोगलक्षण नहीं दिखलाई देते। इन वाहकोंके २ प्रकार हैं। १. पुनः स्वास्थ्य प्राप्तवाहक; रोगपीड़ित आक्रमणके उत्तरकालमें; ये निश्चित पृथक् होते हैं। सामान्यतः ६ से ८ सप्ताहमें उनकी समाप्ति हो जाती है (तबतक रोग फैला सकते हैं)। २. पूर्णांशमें रोग पीड़ित वाहक। केवल ये २ प्रकार ही विषमय कीटाणुओंके सच्चे वाहक हैं।

रोगनिरोधकाल—पाश्चात्य देशोंमें इस रोगसे संक्रामित व्यक्तियोंको बाहरसे आनेपर १२ दिनतक शहरसे बाहर रोक देते हैं।

शारीरिकविकृति—प्रकृति निर्देशक परिवर्त्तन तन्तुवृत्तिकी रचनामें ऊर्ध्व वायुमार्गके भीतर होता है। तन्तुवृत्तिके उत्तान परत पर एक मिथ्या-कला (False Membrane) की रचना होती है, जो कण्ठरोहिणीके कीटाणुओंके विषसे उत्पन्न होती है। इसके स्थान उपजिह्विका और

उसके समीपका प्रदेश तथा स्वरयन्त्र हैं। ग्रसनिक, श्वासनलिका, अधिजिह्विका और नासापुट भी प्रभावित होते हैं। घातक रोगियोंमें बारंबार नासाविवर (अग्रिमापरिखा, हनुपरिखा, जातुकपरिखा और झरझरक परिखा) प्रवाहित होती हैं। क्वचित् नेत्रश्लेष्मावरण भी प्रभावित होता है।

तन्तुकलाका वर्ण धूसराभ श्वेत होता है, फिर गहरा होता तथा पर्त्तका विच्छेद होनेपर सतहपर रक्तस्राव और संयोजन और वह जीर्णावस्थामें सरलतासे पृथक् होती है। यह परिवर्त्तन उत्तान वृत्तिमें होता है। गंभीर भागमें अतिक्वचित्। यह विगलित होनेपर अदृश्य कला। हो जाती है।

गलतोरणिकाकी विकृति—प्रारम्भमें मामूली जुकाम। पहिले समान्यतः एक स्थानपर कलाकी रचना, उपजिह्वापर या काकलक और उपजिह्वाके संयोग स्थानपर। फिर कला उपजिह्वा, गलतोरणिका स्तम्भ, काकलक, मृदु तालु तथा ग्रसनिकापर फैल जाती है।

स्वरयन्त्रकी विकृति—स्वरयन्त्रोदरसे अधिजिह्विकापर कला फैलती है। गलतोरणिकाकी कला भी सामान्यतः वर्त्तमान में फैलती है।

लसिकाग्रन्थियाँ—हनु के नीचे तथा कण्ठमें बढ़ी हुई तथा गम्भीर रोगियोंमें अत्यधिक होती हैं। मुख्यतः गौण स्ट्रेप्टोकोकाईके संक्रमणसे; किन्तु प्रति- विष द्वारा शीघ्र प्रभावित नहीं होती।

हृदय—हृदय-पेशीमें महत्वका परिवर्त्तन, प्रायः वसापक्रान्तिकी प्रतीति, और हृदयान्तर प्रदाह अति क्वचित् होता है।

फुफ्फुस क्षति—श्वास प्रणालीका प्रदाह (कास) और फुफ्फुस प्रणालीका प्रदाह (डब्बा), ये सामान्य और घातक (विशेषतः, स्वरयन्त्र विकृति प्रकारमें) बृहद् श्वासनलिकासे विभाजित मुख्य श्वासनलिका तक कला फैलती है; कभी फुफ्फुसस्थ सूक्ष्म श्वासनलिका प्रशाखातक।

वातसंस्था—डिफ्थेरियासे उत्पन्न नाड़ियोंका वध हो, तो परिधिगत सञ्चालक और संवेदक नाड़ियोंकी श्याम अपक्रान्ति होती है।

इनके अतिरिक्त रक्त, वृक्क, यकृत्, प्लीहा आदिमें भी परिवर्त्तन होता है। किन्तु वे प्रकृतिनिर्देशक नहीं हैं। रक्तमें श्वेताणुओंकी निश्चित वृद्धि और उनके सम्बन्धी बहुजीव केन्द्रमय घटकोंकी उपस्थिति। वृक्कोंकी मेदापकान्ति और क्वचित् वृक्क प्रदाह। यकृत्प्लीहाका विषज परिवर्त्तन।

चयकाल—सामान्यतः २ दिन। कभी कीटाणु लक्षण उदय होनेके पहिले लम्बे क्रमके लिए गुप्त रह जाते हैं।

लक्षण—सार्वाङ्गिक व्याकुलता। उत्ताप १०१° लगभग, कभी १०३° से अधिक, मन्द स्वरभेद। बच्चोंमें प्रायः कण्ठक्षतपर लक्ष्य नहीं जाता। मुखमण्डल धूसर बालकोंमें आक्षेप प्राय, जानुक्षेप (Knee jerks) का अभाव (जानुपर प्रहार करानेसे पैर बलपूर्वक आने लगता है, इस क्रियाका अभाव)। प्रायः किञ्चित् शुभ्र प्रथिनका मूत्रके साथ गमन, मूत्रियाकी वृद्धि।

परीक्षात्मक प्रकार—अ. गलतोरणिका प्रकार; आ. स्वरयन्त्र प्रकार; इ. नासिका प्रकार; ई. त्वचा प्रकार; उ. गम्भीर प्रकार; ऊ. नानाविधि प्रकार।

अ. गलतोरणिका कण्ठरोहिणी—(Faucial Diphtheria). बालकोंमें गुप्त रोग—थोड़ी वेदना, विषप्रकोपके हेतुसे रुदन आदि। प्रारम्भमें लक्षण ऊपर अनुसार। निगलनेमें कुछ कष्ट। उपजिह्वा विकार रूपसे सामान्यतः प्रसेक। पहिले दो दिन बहुधा कृत्रिम कलाका आरम्भ। हनुके नीचे और गलेमें (प्रभावित बाजूमें) ग्रन्थियोंकी मृदुता और किञ्चित् वृद्धि।

तीसरे दिन उपजिह्वाका, तालु और काकलकपर कृत्रिमकला * द्वारको भर देना। ग्रन्थियोंकी वृद्धि। उत्ताप अनेक प्रकारका। सर्वाङ्गिक

---

* यदि इस कलाको बलात्कारसे खुरचकर निकाल दिया जाय तो नूतन अधिक दुःखदायी कला पुनः निर्मित होती है।

व्याकुलता और विषप्रकोपज ज्वर (Toxaemia), निगलनेमें वेदना। चौथेसे पाँचवें दिन तक कला फैलना। ग्रन्थियाँ बढ़ी हुई। श्वास अति भारी। जिह्वा मललिप्त। मूत्रका ह्रास। शुभ्रप्रथिन प्रायः नियमित।

सौम्य रोगियोंमें परवर्ती कालमें कलाका विगलन। चिन्होंका लोप। आरोग्यप्राप्ति ७ से १० दिनमें। शारीरिक लक्षण सामान्यतः कलाके विस्तारके अनुरूप।

गम्भीर रोगियोंमें भस्म सदृश मुखमण्डल। नाड़ी निर्बल, तेज या कभी मद। अवस्था बढ़नेपर अति गम्भीर नाड़ी (अवसाद ग्रस्त होने पर स्पन्दन ५०, ४० और कभी २० तक)। उत्ताप अधिक या कम हो सकता है। कला समान्यतः विस्तृत, नासिकासे स्राव सामान्य, वमन, मूत्रमें शुभ्र पृथिनकी वृद्धि और क्षीणताकी वृद्धि। हृदयपतनसे प्रायः अकस्मात् मृत्यु सामान्यतः ३ से ८ दिनमें। स्वरयन्त्र भी प्रायः पीड़ित।

उपजिह्वा परिवर्तन—१. पिटिकामय उपजिह्वा प्रदाहके समान छिद्रसे स्राव (क्षरण); २. पुटिटसके लगानेके सदृश व्यापक क्षरण; ३. कितनेक स्थानोंमें कठोर दानेदार कला; ४. थोड़ी कलासह प्रत्येक गम्भीर रोगियोंमें नासिकाके भीतर प्रायः अनेक प्रकारका कीटाणु विष।

आ० स्वरयन्त्रकी कण्ठरोहिणी—गलौघ (Laryngeal Diphtheria) सामान्यतः ३ वर्ष की आयुमें। सर्वदा लगभग गलतोरणिका कण्ठरोहिणीसे सम्प्राप्त गौण प्रकार। गलतोरणिका कला ग्रैवेय ग्रन्थियों पर और लक्षण वर्तमान। प्रथमावस्थामें आशुकारी स्वरयन्त्रप्रदाह (श्वासावरोधसह) अर्थात् स्वरभेद, कण्ठकास, श्वासग्रहण शीत्कार ध्वनिसह, अक्षिकास्थिपर श्वासग्रहणमें खिंचाव।

परिक्षात्मक उपप्रकार—१. अकस्मात आक्रमण, किन्तु लक्षण गम्भीर नहीं। स्वरयन्त्र द्वारके आक्षेपसे कुछ घण्टों तक श्वासकृच्छ्रतामें अकस्मात् प्रचण्डता, कला किञ्चित। परिणाम शुभ।

२. आक्रमण कभी आकस्मिक। बिना आक्षेप दुःखप्रद श्वासकृच्छ्रता

होना, वर्ण श्याम, गात्रनीलता और कुक्कुट ध्वनि (Croup) की वृद्धि, व्याकुलता, वमन होते रहना बेहोशी और श्वासनलिकाके नीचे कला फैलना। फुफ्फुसके उपद्रव सामान्यतः। परिणाम अति अशुभ।

यदि गलतोरणिकाके लक्षण न हों तो, शारीरिक आक्रमण क्वचित् अधिक, बच्चोंमें स्वरयन्त्रकी कण्ठरोहिणीमें क्वचित्, किन्तु प्रायः उपेक्षित होता है। स्वरयन्त्रका प्रसारण प्रतिबन्धका निवारण करता है। फिर कुक्कुट ध्वनि नहीं होती। यदि कला श्वासनलिका तक फैल जाती है, तो गम्भीर लक्षण उपस्थित होते हैं और मृत्यु संख्या अधिक होती है।

इ. नासा विकृतिसह रोहिणी (Nasal Diphtheria) इसके २ उपप्रकार हैं। १. प्राथमिक नासा श्लैष्मिक कलापदाह—नासास्राव सर। इसमें कला प्रायः विशेष फैली हुई। लक्षण प्रायः मन्द होते हैं। २. गलतोरणिका प्रकारमें—स्राव रक्तमय होनेपर कला किञ्चित्मात्र होने पर भी लक्षण सामान्यतः गम्भीर होते हैं।

ई. त्वचाविकारसह रोहिणी—(Cutaneous Diphtheria) १. आशुकारी प्रकार—उदाहरणार्थ स्थानिक क्षत—नखपाक (whitlows) या कभी कोथ। सर्वदा कण्ठक्षतसह। २. चिरकारी प्रकार—उष्णऋतुमें सामान्य। त्वचाक्षतसह। उदाहरणार्थ। शुष्क क्षत (Desert Sore), पामा भेद (Impetigo), घोड़ेके पैर पर ब्यचीके सदृश प्रदाह। क्षत गहरे गोल, नीलाभ सीमासह तथा तलपर चर्मवत् काली कला। पक्षवध सामान्य; सामान्यतः क्षत भर जानेके पश्चात् इसके दोनों ओर रही हुई समान मांसपेशियोंपर तथा विशेषतः निम्न अवयवोंपर असर पहुँचता है।

उ. गम्भीर प्रकार—(gravis Type)—गम्भीर स्थानिक शोथ। कोथ, कलाकी रचना। ठोस घटक तन्तुओंका प्रदाह (वृषभके गले सदृश स्फीति (Bullneck) और अतिशय विषप्रकोप द्वारा प्रकृति निर्देश होता है। शवपरीक्षा करनेपर हृदय, वृक्क, अधिवृक्क और वातसंस्थामें बड़े

हुये कोथमय क्षतकी प्रतीति। प्रतिविष प्रयोगका असर मंद। मृत्यु-संख्या अधिक।

ऊ. नानाविध (Various)—कोई भी तन्तु संक्रमित हो सकता है अति मन्द गतिसे घातक अवस्थातक वृद्धि।

१. क्षत (त्वचा प्रकारके समान) प्रकार।

२. नेत्रश्लैष्मिक कलाका सौम्य प्रदाह या पलकपर कला। क्वचित् शीघ्र कर्दममय कला।

३. भग और अन्तर भगपर* प्राथमिक या गौण गलतोरणिकासे प्राप्त, गुप्त कर्दममय प्रकार, वंक्षणोत्तरिका ग्रन्थियोंकी वृद्धि। विषप्रकोपज, गम्भीर सन्निपात। रोग विनिर्णय कठिन।

४. शिश्नच्छदा (Prepuce) का छेदन (सुन्नत्) प्रकार।

उपद्रव—१. गम्भीर स्थितिमें सर्वदा श्वासनलिकाप्रदाह और श्वासप्रणालिका प्रदाह (डब्बा) उपस्थित। २. हृदयगतिमें अति अनियमितता (मंद नाड़ी, रक्त दबाव ह्रास, शक्तिपात और अकस्मात् मृत्यु)। ३. लसीकामेह या गम्भीर मूत्राघात (Anuria), वृक्कप्रदाह-सह। ४. अति भयप्रदवमन। ५. विसर्प।

६. लसीकाग्रन्थियोंका पूयपाक। ७. एक प्रतिशतमें पुनरावृत्ति।

अनुगामी रोग—अ. स्वस्थ होनेपर दूसरे या तीसरे सप्ताहमें १०-१५ प्रतिशतको पक्षाघातभी होजाता है। आ. हृदयपतन; आशुकारी अवस्थामें हृदयपतन, होता है।

रोगविनिर्णय—कीटाणुकी परीक्षा कर लेनेसे रोगका निःसन्देह परिचय मिल जाता है। प्रारम्भमें कलीका मेहकी प्राप्ति तथा जानुक्षेपका अभाव प्रायः रोग निर्णय करा देता है।

---

* यदि प्रसूताका प्रसव-पथ इन रोग कीटाणुओंसे प्रभावित हो जाय, तो प्रबल सूतिकाज्वर उपस्थित होता है जो रुग्णाको मार देता है।

(अ) गलतोरणिका रोहिणी—इसका निदान पिटिकामय उपजिह्वाप्रदाह, सामान्यतः प्रादाहिकज्वर, दानेदार श्वेताणुओंकी उत्पत्तिका अभाव (agranulocytosis), श्वेताणुवृद्धिमय पाण्डु, गौण फिरङ्ग, आमाशयप्रदाहज कण्ठक्षत (Thrush), आशुकारी पूयमय उपजिह्वाप्रदाह (Quinsy) उपजिह्वाका सौम्य साक्षेप कण्ठक्षत* (Vincent's Angina), तालुका कक्षारोग, इन सबसे प्रभेद करना चाहिये। गरम-गरम पेयादिसे ग्रसनिका जली है या (मुँह साफ न होनेसे) दूध जम गया है, ऐसी मान्यता या भूल भी हो जाती है।

पिटिकामय उपजिह्वाप्रदाह हो तो आक्रमण शीघ्र होता है। उत्ताप १०४°, मुखपर तेजी, उपजिह्वापर किसी प्रकारकी कला मर्यादित भागमें विद्यमान, सतहपर रक्तस्रावका अभाव आदि लक्षण पृथक् हो जाते हैं।

प्रदाहिक ज्वरमें रक्तके भीतर एक जीवकेन्द्रमय श्वेताणु विद्यमान होते हैं।

आशुकारी पूयमय उपजिह्वाप्रदाहका भेद पूयके हेतुसे हो जाता है। रोहिणीमें कभी पूय नहीं होता।

(आ) स्वरयन्त्रस्थ रोहिणी—इसे स्वयन्त्रप्रदाह, रोमान्तिका, पश्चाद्ग्रसनिका विद्रधि, श्वासप्रणालिकाप्रदाह तथा कभी स्वरयन्त्रका आक्षेप, बाह्य वस्तु प्रवेश और स्वरयन्त्रका मस्सा (कठोर अर्बुद) से पृथक करना पड़ता है।

आशुकारी स्वरयन्त्र प्रदाहसे प्रभेद कठिन। बच्चोंका प्राथमिक आशुकारी स्वरयन्त्रप्रदाह सर्वदा लगभग रोहिणी सदृश होता है।

रोमान्तिकामें प्रसेकमय लक्षण, कोपलिकका चिह्न, कृत्रिम कलाका अभाव, जीर्णावस्थामें त्वचापर आदर्शपिटिका, इन लक्षणोंसे प्रभेद, हो जाता है।

---

* विंसेण्टके रोगमें कभी कभी ग्रसनिका, मुख, दन्तवेष्ट तथा स्वरयन्त्र और श्वासनलिका भी प्रभावित हो जाते हैं।

पश्चाद् ग्रसनिका विद्रधि का संस्थिति और ठेपन द्वारा प्रभेद।

श्वासप्रणालिकाप्रदाह का निःश्वासमें शीत्कार-ध्वनि द्वारा और निम्न पर्शुकाओंका खिंचाव (गड्ढा पड़ना)।

स्वरयन्त्रके आक्षेप में रात्रिको श्वासकृच्छ्रताका पुनः पुनः, आक्रमण, अकस्मात् आक्रमण, कृत्रिमकलाका अभाव, सार्वाङ्गिक लक्षणमन्द और उष्ण सेक या क्लोरोफार्म द्वारा आक्षेपका शमन इन लक्षणोंसे प्रभेद।

स्वरयन्त्रका मस्सा रक्तस्राव कराता है, इस हेतुसे भेद हो जाता है।

कण्ठरोहिणी और कृत्रिम झिल्लीमय स्वरयन्त्रप्रदाहमें प्रभेद

कण्ठरोहिणी।	कृत्रिम झिल्लीमयस्वरयन्त्र-प्रदाह।
१—प्रदाह तालुसे प्रारम्भ होकर समीपस्थ स्थानोंमें फैलती है।	प्रदाहका प्रारभ स्वरयन्त्र और श्वासनलिकामेंसे होता है।
२—प्रारम्भमें ज्वर उपस्थित होता है।	प्रारम्भावस्थामें कासह प्रतिश्याय।
३—यह संक्रामक जनपदव्यापी विकार है।	यह संक्रामक और जनपदव्यापी नहीं है।
४—कृशता और शक्तिपातकी क्रमशः वृद्धि, फिर जीवनीय शक्तिकी क्षीणतासे मृत्यु होती है बालक रोगी की स्वरयन्त्रप्रदाह और श्वासानरोधसे मृत्यु होती है।	इसमें अधिक शक्तिपात नहीं होता। मृत्यु बहुधा श्वासावरोध होनेसे होती है।
५—हनुनिम्नस्थ ग्रंथिकी वृद्धि।	हन्वास्थिपर ग्रन्थियोंकी वृद्धि नहीं होती।
६—अनेकोंको नासिकासे रक्तस्राव पेशाबमें शुभ्रग्रथिन जाता है।	रक्तस्राव नहीं होता और शुभ्र-ग्रथिन नहीं जाता।

कण्ठरोहिणी और पिटिकामय उपजिह्वका प्रभेद।

कण्ठरोगिणी।	पिटिकामय उपजिह्वाप्रदाह।
१—सामन्यतः गुप्तरूपसे आक्रमण।	अकस्मात् आक्रमण।
२—शारीकि उत्ताप की क्रमशः वृद्धि। ज्वरका क्रम अनियमित, आदिसे अन्ततक अधिक रहता है।	प्रारम्भके २४ घण्टेतक ज्वर १०२° से १०५° डिग्रीतक। ज्वर ३ दिन स्थायी।
३—३ दिनतक विशेष विाकार नहीं होता पर दुर्बलता अधिक आ जाती है।	पहले दिन शारीरिक अति विकृति, दुर्बलता अधिक नहीं आती।
४—नाड़ी द्रुतगामिनी होनेपर क्षीण और अव्यवस्थित भी होती है।	नाड़ी द्रुतगामिनी और भारी।
५—समीपको ग्रन्थियोंकी स्फीति।	ग्रन्थियोंकी स्फीति नहीं होती।
६—४-६ दिनमें रोगकी पूर्ण वृद्धि।	२४से ३६ घंटेमें रोगपूर्णवृद्धि पर।
७—किसीको निगलनेपर नासिकासे पेय पदार्थ और आहार बाहर आ जाता हैं।	ऐसा नहीं होता।
८—ज्वर कम होनेपर मूत्रमें शुभ-प्रथिन।	ज्वर बढ़नेपर मूत्रमें शुभ्र प्रथिन।
९—समग्र कण्ठनालिका अति लाल।	केवल उपजिह्विका लाल।
१०—कला पृथक् पृथक् बिन्दु आकारमें होकर फिर एकीभूत होना। धूसर फिर प्रारम्भमें पीली सी।	पृथक् पृथक् पीत बिन्दु। कुछ भागमें या फैली हुई झिल्ली।
११—उपजिह्विका, अधिजिह्विका ग्रसनिकामें कृत्रिम झिल्ली।	केवल उपजिह्विका आक्रांत।

१२—झिल्ली निकालनेपर रक्त-स्राव। बलात्कारसे निकालने पर पुनः निर्माण।	झिल्ली निकाल लेनेपर रक्त-स्राव नहीं होता। नूतन झिल्ली भी नहीं बनती।
१३—दो दिनतक सामान्यतः कण्ठकी एक ओर झिल्ली।	दोनों ओर एक साथ झिल्ली।

वक्तव्य—कभी कभी कण्ठरोहिणीके साथ रोमांतिका भी उपस्थित होती है।

साध्यासाध्यता—मृत्युसंख्या ५ प्रतिशत। विशेषतम ५ वर्षसे कम आयुवाले बच्चोंकी आयुवृद्धिके साथ मृत्युभय कम। गम्भीर प्रकारमें मृत्यु ३० प्रतिशत।

गलतोरणिका प्रकारमें प्रतिविषका अन्तःक्षेपण पहिले या दूसरे दिन हो जाय, तो मृत्युसंख्या २ प्रतिशतके भीतर; अन्तःक्षेपण तीसरे दिन होनेपर ५ प्रतिशत तथा ४ दिन होनेपर १० प्रतिशत। स्वरयन्त्रके प्रकारमें मृत्युसंख्या गलतोरणिकासे अत्यधिक, तथापि पहिले दिन अंतः-क्षेपण होनेपर अति कम मृत्यु।

भयप्रद लक्षण—अति अनियमित नाड़ी, विशेषतः मंद। शक्ति-ह्रासके लक्षणों सह न्यून उत्ताप। लसीकामेह, आक्षेप तथा कण्ठस्फीतिसह गंभीर शोथ आदि।

(१) गलतोरणिका प्रकारमें विशाल कला तथा ग्रन्थियोंकी अतिवृद्धि; (२) स्वरयन्त्र प्रकारमें अवरोध और फुफ्फुस लक्षण; (३) और नासा प्रकारमें मुक्त रक्तस्राव; (४) पक्षवध प्रकारमें विशाल नाड़ीवध, श्वसिन क्रियासाधक पेशियोंका पीड़ित होना, हृदयकी निर्बलताके लक्षण वमन ये सब भयप्रद हैं।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

यह रोग संक्रामक और अति घातक है। शीघ्र योग्य उपचार न होनेपर रोगीका जीवन दुर्लभ हो जाता है।

वर्तमानमें स्थानिक चिकित्सामें दाहक और उग्रतासाधक औषधका प्रयोग बिल्कुल नहीं होता। फिर भी प्राचीन शास्त्र कथित उपचार यहाँ दिया जाता है, जिससे किसी चिकित्सकको उसतरह प्रयोग करना हो, तो कर सके।

भगवान् धन्वन्तरिजी लिखते हैं कि, कण्ठरोहिणी साध्य हो, उसमें रक्तमोक्षण कराना हितकर है। एवं वमन, धूम्रपान, गण्डूष (कुल्ले कराना) और नस्य कर्म लाभ दायक हैं।

कण्ठरोहिणी वातप्रधान हो तो पहिले रक्त निकलवावें। फिर आदि सैंधानमक, आदि लवणोंसे घिसें और बारम्बर सुहाते सुहाते निवाये तेल आदिके कुल्लेको धारण करावें।

पित्तज रोहिणीमें रुधिर निकलवाकर रक्तचन्दन, शक्कर और शहदसे प्रतिसारण करें (भावप्रकाशकारने प्रियंगु लिखा है। एवं द्राक्षा और फालसेके फाण्टसे कुल्ले करावें; तथा उनका ही कवल धारण करावें। इस तरह और भी पित्तशामक उपचार करें।

कफप्रकोपज रोहिणीमें रसोईघरके धुएँकी धूल, सोंठ, कालीमिर्च और पीपलके चूर्णसे घिसें। अपराजिता (गोकर्णी), बायविडङ्ग और शुद्ध जमालगोटा (तैलरहित) के कल्कसे पकाये हुये तेलमें सैंधानमक डालकर नस्यकरावें तथा उन अपराजिता आदिका कवल भी धारण करावें। कफप्रकोपमें गोमूत्रके गण्डूष कराना भी हितकर है।

रक्तज रोहिणीमें पित्तज रोहिणीके समान उपचार करें।

ऊपर कहे हुये उपचार कदाच बड़ेके लिये उपयोगी हो सकते हैं; किन्तु बालक या शिशु रोगी होनेपर सौम्य उपचार करना चाहिये।

बालकोंके लिये बचका घासा देनेसे वमन होकर झिल्ली, कीटाणु और विष बाहर निकल जाते हैं। फिर ज्वरकेसरीवटी, त्रिभुवनकीर्ति रस, लक्ष्मीनारायण या अन्य वच्छनागप्रधान औषध कम मात्रामें देते रहें। मलावरोध हो तो पहिले ज्वरकेसरीवटी देनी चाहिये। उदरकी शुद्धि पर सर्वदा लक्ष्य देना चाहिये।

कण्ठमें एरण्डककड़ी (पपीताके) दूधका लेप करें या उसके सत्व-पपैनको जलमें मिलाकर लगावें। योग्य स्थानिक उपचार करते रहें।

इस रोगमें हृदयके अवसादग्रस्त होनेका भय रहता है, इस हेतुसे रोगीकी नाड़ी बारबार देखते रहना चाहिये। हृदय निर्बल होनेपर रोगीको बिल्कुल नहीं चलने देना चाहिये। कमरेमें नीचे बिछाये हुए दरी, गलीचा आदिको रोज उठवाकर साफ करें; या न बिछावें।

कण्ठ (गलतोरणिका आदि) को शुद्ध रखनेके लिये नमक मिलाये हुये निवाये जलसे कुल्ले करावें।

नासिकामें या स्वरयन्त्रमें विकृति होनेपर केसरमिश्रित निवाये गोघृत या षड्बिन्दु तैल (निवाये) का नस्य देना चाहिये। वाष्पका नस्य भी उपकारक माना है।

गलेमें वेदना और शोथ हो, तो ऊपर गरम कपड़ा बाँधें या सेक करके गरम कपड़ा बाँधें।

कण्ठमें क्षत हो गया हो, तो खदिरादि वटी मुँहमें रखकर उसका रस चूसें। डाक्टरीमें बर्फका छोटा टुकड़ा मुँहमें रखनेको देते हैं।

हृदय पतन होनेपर हृदयोत्तेजक हेमगर्भपोटली रस, लक्ष्मीविलास रस, कस्तूरी, पूर्णचन्द्रोदय रस, त्रैलोक्यचिंतामणि रस, मृगमदासव, संजीवनी सुरा आदिमेंसे किसी एक का प्रयोग करना चाहिये।

पक्षवध होनेपर एकांगवीर या हेमगर्भपोटली रस देवें।

भोजन नासिकामें आ जाता हो तो बालकोंको नासानलिका और बड़ोंको आमाशय नलिकासे भोजन देते रहें।

इस रोगमें रक्तमें विष मिल जानेसे लसीकामेह उपस्थित होता है। उसको मर्यादामें रखने या नष्ट करनेके लिये रोगीको प्रतिदिन शिलाजीत २-२ रत्ती (२-२ माशे शीतलमिर्चके फाण्टके साथ) दिनमें २-२ बार देते रहना चाहिये।

हृदयका पक्षाघात हो गया हो और वमन होती रहती हो, तो तीव्र वेगकालमें मुँहसे कुछ भी भोजन न देवें। गुदासे द्राक्ष-शर्कराका जल चढ़ाते रहें। डाक्टरीमें २० बूंद बेलाडोनाका अर्क तथा २०-२० ग्रेन पोटास ब्रोमाइड भी मिलाते रहते हैं।

डाक्टरी ग्रन्थोंसे चिकित्सोपयोगी सूचना।

रोगोत्पत्तिरोधक—रोगीको पूर्ण रूपमें पृथक् रखें। वस्त्रोंको कीटाणु-रहित रखें। जब तक कीटाणु नाश न हो जायँ, तब तक उपचार करते रहें। कमसे कम ४-४ दिनके अन्तरपर ३ बार परीक्षा करें। यह रोग प्रबल संस्पर्शज होनेसे रोगीके पास अन्य बालकोंको नहीं जाने देना चाहिये। परिचारक और परिचारिकाको भी चाहिये कि, पूर्ण स्वच्छताका पालन करें। हाथको कीटाणुनाशक धावनसे धो लेवें। कुल्ले करके मुखके भीतरके भागोंको शुद्ध करें। कपड़ेको भी पूर्ण कीटाणुरहित बनावें।

स्तनपान करनेवाला बालक पीड़ित हो, तो स्तनपान करनेके पहिले और पश्चात् स्तनको अच्छी तरह धो लेना चाहिये। अन्यथा कीटाणु भीतर प्रवेश करके संगृहीत स्तन्यको दूषित बना देता है।

रोगशामक—रोगीको सूर्यप्रकाश और शुद्ध वायुवाले कमरेमें रखें। रोगीको पूर्ण आराम देवें। सीधा सुलावें। प्रतिविषका अन्तःक्षेपण करें। स्वरयन्त्रमें अवरोध दूर करनेके लिये आवश्यक उपचार करें। योग्य सम्हाल, पथ्य भोजन स्थानिक उपचार तथा विशेष लक्षणोंकी चिकित्सा, ये सब रोगोपशमनमें सहायक हैं।

कृत्रिमकलाके नष्ट हो जानेके पश्चात् सौम्य रोगमें ३ सप्ताहतक तथा गम्भीर रोगमें इससे अधिक समयतक आराम कराना चाहिये।

सल्फोनेमाइडके किसी भी प्रकारके उपयोगसे स्थानिक या सार्वाङ्गिक लाभ होनेका प्रमाण नहीं मिला।

आवश्यकतापर श्वनसक्रिया करानेवाली मांसपेशियोंका वध होनेपर ड्रिङ्करके यन्त्र (Drinker's Apparatus) से कृत्रिम श्वसनक्रिया करावें। पेशियोंमें शिथिकता आ गई हो तो विद्युत प्रयोग करें। अंगमर्दन भी हितावह है।

स्वरयन्त्रका अवरोध हो, तो श्वासनलिकामें कृत्रिम छिद्र करें। श्वासकृच्छ्रकी वृद्धिमें अस्थिकास्थिपर श्वासग्रहणमें खिंचाव और व्याकुलता होती है।

पथ्यापथ्य—भोजनमें केवल दूध देवें। वमन हो तो मोसम्बी आदि फलका रस देते रहें। ज्वर और झिल्ली दूर होनेपर फिर थोड़ा अन्न दे सकते हैं। शराब अलकोहल आदि उत्तेजक पेयका उपयोग बिल्कुल न करें। (अन्यथा उत्तेजनाके पश्चात् प्रबल अवसादकता आनेका भय रहता है)। हृदयकी निर्बलता आ जानेपर उत्तेजनाकी आवश्यकता हो तो, सम्हालपूर्वक शराबका प्रयोग करें।

(२८) अंशुघात ज्वर।

(अंशुघात ज्वर—प्रभापात—लू लगना—Sun Stroke-Heat Stroke Thermic Fever-Siriasis.)

प्रचण्ड ताप या इञ्जिन आदि की तीव्र उष्णता का अकस्मात् आघात पहुँचने से उत्पन्न होने वाले ज्वर को अंशुघात नामक रोग कहते हैं। यह रोग ४० वर्ष से अधिक आयुवाले, अधिक मेदवाले, अधिक छाया में रहने वाले, नाजुक प्रकृतिकी स्त्री और निर्बल पुरुषों को अधिक होता है। पर कभी कभी बलवान् पुरुष भी इस रोग से ग्रसित हो जाते हैं। यूरोप जैसे शीतल प्रदेशों के रहने वालों को जब ग्रीष्मकाल में उष्ण देशों में जाना पड़ता है; तब उनको लूँ लग जाने का अधिक डर रहता है।

यह रोग विशेषतः ग्रीष्म काल में उष्ण कटिबन्ध प्रदेश में ही होता है। सूर्य के ताप की उष्णता छायावाले स्थान में ११० डिग्री से अधिक होने, वायु के स्तब्ध हो जाने (Stagnation of air) और श्वासोच्छ्वासमें उष्ण वायु आती रहने से तथा अति व्याकुल व्यक्ति को धूप या छाया में अधिक परिश्रम करने से लू लग जाती है।

निदान—दोपहर के अति परिश्रम से थकावट आनेपर बिना विश्राम लिये शीतल जलपान करना, थकावट की अवस्था में पुनः परिश्रम करने लगना, अति उष्ण या वायुरहित स्थान में रहना, टीन के मकानों में शक्ति से अधिक समय तक काम करना, तप्त जमीन पर नङ्गे पैरों से और बिना छाता के चलना, इन सब कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। अशक्तता, मद्यपान का व्यसन, थकान, अधिक तंग

कपड़े पहनना एवं मलेरिया आदि ज्वर, कोष्ठबद्धता या अतिसार, इन में से किसी भी सहायक हेतुके मिलने पर सहज ही में लू लग जाती है।

बाहर की प्रखर उष्णता के तीव्र आघात से जब सुषुम्णा शीर्ष (Medula Oblongata) में रहने वाले शारीरिक उष्णता के नियम न करने वाले केन्द्र में विकृति होती है; तब इस ज्वर की उत्पत्ति होती है।

बाह्य उष्णता का आघात कण्ठ, फुफ्फुस और पीठ पर अधिक होता है या पृथ्वी से उत्पन्न गैस अथवा प्रवास में मोटर इञ्जिनका गैस श्वास मार्ग से भीतर प्रवेश कर जाता है, तब श्वास यन्त्र में विकृति हो कर श्वासावरोधक प्रकार उत्पन्न हो कर भी लू लग जाने का कारण बन जाता है।

उष्णता में अधिक परिश्रम, मार्ग गमन, मोटर या रेल्वे ट्रेन में प्रवास करके उष्णता शमन होने के पहिले बर्फ मिला शीतल जलपान या बिजलीके पंखेकी वायुका सेवन करनेसे भी उष्णताका अवरोध हो जाता है और प्रस्वेदद्वारा विष बाहर नहीं निकल सकता। फिर वही रात्रि के समय फुफ्फुस-कोषोंको जकड़ लेता है और उससे एकाएक श्वास लेनेमें अति कष्ट होने लगता है। यह इस रोगका सौम्य चिरकारी प्रकार उत्पन्न करता है।

अधिक काल तक मध्याह्न के समय तीव्र ताप में परिश्रम करते रहने से पूर्णांश में प्रस्वेदद्वारा विष बाहर नहीं निकल पाता, भीतर ही बढता जाता है, तब उस विषका संचय पर्याप्त हो जाने पर मस्तिष्क और अन्य इन्द्रियों में तीव्र रक्ताधिक्य होकर अकस्मात् मनुष्य मूर्च्छित होकर गिर जाता है।

प्रस्वेद अत्यधिक निकलता हो, किन्तु उस में सोडियम क्लोराइड क्षार कम हो, या प्रस्वेद ग्रन्थियों का पक्षवध होने से प्रस्वेद का निकलना बन्द हो गया हो, अथवा सेन्द्रिय विषका रक्त में शोषण हो गया

हो, तो इन अवस्थाओं में बाह्य उष्णता बढ़ने पर भीतर की उष्णता-नियामक शक्ति अपना कार्य नहीं कर सकती; जिससे सहज ही में लू लग जाती है।

विविध प्रकार—

१. अतिशय क्लान्ति—Heat exhaustion.

२. ज्वरातिशय—Heat Hyperpyrexia.

३. श्वासावरोध—Asphyxial type

४. सूर्यके सामान्य तापका आघात—Sun traumatism.

५. पचनेन्द्रिय संस्थागत विकृति—Gastro-intestinal systoms.

६. गर्मीका आघात—Stroker's Cramp.

१. **अंशुघातज अतिशय क्लान्ति**—मुँह और नेत्रोंका लाल हो जाना, व्याकुलता, नाड़ी की गति में विषमता, चक्कर आना, कुछ बेहोशी, प्रस्वेदसे त्वचाका शीतल हो जाना, कनीनिका प्रसारित होना, नाड़ी तेज चलना, श्वासोच्छ्वासका कष्ट पूर्वक चलना, उबाक, वमन, शिरःशूल, अतिसार, दाह, हाथ पैर खिचना, कण्ठशोथ, अति प्यास, मूत्रमें दाह और कष्ट होना, आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। क्वचित् मूर्च्छा आकर मृत्यु भी हो जाती है।

२. **अंशुघातज ज्वरातिशय**—पूर्वोक्त क्लान्ति के लक्षणों के पश्चात् शीत कम्पसह ज्वर बढने लगता है और अति क्लांति, शिर दर्द, अति तृषा, चक्कर आना, वान्ति आदि लक्षण बढ जाते हैं; दृष्टि में विकृति होती है। हृदय परिक प्रदेश में पीड़ा होता है।

रक्त पतला हो जाता है। विशेषत: इन्द्रियां रक्तसंग्रहमय बन जाती हैं। हृदय का दक्षिण प्रदेश प्रसारित होता है। केन्द्रीय नाड़ी संस्थाके कोषाणु यकृत् और वृक्क अपक्रान्तिको प्राप्त होते हैं। इससे विनाश स्थिति शीघ्र होती है।

इस प्रकार में किसी किसी को भ्रम, निद्रानाश, प्रलाप मोह, हाथ-पैर पटकना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। प्रलाप और बेहोशी बढ़ती जाती हैं। किसी को क्षणिक मूर्च्छा और किसी को गहरी मूर्च्छा की प्राप्ति होती है।

३. अंशुघातज श्वासावरोध—कितनेक पीड़ितोंको प्रलाप आदि लक्षण उपस्थित नहीं होते और श्वासावरोध होने लगता है। फिर वे शीघ्र बेहोश हो जाते है।

इस प्रकारमें ज्वर १०७ से ११० डिग्रीतक और कभी ११२ डिग्री तक बढ़ जाता है। मुखमण्डल तेजस्वी, त्वचाउष्ण, नाड़ी पूर्ण और द्रुत, फिर मंद, श्वासोच्छ्वास गम्भीर, कनीनिका प्रसारित और फिर आकुंचित, मांसपेशियां शिथिल, बांयटे कम आना, जानुक्षेप (Knee-jerk ककच सन्निपातमें दर्शाये हुए) का अभाव और कभी आक्षेप आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

सूर्य के ताप के अतिरिक्त सभी सामान्य उष्णता और गैस, दोनोंके आघातसे श्वासावरोधक प्रकार उपस्थित होता है उसमें शिरदर्द, वमन, अतिसार, तृषा, व्याकुलता आदि लक्षणों के अतिरिक्त श्वासावरोध, श्वासकष्ट पूर्वक चलना, १०१°, १०२° तक उत्तापवृद्धि, बेहोशी आदि लक्षण उपस्थित होते हैं इसका शीघ्र योग्य उपचार करने पर भी कुछ कालतक निर्बलता बनी रहती है।

द्वितीय और तृतीय प्रकारका परिणाम

१. रोगमुक्ति—सामान्यतः शिरदर्द गम्भीर रहता है। प्रायः संधियोंमें कुछ सप्ताहों तक विकृति या शिथिलता रहती है। कुछ दिनोंतक ज्वर १०२° रहता है। कुछ सप्ताहोंतक फिरसे आक्रमण का संभावना रहती है।

२. कभी-कभी परिश्रम करते-करते गम्भीर मूर्च्छा आ जाती है। हृदयक्रिया और श्वासोच्छ्वास कष्टपूर्वक चलकर बन्द हो जाते हैं। २४ से ३६ घण्टे तकमें मृत्यु हो जाती है। यदि शीघ्र उपचार करके रोगीको

बचा लिया जाय, तो भी पक्षाघात या मस्तिष्कगत विकृति शेष रह जाती है।

३. तीव्र आक्रमण होने पर एकाध घण्टेमें ही श्वासावरोध (Asphyxia) होकर मृत्यु हो जाती है।

भावी क्षति

१. उत्ताप सहन करनेकी शक्ति का ह्रास होना।

२. स्मरणशक्ति और विचारशक्तिमें न्यूनता का होना और संभवतः चिरकारी मस्तिष्कावरण प्रदाहकी प्राप्ति होना।

पार्थक्यदर्शक रोगविनिर्णय—घातक मलेरिया, मस्तिष्कसे रक्तस्राव और गर्दनतोड़ बुखारके लक्षणसे इसे पृथक् करने की शीघ्र आवश्यकता रहती है।

१. घातक मलेरियामें रक्त परीक्षा करनेपर और शीघ्र अति व्याकुलता होने के हेतुसे भेद हो जाता है।

२. मस्तिष्कस्थ रक्तस्राव में पक्षवध होता है, जो इसमें नहीं होता।

३. गर्दनतोड़ बुखारका निर्णय कटि कशेरुकामें छिद्र करनेपर स्पष्ट हो जाता है।

साध्यासाध्यता—यह रोग शराबी, बड़ी आयुवाले, मेद पीड़ित और कृश व्यक्तियों के लिए अशुभ है। कितनेक प्रकारोंमें मृत्युसंख्या ३०-४० प्रतिशत तक होती है। इस रोगका अच्छा होना विशेषतः शीघ्र शीतल उपचारके ऊपर अवलम्बित है।

सूर्यके सामान्य तापका आघात (Sun Traumatism)—शिरदर्द, द्रुतनाड़ी, शुष्क और उष्णत्वचा, प्रकाश और आवाजकी असहिष्णुता, क्वचित् वमन और कुछ उत्तापवृद्धि आदि अचिरस्थायी लक्षण उपस्थित होते हैं; किन्तु भावी क्षति ज्वराधिक्यके समान मानी जाती हैं।

५. पचनेन्द्रिय संस्थागत विकृति—कभी-कभी सूर्यके तापमें अधिक

भ्रमण करनेपर उबाक, वमन, विसूचिका गम्भीर शक्तिपात, मांसपेशियोंमें बांयटे आना, जलसदृश पतले दस्त होना आदि पचनसंस्थाकी विकृतिके गम्भीर लक्षण उपस्थित होते हैं।

६. गर्मीका आघात (Stroker's Cramp)—जिनको प्रस्वेद अत्यधिक आता रहता है, उनकी देहमेंसे क्लोराइड क्षार कम हो जाता है। फिर गर्मीका आघात लग जानेपर मांसपेशियोंमें आक्षेप होता है तथा मांसपेशियाँ निर्बल और मृदु बन जाती हैं और शेष लक्षण सूर्यके सामान्य तापके आघातके अनुरूप होते हैं।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

लू लगनेसे अति व्याकुलता और अति उष्णता बढ़ जानेपर तुरन्त रोगीको शीतल वायुवाले स्थानमें ले जाकर लिटा देना चाहिये, कण्ठ परसे कपड़े शीघ्र हटा दें। तङ्ग कपड़े हों तो निकाल दें या सब वस्त्रोंको खोलकर खस या ताड़के पंखेको शीतल जलसे भिगोकर उससे धीरे धीरे हवा करनी चाहिए। रोगीके सिरपर बर्फ या शीतल जलसे भिगोया हुआ कपड़ा फिराना चाहिए।

डाक्टरी विधानानुसार शिरके चारों ओर त्वचापर बर्फको घिसना चाहिये, तथा गुदामें थर्मामीटर लगाकर देखना चाहिए। जब १०४° उत्ताप हो तब वर्फसे शीतलता देना बन्द कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त आवश्यकता हो तब शीतल जलकी बस्ति भी दे सकते हैं।

डाक्टरी मतानुसार यदि मलेरियाका सन्देह हो तो क्विनाइन डायहाईड्रोक्लोरिकका अन्तः क्षेपण करना चाहिये।

आक्षेप उपस्थित होते हों या गात्रनीलता हो जाय, तो शिरावेध करना चाहिए।

श्वासोच्छ्वास बन्द होता हो, तो रोगीके हाथोंको लम्बे, ऊँचे, सामने और नीचे करना आदि रीतिसे चलाकर श्वासोच्छ्वास चालू रखना चाहिए; या अन्य रीतिसे कृत्रिम श्वसनका प्रबन्ध करना चाहिए।

कभी उष्णता घट जाती है। और स्पन्दन अति मन्द होकर हृदयावरोध होने लगता है। ऐसा हो, तो ज्वरनाशक औषधियाँ और उपचार बन्द करें और उससे विपरीत उष्ण बोतलोंसे सेक करना मूर्च्छान्तक नस्य (चूना नौसादर मिश्रण) सुंघाना और हृदयोत्तेजक औषध देना आदि उपचार करने चाहिएं।

देहमें क्लोराइड क्षार कम हो गया हो, तो सोडा क्लोराइडका सेवन करना चाहिये।

पर्याप्त जल पिलाना चाहिये (कुछ नमक मिला हुआ)। आयुर्वेदीय विधानानुसार फालसा, सन्तरा या मौसम्बीका रस अथवा चन्दन और मिश्री या खस और मिश्री मिश्रित जल अथवा गुलाब, केवड़ा आदि का शर्बत मिला हुआ जल थोड़ा-थोड़ा बार-बार पिलाते रहना अत्यन्त लाभदायक होता है। किन्तु एक ही समय में ज्यादा जल न पिलावें।

पैरों के तलुओंपर कांसीकी कटोरीसे घी की मालिश करें। जब पैरोंके तलुवे काले हो जायँ, तब कपड़ेसे पोंछकर निवाये जलसे धो डालें।

अंशुघात चिकित्सा।

उत्तापवृद्धि होनेपर—केसूला (पलाशके पुष्प) को जलसे पीस कांसीके बर्तनमें शीतल जलके साथ मिलालें और फिर रोगीको लिटाकर इस जलवाली थाली (या कटोरी) को रोगीकी सम्पूर्ण देहपर मस्तकसे पैरतक धीरे धीरे फिरावें। इस तरह कांसीके पात्र ४-६ बार फिरानेसे भीतर प्रविष्ट हुई उष्णता बहुत जल्दी शमन होकर बेहोशी दूर हो जाती है; ज्वर शमन होता है; तथा रोगीको शान्ति और प्रसन्नता प्रतीत होती है। इसी तरह मेथीके सूखे पत्तोंके चूर्णको घीका मोन लगाकर शरीर-पर मालिश करनेसे भी लाभ हो जाता है।

मूर्च्छा आ गई हो तो—कण्ठ और फुफ्फुसपर नीलगिरी तैल या तार्पिन तैल लगा लेवें। और फिर गरम जलमें डुबाये हुये फलालैनके टुकड़ेसे थोड़ा सेककर उस टुकड़ेको कण्ठपर लपेट दें तथा ऊपर दूसरा वस्त्र बांध दें। इससे रोगीको थोड़ी ही देरमें चेतना आ जाती है।

मुचकुन्दके फूल और एरण्डमूलको कांजीमें पीस, सिरपर लेप करनेसे भी तुरन्त व्याकुलता दूर हो जाती है।

अधिक पसीनेके कारण देह अधिक शीतल हो गई हो, तो ब्राह्मी वटी या रससिन्दुर और प्रवालपिष्टी शहदके साथ देवें।

शरीर अति उष्ण हो गया हो तो रोगीको निर्वात स्थानमें गुनगुने जलके भीतर १५-२० मिनट बैठावें।

इमली का पानक—किसी पत्थर या मिट्टीके पात्रमें इमलीकी पकी फलियोंके गूदेको १८ गुने जलमें मिला आध घन्टा रहने दें। फिर खूब मसल, ४ गुनी मिश्री मिला, अग्निपर चढ़ाकर एक उबाल दें। फिर पश्चात् उतारकर तुरन्त छान लें। शीतल होनेपर बोतलमें भर लें। इसमेंसे २॥-२॥ तोले ३-४ समय २-२ घन्टेपर पिलानेसे व्याकुलता शमन हो जाती है।

आमझोरा—कच्चे आमको अग्निमें पकाकर रात्रिको शीतल स्थानमें रख दें। सुबह छिलका दूरकर जलमें मसल, रस निकाल, भूना जीरा और थोड़ा सैंधानमक या थोड़ी मिश्री मिलाकर पिला देवें।

बहुफली और बनतुलसी (नगद बावची) के बीजको जलमें भिगो दें। बीज गलकर लुआब बनजानेपर शक्कर मिलाकर पिलावें।

ज्वर शमनार्थ—(१) रससिन्दूर आध रत्ती, मुक्तापिष्टी आध रत्ती (या प्रवाल पिष्टी १ रत्ती), गिलोय सत्व ४ रत्ती, सितोपलादि

चूर्ण २ माशे, सबको मिलाकर सर्बतके साथ २-२ घन्टेपर ३-४ समय देवें।

(२) कामदूधारस शर्बतके साथ २-२ घंटेपर देते रहें।

(३) शीतप्रधान ज्वर २ दिनसे अधिक रह जाय, तो लक्ष्मी. नारायण रस या मधुरान्तक वटी दिनमें २ बार देते रहें। अथवा थोड़ी मात्रामें मृत्युञ्जयरस या विश्वतापहरण जीरा और मिश्रीके साथ देवें

(४) उष्णता अधिक रहती हो तो सूतशेखर रस दिनमें २ समय भांगरे के रस या ब्राह्मीके क्वाथके साथ देनेसे भयंकर बढ़ा हुआ ज्वर प्रलाप, सिरदर्द, वान्ति और बेचैनी आदि उपद्रव शीघ्र शमन हो जाते हैं।

श्वासावरोध होता हो, तो—(१) फुफ्फुसोंपर नीलगिरी तैलकी मालिश करें; फिर गरम जलमें डुबोकर निचोड़े हुए वा बाष्पपर गर्म किये हुए फलालैनके टुकड़ेसे थोड़ा सेक करें या मालिश करके ऊनी वस्त्र लपेट दें तथा श्वासकुठार रस १-१ रत्ती नागरबेलके पानके साथ दिनमें ३ बार देवें।

(२) रससिन्दूर, अभ्रक भस्म और मौक्तिक पिष्टीको मिलाकर शहदके साथ दिनमें ३ बार देवें।

तेज लू चलनेपर सूर्यके तापसे आघात पहुँच जाता है, इसके अतिरिक्त निर्बलोंको और गद्दो तकियेपर बैठे रहनेवालोंको सूर्यके सामान्य तापमें भ्रमण करने या बैठे रहनेपर भी हानि पहुँच जाती है। ऐसे रोगी सिंध, पंजाब, यू० पी०, बरार आदि के शहरोंमें अनेक मिल जाते हैं।

सूर्यके सामान्य तापमें २-३ घन्टे फिरनेपर अनेकों के मस्तिष्कमें दर्द हो जाता है। फिर आमचूर, नीबू, दही आदिकी खटाई खाते हैं। इससे (जिनको ये वस्तु प्रतिकूल हों, उनको) २-४ घण्टेमें जुकाम-सहित ज्वर आ जाता है।

इस तरह आघात होनेपर अनेक स्थानोंमें बनफसा मिश्रित क्वाथ या केवल बनफसा क्वाथ पिलाते है और छाननेके पश्चात् बनफसे का फोक रह गया हो तो उसे थोड़ेसे घीके साथ मंदाग्निपर थोड़ा चलाकर रात्रिको सोनेके समय कण्ठस्थ बृहद् श्वासनलिकापर बँधवा देते हैं। इस तरह २-३ रोज करनेपर प्रतिश्याय और ज्वर दूर हो जाते हैं। किन्तु कतिपय अनभिज्ञ डाक्टर इन्फ्लूएन्जा और मलेरिया कहकर क्विनाइनका अन्तःक्षेपण कर देते हैं। परिणाममें शिरदर्द और ज्वर बढ़ जाते हैं; तथा प्रबल कास, पेशाब बूँद-बूँद गिरना, व्याकुलता बेहोशी आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं; यह ज्वर ५-१० दिनतक बना रहता है। उसे दूर करनेके लिए सूतेशखर + प्रवालपिष्टी + मधुरान्तकवटी का मिश्रण अतिहितकारक हैं। यदि कफ बढ़ गया हो, तो सूतशेखरके स्थानपर लक्ष्मीनारायणरस मिलाना चाहिये एवं शृंगभस्म भी देते रहना चाहिये।

कफ पीला हो गया हो और शीघ्र बाहर निकालना हो तो कटेलीकी जड़, एरण्डमूल, नागरमोथा ये तीनों २-२ तोले और सोंठ ६ माशे मिलाकर जौकूट चूर्ण करें। फिर उसमेंसे ६ माशेसे १ तोलेका क्वाथ कर सुबह-शाम पिलाते रहें। क्वाथ देनेसे किसी किसीको उबाकके समान बेचैनी आती है। अतः क्वाथ पिलाकर दूध, चाय आदि १ घन्टेतक नहीं देना चाहिये।

इस अवस्था में भोजन बन्द कर देना चाहिये। प्रातः सायं दूध और दोपहर को मौसम्बी का रस देते रहने से सरलतापूर्वक विष जल कर सर्व उपद्रवों सहित ज्वर दूर हो जाता है।

सूचना—इस अंशुघात के रोगी दिनों या महीनों तक कृश रहते हैं। इसीलिये लघु पौष्टिक और पथ्य आहारका सेवन कराते रहना चाहिये। रोग शमन हो जानेपर भी शरीर में बल न आ जाय तब तक अपथ्य आहार-विहार से बचते रहना चाहिये।

वस्त्र ढीले और हलके पहने। तेजस्वी रंगवाले नहीं। सूर्य के ताप से मस्तिष्क, पीठ, सुषुम्णादण्ड और कण्ठ का रक्षण करें। नेत्र में विकृति हुई हो तो शीघ्र उपचार करना चाहिये। काले, पिङ्गल या पीले चश्मे पहनें; किन्तु नीले रंग के नहीं।

साफा या टोपी में प्याज रखकर प्रातः सायं बाहर फिरने पर एकाएक लू का आघात नहीं होता। परमात्माने प्याज को लू से संरक्षण करने की दिव्य शक्ति प्रदान की है।

सूर्य के ताप और अग्निका सेवन, मद्यपान, चाय आदि उत्तेजक पेय, तमाखू, सिगरेट, इन सब का १ वर्ष तक त्याग करना चाहिये।

पथ्य—ब्रह्मचर्य, शीतल जलपान, शर्वत, ठण्डाई, दूध, फालसा, संतरा, मोसम्बी, अंगूर या शीघ्र पचने वाले पदार्थ, साबूदाना, दलिया, खिचड़ी, मूँगकी पकौड़ी, पतले फुलके आदि भोजन, परवल, लौकी, चन्दलोई, पालक, प्याज आदि का शाक, आम या इमलीका पना, सिरका मिश्रित चटनी और नीबू आदि खटाई।

अपथ्य—शराब, सिगरेट, चाय, अग्नि सेवन, धूप में घूमना मिर्च आदि गरम पदार्थों का सेवन, गुड़, तैल, टीन के नीचे रहना, रात्रिका जागरण और शुष्क भोजन आदि।

समाप्त

अनुभूत प्रयोग सूची

चित्र सूची

* एकाहिक ज्वरका चित्र पुस्तकके अन्तिम भागमें संलग्न चित्रावली में देखिये ।

चित्रों का शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	१७१	एकाहिक ज्वर	यह उत्ताप और नाडीगति दर्शक चित्र विषम मोतीझरा (Paratyphoid Fever) का है
	१७४	तृतीयक ज्वर	यह चित्र मोतीझरा (Typhoid) के उत्ताप और नाडीगति दर्शक है।
	१७७	चातुर्थिक ज्वर	यह चित्र पृ० १७४ में सौम्य तृतीयक ज्वर के साथ देना चाहिये।
	२१५	मोतीझरा	यह चित्र पृ० १७७ में चातुर्थिक ज्वर के साथ देना चाहिये।

ज्वरविज्ञान का शुद्धिपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	अंतिम	पूर्वावस्था	रूपावस्था
१६	७	रोग के	रोगी के
१८	२	किसी से	किसी
२१	६	अग्निदीपन गुण	प्रायः ग्राहीगुण प्रधान
,,	२५	उबलते हुए	उबाले हुये
२६	८	बार बार	दो बार
२९	१७	अन्यथा	और
४५	२४	कण्ठशोथ	कण्ठशोष
५०	१३	प्रभावित	प्रभावित होकर
५२	१	अव	अवस्थामें
,,	१४	उदरवता की	उदरवात की
,,	१९	उदरवात सह पिलाते	पिलाते
,,	२०	और अतिसार	और उदरवातसह अतिसार
५२	१०	तृणपंचमूल क्वाथके साथसोरा	या सोरा तृणपंचमूल क्वाथ के साथ
५९	१६	इतर ज्वरोंकी उपेक्षा	प्रलाप इतरज्वरों की अपेक्षा
६०	२१	विचार दूर हो जाते हैं।	विकार-
६९	१२	बस्तिशोधक तथा	बस्तिशोधक है तथा
७३	१४	रहता है शरीरमें	रहता है या शरीरमें
७५	२३	आमाशय की	आमाशय आदि की
८७	२	डुबाने से	डूबोकर झटकने से
,,	१०	और के	और के बगल के
८८	१५	११५°	१·५°
९१	१९	महाधनी के	महाधमनी के

शुद्धपत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	अंतिम	बैठनेपर ७० और	बैठने की अपेक्षा
१०९	,,	धुमेह	मधुमेह
११७	,,	अपचन ज्वरमें	अपचन जन्य ज्वर,
११३	१	पचनेन्द्रिय की	जन्य पचनेन्द्रिय की
१२०	७	निर्माल्य	क्षीण
१२९	७	कमर में	मस्तिष्क में
१३३	७	समभाव	समभाग
,,	२२	खरेटी	खरैटी
१४७	२	सौंयकी मांजी	सोयेकी भाजी
१५८	२१	कारव्यादि	कारव्यादि
१६१	१५	" नामक	" एनोफिलिस नामक
१७१	८	इससे	इसके
१७६	२०	पौष्टिक	पैत्तिक
१८२	२४	फलशाक	वासीफल या वासीशाक
१८४	१९	बफारा	बफारा दें या
१९३	२१	ड्रासके	ड्रग्स के
२५६	७	४ घण्टे	आध घण्टे
२६२	२०	क्षयरोग में	क्षयरोगज
२७१	१६	घीके	घी-शहदके
,,	अंतिम	कतीरा ६ माशे,	कतीरा
२८०	२०	स्वमेव	स्वयमेव शान्त हो
२८३	२३	भोजन	अपथ्य या विरोधी भोजन
२९४	१२	मिले	८ तोला लेवें। गूगलको जल में मिलाकर गरम करें। उसमें एरण्डतैल मिले

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह

(संशोधित और परिवर्द्धित षष्ठ संस्करण)

इस ग्रन्थ में भस्म, रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप, सेक, मलहम, अञ्जनादि सब प्रकार की औषधियों के सहस्रशः अनुभूत प्रयोग लिखे गये हैं। इस ग्रन्थ को सर्वोपयोगी सुन्दर बनाने में पूर्ण लक्ष्य रखा गया है। अनेक प्रतिष्ठित और अनुभवी वैद्यराजों ने इस ग्रन्थ की उत्तमता और उपादेयता देख-समझकर अति सन्तोषप्रद सम्मतियाँ प्रदान की हैं।

भूमिका में श्रीमान् पं० गोवर्धनजी शर्मा छांगाणी प्राणाचार्य-भिषक्केसरी भूतपूर्व अध्यक्ष, निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल ने इस ग्रन्थ की निम्नानुसार विशेषताएँ प्रकट की हैं:—

(१) भस्म प्रकरण में "कृष्ण-गोपाल धर्मार्थ औषधालय" की रसायनशाला में जिस विधि से भस्में बनाई जाती हैं—जो कि शतशोऽनुभूत हैं; उन्हें दिल खोलकर लिख दिया है; इतना ही नहीं; उनका गुण-विवेचन भी विस्तारपूर्वक लिखा गया है। (२) कूपीपक्व रसायन अर्थात् मकरध्वज, चन्द्रोदयादि बनाने की सरल एवं अनुभूत विधिएं, जैसी इस संग्रह ग्रन्थ में हैं वैसी किसी भी संस्कृत हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषा के ग्रन्थों में नहीं पाई जातीं। (३) रोगानुसार और औषधियों के नामानुसार भेद से अनुक्रमणिका भी दो प्रकार से दी गई है—रोगानुसार औषध-सूची में यह विशेषता है, कि उसमें उपद्रव भेद और वातादि दोष भेद से औषधि भेद दिखलाये गये हैं।

मूल्य—डिमाई अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ९००, मूल्य अजिल्द ७) रु०। पोस्टेज १४ आने अलग।

चिकित्सातत्वप्रदीप प्रथम प्रथम खण्ड

(द्वितीय संस्करण)

इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक और डाक्टरी ढंग से रोगों का निदान और चिकित्सा लिखी गई है। डाक्टरी निदान १६४५ ई० में प्रकाशित डाक्टरी ग्रन्थों के आधार से सरल भाषा में समझा समझ कर लिखा गया है। जिससे आयुर्वेद के साधारण बोध वाले विद्यार्थी भी इसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस ग्रन्थ में ५ प्रकरण हैं १–उपोद्घात। २–शरीर शुद्धि प्रकरण। ३–चिकित्सा-सहायक प्रकरण। ४–ज्वर प्रकरण और ५–पचनेन्द्रिय-संस्था-व्याधि प्रकरण।

उपोद्घात प्रकरण में रोगविनिर्णयार्थ, निदान पञ्चक, वातादि दोषों के गुण और चिकित्सा सम्बन्धी विषयों पर महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है।

द्वितीय प्रकरण में सब प्रकार के नये और पुराने रोगों को जड़ मूल से नष्ट करने के लिए वमन, विरेचन, वस्ति आदि शोधन विधियाँ दी गई हैं।

तृतीय प्रकरण में अनुपान, पथ्यापथ्य, षड्रस-गुण दोषों पर विचार परस्पर प्रतिकूल पदार्थ, औषध-मात्रा आदि चिकित्सा में सहायक सभी आवश्यक बातों का संग्रह किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण में प्राचीन आचार्यों द्वारा दिये हुए और वर्तमान में संक्रामक रूप से उत्पन्न हुए सब प्रकार के ज्वर तथा रोगों के आयुर्वैदिक और डाक्टरी निदान तथा अनुभूत चिकित्सा लिखी गई है।

पहिले संस्करण की अपेक्षा इसमें २५० पृष्ठों का लेख तथा बहुत से चित्र भी बढ़ गये हैं। अमेरिकन उत्तम डिमाई अठपेजी पृष्ठ ६५०। मूल्य अजिल्द का ८) तथा सजिल्द का रु० ९॥) पोस्टेज ॥।=)।

नेत्ररोग विज्ञान

लेखक—स्व० डा० जादवजी हंसराज D. O. M. S. (London) L. M. S, (Bombay)

इस ग्रन्थ में नेत्ररचना, नेत्र के विविध अवयवों के कार्य और उनके रोगों की निदान-चिकित्सा आदि का वर्णन अनेक डाक्टरी ग्रन्थ और स्वानुभव के आधार पर अति सरलभाषा में किया है। संस्कृत, हिन्दी, बंगाला मराठी, गुजराती आदि किसी भी भारतीय भाषा में इस कोटिका ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ। नेत्र रचना और रोगों को समझाने के लिये स्थान-स्थान पर चित्र भी दिये गये हैं। यह ग्रन्थ डाक्टर, वैद्य, विद्यार्थीवर्ग और आयुर्वेदप्रेमी, सबके लिये उपयोगी हो, इस बात का लक्ष्य रखकर इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

नेत्ररोग के लेखक इंग्लैण्ड के डिग्री प्राप्त विद्वान् हैं, आपने अनेक वर्षों तक यूरोप में रहकर अनुभव प्राप्त किया, तथा २५ वर्षों से अधिक समय तक बम्बई में भी कार्य किया था। आपने अनेक वर्षों तक बम्बई की कालेज के M. B. B. S. के विद्यार्थियों की नेत्ररोग की परीक्षा के परीक्षकरूप से कार्य किया था। आयुर्वेद समाज की सेवा के निमित्त ही आपने यह ग्रन्थ लिखकर प्रदान किया है।

अमेरीकन ग्लेज़ पेपर १८×२२ अठ पेजी पृष्ठ सख्या ६५०, २४० चित्र। सजिल्द मूल्य रु० १५)। पोस्टेज १) रु०।

गावों में औषधरत्न

इस पुस्तक में अफीम, आक, कपूर, कालीमिर्च, केशर, कुचिला, गिलोय, थूहर धतूरा, नागरबेल, पीपल आदि गाँवों में सरलता से मिलने वाली सुपरिचित ८८ औषधियों का विवेचन मेटेरिया मेडिका की शैली से किया गया है। भिन्न भिन्न देशों में प्रचलित नाम, वनस्पति शास्त्र का निर्णीत नाम, वनस्पति परिचय, आवश्यक स्थानों पर लक्षणों का प्रकाश, विशेष सूचना और टिप्पणी आदि दिये हैं तथा पाठकों का सुविधार्थ आरम्भ में भिन्न-भिन्न भाषाओं के नामों की अनुक्रमणिका और अन्त भाग में रोगानुसार सूची देकर पुस्तक को विशेष उपयोगी बनायी गई है। सामान्य बुद्धिवाले सरलता से समझ सकें, ऐसी सरल भाषा में पुस्तक लिखी गई है।

यह पुस्तक गांवों में रहनेवाले चिकित्सक, परोपकारी सज्जन और जनता के स्वास्थ्य को चाहने वाले समाज सेवक, सबके लिये उपयोगी है। इतना ही नहीं प्रत्येक वैद्य, और विद्यार्थी के लिये मार्गदर्शक भी है। १८×२३ अठपेजी पृष्ठ ३१२ मूल्य सामान्य कागज २) और ग्लेज सजिल्द ३।।, पोस्टेज ।।) पृथक्।

औषध गुणधर्म विवेचन

यह एक अपूर्व और अत्युपयोगी पुस्तक है। इसमें औषध-गुण, औषध-परिणाम और व्याधि-प्रतिकार; इन तीनों विषयों को मुख्य रूप से तथा इतर सहायक विषयों को गौण रूपसे विचारणा की है। किन-किन रोगों में किन-किन औषधियों का प्रयोग किस हेतु से और कैसे करना चाहिये इनका तथा औषधि के साक्षात् परम्परा परिणाम, स्थानीय-दूरवर्त्ती परिणाम, भौतिक, रासायनिक और जीवन के परिणाम एवं परम्परागत परिणाम के विविध भेद आदि आदि बातों का

सूक्ष्म रूप से विचार किया है। इनके अतिरिक्त औषध सेवन करने पर देह में होनेवाले अपतर्पण संतर्पण, प्रवाहीकरण परिवर्तन, उत्तेजना, प्रत्युग्रता, रासायनिक प्रभाव, यान्त्रिक प्रभाव आदि विविध परिणामों की प्राप्ति के नियम दर्शाये हैं।

१८×३० = ८ पेजी, पृष्ठ-संख्या ३२०, मूल्य अजिल्द रु० ३), सजिल्द ४॥)। पोस्टेज ॥=)

रुग्ण-परिचर्या

लेखक—डा० कृ० श्री० म्हसकर M. D, M. A., B. Sc, D. P. H.

यह ग्रन्थ परिचारक और परिचारिकाओं (Nurses) को परिचर्या की शिक्षा देने के लिये लिखा गया है। विविध प्रकार के रोगियों की सेवा-शुश्रूषा किस प्रकार से करनी चाहिये ? किन किन नियमों को सम्हालना चाहिये ? कितनेक आगन्तुक रोग चोट लगना, जल में डूबना अग्नि में जल जाना, बिजली का धक्का लगना, विष सेवन आदि में तात्कालिक चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिये ? और विविध रोगों के उपचारार्थ किस किस वस्तु तथा शस्त्र आदि साधनों को आवश्यकता पड़ती है इत्यादि बातें विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त नाड़ी परीक्षा, मल, मूत्र कफ आदि के निरीक्षण और परीक्षण, विविध प्रकार के पट्टीबन्ध (Bandage) वैयक्तिक और सामाजिक स्वास्थ्य-विज्ञान, निसर्गोपचार, स्त्रियों और बालकों की परिचर्या मरणोन्मुखी और मृत व्यक्तियों की परिचर्या आदि विषयों का वर्णन तथा ३०० से अधिक चित्र भी दिये गये हैं। यह वैद्य और विद्यार्थियों के लिये एक अपूर्व सहायक ग्रन्थ है।

साइज २०×३० सोलह पेजी २६ पौण्ड कागज। पृष्ठ संख्या ५०० । मूल्य ३॥) पोस्टेज ॥)

आयुर्वैदिक औषधियाँ, पुस्तकें तथा मुफ्त वैद्यकीय सलाह

पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज द्वारा आयुर्वेद की सेवा से सम्पूर्ण वैद्य समाज भली भांति परिचित हैं। पूज्य स्वामीजी एक आदर्श सन्यासी हैं। आपने सन् १९२० से १९२६ तक जगत विख्यात भिक्षु अखण्डानन्दजी महाराज. सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद के साथ हिन्दू धर्म, संस्कृति और समाज को उन्नति के लिये समुन्नत साहित्य भेंट करके जनता की सेवा की है। अब सन् १९३० से अजमेर मेरवाड़ा के अन्तर्गत कालेड़ा ग्राम में आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। यह आपकी सेवा-परायणता, निःस्वार्थ भाव और आयुर्वेद के साथ प्रेम ही का फल है, कि आज इस संस्था का नाम अपनी सत्यता, साहित्य सेवा और विशुद्ध औषधियों की उपलब्धि के कारण सर्वत्र आदर के साथ लिया जाता है। आपने इस संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाले साहित्य में अर्वाचीन और प्राचीन मतों का तुलनात्मक दृष्टि से सविस्तार विवेचन किया, एवं अनेक अनुभूत प्रयोगों की बनावट, उपयोग तथा अनुपान आदि को सरल हिन्दी भाषा में लिखा है। सैकड़ों वर्षों के अनुभूत प्रयोग बिना किसी छिपाव के आयुर्वेदोन्नतिकी भावना से वैद्य समाज के सामने प्रगट कर दिये हैं।

संस्था में किसी व्यक्ति विशेष का स्वार्थ निहित नहीं है। एवं इसका संचालन प्रान्त के ११ सुविख्यात प्रतिष्ठित सज्जनों का रजिस्टर्ड ट्रस्ट मंडल कर रहा है।

संस्था की रसायन शाला में औषधि निर्माण की पवित्रता और विशुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रत्येक प्रयोग संस्थाद्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में वर्णित विधि अनुसार ही बनाया जाता है।

व्यवस्थापक

भस्म रसायन आदि औषधियाँ।

इस धर्मार्थ औषधालय में सब प्रकार की औषधियाँ बेची तथा बाहर भेजी जाती हैं 'रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह में लिखे हुए और 'चिकित्सातत्वप्रदीप' में आये हुये प्रयोग–भस्म, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी; खरलीय रसायन, गुटिका चूर्ण कषाय, आसव, अरिष्ट, अर्क शर्बत, पाक, अवलेह, घृत, तल, अञ्जन, क्षार, लेप, मलहम, आदि तथा शोधित द्रव्य और वनौषध खनिज आदि सब प्रकार की औषधियाँ उचित मूल्य से बाहरी ग्राहकों को भेजी जाती हैं। मूल्य सूचीपत्र में देखें।

यह औषधालय गरीबों की सेवार्थ है, किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। औषधालय का ट्रस्टडीड रजिस्टर कराया है, जिसमें ११ ट्रस्टी बनाये गये हैं। किसी का स्वार्थ न होने से इस औषधालय में पूर्ण सत्यतापूर्वक व्यवहार किया जाता है। सब औषधियां शास्त्रोक्त विधि के अनुसार ही तैयार की जाती हैं। इसकारण पूर्ण रूप से शास्त्रोक्त लाभ प्राप्त होता है। औषध और पुस्तक विक्री से जो लाभ होता है उसका उपयोग दीन दुःखी जनों की सेवा में किया जाता है। अतः इस औषधालय से औषध खरीदने में चिकित्सक और ग्राहकों को शास्त्रोक्त विधि से बनी हुई सच्ची औषध मिलती और साथ साथ गरीबों की सेवा में सहायता भी होती रहती है।

व्यवस्थापक

ग्रन्थ-प्रकाशन और औषध-विक्रय ।

इस संस्था की ओर से ग्रन्थों का प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवा भाव से किये जाते हैं । इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रक्खा गया है और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा । हमारे ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद करना चाहेंगे, तो उन्हें निःस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं भविष्य में यदि किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ-प्रकाशन बन्द हो जाय तो कोई भी धर्मार्थ संस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित कर सकती है । हमारी ओर से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं किया जायगा।

हमने ओषधि प्रयोगों में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्खा, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे । प्रयोग विधि गुप्त रखने से उनका इच्छानुसार दस-बीस गुना अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा हमने नहीं किया। यह धर्मार्थ संस्था महाप्रभु कल्याणराय की है, वे यदि इसे निभाना चाहते हैं, तो इसके ट्रस्टियों के हृदय में विशालता और सत्य पालन में दृढ़ता देंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

सूचना;—आर्डर देते समय अनेक महाशय अपना पूरा पता तथा माल रेल्वे द्वारा मंगवाने पर अपना रेल्वे स्टेशन और रेलवे का नाम लिखना भूल जाते हैं । ऐसी अवस्था में हम आज्ञा पालन करने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः कृपया इस सूचना पर पूर्ण ध्यान दें ।

वसन्तकुसुमाकर रस

यह आयुर्वेद का प्रसिद्ध कामोत्तेजक रस है। यह अण्ड-कोष, हृदय, मस्तिष्क, पचनेन्द्रिय और फुफ्फुसों के लिये पौष्टिक वीर्यवर्धक, कामोत्तेजक, मधुमेहघ्न और मानसिक निर्बलता का नाश करनेवाला है। मधुमेह में भी इसका उपयोग निश्चित रूप से लाभ पहुँचाता है।

यह शुक्रक्षय, नपुंसकता, मूत्रपिण्ड की विकृति, स्मरणशक्ति का ह्रास, भ्रम, निद्रानाश, हृदय दौर्बल्य और शुष्क कास में भी अत्यन्त लाभदायक है। वृद्धावस्था में श्वासकास, हृदय या यकृत-विकृति और दौर्बल्यता के लिए तो यह अमृतरूप ही है। मूल्य १ तोले का २४) रुपया।

सिद्ध परीक्षा पद्धति प्रथम खण्ड

इस ग्रन्थ में क्रियात्मक रोग निदान का सविस्तार वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में प्रश्न परीक्षा और रोगी की सामान्य दशा तथा आकृति का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् शरीर की संस्थानुसार विस्तार पूर्वक वैज्ञानिक ढंग से परिक्षा लिखी गई है। ग्रन्थ १७×२२ अठपेजी, पृष्ठ संख्या ८०० के लगभग जो अनेक चित्रों से सुसज्जित है। मूल्य रु० ७) पोस्टेज पृथक्।

पुस्तकें मिलने के पते।

१ कृष्णगोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय पो० कालेड़ा कृष्णगोपाल (अजमेर)।
२ श्री० पं० श्रीगोवर्धनजी शर्मा छांगाणी, सीताबर्डी, नागपुर
३ „ पं० राधाकृष्णजी द्विवेदी उर्दू बाजार हैद्राबाद (दक्खन)
४ भारत सेवक औषधालय, नई सड़क, दिल्ली
५ धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)
६ प्राणाचार्य भवन विजयगढ़ (अलीगढ़)
७ देशरक्षक औषधालय मलेरकोटला (पंजाब)
८ देशरक्षक औषधालय-कनखल (हरिद्वार)
९ श्री गणेशदासजी धूलचंदजी चाण्डक सौसर (छिंदवाड़ा)
१० श्री वैद्य शान्तिलाल एन वसंत, १३७ शेखमेमन स्टीट, बम्बई नं० २
११ श्री० पं० धन्नालालजी शर्मा, चांदपोल, उदयपुर
१२ „ श्यामलालजी बुकसेलर दौलत मार्केट—आगरा
१३ „ पं० विश्वनाथजी वाजपेयी औरैया (इटावा)
१४ „ जयकृष्णदासजी हरिदासजी गुप्ता पोस्ट बॉक्स नं० ८ बनारस
१५ „ मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स कचौड़ीगली, बनारस
१६ „ मोतीलालजी बनारसीदासजी, चौक, बनारस
१७ „ शान्तिस्वरूपजी, श्रीरामरोड (लखनऊ)
१८ „ पनपालिया ब्रदर्स-अकोला (बरार)
१९ „ पं० रामगोपालजी शर्मा, संस्कृत पाठशाला गंज-अजमेर।
२० „ मेहता रसायनशाला, कचौरा, (अलीगढ़)

औषध विक्रेता एजेण्टों की सूची

१. श्री देवकृष्णजी राठी, बालाजी प्लाट—शेगांव।

२. कृष्ण गोपाल आयुर्वैदिक धर्मार्थ औषधालय की शाखा, बागरगांव, पो० ऊखली बाजार (आकोला)।

३. मेसर्स पाडिया स्टोर्स, तेल्हारा (आकोला)।

४. मेसर्स गोपाल स्टोर्स, बर्धा (सी. पी.)।

५. श्री वैद्य आर. एल. सूरी. सूरी-। फार्मेसी, गंजीपुरा, जबलपुर (सी. पी.)।

६. श्री प्रकाशचन्द्रजी पाठक, दिवाला नाका, सागर (सी. पी.)।

७. श्री गंगवाल आयुर्वैदिक औषधालय, राजनांदगांव, (सी. पी.)।

८. श्री कविराज योगेन्दुनाथ आयुर्वेदाचार्य, अयुर्वेदालंकार, ए. एम. डी. ऋषि औषधालय, मंडी बाजार. पानीपत, (करनाल)

९. श्री गंगा स्टोर, धमोरा (रामपुर) यू. पी.।

१०. श्री वैद्य सन्तसिंहजी सल्ह, सन्त औषधालय, भंगड़ बाजार जगराओ, (लुधियाना)।

११. श्री नारायण प्रसादजी टो० वर्मा, कोठरी बिल्डिग, भाजी मंडी, इतवारी, (नागपुर)।

१२. श्री वैद्य सूर्यकान्तजी शर्मा, आयुर्वैदिक दिवाकर औषधालय, श्री गंगानगर (बीकानेर)।

१३. श्री वैद्य शान्तिलालजी एन बसन्त, (फोन नं० २७१५७) १३७, शेष मेमन स्ट्रीट, बम्बई नं० २।

१४. पनपालिया जनरल स्टोर्स, मेइन रोड, आकोला, (बरार)।

१५. श्री गणेशदासजी धूलचन्दजी चाण्डक, सौसर, (छिन्दवाड़ा)।

हमारे औषध विक्रेता स्टाकिस्टों की सूची

१. श्री शिवराम बावन पाटील, स्थान—पलसी (झांसी) पो० तामगांव जि० बुलडाना ।

२. श्री स्वामी अमृतानन्दजी, श्रीमोतीबाई धमार्थ औषधालय, सान्ताक्रुज बम्बई नं० २३ ।

३. श्री मारुती रावजी पाटील, कोकडा, (अमरावती) ।

४. श्रीदेवीलालजी पन्नालालजी खगरावत, नया बाजार, नीमच सिटी ।

५. श्री वैद्य कन्हैयालालजी, श्री महावीर जैन औषधालय, नीमच सीटी ।

६. श्रीशिवनरायणजी वैद्य, श्री भास्कर औषधालय, इतवारा, (भोपाल) ।

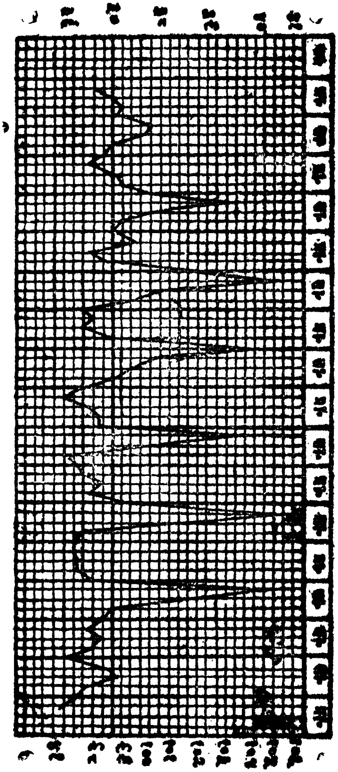
७. श्रीब्रह्मदत्तजी तिवारी, अभयकर औषधालय, भरथना, (इटावा) ।

८. श्रीमूलचन्दजी शर्मा अध्यापक, मिडिल स्कूल, अन्ता, (कोटा)

९. श्री कविराज भारतभूषणजी, बाजार खजाञ्चिया, हिसार ।

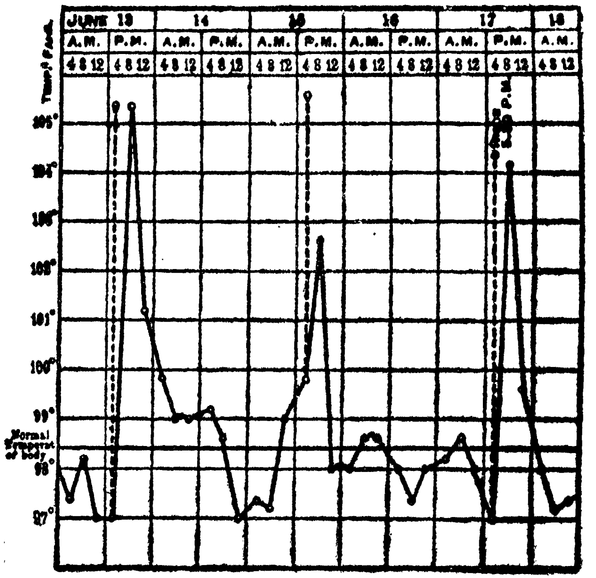
चित्रावली

(चित्र सूची देखकर सुधार लें ।)



"एकाह्निक ज्वर"

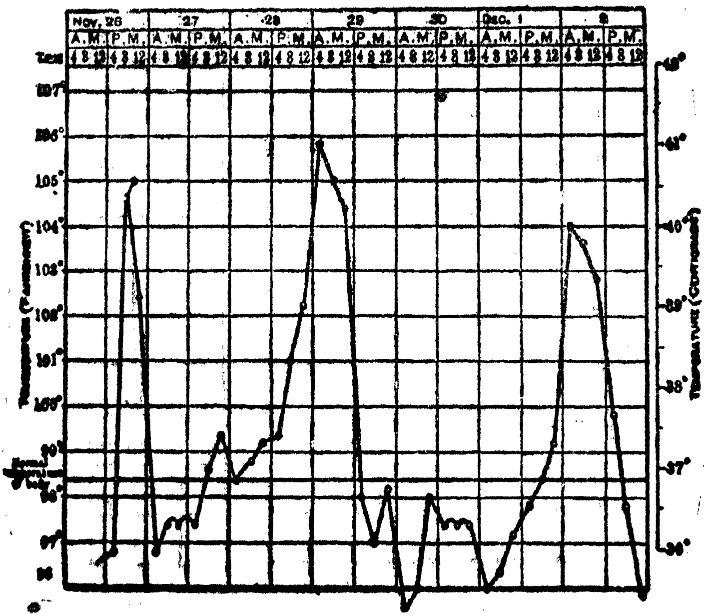
(यह चित्र पृष्ठ संख्या १७० का है ।)



-Benign tertian ague.

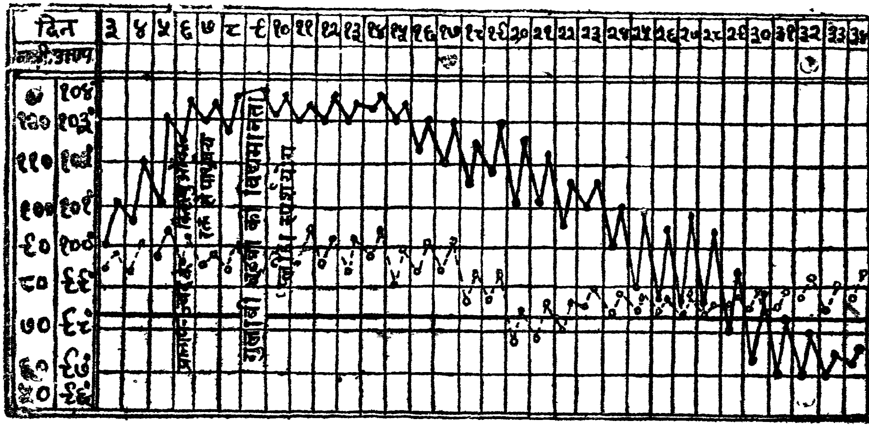
'तृतीयक ज्वर''

(यह चित्र पृष्ठ संख्या १७४ का है ।)



"चातुर्थिक ज्वर"

(यह चित्र पृष्ठ संख्या १७७ का है ।)



"मोतीभरा"

(यह चित्र पृष्ठ संख्या २१५ का है।)